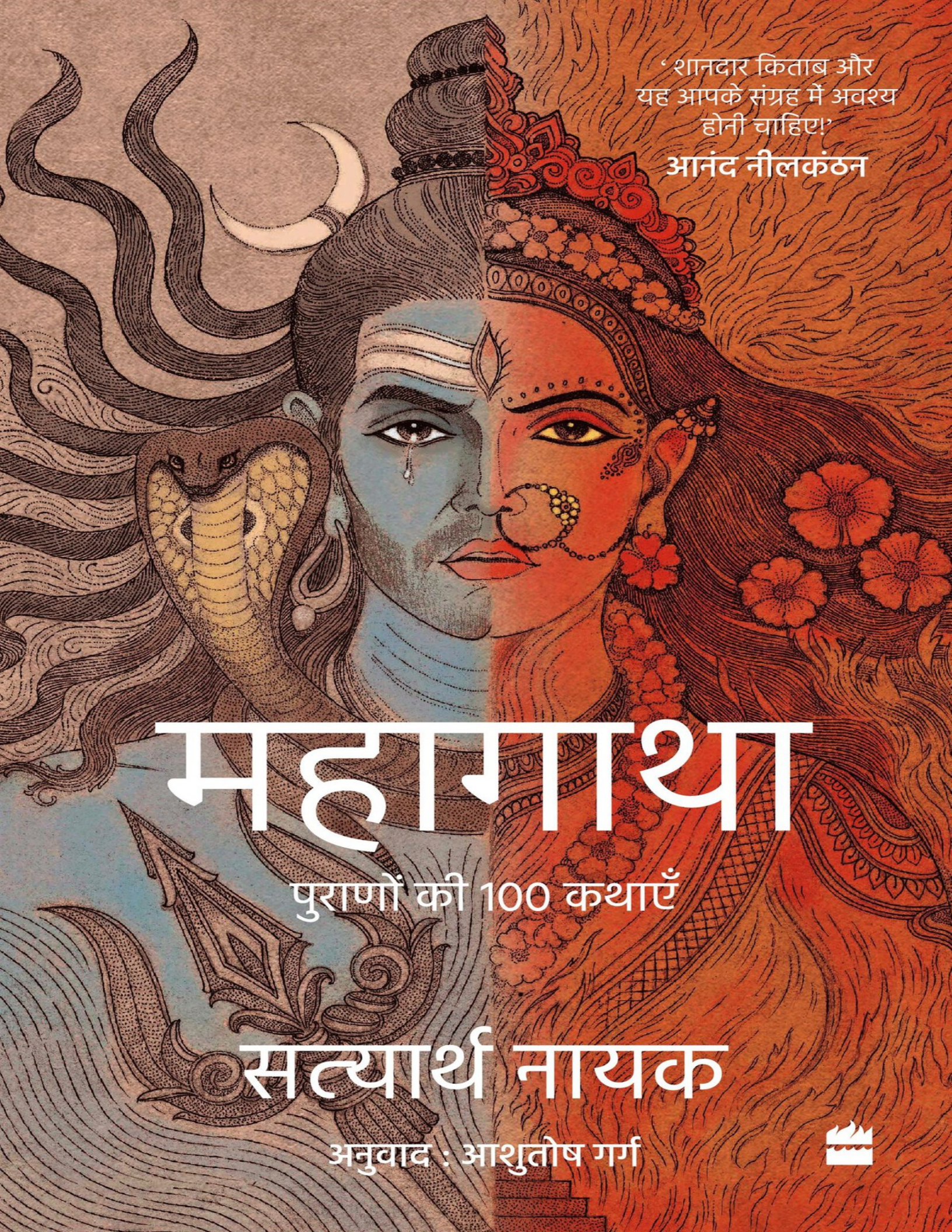


'शानदार किताब और
यह आपके संग्रह में अवश्य
होनी चाहिए!'
आनंद नीलकंठन

महागाथा

पुराणों की 100 कथाएँ

सत्यार्थ नायक

अनुवाद : आशुतोष गर्ग

महागाथा
पुराणों की 100 कथाएँ

महागाथा : पुराणों की 100 कथाएँ की प्रशंसा में

‘सत्यार्थ, वास्तव में अभूतपूर्व कथाकार हैं।’

—अश्विन सांघी, लेखक

‘बेहद सुंदर चित्रों वाली अत्यंत पठनीय पुस्तक।’

—नमिता गोखले, लेखिका

‘इस पुस्तक की कहानियों... और सत्यार्थ ने जिस तरह हमारे पुराणों की कथाओं को अत्यंत दिलचस्प कालानुक्रमिक ढंग से व्यवस्थित किया है, उसे पढ़कर लगता है कि आप प्रारंभिक हिंदू धर्म के इतिहास को पढ़ रहे हैं। यह अद्भुत है। मेरा मानना है कि यह किताब सबको पढ़नी चाहिए।’

—अयान मुखर्जी, फिल्म निर्माता

‘महागाथा, एक उत्कृष्ट पुस्तक है।’

—द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया

पौराणिक साहित्य में रुचि रखने वालों के लिए महागाथा, कहानियों का खज़ाना है।’

—द न्यू इंडियन एक्सप्रेस

‘महागाथा में 100 पौराणिक रत्न हैं, जिन्हें सावधानी से विद्वतापूर्ण शोध के बाद चुना गया है।’

—द एशियन एज

'अंत तक बांधे रखने वाली रोचक गाथाएँ।'

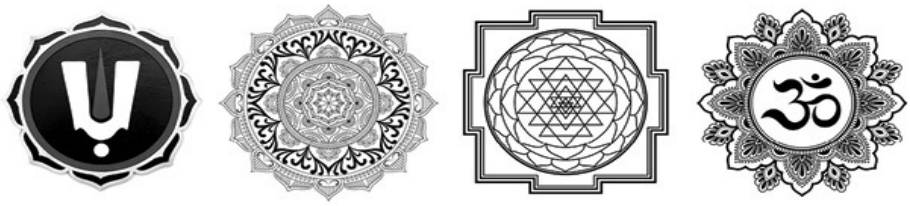
—द वीक

'खूबसूरत लेखन। ज़्यादा से ज़्यादा लोगों को ये कहानियाँ पढ़नी चाहिएं।'

—बिबेक देबरॉय

महागाथा

पुराणों की 100 कथाएँ



सत्यार्थ नायक

अनुवाद

आशुतोष गर्ग

हार्पर
हिन्दी

बापा को...

उन सैकड़ों कहानियों के लिए...

विषय-सूची

लेखक की ओर से

1. ब्रह्मा द्वारा सृष्टि की रचना
2. विष्णु ने किया मधु और कैटभ का संहार
3. शिव का प्राकट्य
4. ब्रह्मा और नारद की लड़ाई
5. मनुष्य की उत्पत्ति
6. शिव ने ब्रह्मा का सिर काटा
7. नारद और माया
8. जय और विजय
9. दक्ष का नारद को शाप
10. देवता भूखे रह गए
11. ब्रह्मा और विष्णु में होड़
12. बल ने प्रकट किए नौ आश्चर्य
13. विष्णु को मिला सुदर्शन चक्र
14. संज्ञा की जुड़वां
15. ध्रुव बना तारा
16. भरत ने हिरण को गोद लिया
17. भृगु का विष्णु को शाप
18. शिव द्वारा यम का संहार
19. चंद्र ने खोया प्रकाश
20. दधीचि और देवताओं का युद्ध
21. सती ने आत्महत्या की
22. विष्णु द्वारा हाथी की रक्षा
23. पृथु ने किया मनुष्यता के भोजन का प्रबंध
24. मारिशा के दस पति
25. मत्स्य अवतार
26. वराह अवतार
27. नृसिंह अवतार
28. नृसिंह और शिव का सामना
29. इंद्र द्वारा भ्रूण-हत्या का प्रयास
30. प्रह्लाद की पराजय
31. तारक का स्वर्ग पर आक्रमण

32. पार्वती ने शिव को मनाया
33. कार्तिकेय की माताएँ
34. कार्तिकेय और तारक का युद्ध
35. शिव बने त्रिपुरारी
36. अंधक और पार्वती
37. भृंगी की पार्वती को चुनौती
38. समुद्र-मंथन
39. विष्णु बने मोहिनी
40. कद्रू और विनता की शर्त
41. गणेश को मिला जीवन
42. दुर्गा द्वारा महिषासुर का वध
43. पार्वती बनीं गौरी
44. शुंभ, निशुंभ और रक्तबीज
45. नचिकेता की नरक-यात्रा
46. गणेश और कार्तिकेय की दौड़
47. सूर्य आकाश से गिरा
48. भस्मासुर ने शिव का पीछा किया
49. चंद्र का व्यभिचार
50. वामन अवतार
51. गंगा, लक्ष्मी और सरस्वती की लड़ाई
52. वृंदा का विष्णु को शाप
53. विष्णु का सिर कटा
54. भृगु द्वारा त्रिदेव की परीक्षा
55. सुद्युम्न बना स्त्री
56. उर्वशी का पुरुरवा से छल
57. सत्यवती को मिला धोखा
58. विश्वामित्र का वसिष्ठ पर आक्रमण
59. त्रिशंकु आकाश से गिरा
60. हरिश्चंद्र का वरुण से छल
61. हरिश्चंद्र की परीक्षा
62. सगर ने पुत्रों को खोया
63. गंगा को धरती पर लाए भगीरथ
64. सरस्वती और विष्णु का युद्ध
65. परशुराम अवतार

66. गौतम ने प्रकट की नदी
67. विष्णु ने मुर को चकमा दिया
68. नारद का नया चेहरा
69. निमि ने खोई अपनी देह
70. लौहजंघ और सप्तऋषि
71. रावण का लंका पर अधिकार
72. देवताओं का रावण से छल
73. सीता के चार शाप
74. माया सीता
75. राम और शूद्र
76. अगस्त्य ने पर्वत को दिया चकमा
77. दधीचि का अस्थि-दान
78. नहुष बना देवराज
79. कच ने रहस्य चुराया
80. देवयानी और शर्मिष्ठा
81. ययाति की माँग
82. सत्यतप की परीक्षा
83. विश्वामित्र ने माँस स्वीकार किया
84. कृष्ण का जन्म
85. कृष्ण और यमलार्जुन
86. कृष्ण ने कालिय को वश में किया
87. कृष्ण ने ब्रह्मा को परास्त किया
88. कृष्ण ने गोवर्धन उठाया
89. कृष्ण की कुब्जा पर कृपा
90. प्रद्युम्न और दासी
91. स्यमंतक की चोरी
92. कृष्ण और सुदामा
93. कृष्ण और नरकासुर
94. पारिजात के लिए युद्ध
95. नकली विष्णु
96. अर्जुन का अहंकार टूटा
97. वेद और भील
98. कृष्ण और शिव का युद्ध
99. यदु वंश का अंत

100. जनमेजय का सर्प-यज्ञ

आभार
लेखक-परिचय
अनुवादक-परिचय

लेखक की ओर से

हिंदू धर्म में पुराण या 'प्राचीन आख्यान', उस पावन साहित्य का एक विश्वकोश है जो देवताओं, राक्षसों, ऋषियों और राजाओं की पारंपरिक किंवदंतियों का वर्णन करता है और ब्रह्मांड-विज्ञान, धर्मशास्त्र, वंशावली और दर्शन जैसे विषयों पर आधारित है। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त और पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से सौंपे गए इस साहित्य को लगभग 250 ईसवी और 1500 ईसवी के बीच विद्वानों द्वारा लिखित रूप में दर्ज किया गया, जिन्होंने अनेक शताब्दियों के दौरान इन ग्रंथों को लिपिबद्ध और पुन: लिपिबद्ध किया। महापुराणों और उप-पुराणों में वर्गीकृत, ये ग्रंथ न केवल हिंदू संस्कृति के लिए महत्त्वपूर्ण हैं अपितु हिंदू विचारधारा के विकास के साक्षी भी हैं।

प्रत्येक पुराण में अलग-अलग किंवदंतियों के अलग-अलग ढंग से विवरण प्रस्तुत किए गए हैं। इसे ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक की 100 कहानियाँ, घटनाओं के अनेक उपलब्ध संस्करणों में से केवल एक संस्करण को दर्शाती हैं। इसके अलावा, पुस्तक का स्वरूप सरल एवं लोकप्रिय अवधारणाओं जैसा नहीं, अपितु पुराणों की जटिल और बहुआयामी कथा-शैली जैसा है। उदाहरण के तौर पर, यहाँ विष्णु अवतार की कथाओं को विशेष ढंग से अनुक्रांत किया गया है। जहाँ तक इन कहानियों के चयन का प्रश्न है तो अंतिम सूची बनाने के लिए तीन मानदंड निर्धारित किए गए थे। कहानी कितनी दिलचस्प है; उसमें कौन-कौन से पात्र शामिल हैं; और, यदि कोई कहानी कम प्रसिद्ध रही, जबकि इसे अधिक पाठकों तक पहुँचना चाहिए था।

इन कथाओं को कहते समय इनके कालानुक्रम की झलक दिखाने का भी पहली बार प्रयास किया गया है। यद्यपि पुराणों में समय की चक्रीय प्रकृति को ध्यान में रखते हुए यह अत्यंत कठिन है, फिर भी चार युगों, सात मन्वंतरों, विष्णु के अवतारों, देवताओं और राक्षसों की वंशावलियाँ और राजपरिवार के वंश-वृक्ष जैसे प्रमुख पौराणिक चिह्नों का उपयोग करके कई कहानियों की एक समय रेखा तैयार की गई है। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि मैं चाहता था कि इन कहानियों को पुस्तक में अलग-थलग न रखकर, इनके अतीत और भविष्य के संदर्भ के अंतर्गत ही रखा जाए और वे कारण-प्रभाव के चक्र के दायरे में रहें। कर्म और कर्म-फल के उस चक्र के अंदर, जिसके आधार पर हमारा ब्रह्मांड कार्य करता है। इसलिए, जो पुस्तक मैं आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ, वह कथाओं का

यादृच्छिक संग्रह नहीं है, अपितु निरंतर एवं परस्पर संबद्ध घटनाओं का एक महाकाव्यात्मक आख्यान है।

जैसा कि इस तरह के पुनर्कथन की परंपरा रही है, इस किताब के कुछ हिस्सों को प्रभावशाली बनाने के लिए उन्हें नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया गया है। कुछ कहानियों के कथानक को निखारने के लिए रचनात्मक स्वतंत्रता भी ली गई है परंतु उनके भाव को यथावत् रखा गया है—निष्कलंक और सरल।

इन कहानियों की सबसे बड़ी सीख, इस बात का बोध है कि पुराणों में सब केवल अच्छा या बुरा नहीं होता। इन कथाओं में अच्छाई और बुराई का कोई स्पष्ट भेद दिखाई नहीं पड़ता अपितु एक अत्यधिक जटिल संरचना नज़र आती है जहाँ देवता, कपट कर सकते हैं और असुर, सद्गुणी हो सकते हैं। जहाँ आसुरी प्रवृत्ति से दिव्यता का जन्म संभव है और दैवीय प्रवृत्ति से राक्षसी स्वभाव भी जन्म ले सकता है। जहाँ वरदान, प्रायः अव्यवस्था का कारण बनते हैं जबकि शाप, भलाई के लिए दिए जाते हैं। जहाँ अमृत प्रदान करने वाला क्षीरसागर हलाहल भी उगलता है। जहाँ सीता गाय को शाप देती हैं तो कृष्ण, सर्प को भी आशीर्वाद देते हैं। जहाँ पतिव्रता वृंदा को अपमानित करने वाले भगवान विष्णु, नरक की उप-पत्नियों को अंगीकार कर लेते हैं। जहाँ राम रक्षा करते हैं किंतु कृष्ण समूल नाश का कारण बन जाते हैं। जहाँ धर्म के साथ-साथ आपद् धर्म भी विद्यमान है। इस अनिश्चितता के चलते इन कथाओं की असंख्य व्याख्याएँ संभव हैं। यहाँ तक कि यह प्रश्न भी उठ सकता है कि क्या हमारा ब्रह्मांड बिना नियमों के संचालित होता है। फिर भी, द्वंद्व की इस विस्मयकारी भूलभुलैया के अंतर्गत, प्रायः उसकी झलक दिखाई पड़ती है जो पूर्ण सत्य है; वह नैतिकता, जो सर्वोच्च है; वह उत्तर, जो सार्वभौमिक है; परब्रह्म का कण जो इतना ज्ञानवर्धन है कि हमें उसके थोड़ा और निकट ले जाता है।

मेरे लिए पुराणों का मुख्य संदेश यही रहा है कि ब्रह्मांड में कुछ भी अव्यवस्थित नहीं है। हर घटना के पीछे कोई कारण होता है, कोई बृहत् और बेहतर उद्देश्य। यह भी कि हम सभी एक विशाल संरचना का हिस्सा हैं जिसमें हमारे भाग्य परस्पर जुड़े हैं, हमारा जीवन एक-दूसरे को प्रभावित करता है और हमारे कार्यों से या तो किसी चक्र का अंत होता है, या फिर वे किसी नए चक्र को आरंभ करते हैं।

आशा है कि मेरे पाठक, इस पुस्तक में अपने मौलिक सत्य की खोज कर पाएँगे।

1
ब्रह्मा द्वारा सृष्टि की रचना



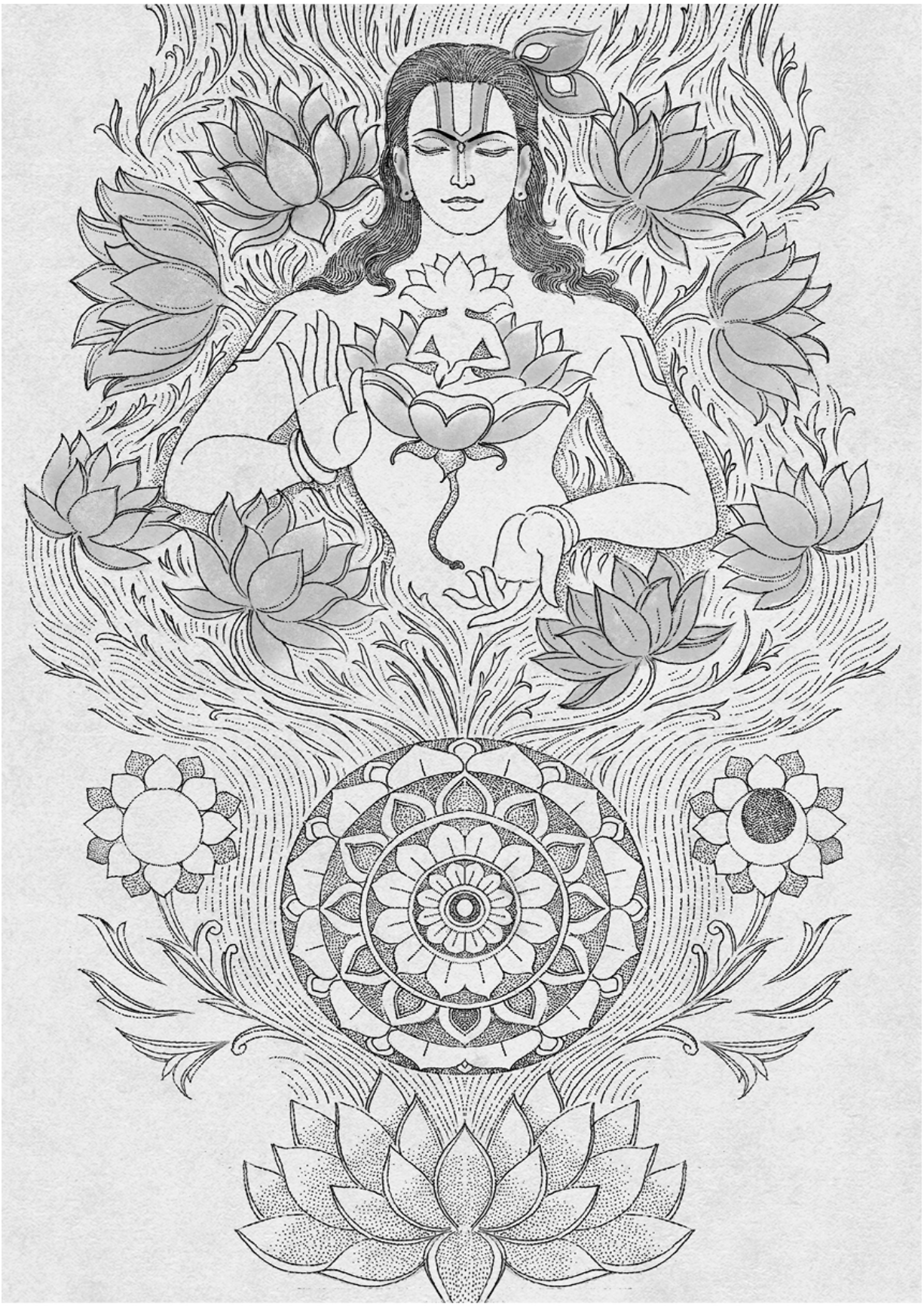
शुरू में कुछ नहीं था। केवल परब्रह्म था।

वह एक सर्वोच्च सिद्धांत (तत्त्व) था जिसका न कोई आरंभ था, न अंत। वह परम सत्य था जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह एक दिव्य सार-तत्त्व था जिसके भीतर अनंत क्षमता मौजूद थी। कारण और प्रभाव मिलकर एक हो गए थे। कालातीत। असीम। स्व-निर्मित एवं स्व-निहित। उसका आकार नहीं था किंतु वह निराकार भी नहीं था। उसमें कोई गुण नहीं था किंतु वह गुणों से रहित भी नहीं था। विचारों और इंद्रियों की पहुँच से परे एक विशुद्ध चेतना। एक ऐसा उत्प्रेरक, जो खुद तो परिवर्तित नहीं होता किंतु हर तरह का परिवर्तन ला सकता था।

परब्रह्म की इच्छा हुई तभी भौतिक ब्रह्मांड का निर्माण आरंभ हुआ।

ब्रह्मांड प्रकट होने को तैयार था। प्रत्यक्ष। अन्वेषण के योग्य और विशिष्ट। परब्रह्म की इस इच्छा ने एक कंपन पैदा किया जिससे पहली ध्वनि का जन्म हुआ और वह ध्वनि थी—ओम (ॐ)। इस एक ध्वनि में समस्त ध्वनियाँ समाहित थीं। सबसे पहले बनने वाले मूल तत्त्व को महत् तत्त्व कहा गया, जिससे तीन गुणों की उत्पत्ति हुई। सत्व गुण, संरक्षण का प्रतीक है; रजो गुण, क्रिया को दर्शाता है और तमो गुण, विनाश का सूचक है। इन तीन गुणों के पारस्परिक प्रभाव से पाँच भौतिक तत्त्वों यानी पंचतत्त्व का जन्म हुआ। वायु, जल, पृथ्वी, अग्नि और आकाश।

इन तत्त्वों के साथ में मिलने से प्रकृति अस्तित्व में आई।



इन गुणों ने पाँच इंद्रियों को भी उत्पन्न किया। दृष्टि, श्रवण, स्पर्श, गंध और स्वाद। इन पाँचों को महसूस करने के लिए पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ विकसित हुईं जिन्हें मन द्वारा संचालित किया गया। पदार्थ की उत्पत्ति के साथ संवेदना प्रकट हुई। इसके बाद जल प्रवाहित हुआ जिसने सब कुछ ढक लिया। हर जगह केवल जल था किंतु ऐसा कुछ नहीं था जो उस जल में डूब जाता। तब परब्रह्म ने स्वयं एक दिव्य स्वरूप धारण किया जो जल से भरे सरोवर में कमल-दल बनकर प्रकट हुआ।

जल को 'नार' और निवास को 'अयन' कहते हैं। इस तरह इस दिव्य स्वरूप को नाम मिला—नारायण।

फिर परब्रह्म ने अपना अंश जल में प्रत्यारोपित किया। इस तरह जल ने स्वयं निषेचित होकर उस अंश का पालन-पोषण किया और कालांतर में, एक अंडा उत्पन्न किया। एक सुनहरा अंडा, जो प्रकाश-वृत्त की तरह चमक रहा था। चूँकि यह अंडा, परब्रह्म से उत्पन्न हुआ इसलिए इसे 'ब्रह्मांड' कहा गया। फिर नारायण ने विष्णु बनकर इस अंडे में प्रवेश किया। विष्णु, सर्वव्यापी थे। वे संरक्षक कहलाए और उन्हें सत्त्व गुण का अधिष्ठाता माना गया। चूँकि उस सुनहरे वृत्त अर्थात् हिरण्य ने विष्णु को गर्भ की तरह ढक लिया था इसलिए उस अंडे को नाम मिला—हिरण्यगर्भ।

विष्णु की नाभि से चौदह पंखुड़ियों वाला एक कमल-पुष्प निकला और फिर इस पुष्प से ब्रह्मा प्रकट हुए। यह परब्रह्म की एक और दिव्य अभिव्यक्ति थी। ब्रह्मा सृष्टि के रचयिता थे। उन्हें रजो गुण का अधिष्ठाता माना गया। सृष्टि के इस जनक के एक हाथ में कमंडल था और दूसरे में माला थी। इस प्रकार नाभि से निकले कमल में से उत्पन्न होने के कारण ब्रह्मा को 'पद्मयोनि' और 'नाभिज' जैसे अन्य नाम मिले।

सीप में जिस तरह मोती पलता है, उस तरह हिरण्यगर्भ के भीतर एक वर्ष रहने के बाद ब्रह्मा ने उस सुनहरे अंडे को दो हिस्सों में विभाजित कर दिया। उसका ऊपर का आधा भाग, स्वर्ग कहलाया और निचले आधे भाग से पृथ्वी बनी। दोनों के बीच में आकाश व्याप्त था। ब्रह्मा ने सृष्टि के चक्र का आरंभ कर दिया था और वे जानते थे कि इसका अंत कैसे होगा। रचना (सर्ग) के बाद संरक्षण (स्थिति) और अंत में, विघटन (प्रलय)। इस चक्र का अंत होने पर एक नया चक्र आरंभ होगा। प्रत्येक चक्र के अंत में जब सब कुछ अव्यवस्था के अतिप्राचीन सागर में विलीन हो जाएगा, तो ब्रह्मा इस प्रक्रिया को पुन: आरंभ करेंगे।

चक्रों का एक शाश्वत क्रम। परस्पर गुँथे हुए वृत्तों से निर्मित ब्रह्मांड।

यह ब्रह्मांड, अंधकार से भरे आकाश में हुई आतिशबाजी की तरह अस्तित्व में आया था। ब्रह्मा बैठे अपनी इस रचना को निहार रहे थे। फिर उन्होंने ध्यान की अवस्था में प्रवेश किया और उसकी गहराइयों से चारों वेदों की उत्पत्ति हुई। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और

अथर्ववेद। परंतु रचयिता को यह नहीं पता था कि चार मुसीबतें भी सिर उठाने वाली थीं। ऐसी चार मुसीबतें, जो सृष्टि के क्रम के लिए संकट बन सकती थीं।

क्या इस 'अच्छी शुरुआत' को 'आधा काम सम्पन्न हुआ' कहना उचित होगा?

2
विष्णु ने किया मधु और कैटभ का संहार



ब्रह्मा ने अभी वेदों को प्रकट किया ही था कि तभी विष्णु के कान के मैल से दो जीव रेंगते हुए बाहर निकले।

उनमें से एक को अपनी भूख शांत करने के लिए शहद की इच्छा हुई इसलिए उसका नाम मधु पड़ा। दूसरा भाई दिखने में कीट जैसा था तो उसे कैटभ नाम मिला। उन्हें पता नहीं था कि वे कहाँ हैं इसलिए दुविधा में भरे दोनों इधर-उधर देखने लगे। दोनों भूख से भी व्याकुल थे। उन्हें जीवित रहने के लिए कुछ चाहिए था किंतु उन्हें अपने चारों ओर केवल अनंत जल दिखाई दे रहा था। मधु और कैटभ ने उस पौष्टिक द्रव्य को पीना शुरू कर दिया और दोनों बेहद शक्तिशाली हो गए। जैसे-जैसे उनके शरीर बड़े होते गए, वैसे-वैसे उनके सिर का आकार भी बढ़ता गया क्योंकि वे अब अहंकार से भर चुके थे। इस विश्वास से भरकर कि वे ही उस क्षेत्र के स्वामी हैं, दोनों ने ब्रह्मांड की खोज आरंभ कर दी। भटकते हुए दोनों ब्रह्मा के पास पहुँच गए जो अपने कमल के ऊपर विराजमान थे। दोनों भाई सृष्टिकर्ता का विरोध करने लगे।

‘तुम कौन हो? यह पुष्पासन केवल श्रेष्ठ लोगों के लिए है। तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई इस पर बैठने की?’ उन्होंने रोषपूर्ण स्वर में पूछा।

ब्रह्मा ने कुछ नहीं कहा जिससे मधु और कैटभ और भड़क उठे।

‘आसन से नीचे उतरकर या तो हमारी संप्रभुता को स्वीकार करो या हमें युद्ध में परास्त करके अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करो।’

सृष्टि के रचयिता ने जब उनका कहा नहीं माना तो मधु और कैटभ ने ब्रह्मा को नीचे गिराने के उद्देश्य से कमल-नाल को हिलाना शुरू कर दिया। बेचारे ब्रह्मा ने पुष्प को कसकर पकड़े रखा किंतु वेद, उनके हाथ से फिसल गए और पुष्प की पंखुड़ियों के बीच की दरारों से एक-एक करके नीचे गिरने लगे। दोनों भाइयों ने वेदों को पानी के नीचे छिपा दिया और

ब्रह्मा को धमकी देने लगे कि वे उनके द्वारा अब तक बनाई गई सृष्टि की प्रत्येक वस्तु को नष्ट कर देंगे। ब्रह्मा, घबराकर विष्णु के पास पहुँचे।

'हे ब्रह्मांड के रक्षक! मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि मेरी सहायता कीजिए। क्या आप नहीं जानते कि मैं आपके मल से उत्पन्न हुए प्राणियों से भी मुकाबला नहीं कर सकता? यदि आप मेरी रक्षा नहीं करेंगे तो मैं सृष्टि के रचना-कार्य को कैसे पूरा करूँगा? हम ऐसा वृत्त क्यों बनाएँ यदि उसके सिरे परस्पर मिल नहीं सकते? क्या आप मेरी विनती सुन रहे हैं, भगवन्? आप मुझे सुन रहे हैं?'

दुर्भाग्य से, संरक्षक विष्णु तो पहले ही योग निद्रा में प्रवेश कर चुके थे। वह जागने और सोने के बीच की ऐसी स्वप्नहीन अवस्था थी जिसमें उन्हें किसी बात की सुध नहीं रहती थी। ब्रह्मा चिल्लाते रहे किंतु विष्णु हिले तक नहीं। मधु और कैटभ खिलखिलाकर हँसने लगे किंतु विष्णु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। रचयिता ब्रह्मा को जब कोई उपाय नहीं सूझा तो उन्होंने भगवान को जगाने के लिए निद्रा यानी नींद का आह्वान किया।

'हे निद्रा! आपकी शक्ति से नारायण सो गए हैं। मैं प्रार्थना करता हूँ कि उन्हें अपने आलिंगन से मुक्त कर दीजिए ताकि वे हमें मधु और कैटभ से मुक्ति दिला सकें क्योंकि दोनों की इंद्रियों ने उन्हें अपने वश में कर लिया है। वे जो देख रहे हैं, उससे इतने प्रभावित हो गए हैं कि उसे अनुचित ढंग से प्राप्त करना चाहते हैं। निद्रा, कृपया विष्णु को मुक्त कीजिए। उन्हें मुक्त कर दीजिए।'

निद्रा ने अनुरोध का उत्तर दिया जिसके प्रभाव से संरक्षक विष्णु ने अपने कमल-से नेत्र खोल दिए। ब्रह्मा की ऐसी दशा देखकर वे तुरंत समझ गए कि समूची सृष्टि संकट में है। मधु और कैटभ से टक्कर लेने के लिए विष्णु ने तुरंत एक नया रूप धारण करना आरंभ कर दिया। ब्रह्मा ने उस तेजस्वी अयाल धारी को देखा। वह विष्णु का अश्व अवतार था। प्रभु हयग्रीव बन गए थे।

अश्व के सिर वाले!

युद्ध आरंभ हुआ तो विष्णु ने महसूस किया कि वे मधु-कैटभ की जोड़ी को मारने में असमर्थ हो रहे थे। एक भाई थक जाता तो दूसरा लड़ने लगता। उन्हें युद्ध करते पाँच हज़ार वर्ष बीत गए। विष्णु पूरी तरह थक चुके थे। उन्हें समझ में आ गया कि शारीरिक शक्ति द्वारा काम नहीं बनेगा और दोनों भाइयों को परास्त करने के लिए दिमाग का प्रयोग करना होगा। विष्णु ने अपनी गदा नीचे रख दी और हाथ जोड़कर अत्यंत मधुर स्वर में मधु-कैटभ से बोले।

'वाह! मैं तुम्हारे कौशल के आगे नतमस्तक हूँ। तुम दोनों वास्तव में अतुलनीय हो, अजेय हो। मैं तुम्हारी शक्ति को प्रणाम करते हुए तुम्हें वरदान देना चाहता हूँ। कुछ भी माँगो; वह

तुम्हें अवश्य प्राप्त होगा।'

'तुमसे वरदान?' मधु और कैटभ ने उपहास किया। 'उस दुर्बल व्यक्ति से, जो स्वयं हमारे सामने भयभीत खड़ा है? जिसकी नीली त्वचा डर से और भी नीली हो गई है? हम विजेता हैं और विजेता, वरदान की भीख नहीं माँगते। वे तो वरदान देते हैं। हमसे वरदान माँगो। तुम जो चाहते हो, तुम्हें मिलेगा।'

'कुछ भी?'

'हाँ, कुछ भी।'

विष्णु को इसी अवसर की प्रतीक्षा थी। वह मौका आ चुका था। उनके चेहरे पर शांतिप्रद मुस्कान छा गई।

'तो मुझे यह वरदान दो कि मैं तुम दोनों को मार सकूँ।'

वहाँ मौन छा गया।

विष्णु के शब्द उनके हृदय में उतरे तो दोनों भाइयों को एहसास हुआ कि वे खुली आँखों से भी जाल में फँस गए थे। परंतु वचन दिया जा चुका था और अब उसे तोड़ने का कोई प्रश्न ही नहीं था। मधु-कैटभ को मौत का साया अपने सिर पर मँडराता दिखा तो जीवित रहने की वृत्ति जागृत हो उठी। उन्होंने नीचे देखा किस तरह पानी चारों ओर अंतहीन ढंग से फैलता जा रहा था। उन्होंने स्वयं को बचाने के लिए आखिरी दाँव खेला। दोनों एक स्वर में बोले, 'तुम हमें मार सकते हो किंतु एक शर्त यह है कि हमें ऐसे स्थान पर मारना जहाँ पानी न हो।'

हयग्रीव पुन: मुस्कुराए। उन्होंने हाथ फैलाकर अपना आकार बढ़ाना शुरू कर दिया। उनका आकार बड़ा होता जा रहा था। बड़ा और बड़ा। बड़ा और बड़ा। उनका आकार इतना बढ़ गया कि मधु और कैटभ को उनका चेहरा दिखाई नहीं पड़ रहा था। उन्हें पानी के ऊपर केवल हयग्रीव का रूप एक विशाल नीले पर्वत के समान दिख रहा था। वह नीले आकाश से मिल चुका था। फिर हयग्रीव ने मधु और कैटभ को अपनी एक-एक जंघा पर रखा और दोनों का सिर काट डाला। विष्णु के कानों से उत्पन्न हुए मधु और कैटभ का अंत विष्णु की जाँघों पर हुआ।

चूँकि विष्णु ने मधु का वध किया इसलिए उन्हें मधुसूदन भी कहते हैं।

'ऐसा लगता है कि मैं जितना अधिक सृजन करूँगा, विनाश करने के लिए उतनी ही अधिक शक्तियाँ पैदा होंगी,' ब्रह्मा बोले। 'हमारी रक्षा करते रहिए, नारायण, जैसे आपने अभी की है।'

'संभवतः मैंने कुछ नहीं किया,' संरक्षक विष्णु ने उत्तर दिया। 'शायद ब्रह्मांड ने मेरे माध्यम से अपनी रक्षा की है।'

वेदों को पुन: प्राप्त करने के उपरांत, विष्णु ने दोनों भाइयों के शव से मेद, वसा को

निकाला और उस मेद से ब्रह्मा को भूमि के निर्माण का आदेश दिया। इसलिए पृथ्वी को 'मेदिनी' भी कहते हैं और इसकी मिट्टी को उपभोग के लिए अनुपयुक्त माना जाता है। दोनों शव के पिंड के शेष भाग छह-छह टुकड़ों में बिखर गए जिनसे पृथ्वी की बारह भूमंडलीय प्लेटों का निर्माण हुआ। अपने कमल पर आसीन हुए ब्रह्मा ने पुन: सृष्टि की रचना का कार्य आरंभ कर दिया। उन्हें आशा थी कि इसके आगे का मार्ग शांतिपूर्ण होगा।

परंतु उनकी मुसीबतें तो अभी शुरू हुई थीं!

3

शिव का प्राकट्य



मधु और कैटभ की मेद से पृथ्वी आकार ले चुकी थी; अब उसे सँवारने का समय हो गया था। ब्रह्मा ने सुमेरु, कैलाश, हिमालय और मलय सहित आठ प्रमुख पर्वत और जम्बूद्वीप, कुशद्वीप और पुष्करद्वीप सहित सात महाद्वीपों का निर्माण किया। इस नवजात संसार का पोषण करने के लिए नद और समुद्र प्रवाहित होने लगे। सुनहरे अंडे के भीतर सब वस्तुएँ भ्रूणवत् थीं और सृष्टिकर्ता अब उन्हें साकार रूप दे रहे थे। पेड़-पौधे और फल-फूल। पृथ्वी आकार ले रही थी तथा उसके अवयव अंकुरित हो रहे थे। पृथ्वी को भूलोक कहा गया तथा स्वर्ग को, जो पृथ्वी के ऊपर स्थित था, स्वर्ग लोक कहलाया। भूलोक नीचे स्थित पाताल-लोक को सात क्षेत्रों में विभाजित किया गया जिनमें अतल, वितल, सुतल और पाताल शामिल थे। इन तीनों लोकों के ऊपर विष्णु का निवास वैकुंठ स्थित था। समय बीतने लगा; ब्रह्मा ने उसे चार युगों में विभाजित कर दिया। श्वेत सत् युग, लाल त्रेता युग, पीला द्वापर युग और काला कलि युग। ये चारों एक साथ मिलकर महायुग बनाते हैं। परब्रह्म की शाश्वत दृष्टि अब ब्रह्मांड को अपलक देख रही थी।

ब्रह्मा द्वारा भूलोक में जीवन के श्रेष्ठतम स्वरूप को स्थापित करने का समय आ चुका था। उनकी दृष्टि से मनुष्य को बनाने का समय। यहीं पर उनका सामना अगली मुसीबत से हुआ।

ब्रह्मा ने अपनी आँखें बंद कर लीं। उनके मानस से कुमार, यानी चार बाल ऋषिगण प्रकट हुए। सनक, सनातन, सनंदन और सनत्कुमार नाम के वे ऋषि, ब्रह्मा के प्रथम पुत्र थे। ब्रह्मा की दिव्य आभा से उत्पन्न सबसे पहले प्राणी। ब्रह्मा के मन अथवा मानस से उत्पन्न होने के कारण वे ब्रह्मा के मानस पुत्र कहलाए। और उनकी संख्या चार थी इसलिए उन्हें चतुर्सन भी कहा जाता है। पितृ-प्रेम की पीड़ा को पहली बार अनुभव करते हुए ब्रह्मा ने चारों भाइयों को बताया कि उन्हें एक विशेष प्रयोजन से पैदा किया था। उन्हें सृजन-कार्य में ब्रह्मा का सहायक बनना था और प्रजनन द्वारा ब्रह्मांड की जनसंख्या में वृद्धि करनी थी।

कुमारों ने हाथ जोड़कर कहा, 'नहीं!'

'नहीं?' विधाता की भौहें तन गईं।

'नहीं।'

'क्या तुम अपने पिता की आज्ञा न मानने का दुस्साहस करोगे? अपने जन्मदाता की अवज्ञा करोगे?'

'हमें क्षमा करें, परम पिता,' ऋषियों ने उत्तर दिया। 'हम आभारी हैं कि आपने हमें उत्पन्न किया है किंतु हम जीवन और मृत्यु के चक्र तक सीमित नहीं रहना चाहते। जब हमारे चारों ओर फैला ब्रह्मांड असीमित है तो हम इतनी सीमित वस्तु को समर्पित क्यों हो जाएँ? हम उस अनंत तत्त्व, उस परब्रह्म के मनोहर स्वभाव पर मनन करेंगे। हम सत्य और पवित्रता की अभिव्यक्ति हैं और इन्हीं से हमें संतोष प्राप्त होगा। यह नश्वर लोक नहीं अपितु परलोक हमें पूर्णता प्रदान कर सकता है। क्या आपने सुना नहीं कि चारों दिशाएँ हम चारों को पुकार रही हैं?'

ब्रह्मा को चिंता हुई तो वह सृष्टि के हित में अपने मानस पुत्रों से याचना करने लगे। ब्रह्मा ने उन्हें याद दिलाया कि उनके मना कर देने से समस्त उपक्रम व्यर्थ हो जाएगा किंतु चतुर्सन टस से मस नहीं हुए। उनकी रुचि, प्रचार करने से अधिक प्रश्न करने में थी। उन्होंने सृष्टिकर्ता से वरदान की याचना की।

'परम पिता हमें आशीर्वाद दें कि हम कभी बूढ़े न हों। हम सदैव कुमार बने रहें। बाल संत के रूप में अनंत काल तक ज्ञान प्राप्त करें और दूसरों को भी दें।'

ब्रह्मा ने थोड़ा तर्क किया किंतु वे अंततः मान गए। अपने मानस पुत्रों को जाते हुए देखकर ब्रह्मा को भीतर जबरदस्त क्रोध महसूस हुआ। इसी हिंसक भाव में तीसरी मुसीबत छिपी थी।

ब्रह्मा का क्रोध जैसे बढ़ा, उनके मस्तक से अग्नि-शिखा प्रकट हुई तथा उस अग्नि से एक जीव प्रकट हुआ। उस दिव्य जीव की रक्तिम लाल आँखें चमक रही थीं। उसने गरजते हुए पूछा, 'मेरा नाम क्या है?'

ब्रह्मा विस्मित बैठे सोच रहे थे कि उस प्राणी को क्या उत्तर दें। इस बीच वह और ज़ोर से दहाड़ा और उसकी आँखों से जैसे धुआँ निकलने लगा।

'मुझे मेरा नाम बताओ।'

रचयिता ब्रह्मा को याद आया कि रक्त और गर्जन दोनों का मूल 'रुद' धातु होता है। इसलिए उन्होंने उत्तर दिया, 'रुद्र। मैं तुम्हें रुद्र नाम देता हूँ।'

रुद्र, शिव थे। महादेव। परब्रह्म की एक और दिव्य अभिव्यक्ति। तमस गुण के अधिष्ठाता शिव के प्रकट होने से जगत की त्रिमूर्ति पूर्ण हो गई थी।

रचयिता ब्रह्मा।

संरक्षक विष्णु।

संहारक शिव।

उसके भयानक रूप में अंधकारमय और अशांत ऊर्जा उत्पन्न हो रही थी। ब्रह्मा ने हाथ जोड़कर भगवान को शांत किया और उनसे सृष्टि की प्रक्रिया में सहायता करने का अनुरोध किया। शिव सहमत हो गए और तुरंत एक के बाद एक जीव उत्पन्न करने लगे। ब्रह्मा के आनंद की कोई सीमा नहीं थी। उन्हें एक साथी मिल गया था, जो सहजता से उनका बोझ साझा कर रहा था। विधाता के चेहरे पर एक दीप्तिमान मुस्कान तैर गई, किंतु अगले ही पल जम गई।

महारुद्र क्या कर रहे हैं?

भगवान अपने आप को गुणा कर रहे थे। समसूत्री विभाजन की प्रक्रिया से गुजर रही कोशिका की भांति, वे अपनी प्रतिकृति प्रकट कर रहे थे। एक-एक करके रुद्र प्रकट होने लगे, जैसे दर्पण में अनेक छवियों का समानुक्रम उत्पादन चल रहा था। भ्रमित करने को यह पर्याप्त नहीं था कि वे सभी, शिव की ही तरह अमर निकले! उनमें से हर एक। अब ग्यारह रुद्र ब्रह्मा के सामने खड़े थे। उन्होंने भयभीत होकर अपनी भुजाएँ उठाईं।

'रुक जाइए! ठहर जाइए! आप ऐसा नहीं कर सकते, महादेव।'

'कैसा?'

'आप इस तरह अमर जीवों को उत्पन्न नहीं कर सकते।'

'क्यों नहीं?'

'इससे ब्रह्मांडीय संतुलन बिगड़ जाएगा। सृष्टि में केवल नश्वर प्राणियों का जन्म होना चाहिए। उन्हें इस सृष्टि की तरह, जिसमें वे रहते हैं, फिर से जन्म लेने के लिए मरना होगा। केवल इसी से सृजन, संरक्षण और विनाश का चक्र कायम रह सकता है। पृथ्वी पर रहने वाले प्राणी अमर नहीं हो सकते। क्या आप नश्वर प्राणियों को उत्पन्न नहीं कर सकते?'

शिव ने सिर हिलाया। 'मैं केवल अमर प्राणियों को ही उत्पन्न कर सकता हूँ। अगर इससे आपकी प्रक्रिया निष्प्रभावी होती है, तो मैं इसका हिस्सा नहीं बन सकता। इससे बेहतर होगा कि मैं ध्यान में लीन हो जाऊँ।'

ग्यारह रुद्रों को पीछे छोड़कर जैसे ही शिव गए, ब्रह्मा ने रुद्रों पर दृष्टि डाली। एक ओर, उनके मानस पुत्रों ने सृजन करने से मना कर दिया था, और दूसरी ओर, शिव ने अनेक प्राणियों को उत्पन्न कर दिया था। ब्रह्मांड को इस अभाव या प्रचुरता, किसी से भी लाभ नहीं मिला। रुद्र, अब आवास के लिए संघर्ष कर रहे थे तो ब्रह्मा ने उनके लिए ग्यारह स्थल निर्धारित किए। एक को हृदय दिया गया। पाँच को ज्ञानेन्द्रियाँ और शेष पाँच को तत्त्व दिए

गए। रुद्र चले गए और ब्रह्मा फिर से अकेले रह गए। वे अपनी इस भूल के लिए खुद को कोस रहे थे। वे इस बात को नहीं समझ पाए कि महादेव का कार्य विनाश करना है और वे सृजन नहीं कर सकते। और यह कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव के बीच श्रम की विभाजन-रेखा पवित्र है तथा सृष्टि उस रेखा को धुँधला नहीं कर सकती। सृष्टि की रचना करना केवल ब्रह्मा का कर्म है और उन्हें यह दायित्व वहन करना होगा।

ब्रह्मा ने फिर से बागडोर सँभाली, जिसने फिर अंतिम परेशानी के लिए मार्ग खोल दिया।

4
ब्रह्मा और नारद की लड़ाई



ब्रह्मा पुन: ध्यान में लीन हो गए। इस बार उनके भीतर से सात दिव्य ऋषि प्रकट हुए जिनके नाम थे—वशिष्ठ, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु। उन्हें सामूहिक रूप से सप्त ऋषि कहा गया।

इसके उपरांत, ब्रह्मा के हृदय से बैल के रूप में धर्म उत्पन्न हुआ। समय बीता तो ब्रह्मा ने धर्म के भाग्य को लेकर भविष्यवाणी की।

'धर्म, तुम चार पैरों पर खड़े हो, जो चार सद्गुणों के प्रतीक हैं। सत्य, तप, शुचिता और करुणा। सतयुग में, तुम चारों पैरों पर खड़े रहोगे क्योंकि इन सभी गुणों का सहजता से पालन किया जाएगा। जैसे-जैसे प्रत्येक युग आगे बढ़ेगा, तुम एक-एक करके अपने पैर खोते जाओगे। त्रेता युग में तुम्हारे तीन ही पैर होंगे।'

'पिताश्री, तीन पैर?'

'हाँ। ऐसा इसलिए क्योंकि बहुत-से लोग तप करना छोड़ देंगे। फिर द्वापर युग में तुम्हारे दो पैर रह जाएँगे।'

'पिताश्री, दो पैर?'

'हाँ। यह इसलिए कि बहुत-से लोग शुचिता को त्याग देंगे। और फिर कलियुग में तुम्हारा केवल एक पैर रह जाएगा।'

'पिताश्री, केवल एक पैर?'

'हाँ, क्योंकि कलियुग में लोगों में करुणा नहीं रह जाएगी। धर्म, मैंने तुम्हें अपने हृदय से उत्पन्न किया है किंतु दूसरों के हृदय में तुम्हारा अधिक समय तक वास नहीं रहेगा।'

शीघ्र ही, कुछ अन्य प्राणी अस्तित्व में आ गए। ब्रह्मा की भृकुटि से अग्निदेव और वक्षस्थल से कामदेव उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के दाहिने अँगूठे से दक्ष, नाभि से विश्वकर्मा और ग्रीवा से नारद

की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा फिर से उदास होने लगे। वे मुड़े और उन्होंने पितृ-स्नेह से भरकर नारद की ओर देखा तथा नारद से वही अनुरोध किया जो उन्होंने कुमार ऋषियों से किया था।

'जाओ, पुत्र। सृजन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाओ।'

परंतु दुर्भाग्य से, कुमार ऋषियों की भांति नारद ने भी सिर हिला दिया।

'मैं यह स्वीकार नहीं कर सकता। जन्म और मृत्यु के अंतहीन भँवर में फँसे इस लौकिक जगत् का मेरे लिए कोई अर्थ नहीं है। मुझे केवल नारायण का लोक पसंद है जो समय और स्थान के बंधनों से मुक्त है। आप मुझे भौतिक सुखों का रस प्रदान करना चाहते हैं किंतु मैं चैतन्य परमानंद का अभिलाषी हूँ।'

सृष्टिकर्ता से अब और सहन नहीं हुआ!

पहले मधु और कैटभ ने ब्रह्मा को संकट में डाला था। उसके उपरांत उनके अपने चतुर्सन ने स्पष्ट रूप से उत्तरदायित्व लेने से मना कर दिया। फिर शिव ने ब्रह्मा की मुसीबत को ग्यारह गुना बढ़ा दिया और अब नारद, उनका साथ छोड़कर जाने वाले थे। ब्रह्मा को फिर से अपने भीतर क्रोध की ज्वाला भड़कती महसूस हुई जो उनके हृदय और मस्तिष्क पर हावी हो रही थी। उसकी चकाचौंध में ब्रह्मा को और कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। ब्रह्मा के होंठ खुले और उन्होंने शाप दे डाला।

'नारद, तुम गंधर्व बन जाओगे। एक भाट। यदि हर कोई भौतिक संसार से दूर भागेगा तो सृष्टि का कार्य कैसे चलेगा? यह सृष्टि अपने उद्देश्य को कैसे प्राप्त करेगी?'

नारद स्तब्ध रह गए। उन्होंने शाप को चुपचाप स्वीकार नहीं किया। और कुछ ऐसा किया जो अकल्पनीय था। पुत्र ने पलटकर अपने पिता को शाप दे दिया!

'आप जिस तरह अपने रोष को नियंत्रित करने में विफल रहे हैं, उसी तरह आप वासना को रोकने में भी असमर्थ रहेंगे। आपके मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न होगी जो कभी उत्पन्न नहीं होनी चाहिए और फिर आपको उसका मूल्य चुकाना पड़ेगा।'

ब्रह्मांड सिहर उठा। तीनों लोक काँपने लगे। इससे पहले कभी किसी पिता ने अपने पुत्र को या किसी पुत्र ने अपने पिता को शाप नहीं दिया था। नारद के शब्द समूचे ब्रह्मांड में गूँज रहे थे। इस बीच नारद वहाँ से चले गए और सृष्टि का भविष्य पुन: संकट में पड़ गया।

ब्रह्मा के नेत्रों से आँसू छलक आए। उन्हें इतनी पीड़ा हो रही थी कि उनके कमल-पुष्प की पंखुड़ियाँ तक मुरझाने लगीं। जिस समय ब्रह्मा के पास सहायता पहुँची, उन्हें इस बात का लगभग भरोसा हो चुका था कि उनका उद्यम पूरी तरह निष्फल था। उन्हें वह सहायता सबसे अनपेक्षित व्यक्ति से मिली थी।

5
मनुष्य की उत्पत्ति



रचयिता ब्रह्मा के दाहिने अँगूठे से जन्म लेने के बाद, दक्ष ने एक समारोह आयोजित किया। उसमें सप्त ऋषियों ने भाग लिया और उन सबको विशिष्ट कार्य सौंपे गए थे। उस समारोह में सम्मिलित होने के लिए विष्णु और ब्रह्मा दोनों निद्रा से बाहर निकल आए। सप्तऋषियों के मंत्रोच्चारण के साथ अनुष्ठान आरंभ हो गया। उनके शब्द ब्रह्मांड की शिराओं में व्याप्त होते हुए सर्वत्र गूँज रहे थे और सृष्टि पर धर्मनिष्ठा की परत चढ़ती जा रही थी। भक्ति-रस से प्रमत्त ब्रह्मांड झूम रहा था। मंत्रोच्चारण का स्पर्श पाने वाली प्रत्येक वस्तु पवित्र होती जा रही थी। सहसा यज्ञ-कक्ष के प्रवेश-द्वार पर भगदड़ मच गई।

शिव!

ब्रह्मा से विदा लेने के उपरांत शिव को एक रमणीय स्थल मिल गया जहाँ बैठकर वे ध्यान में लीन हो गए। परंतु ऋषियों के गुंजायमान हो रहे मन्त्रों ने शिव की शांति को भंग कर दिया। गहन ध्यान की अवस्था से विचलित होने पर शिव को क्रोध आ गया और वे समारोह-स्थल के द्वार पर आ पहुँचे। शिव ने उस स्थान पर धावा बोल दिया और सबकुछ उलट-पलट कर डाला। दक्ष और सप्तऋषि तो आतंकित होकर भाग ही गए किंतु विष्णु ने इस दैवीय बर्बरता का विरोध किया। विष्णु को विरोध करता देख शिव का क्रोध और भड़क उठा और दोनों के बीच घमासान युद्ध छिड़ गया। आकाश गंगा काँप उठीं। समय थम गया। दोनों देवताओं के टकराव से ब्रह्मांड के खंडित हो जाने का संकट खड़ा हो गया जिसे देखकर तत्त्वों ने आँखें मूँद लीं। ब्रह्मा ने देखा कि वह विनाश अपरिवर्तनीय होगा तो उन्होंने डर कर हाथ जोड़ लिए।

‘मैं आप दोनों से विनती करता हूँ। इस युद्ध को समाप्त कर दीजिए अन्यथा यह कभी नहीं रुकेगा। आप दोनों एक-दूसरे के समकक्ष हैं और विपरीत भी। यह युद्ध अनंत काल तक चलेगा। आपके आस-पास की हर वस्तु नष्ट हो जाएगी किंतु आप दोनों लड़ते रहेंगे। इसलिए

आप या तो क्रोध शांत कर लीजिए अन्यथा मेरे बनाए ब्रह्मांड को नष्ट कर दीजिए। आप क्या करना पसंद करेंगे?'

दोनों देवताओं को बात समझ में आई तो वे रुक गए। ब्रह्मा मुस्कुरा दिए।

'आपने मेरे हृदय से भय दूर कर दिया और ब्रह्मांड पर आए संकट को भी रोक दिया। आज से विष्णु, "हरि" होंगे तथा शिव का एक नाम "हर" होगा। दोनों नामों का अर्थ एक ही है। दूर करने वाला। ये आपको सदा याद दिलाएँगे कि आप दोनों एक-दूसरे के पर्याय हैं। हरि और हर मिलकर "हरिहर" कहलाएँगे।'

शिव चले गए और दक्ष का समारोह पूर्ण हो गया। सब लोग जाने लगे तो विष्णु ने ब्रह्मा को एक तरफ बुलाया।

'प्रभु, मैं आपको देख रहा हूँ। आप परेशान लगते हैं और आपने यज्ञ के अनुष्ठान का भी आनंद नहीं लिया। मुझे बताइए, आपको क्या दु:ख है?'

विष्णु के सहानुभूति भरे वचन सुनकर ब्रह्मा ने अपनी परेशानी कह डाली। उनके मुख से शब्द, धारा की तरह बहते हुए निकल रहे थे और उन्होंने अपनी हताशा का वर्णन कर दिया। उन्होंने विष्णु को बताया किस तरह सृजन की प्रक्रिया से उनका अनिष्ट हो रहा था, कैसे उनके ही पुत्रों ने उनकी बात नहीं मानी और किस तरह वे हर क्षण पीड़ा भोग रहे थे जबकि विष्णु, आराम से निद्रा में लीन थे।

'संभवत: मुझे पद से हटा दिया जाना चाहिए क्योंकि मैं अपना कार्य करने में विफल रहा हूँ,' ब्रह्मा ने दुख व्यक्त किया।

विष्णु, एक स्तंभ की ओर टकटकी लगाए देख रहे थे। वह श्वेत स्वर्ण से निर्मित था। स्वर्ण और चाँदी की मिश्रित धातु से बना हुआ। फिर विष्णु बोले।

'महादेव।'

'महादेव?'

'आप महादेव के पास जाइए। वही इसका समाधान कर सकते हैं।'

'मैंने कोशिश की थी किंतु वे तो अमर प्राणी उत्पन्न करने लग गए। महादेव, विध्वंसक हैं; वे रचना कैसे कर सकते हैं?'

'वे रचना न भी करें किंतु सुझाव अवश्य दे सकते हैं। आप महादेव के पास जाइए।'

ब्रह्मा ने विष्णु के निर्देश का पालन किया और जब वे शिव के पास पहुँचे तो पाया कि महादेव फिर से ध्यान में लीन हो चुके थे। दक्ष के यज्ञ में शिव का प्रकोप देख लेने के बाद, ब्रह्मा को पुन: शिव का ध्यान भंग करने से भय लग रहा था। परंतु ब्रह्मा जानते थे कि बिना उत्तर लिए लौटना भी संभव नहीं था। इसलिए वे बैठकर आत्मा की गहराई से भगवान की उपासना करने लगे। समय बीतता गया किंतु ब्रह्मा अपने स्थान से नहीं हिले। उनकी प्रार्थना

की गंभीरता से प्रसन्न होकर शिव ने नेत्र खोल दिए।

'मुझे पता है कि आप यहाँ क्यों आए हैं।'

'प्रभु, मेरा मार्गदर्शन कीजिए,' ब्रह्मा की आँखें भर आईं। 'सृष्टि खतरे में है और मैं भटक गया हूँ। मुझे मार्ग दिखाइए और बताइए कि मुझसे कहाँ भूल हुई है।'

'जिस तरह आपने पुत्रों को जन्म दिया है, उस तरह प्रजनन की प्रक्रिया संभव नहीं है। आपको दरअसल, शक्ति की आवश्यकता है।'

'शक्ति?'

'स्त्री की शक्ति।'

शिव खड़े हो गए। ब्रह्मा उन्हें मंत्रमुग्ध से देखते रहे। ब्रह्मा ने देखा कि भगवान शिव के शरीर ने एक नया रूप धारण कर लिया था। ऐसा शानदार समग्र रूप, जो आधा पुरुष का और आधा स्त्री का था। दाहिना भाग पुल्लिंग और बायाँ स्त्रीलिंग। वह बीच की धुरी पर नीचे तक समान रूप से विभाजित था किंतु विभाजित होते हुए भी एक था। परस्पर विरोधी ऊर्जा का आदर्श सहजीवी रूप। एक ऐसा दैवीय द्वैत स्वरूप जिसे ब्रह्मा ने पहले कभी नहीं देखा था। एक संलयन, जो ब्रह्मा को सृष्टि का रहस्य बता रहा था। इस दृश्य का ब्रह्मा पर ऐसा प्रभाव हुआ कि वे भय और हर्ष से भरकर वहीं बैठ गए। चूँकि शिव के इस रूप का अर्द्ध भाग नारी का था इसलिए उसे अर्द्धनारीश्वर कहा गया। उभयलिंगी।

उस अवतार ने ब्रह्मा को संबोधित करते हुए कहा, 'इसकी आवश्यकता है सृजन के लिए! शिव-शक्ति, देव-देवी, स्थिर-गतिशील, होने-बनने का संयुक्त रूप। पुल्लिंग और स्त्रीलिंग आपके बनाए हुए सृष्टि के दो अंग हैं और एक के बिना दूसरा, अपना कार्य नहीं कर सकता। इन दोनों तत्त्वों के एकीकृत होने पर ही उत्पत्ति की प्रक्रिया संभव हो सकती है। यह संयोजन न केवल सृजन को आरंभ करेगा अपितु इस प्रक्रिया को अंत समय तक जारी भी रखेगा। आदिशक्ति की जय! देवी माता की जय! पवित्र स्त्री रूप की जय हो!'

ब्रह्मा ने प्रणाम किया और कहा, 'देवी, मैं आपकी वंदना करता हूँ कि आपने मेरी आँखें खोल दीं। मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं नारी की रचना करने में सक्षम हो सकूँ और ऐसा मानव-युगल उत्पन्न कर पाऊँ जो पृथ्वी पर संतानोत्पत्ति का कार्य आगे बढ़ाएगा।'

आदिशक्ति मुस्कुराईं और उन्होंने ब्रह्मा को प्रजनन की शक्ति प्रदान कर दी। उस शक्ति को पाकर ब्रह्मा ने अपने शरीर से एक पुरुष तथा एक स्त्री की रचना की। यह पृथ्वी का पहला युगल था। पुरुष का नाम मनु था और स्त्री का नाम ब्राह्मी रखा गया। चूँकि प्रजनन के लिए मैथुन को स्रोत बनाया गया था, अत: इस प्रक्रिया का नाम मैथुन सृष्टि पड़ा। चूँकि मानव जाति की उत्पत्ति मनु से होने वाली थी, इसलिए उसे मनुष्य या मानव कहा गया।

ब्रह्मा प्रसन्न थे। सृष्टि अब अपना ध्यान रख सकेगी ब्रह्मा ने मनुष्य को बनाया, जो पृथ्वी

पर जीवन का श्रेष्ठतम स्वरूप था। यह भगवान की अपनी छवि थी और यही ब्रह्मांड का उद्देश्य था।

ब्रह्मदेव इतने प्रसन्न हुए कि वे अब तक आईं समस्त परेशानियाँ भुला बैठे। वे हर दुर्लंघ्य प्रतीत होने वाली बाधा को भूल चुके थे। यहाँ तक कि उस भयानक शाप को भी जो नारद ने उन्हें दिया था!

आपके मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न होगी जो कभी उत्पन्न नहीं होनी चाहिए...

वे शब्द, जो सच होने वाले थे!

6
शिव ने ब्रह्मा का सिर काटा



ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न हुए मनु, ब्रह्मा के पुत्र थे और ब्राह्मी उनकी पुत्री। किंतु शाप तो शाप होता है और वह किसी संबंध को नहीं मानता। एक बार कह देने के बाद, वह प्राकृतिक नियम का हिस्सा बन जाता है और पूर्ण होकर रहता है। यह तीर की भांति निष्ठुरता से अपने लक्ष्य के निकट पहुँच जाता है। नारद शाप दे चुके थे और उनके वचन, कच्चे फल की तरह, सही मौसम की प्रतीक्षा कर रहे थे।

आपके मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न होगी जो कभी उत्पन्न नहीं होनी चाहिए...

शाप के फलित होने का समय तब आया जब ब्रह्मा के मन में अपनी ही पुत्री को पाने की इच्छा उत्पन्न हो गई। ब्राह्मी अत्यंत रूपवती थी और सृष्टिकर्ता अपनी ही रचना पर मोहित हो गए। उनकी देह अपनी ही देह के लिए लालायित हो रही थी। जैसे ही ब्राह्मी, सम्मान में ब्रह्मा के सामने आकर खड़ी हुईं तो उन्हें ब्रह्मा की नीयत का एहसास हो गया। ब्रह्मा के नेत्रों में प्रेम नहीं अपितु वासना झलक रही थी। अतृप्त वासना!

ब्रह्मा की दृष्टि से बचने के लिए ब्राह्मी तुरंत उनके दाहिनी ओर चली गईं। परंतु यह क्या! प्रभु के दाहिनी ओर एक सिर निकल आया ताकि वे ब्राह्मी को देख सकें। फिर ब्राह्मी बाईं ओर गईं तो बाईं ओर ब्रह्मा का तीसरा सिर निकल आया। फिर वह उनके पीछे गईं तो ब्रह्मा का चौथा सिर पीछे की ओर निकल आया। ब्राह्मी पूरी तरह हताश हो गईं और ऊपर की ओर हवा में उठ गईं। परंतु ब्रह्मा के जुनून की तो जैसे कोई सीमा ही नहीं रह गई थी। अचानक एक पाँचवाँ सिर, ब्रह्मा के अन्य चार सिरों के ठीक ऊपर प्रकट हो गया, जो ब्राह्मी को देखने के लिए तड़प रहा था। अपनी बहन को संकट में पाकर और पिता को खुद ही लज्जित होता देख मरीचि और अत्रि उन्हें चेतावनी देने आ पहुँचे।

'आपको नारद के वचनों के वशीभूत नहीं होना चाहिए। आप सृष्टिकर्ता हैं और सर्वोच्च शक्ति के प्रतीक हैं। आप अपनी ही पुत्री के लिए मन में अपवित्र भावना कैसे रख सकते हैं?

आप प्रकृति पर अपनी इच्छा कैसे आरोपित कर सकते हैं? आपने ब्राह्मी को दिव्य उद्देश्य के लिए उत्पन्न किया है। ऐसी आकांक्षा के समक्ष न झुकें जो आपकी समूची सृष्टि को अशुभ बना दे।'

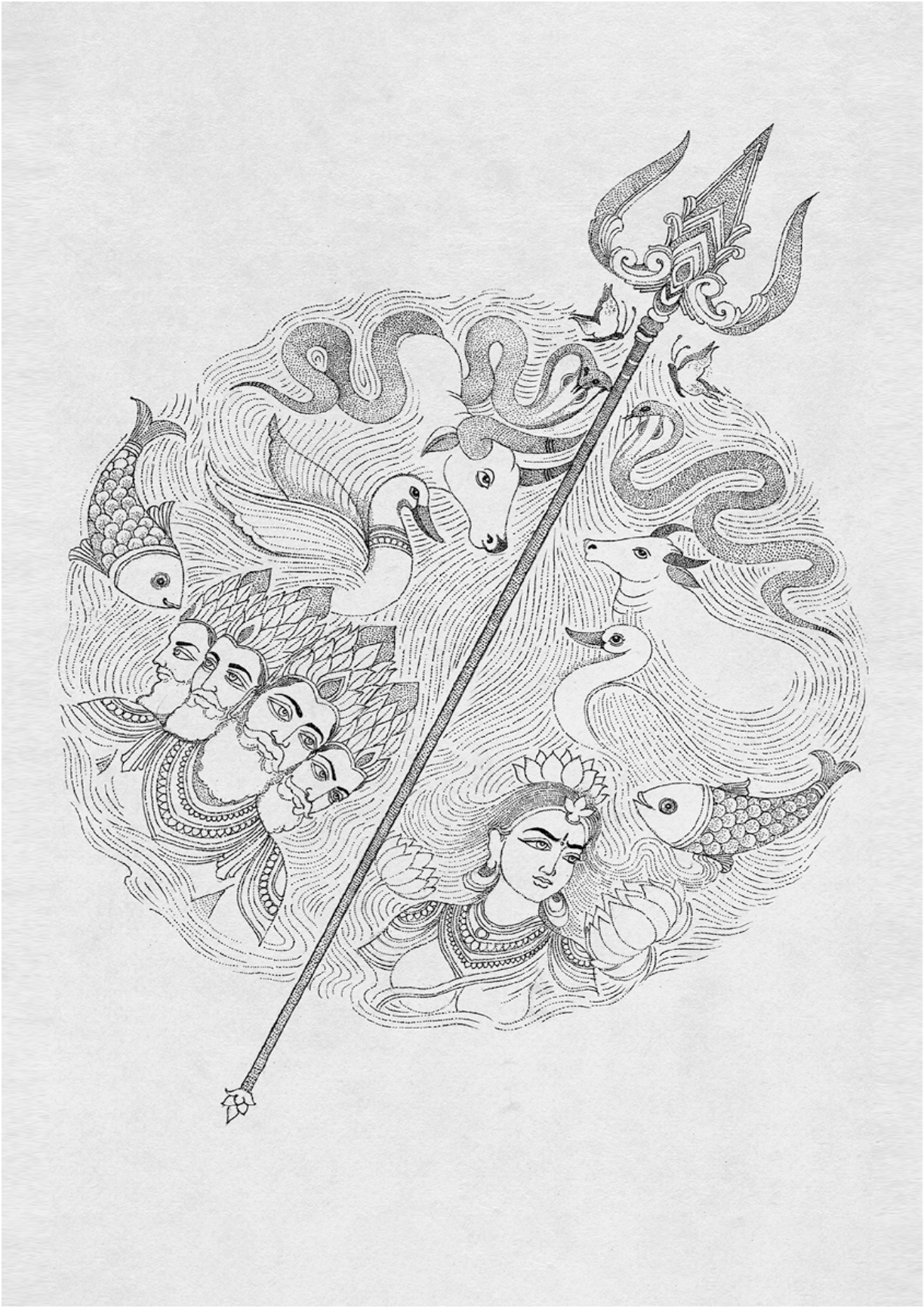
दुर्भाग्य से, नारद का शाप कहीं अधिक शक्तिशाली था! उसने ब्रह्मा को कुछ इस तरह अपने शिकंजे में फँसा लिया कि उन्होंने ब्राह्मी का पीछा करना शुरू कर दिया। वह इधर-उधर भागती रही, किंतु पिता से बचने का कोई उपाय न था। उनके प्रयास को विफल करने के लिए ब्राह्मी ने पशु रूप धारण करने शुरू कर दिए। वह गाय में परिवर्तित हुई तो ब्रह्मा ने खुद को बैल में बदल लिया, ब्राह्मी घोड़ी बनी तो ब्रह्मा घोड़ा बन गए। वह बत्तख बन गई तो ब्रह्मा ने खुद को नर बत्तख में बदल लिया। फिर वह हिरनी में बदल गई तो ब्रह्मा हिरन बन गए। वह एक-एक करके सौ जीवों में रूपांतरित होती गई और यह सिलसिला चलता रहा। सरीसृप, कीट, पक्षी और स्तनधारी। हवा, जमीन, नदी और समुद्र के जीव-जंतु। हर बार, मंत्रमुग्ध हुए ब्रह्मा स्वयं को ब्राह्मी के नर समकक्ष में बदलते रहे और इस तरह उन्होंने नर और नारी के पवित्र युग्म को कलंकित कर दिया।

ब्राह्मी ने सौ रूप धारण किए इसलिए उनका नाम शतरूपा हुआ। इस तरह पृथ्वी पर अनेक तरह के जीव-जंतु अस्तित्व में आए।

शिव को यह देखकर बहुत क्रोध आया और उन्होंने ब्रह्मा की निंदा की। तब जाकर ब्रह्मा को होश आया। उन्होंने शिव से क्षमा माँगी किंतु शिव का क्रोध उबल पड़ा और उन्होंने ऊपर की ओर निकला हुआ ब्रह्मा का पाँचवां सिर काट दिया, जिसके बाद ब्रह्मा के केवल चार सिर रह गए।

'ऐसे अधम विचार क्षम्य नहीं हैं,' शिव ने कहा। 'आपके चारों मुख अब इस भूल के प्रायश्चित हेतु सदैव वेदों का पाठ करते रहेंगे।'

अचानक, शिव बोलते-बोलते रुक गए। उनके बाएँ हाथ पर कुछ चिपका हुआ था। उन्होंने देखा तो ब्रह्मा का कटा हुआ सिर उनके हाथ से चिपक गया था। शिव अचंभित रह गए और अगले ही क्षण यह एहसास हुआ कि ब्रह्मा का सिर काटना, ब्रह्महत्या—ब्राह्मण की हत्या—के समतुल्य था। इसलिए इस पाप के दंडस्वरूप ब्रह्मा का कटा हुआ सिर शिव के हाथ से चिपक गया था।



‘परंतु महादेव ने जो किया, वह उचित था,’ शतरूपा ने तर्क दिया। ‘इसके लिए उन्हें क्यों दंडित किया जाना चाहिए?’

तब अत्रि ऋषि ने समझाया, ‘किसी भी क्रिया का संदर्भ कुछ भी हो, उससे एक प्रतिक्रिया जन्म पाती है। हमारे पिता ने वासना के वशीभूत अनुचित कामना की क्योंकि उन पर शाप का प्रभाव था और उन्होंने उसका मूल्य चुकाया। इसी तरह, महादेव ने भी अपने कर्म का परिणाम भोगा है, चाहे उनका कर्म कितना ही वैध क्यों न हो। ब्रह्मांड के नियम सभी पर समान रूप से लागू होते हैं।’

भगवान शिव पूरे ब्रह्मांड में घूमते रहे किंतु उन्हें कोई उपाय नहीं मिला। ब्रह्मा का कटा सिर उनके हाथ से चिपका ही रहा। जल्द ही, माँस सड़ कर नीचे गिरने लगा, केवल हड्डियाँ बची रह गईं। इस तरह शिव, हाथ में कपाल लिए भटकते रहे जिस कारण उनका एक नाम कपाली पड़ा। समय बीता और फिर शिव ने धरती पर कदम रखा। अचानक चमत्कार हुआ। एक स्थान पर शिव के हाथ से कपाल छूटकर नीचे गिर पड़ा।

भगवान का शुद्धिकरण हो चुका था। उन्हें एहसास हुआ कि वह भूमि मोक्षदायिनी है और जो भी यहाँ आएगा, वह पापों से मुक्त हो जाएगा। वही स्थान काशी या वाराणसी कहलाया।

कुछ समय बाद, मनु ने शतरूपा को विचारमग्न अवस्था में देखा। मनु ने धीरे-से शतरूपा का सिर अपने वक्ष पर रखा और पूछा, ‘तुम्हें क्या कष्ट है, प्रिये?’

‘मुझे भय लग रहा है,’ मानव जाति की जननी ने उत्तर दिया। ‘मुझे नारी को जन्म देने से भय लग रहा है। अगर पिता से ही पुत्री को खतरा होने लगा तो फिर कौन उसे सुरक्षा दे सकता है? यदि सब लोग स्त्रियों को चोट पहुँचाएँगे, तो उन्हें स्वस्थ कौन करेगा?’

मनु शांत रहे किंतु शतरूपा काँप रही थी।

‘मुझे डर लग रहा है। मुझे डर है कि स्त्रियों को सौंदर्य दिया तो पुरुष उन्हें निर्वस्त्र कर देंगे। उन्हें ज्ञान दिया तो पुरुष उन्हें नीचा दिखाएँगे। मुझे डर है कि स्त्रियों को विकल्प मिले तो पुरुष उन्हें अस्वीकार कर देंगे। मुझे यह भी डर है कि मैंने उन्हें शक्ति प्रदान की तो पुरुष उन्हें नष्ट कर देंगे।’

शतरूपा, मनु से दूर हट गई।

‘मैं भयभीत हूँ, मनु। मुझे भय लगता है।’

7
नारद और माया



‘चार सिर! मेरे पिता के चार सिर हैं।’

नारद ने जब सुना कि उनका दिया शाप ब्रह्मा पर कितना भारी पड़ा तो वे उसे विष्णु को बताने वैकुंठ पहुँच गए। नारद की बात सुनकर विष्णु मुस्कुराए।

‘यह सब माया है।’

‘माया? माया क्या होती है?

‘मुझे प्यास लगी है, नारद। मेरे लिए थोड़ा जल ले आओ, फिर मैं तुम्हें बताऊँगा,’ विष्णु ने उत्तर दिया।

देवर्षि जल लेने नदी के पास गए तो स्तब्ध रह गए। उन्होंने नदी-तट के पास एक युवती को खड़े देखा और उसे देखकर नारद की किसी और को देखने की इच्छा नहीं हुई। युवती इतनी अलौकिक थी कि नारद, विष्णु और उनकी प्यास के बारे में भूल ही गए। नारद ने उस युवती से विवाह कर लिया और नदी के किनारे, रेत पर ही घर बना लिया। अनेक वर्ष बीत गए। देवर्षि नारद, पहले पिता बने और फिर दादा। उनका वंश बढ़ता गया और साथ ही, उनका अपने परिवार के प्रति स्नेह भी बढ़ता गया। उनका घर ही अब उनका संसार था। वे सुखी जीवन व्यतीत कर रहे थे। एक दिन, अचानक बिना चेतावनी के, आकाश धूसर हो गया। बिजली कड़की और वर्षा आरंभ हो गई। कुछ ही देर में नदी में बाढ़ आ गई। बाढ़ का पानी इतना प्रवाहपूर्ण था कि नारद का समस्त घर-परिवार बाढ़ में बह गया। नारद उस जलधारा में असहाय से घूम रहे थे। सहसा उन्होंने खुद को वैकुंठ लोक में विष्णु के समक्ष खड़ा पाया।

‘नारद, जल कहाँ है? मैंने तुमसे कहा था कि मुझे प्यास लगी है।’

नारद मुनि चकित खड़े थे।

मेरी पत्नी? मेरे बच्चे? मेरा घर?

यह दुख उन्हें तीर की तरह चुभ गया।

माया...

वह केवल भ्रम था।

माया...

'देखा आपने?' विष्णु ने मुस्कुराते हुए कहा। 'यह पीड़ा, माया से उत्पन्न होती है। उस भौतिक संसार के प्रति आसक्ति से जो क्षणभंगुर है। यह उसी तरह की भौतिक आसक्ति है जिसे ब्रह्मदेव ने शतरूपा के साथ अनुभव किया। माया, भ्रमित कर देती है। वह असीमित को भुलाकर हमसे सीमित का पीछा करवाती है। उसी के प्रभाव से हम भूल जाते हैं कि परब्रह्म ही एकमात्र वास्तविकता, एकमात्र सत्य है। शेष सबकुछ रेत है, जो अँगुलियों के बीच से फिसल जाती है। माया से मुक्त होकर ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है।'

विष्णु ने ब्रह्मांड को सम्पन्न होते देखा तो वे फिर मुस्कुराए।

'तैयार हो जाओ, नारद। अभी बहुत-सी माया के दर्शन होने शेष हैं।'

8
जय और विजय



ब्रह्मा के चार पुत्र, अपने पिता के शिल्प की प्रशंसा करते ब्रह्मांड में घूम रहे थे। वे शिव के आगे नतमस्तक हुए, उन्होंने सप्तऋषि से वार्ता की और प्रत्येक क्षेत्र में उपलब्ध ज्ञान को आत्मसात् किया। सभी लोकों में घूमते हुए, चारों कुमार विष्णु के निवास और मुक्ति के धाम वैकुंठ लोक के द्वार पर पहुँच गए। छह द्वार पार करने के बाद वे सातवें को पार करने ही वाले थे कि उन्हें दो लोगों की आवाज़ सुनाई दी।

'रुको!'

दो जोड़ी भुजाएँ उनका मार्ग रोक रही थीं। दो प्राणी उन्हें घूर रहे थे।

'हमें प्रवेश करने से रोकने वाले तुम कौन हो?' ब्रह्मा के पुत्रों ने पूछा।

'हम वैकुण्ठ के द्वारपाल हैं।'

चतुर्सन ने उन्हें पार करने का प्रयास किया किंतु सफलता नहीं मिली। उनका मार्ग रोक कर खड़े दोनों द्वारपाल इस बात से अनभिज्ञ थे कि उन प्रबुद्ध मुनि कुमारों को ब्रह्मा ने सदैव बालवत् रहने का आशीर्वाद दिया हुआ था।

'तुम वैकुंठ में यूँ ही टहल नहीं सकते। यहाँ केवल कुछ विशेषाधिकार प्राप्त लोगों को ही प्रवेश की अनुमति है।'

'तुम्हारे नाम क्या हैं?' कुमारों ने पूछा।

'जय और विजय।'

'दोनों में क्या अंतर है?'

'दूसरों पर प्राप्त की गई जीत को विजय कहते हैं। परंतु स्वयं पर प्राप्त जीत को जय कहते हैं। अपने मन और हृदय, विचार और कार्य पर प्राप्त जीत। विजय, बाहरी है किंतु जय आंतरिक उपलब्धि है और यह सबसे कठिन है। जिन्होंने स्वयं को जीत लिया है, केवल वे

ही वैकुंठ को प्राप्त कर सकते हैं। तुम चारों अभी बहुत छोटे हो और तुम्हें संसार का अनुभव नहीं है। तुम यहाँ प्रवेश नहीं कर सकते।'

'हमारे शरीर अवश्य बालवत् प्रतीत होते हैं किंतु हम ब्रह्मा के मानसपुत्र हैं। हम चतुर्सन हैं जो सतत ज्ञान की खोज में भ्रमण करते हैं। श्रीहरि को सूचित कर दीजिए कि हम उनके दर्शन करके उन्हें प्रणाम करना चाहते हैं।'

परंतु जय और विजय ने उन पर विश्वास नहीं किया और यही कहा कि विष्णु आराम कर रहे थे।

'यहाँ से चले जाओ। वे तुमसे नहीं मिल सकते।'

'उन्हें सब पता है। क्या तुम इतना भी नहीं जानते?'

'तुम लड़कों ने उचित वस्त्र तक नहीं पहने हैं। भगवान तुमसे नहीं मिलेंगे। जाओ यहाँ से!'

कुमारों ने क्रोध में भौहें चढ़ा लीं। 'परमात्मा के इतने निकट होकर भी तुम दोनों इतने अज्ञानी कैसे हो? भगवान, अपने भक्तों को दर्शन देने से कभी मना नहीं करते। वे सदा उनके लिए उपलब्ध रहते हैं। तुम दोनों हमें भगवान से दूर कर रहे हो। तुम्हारे पद ने तुम्हें अहंकारी बना दिया है। वैकुंठ, सामंजस्य का प्रतीक है किंतु तुम दोनों इसमें कलह के स्वर बन गए हो। तुम अब यहाँ खड़े होने के भी योग्य नहीं रहे। तुमने हमारे तीर्थस्थल के मार्ग में व्यवधान पैदा करने का पाप किया है और तुम्हें इसका परिणाम भुगतना पड़ेगा।'

इसी के साथ चार नन्हीं हथेलियों ने जय और विजय पर जल छिड़क दिया।

'हम तुम दोनों को शाप देते हैं कि तुम अपना दिव्य रूप खोकर पृथ्वी पर नश्वर रूप में जन्म लोगे। तुमने हमें श्रीहरि के सान्निध्य से दूर किया है इसलिए तुम्हें भी उनसे अलग होना पड़ेगा।'

मुनि कुमारों के जाते ही जय और विजय, विष्णु के चरणों में गिर पड़े। भगवान विष्णु जानते थे कि जय और विजय से क्या भूल हुई थी। उन्होंने सिर हिला दिया।

'ब्रह्मा के मानसपुत्र, वे मुनि कुमार शुद्ध आत्मा हैं। तुम्हें उनका अपमान नहीं करना चाहिए था।'

'हमें बचाइए, भगवन्!'

विष्णु ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा, 'मैं उनके शाप को वापस तो नहीं कर सकता किंतु उसे निश्चित अवधि के लिए नियत कर सकता हूँ। तुम दोनों पृथ्वी पर मेरे भक्त बनकर सात जन्म ले सकते हो या फिर तुम्हें मेरे शत्रु के रूप में तीन बार जन्म लेना पड़ेगा। पृथ्वी पर अपने उन जन्मों की अवधि पूर्ण कर लेने के उपरांत तुम फिर से वैकुंठ लोक लौट सकते हो।'

दोनों भाई उठ खड़े हुए।

‘मुझसे प्रेम करने के लिए सात जन्म या मुझसे घृणा करने के लिए तीन जन्म। तुम इनमें से क्या चुनते हो?’ विष्णु ने पूछा।

जय ने हाथ जोड़कर कहा, ‘पृथ्वी पर सात जन्मों की अवधि बहुत लंबी है, प्रभु। हम इतने वर्षों तक आपसे दूर नहीं रह सकते। हमें केवल तीन जन्म चाहिएं भले ही इसके लिए हमें उन जन्मों में आपका शत्रु बनकर रहना पड़े।’

‘परंतु संसार तुम्हें धिक्कारेगा। सदैव तुम पर हँसेगा और तुम्हें जलाता रहेगा।’

विजय ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया, ‘यदि हम किसी भी तरह आपके पास लौट सकते हैं तो संसार को हमसे घृणा कर लेने दीजिए।’

‘किंतु हम पर एक उपकार कर दीजिए,’ जय ने विनती की। ‘जब भी हम आपके समक्ष शत्रु बनकर आएँ तो आपके द्वारा ही हमारा संहार हो। हमारे तीनों नश्वर जन्मों में आप अपने हाथों से हमारा उद्धार करें जिससे हम फिर से वैकुंठ में प्रवेश कर सकें।’

विष्णु ने सिर हिलाया। ‘तथास्तु! ऐसा ही होगा।’

दोनों भाइयों के जाते ही विष्णु ने उनके भविष्य पर दृष्टि डाली। उन्होंने पृथ्वी पर शत्रु रूप में जय और विजय के तीन जन्म देखे। सत्युग में, वे हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु नामक भाइयों के रूप में जन्म लेंगे। त्रेता युग में, वे रावण और कुंभकर्ण होंगे और द्वापर युग में, वे शिशुपाल और दंतवक्र नाम के चचेरे भाइयों के रूप में जन्म लेंगे।

प्रत्येक जन्म में उनका वध विष्णु के द्वारा ही होगा।

विष्णु ने आँखें मूँद लीं। शरीर खोकर आत्मा को प्राप्त करने हेतु तीन जन्म। यह समझने के लिए कि जय-विजय मात्र शब्द नहीं हैं, परिभाषित करने हेतु पद नहीं हैं और न ही आडंबर के लिए नाम मात्र हैं, उन दोनों को तीन जन्म लेने थे।

वे एक उद्देश्य की पूर्ति हेतु किए जाने वाला प्रयास थे।

9

दक्ष का नारद को शाप



मनु और शतरूपा ने प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम के दो पुत्रों तथा अकूति, देवहूति और प्रसूति नाम की तीन पुत्रियों को जन्म दिया। प्रसूति का विवाह, ब्रह्मा के पुत्र दक्ष से कर दिया गया।

दक्ष की असिकी नामक एक और पत्नी थी जिसने पाँच हजार पुत्रों को जन्म दिया। उन्हें सामूहिक रूप से हर्यश्व नाम मिला। दक्ष ने उन सभी को पृथ्वी का शासक बनने और प्रजनन की प्रक्रिया को जारी रखने का निर्देश दिया। सभी राजकुमार, कर्तव्यपरायण थे इसलिए पिता की बात से सहमत हो गए। पिता की आज्ञा को पूरा करने से पहले, वे एक ऐसे स्थान पर एकत्रित हुए जहाँ सिंधु नदी, समुद्र से मिल जाती थी। परंतु न हर्यश्व और न ही दक्ष, इस बात को जानते थे कि कोई उनसे मिलने आ रहा था। एक ऐसा व्यक्ति, जिसके मन में शरारत और स्वर में अनुनय की शक्ति थी।

वह उपद्रवी व्यक्ति थे, देवर्षि नारद!

नारद, दक्ष के हर्यश्व पुत्रों के पास आए और उन्हें अपने पिता की आज्ञा का पालन न करने हेतु उकसाने लगे।

'राजा? आप लोग भूलोक के राजा कैसे बन सकते हैं, जब आपको इतिहास या भूगोल का ही ज्ञान नहीं है? क्या आप भूलोक की परिधि से अवगत हैं? आपको यह कैसे पता चलेगा कि आप भूलोक की जनसंख्या को कम कर रहे हैं या उसे बढ़ा रहे हैं?'

हर्यश्व भाइयों के पास कोई जवाब नहीं था। देवर्षि मुस्कुराए।

'पहले, आप पृथ्वी के बारे में सब प्रकार का विवरण प्राप्त कीजिए और फिर शासन के अधिकार का दावा प्रस्तुत कीजिए। यह भी हो सकता है कि आपको इतना पारलौकिक ज्ञान मिल जाए कि आप एक अलग मार्ग पर चलने की इच्छा करने लगें। किसी अन्य श्रेष्ठ

मार्ग पर।'

नारद के शब्दों ने हर्यश्व को सामूहिक रूप से सम्मोहित कर दिया था। दक्ष के सभी पाँच हज़ार पुत्रों के चेहरों पर अब संदेह झलक रहा था। वे सब नारद की बात से सहमत हो गए। वे भूलोक के विषय में पता लगाने के लिए तितर-बितर हो गए। उन्हें फिर किसी ने नहीं देखा। जिस तरह सिंधु नदी समुद्र में विलीन हो गई, उसी तरह दक्ष के पुत्र भी लौटकर नहीं आए। दक्ष और असिकी जब हर्यश्व पुत्रों का पता नहीं लगा सके तो उन्होंने फिर से एक हज़ार पुत्रों को जन्म दिया जिनका सामूहिक रूप से नाम शबलाश्व था। परंतु नारद को अभी संतोष नहीं हुआ था। उन्होंने इन शबलाश्व राजकुमारों को भी पहले की तरह हतोत्साहित कर दिया। दक्ष के पुत्रों का यह समूह भी गायब हो गया और कभी वापस नहीं आया।

'तुम ऐसा कैसे कर सकते हो?' दक्ष ने क्रोध में भरकर नारद से कहा। 'नारद, अगर सब संन्यासी बन जाएँगे तो गृहस्थ कौन बनेगा?'

देवर्षि ने अपना बचाव करते हुए कहा, 'मैंने तो केवल उन्हें परम सत्य का मार्ग दिखाया था। उस पर चलने का विकल्प उन्होंने स्वयं चुना था।'

अपनी पीड़ा और रोष को नियंत्रित करने में असमर्थ, दक्ष ने अत्यंत भयानक शब्द कह दिए।

'हमारे पिता ब्रह्मा ने तुम्हें शाप देकर ठीक ही किया था और अब मैं भी वही करूँगा। नारद, तुमने, मेरे पुत्रों को तितर-बितर कर दिया और उन्हें भटकने के लिए उकसाया। अब से, तुम्हारा जीवन भी ऐसा ही होगा। तुम सदा तीन लोकों में भटकोगे और तुम्हें कहीं आश्रय नहीं मिलेगा। तुम्हारा कोई स्थायी घर नहीं होगा। तुम अनंत काल तक ब्रह्मांड में भटकोगे ताकि सभी को सभ्यता के मूल्य का एहसास हो।'

अपने सभी पुत्रों को खो देने के बाद, दक्ष और असिकी ने साठ पुत्रियों को जन्म दिया। उनमें से सत्ताईस का नक्षत्र-रूप था और उन्होंने चंद्रदेव से विवाह किया। दस कन्याओं का विवाह धर्मदेव से और तेरह का मरीचि के पुत्र कश्यप से विवाह हुआ। ये तेरह युग्म आगे चलकर सृजन के प्राथमिक स्रोत बने।

इन तेरह बहनों में से अदिति की संतानें 'आदित्य' कहलाईं। उनमें एक सूर्य था, जो ब्रह्मांड में गर्मी और प्रकाश का स्रोत बना। दूसरा इंद्र था, जो देवताओं का शासक देवराज कहलाया। दिति की सन्तानें दैत्य कहलाईं। इनमें सबसे बड़े दो भाई हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु थे। दनु से दानव और अरिष्टा से गंधर्व उत्पन्न हुए। मुनि ने अप्सराओं को, काष्ठा ने यक्षों को और कद्रू ने नागों को जन्म दिया। चूँकि दक्ष इन तेरह कन्याओं के पिता थे, इसलिए उन्हें पति, यानी प्रजा और समस्त प्राणियों का स्वामी कहा गया जिनकी उत्पत्ति दक्ष की पुत्रियों से हुई थी।

इसलिए दक्ष को प्रजापति कहकर भी संबोधित किया जाने लगा।

दक्ष की दूसरी पत्नी, प्रसूति, ब्रह्मांड की देवी, आदिशक्ति की प्रबल भक्त थीं। इन्हीं आदिशक्ति के अर्द्धनारीश्वर वाले स्त्री-रूप ने ब्रह्मा को प्रजनन के बारे में बताया था। प्रसूति ने अपने पति को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वे देवी को पुत्री-रूप में पाने के लिए उपासना करें। उन्होंने वर्षों तक तपस्या की और अंत में आदिशक्ति ने हामी भर दी।

'हालाँकि, मैं तुम्हें चेतावनी दे रही हूँ,' देवी ने कहा, 'यदि तुमने कभी मेरा अपमान किया तो मैं तुम्हें छोड़कर चली जाऊँगी और तुम्हें इसके गंभीर परिणाम भुगतने पड़ेंगे।'

कुछ समय बाद, प्रसूति ने चौबीस कन्याओं को जन्म दिया और उनमें सबसे छोटी पुत्री, सबसे तेजवान थी। वही आदिशक्ति की अवतार थी।

दक्ष ने उसका नाम सती रखा।

और सती ने जो पहला शब्द कहा, वह था—शिव।

10
देवता भूखे रह गए



दिन निकला ही था कि ब्रह्मा ने सभी देवताओं को ब्रह्मलोक की ओर आते देखा। उनके प्रवेश करते ही ब्रह्मा मुस्कुराए किंतु अगले ही पल उन्हें तनाव महसूस होने लगा। सभी दुर्बल और भूखे दिखाई पड़ रहे थे। उनके चेहरों पर चमक नहीं थी और शरीर में माँस से ज्यादा हड्डियाँ दिख रही थीं। ब्रह्मा के कारण पूछने पर देवताओं ने बताया कि उनके पास खाने को कुछ नहीं था।

‘मैं समझा नहीं। खाने को कुछ नहीं है?’

‘भूलोक पर पृथ्वी, मनुष्यों को भोजन प्रदान कर रही है। उन्हें किसी तरह का परिश्रम नहीं करना पड़ता क्योंकि धरती से उन्हें फल और कंद-मूल मिल जाते हैं। किंतु यहाँ स्वर्ग में, हमारे पास खाने को कुछ नहीं है। हम अपना निर्वाह कैसे करें?’

‘यज्ञों के माध्यम से,’ ब्रह्मा ने उत्तर दिया। ‘वेदों में यह निर्दिष्ट है कि जब मनुष्य, पृथ्वी पर यज्ञ करते हैं तो वे देवताओं के मुख कहे जाने वाले अग्निदेव के माध्यम से प्रसाद अर्पित करते हैं। अग्नि में दी आहुतियाँ सीधे आप तक पहुँचती हैं। इसके बदले में आप मनुष्यों को वरदान और आशीर्वाद प्रदान करते हैं। यज्ञ, ऊर्जा के आदान-प्रदान का माध्यम है जिससे सभी को लाभ मिलता है। यह सहजीविता का साधन है जो देवताओं और मनुष्यों दोनों को पोषित करता है।’

‘यह तो हम जानते हैं,’ इंद्र ने कहा। ‘मनुष्य नियमित रूप से पृथ्वी पर यज्ञ भी कर रहे हैं किंतु उनका प्रसाद हमारे पास नहीं पहुँचता।’

‘क्यों?’

‘अग्निदेव के कारण। वे अपना कार्य ठीक से नहीं करते,’ कामदेव ने शिकायत की।

अग्निदेव ने आगे आकर हाथ जोड़कर कहा, ‘मैं वास्तव में दोषी हूँ, परम पिता। मैं मनुष्यों

द्वारा चढ़ाए गए प्रसाद का भक्षण तो कर सकता हूँ किंतु उसे देवताओं तक पहुँचाने में असमर्थ हूँ। मुझे वह कला नहीं आती। इसलिए देवता मेरे कारण भूखे हैं। बताइए, मैं क्या करूँ?'

ब्रह्मा हैरान थे। उन्होंने अपने चारों सिरों को खुजाया किंतु उन्हें समस्या का हल नहीं सूझा। फिर उन्होंने विष्णु से सहायता माँगी। विष्णु ने उनसे कहा, 'प्रकृति से प्रार्थना करो। माँ प्रकृति। वही हमारी सहायता कर सकती हैं।'

ब्रह्मा ने प्रकृति का आह्वान किया। प्रकृति ने अनुष्ठान-संबंधी प्रसाद की अधिष्ठात्री के रूप में तुरंत एक देवी को उत्पन्न कर दिया। वह यज्ञ की आहुति को रूपांतरित करने और पृथ्वी एवं स्वर्ग के बीच इस महत्त्वपूर्ण आदान-प्रदान को संभव करने हेतु लौकिक वाहक बनने वाली थी।

'आप ही अब हमारी जीवन रेखा हैं,' ब्रह्मा ने देवी को आशीर्वाद दिया। 'प्रकृति ने आपको क्या नाम दिया है?'

'स्वाहा!'

ब्रह्मा ने घोषणा की, 'अब से, यज्ञ में अग्नि को अर्पित की जाने वाली प्रत्येक आहुति "स्वाहा" शब्द के साथ समाप्त होनी चाहिए। यदि उसका नाम नहीं लिया गया तो अग्नि में दी गई आहुति देवताओं तक नहीं पहुँचेगी। "स्वाहा" के बिना उच्चारित किया गया कोई भी मन्त्र फलहीन वृक्ष, विषहीन सर्प और अज्ञानी मनुष्य के समान होगा। वह यज्ञ, अपूर्ण और अशुभ माना जाएगा।'

देवी ने देवताओं की रक्षा कर ली थी। ब्रह्मा ने अग्निदेव का विवाह स्वाहा से कर दिया और दोनों सदा के लिए एक हो गए।

11
ब्रह्मा और विष्णु में होड़



एक दिन देवता जागे तो उन्हें पता लगा कि ब्रह्मा और विष्णु में झगड़ा हो रहा था। वे मौके पर पहुँचे तो देखा कि दोनों एक-दूसरे से लड़ने को तत्पर थे। दोनों का गुस्सा और कहा-सुनी बढ़ते जा रहे थे। देवताओं को अपने चारों ओर एकत्रित देखकर ब्रह्मा ने कहा, 'मैं इस मार्ग से आया और इन्होंने मुझे प्रणाम तक नहीं किया। मैं इस सृष्टि का रचयिता हूँ। त्रिदेव में सर्वप्रथम। क्या मैं किंचित् भी सम्मान के योग्य नहीं हूँ?'

'आप रचयिता हैं किंतु सृष्टि का संरक्षक मैं हूँ,' विष्णु ने जवाब दिया।

'आप सृष्टि का संरक्षण केवल इसलिए कर पाते हैं क्योंकि मैं इसे संभव बनाता हूँ। मेरे बिना आपके पास करने को कुछ नहीं होगा। अगर मैंने सृजन की पहल न की होती तो इस योजना में आपकी कोई भूमिका न होती।'

'सृष्टि इतनी दुर्बल है कि इसे बनाए रखने के लिए मेरी आवश्यकता है। याद कीजिए, मैंने कैसे मधु और कैटभ का संहार किया था। जो रक्षा करता है, वही बड़ा होता है। आपकी शक्ति का क्या लाभ, यदि आपने जो बनाया है, आप उसकी रक्षा नहीं कर सकते?'

'शक्ति?' ब्रह्मा आगे बढ़े। 'आप मेरी शक्ति का विस्तार देखना चाहते हैं? मेरे शरीर में प्रवेश कीजिए और देखिए मेरे भीतर क्या कुछ समाहित है।'

'आपके शरीर में?'

'कीजिए प्रवेश।

विष्णु ने ब्रह्मा के भीतर प्रवेश किया तो पाया कि उसमें लाखों संसार स्पंदित हो रहे थे। समुद्र उफन रहे थे, पर्वत ऊँचे उठ रहे थे। हर तरह का जीवन वहाँ विद्यमान था। चारों ओर अनेक पारिस्थितिकी-तंत्र अपनी समस्त भव्यता के साथ श्वास ले रहे थे। भ्रूण, गर्भधारण कर रहे और संवर्धित हो रहे थे और तत्त्व, अपना पोषण प्राप्त कर रहे थे। हर आयाम, अद्भुत

दृश्यों और ध्वनियों से परिपूर्ण था जो विष्णु ने पहले कभी नहीं देखा था। प्रत्येक परिदृश्य यह घोषणा कर रहा था कि शून्यता, मिथ्या है क्योंकि उसका खालीपन भी अपने गर्भ में कुछ रहस्य छिपाए था। ब्रह्मा के शरीर से बाहर निकलकर, विष्णु ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा, 'आप वास्तव में समस्त सृष्टि के स्वामी हैं। किंतु आप यह भी देख लीजिए कि मेरे शरीर के अंदर क्या है?'

ब्रह्मा ने विष्णु के भीतर प्रवेश किया तो वे चकित रह गए। वे सचमुच अनंत विस्तार के बीच खड़े थे। असीम और अंतहीन। लाखों आकाशगंगाओं से भरा अंतर-तारकीय आकाश। विशालकाय ग्रह और झिलमिलाते नक्षत्र। तीनों काल—अतीत, वर्तमान और भविष्य। प्रकट और अप्रकट आयाम। उनकी अनेक आँखें जो कुछ देख रही थीं, उसे समाहित करना संभव नहीं था। ब्रह्मा के अनेक सिर, उस प्रक्रिया को समझ पाने में विफल थे। वहाँ एक नहीं, अनेक ब्रह्मांड मौजूद थे। वह बहुरूपदर्शक जैसा बहुब्रह्मांडीय दृश्य था जो अपरिवर्तित होते हुए भी लगातार परिवर्तित हो रहा था, जहाँ खुद को खोजने तथा परम सत्य को पाने के लिए स्वयं को खोना आवश्यक था। अस्तित्व के प्रत्येक स्तर से गुजरते हुए, ब्रह्मा अब बाहर आना चाहते थे किंतु उन्हें बाहर निकलने का मार्ग नहीं मिल रहा था। ऊपर-नीचे मार्ग खोजते हुए, आखिरकार ब्रह्मा ने एक कमल-नाल से मार्ग पा लिया और वे पुन: विष्णु की नाभि के रास्ते बाहर निकल आए।

यह सिद्ध करने के लिए कि वे कितने दिव्य हैं, दोनों के बीच बहस फिर तेज हो गई। पहले उन्होंने एक-दूसरे को अपशब्द कहे और फिर दोनों ने अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग आरंभ कर दिया। यह देखकर सब काँप उठे। तभी उनके सामने एक विशाल अग्नि-स्तंभ प्रकट हुआ। स्वर्ण की तरह प्रकाशमान वह ज्वलंत स्तंभ, बहुत ऊपर और बहुत नीचे तक था मानो उसका न आदि था, न अंत। वह दृश्य इतना सम्मोहक था कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा और संरक्षक विष्णु दोनों उसे देखने के लिए ठहर गए। अवसर पाकर देवताओं ने एक प्रस्ताव रखा। उन्होंने विष्णु से उस स्तंभ का आधार खोजने और ब्रह्मा से उसके शीर्ष का पता लगाने को कहा। यह तय हुआ कि जो अपने कार्य को करने में पहले सफल होगा, उसे श्रेष्ठ माना जाएगा।

दोनों देवता सहमत हो गए।

विष्णु ने स्वयं को शूकर में बदल लिया और पृथ्वी को खोदकर उसके भीतर उतरने लगे, जबकि ब्रह्मा ने हंस का रूप धारण कर लिया और ऊपर की दिशा में उड़ने लगे। दोनों खोजते रहे, उन्होंने बहुत खोजा किंतु किसी को उस अग्नि-स्तंभ का ऊपरी या निचला छोर नहीं मिला। वह स्तंभ, ब्रह्मांड की रीढ़ की भांति पृथ्वी और आकाश के मध्य से दोनों दिशाओं में अनंत तक व्याप्त दिखाई दे रहा था। ब्रह्मा पूरी तरह से थक चुके थे और वापस

लौटने ही वाले थे कि उनकी नज़र नीचे की ओर तैरती किसी चीज़ पर पड़ी। वह केतकी का फूल था।

'तुम कहाँ से आ रहे हो?' ब्रह्मा ने फूल को अपनी चोंच में पकड़कर पूछा।

'मैं इस स्तंभ के ऊपरी सिरे पर था किंतु वहाँ से फिसल गया।'

ब्रह्मा केतकी का पूरा वाक्य समझ नहीं पाए। उन्हें केवल उसका अंश ही समझ में आया।

...इस स्तंभ का ऊपरी सिरा...

वे शब्द ब्रह्मा के भीतर गूँजने लगे। ब्रह्मा के हाथ में अब फूल नहीं, अपितु विजय की कुंजी थी। वह ऐसा प्रमाण था जिसे संभवतः कोई अस्वीकार नहीं कर सकता था। विष्णु को पराजित करने की इच्छा के वशीभूत, ब्रह्मा ने एक अकल्पनीय काम कर डाला। उन्होंने केतकी के फूल से सबके सामने झूठी गवाही देने को कहा कि वे स्तंभ के शीर्ष पर पहुँच गए थे और उन्होंने वहाँ से फूल को उठाया था।

'आप चाहते हैं कि मैं झूठ बोलूँ?'

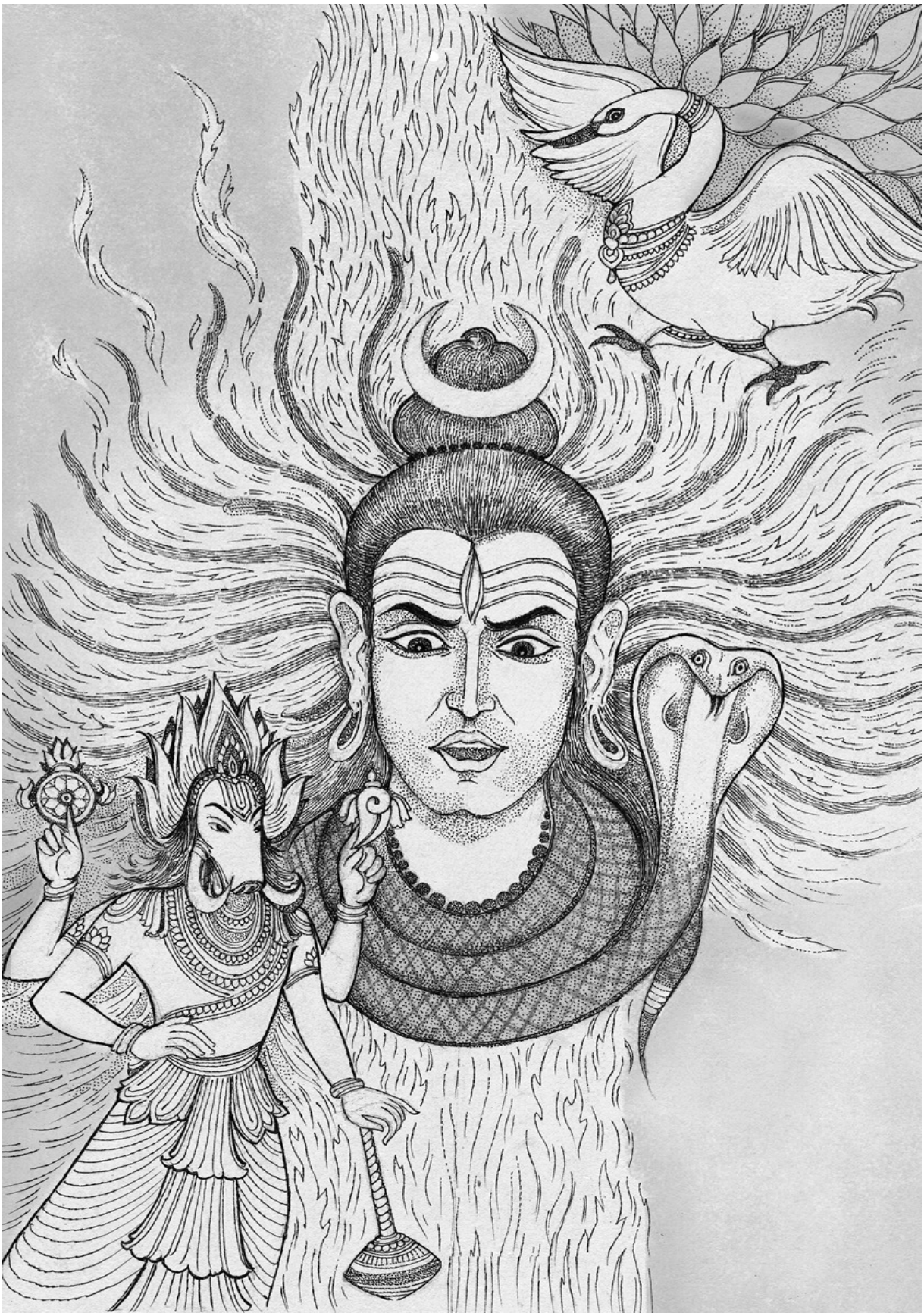
'मैंने तुम्हें बनाया है,' ब्रह्मा ने तर्क दिया। 'मैं केवल तुमसे वह उपकार लौटाने को कह रहा हूँ।'

'किंतु झूठ?'

'यदि तुमने ऐसा कर दिया तो मैं अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर पाऊँगा।'

केतकी का फूल झूठ बोलने के लिए तैयार हो गया। वापस लौटते हुए उन्होंने विष्णु को भी आते देखा। विष्णु का मुँह लटका हुआ था। उन्होंने मान लिया किया कि वे स्तंभ का आधार पता लगाने में विफल रहे थे। तब ब्रह्मा मुस्कुराए। उन्होंने अपने चारों मुखों से वर्णन करना शुरू कर दिया कैसे वे स्तंभ के शीर्ष तक पहुँचे और वहाँ चोंच मारकर कैसे वे विजय के प्रमाण के साथ लौटे थे। फिर ब्रह्मा ने केतकी का फूल दिखाया जिसने ब्रह्मा की झूठी कहानी का शब्दशः समर्थन कर दिया।

'ब्रह्मदेव वास्तव में सबसे महान हैं,' केतकी ने पुष्टि की।



विष्णु ने पराजय स्वीकार कर ली। उन्होंने अपने हाथ जोड़े ही थे कि तभी अग्नि-स्तंभ चटक गया। वह मध्य से टूट रहा था और भीतर से ओम् की ध्वनि गूँज रही थी। आग की लपटों की लालिमा गहरी होती गई। उस ज्वलंत धुंध के बीच शिव खड़े थे। क्रुद्ध शिव! उन्होंने ब्रह्मा की ओर संकेत करते हुए गरज कर कहा, 'झूठ!'

सब चकित रह गए। शिव ने क्रुद्ध स्वर में कहा, 'आप कहते हैं कि आपको इस स्तंभ का शीर्ष मिल गया? इस सदाशिव का शीर्ष? इस अनंत परशिव का शीर्ष? क्या आपको पता है आप क्या खोजने की कोशिश कर रहे थे? शिवलिंग... ज्योतिर्लिंग!'

ब्रह्मा का रंग पीला पड़ गया।

'ज्योतिर्लिंग चिरस्थायी है। यह अथाह है, उस परब्रह्म की तरह, जिसका यह प्रतीक है। यह हर तरह की कामुक धारणा से परे है। यह केवल आपको यह समझाने के लिए प्रकट हुआ था कि आप दोनों का तर्क कितना तुच्छ था। यह आपको याद दिलाना चाहता था कि परब्रह्म से बढ़कर कुछ नहीं है और हम सब लौकिक सिद्धांत के एक समान घटक हैं। श्री हरि ने अपनी असफलता को स्वीकार कर लिया किंतु ब्रह्मदेव, आपको हारने का इतना डर था कि आपने हमें धोखा देने का प्रयास किया। आप स्वयं यदि भयभीत हैं तो दूसरों के हृदय को भय से मुक्त कैसे कर पाएँगे?'

शिव ने अपने त्रिशूल से प्रहार किया।

'यह कोई शाप नहीं है, ब्रह्मदेव। यह प्रकृति का नियम है। आपने सत्य को स्वीकार नहीं किया इसलिए अब आपको कोई स्वीकार नहीं करेगा। आज से आपकी पूजा नहीं होगी!'

फिर शिव, केतकी के फूल पर गरजे, 'तुम मुझे प्रिय थे किंतु तुमने झूठी गवाही दी है। मैं यह घोषणा करता हूँ कि अब से कोई तुम्हें, मेरी पूजा के लिए उपयोग में नहीं लाएगा।'

भगवान शिव चले गए किंतु दक्ष उन्हें खड़ा घूरता रहा। उसकी आँखों में पानी भर आया था। उसकी आत्मा जल रही थी।

पहले तुमने मेरे पिता का सिर काटा...

अब तुमने उन्हें पूजा से वंचित कर दिया...

शिव के प्रति घृणा की लहर जैसे दक्ष को सिर से पाँव तक लील गई थी।

12
बल ने प्रकट किए नौ आश्चर्य



दक्ष की पुत्रियों, दिति और दनु ने कश्यप से विवाह करके क्रमशः दैत्यों और दानवों को जन्म दिया। दोनों राक्षस जातियाँ थीं जो लगातार देवताओं से युद्धरत रहती थीं। वे निरंतर स्वर्ग लोक या भूलोक पर कब्ज़ा करने की कोशिश करते रहते थे। यद्यपि देवता और दानव, एक ही वंश-वृक्ष के फल थे किंतु वे सदा एक-दूसरे के खून के प्यासे रहते थे।

एक बार स्वर्गवासियों ने सभी देवताओं को जान बचाकर भागते देखा। बल नामक एक अजेय असुर ने इंद्र को पराजित करके उसके राज्य पर अधिकार कर लिया था। अपने लोक से निकाल दिए गए असहाय देवता, द्वार पर खड़े थे। वे अब अपने लोक के स्वामी नहीं रहे। वे सब लज्जा और भय से काँप रहे थे। वे जाने लगे तो उन्होंने बल को पास आते देखा। बल का दिमाग शैतानी था किंतु वह हृदय से सदाचारी था। वह इतना उदार था कि उसने कभी किसी के अनुरोध को अस्वीकार नहीं किया। देवताओं के बीच खड़े होकर बल ने एक घोषणा की।

'आपने अपने समस्त अधिकार अवश्य खो दिए हैं किंतु मैं सदा आपकी सहायता के लिए तत्पर हूँ। मैंने अतीत में खुलकर दान दिया है और आगे भी देता रहूँगा। आप जब भी कोई यज्ञ करें तो भरोसा रखिए कि मेरा सहयोग सदा आपको मिलता रहेगा।'

बल के जाने के बाद देवराज इंद्र मुस्कुरा रहे थे। देवता सोचने लगे कि निर्वासित राजा देवराज इंद्र को ऐसा क्या आनंद मिल रहा था कि तभी देवताओं को बात समझ में आ गई। बल से भोलेपन में एक भूल हो गई थी। उसने देवताओं को अपनी पराजय की कुंजी सौंप दी थी।

एक यज्ञ...

तैयारी तुरंत आरंभ हो गईं और जल्द ही यज्ञ का दिन आ गया। यज्ञाग्नि की लपटें ऊँची उठ रही थीं और मंत्र गूँज रहे थे। योजना को क्रियान्वित करने का समय आ गया था। इंद्र

और देवता महल में लौटे और उन्होंने बल का विनम्रतापूर्वक स्वागत किया।

'हमने एक यज्ञ का आयोजन किया है और हमें अनुष्ठान पूरा करने के लिए एक प्राणी की आवश्यकता है जिसकी बलि दी जा सकती हो।'

'अवश्य!'

'हम आपसे अनुरोध करते हैं कि आप स्वयं को अर्पित कर दें ताकि यह यज्ञ पूर्ण हो सके और...'

पूरी सभा सन्न रह गई। बल उठ खड़ा हुआ। उसके चेहरे पर भय झलक रहा था। ऐसा लगा मानो उसकी छाया सबको लील जाएगी। क्या ये देवताओं के जीवन के अंतिम शब्द थे? क्या बल उन्हें एक-एक करके मार देने वाला था? क्या बल की चमकती आँखों को देखना, देवताओं के जीवन का अंतिम दृश्य था? वे जानते थे कि बल बहुत परोपकारी था किंतु क्या कोई इतना उदार हो सकता है कि वह स्वयं को ही पर-हित के लिए अर्पित कर दे? बल उनके निकट आया तो सब सहम कर एक-दूसरे के पास जा खड़े हुए। बल और निकट पहुँचा। और निकट। उसके शैतानी दिमाग में आखिर क्या चल रहा था?

बल ने हाथ जोड़कर कहा, 'मैं तैयार हूँ।'

शीघ्र ही, यज्ञ की अग्नि उसके शरीर का भक्षण करने लगी, उसकी हड्डियाँ को जलाने और माँस को पिघलाने लगी। चाल कामयाब हो गई थी। बल मर चुका था। स्वर्ग लोक पर एक बार फिर देवताओं का अधिकार हो गया। देवतागण आनंदित थे। वे सब बल के शव के पास नाच रहे थे। तभी कोई चिल्लाया।

'देखो!'

यह कैसा चमत्कार था? बल का भस्म हो चुका शरीर रूपांतरित हो रहा था। उसका हर अंश एक आकार ले रहा था। वह इतनी सुंदर और भव्य वस्तुओं में परिवर्तित हो गया कि उससे दृष्टि हटाना असंभव था।

ये सब क्या है?

सारे देवता, उन वस्तुओं को देखने के लिए निकट पहुँचे। बल के शव से नए-नए रंग बन रहे थे। लाल, हरा, नीला और पीला। अनदेखे रंग, जिन्हें देखकर देवताओं की आँखें चकाचौंध हो गईं, उनका दिल बैठा जा रहा था। बल के अवशेष, एक इंद्रधनुष में बदल गए जो लाखों सितारों की चमक से प्रकाशमान हो रहा था।

इसी बीच एक आकाशवाणी हुई, 'बल के इस अंतिम निःस्वार्थ कर्म ने उसके शरीर को पवित्र कर दिया है। वह ब्रह्मांड में पाए जाने वाले सबसे अनमोल पदार्थों में बदल चुका है।'

देवता आश्चर्य से सिहर उठे। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि किसी असुर का शरीर इतना चमत्कारी हो सकता था। उन्होंने तुरंत उसे साथ ले जाने की कोशिश की किंतु हर

बार वह फिसलकर भूलोक की ओर गिर पड़ता था। बल का शव गिरते हुए फूट गया। उसके टुकड़े पृथ्वी पर बिखरकर इधर-उधर जम गए। उसके शरीर के कुल चौरासी हिस्से हुए, जो पहाड़ों, जंगलों, नदियों और महासागरों में जा गिरे। इनमें से इक्कीस टुकड़े प्रकृति में पाए जाने वाली सबसे शानदार वस्तुओं में बदल गए जो रत्न कहलाईं। इनमें से नौ रत्नों को सर्वाधिक मूल्यवान माना गया। बल की अस्थियों से हीरे और उसके पित्त से पन्ने बने। उसके रक्त से माणिक्य और आँखों से नीलम ने आकार पाया। उसके दाँतों से मोती और त्वचा से पुखराज बना। बल के नाखूनों से रक्तमणि, आँतों से मूँगे और उसकी आवाज़ से लहसुनिया रत्न उत्पन्न हुआ।

यही फिर नवरत्न कहलाए।

13
विष्णु को मिला सुदर्शन चक्र



दुख की बात यह है कि हर असुर बल की तरह परोपकारी नहीं होता। अधिकांश असुर, देवताओं को पीड़ित करते और मनुष्यों की हत्या कर डालते थे। वे यज्ञों में विघ्न डालते और स्त्रियों की शुचिता को भंग कर देते थे। राक्षसों की दुष्टता से जब सब लोकों में अंधकार व्याप्त होने लगा, तो देवताओं ने विष्णु से रक्षा की याचना की। किंतु भगवान, असुरों द्वारा लगातार किए जा रहे आक्रमणों से खुद भी थक चुके थे। ऐसा प्रतीत होता था कि उनके नीले कंधों पर संरक्षण का बोझ अधिक हो गया था। जैसे-जैसे राक्षसों का कहर बढ़ता गया, विष्णु को ठोस कदम उठाने की आवश्यकता महसूस हुई।

'मुझे महादेव का आह्वान करना होगा। ऐसा आह्वान जैसा पहले कभी किसी ने न किया हो।'

वनों में यात्रा करते हुए विष्णु ने शिव की उपासना आरंभ कर दी। अनेक वर्ष बीते किंतु शिव का कुछ पता न था। विष्णु के मुख से मंत्रों का सतत प्रवाह जारी रहा। उन्होंने वे सब स्तुति गाईं जो ब्रह्मांड के किसी देवता को प्रसन्न कर सकती थीं फिर भी जब शिव प्रकट नहीं हुए तो विष्णु ने वही आवाज़ निकाली जिसमें हर प्रश्न का उत्तर था। विष्णु रुक गए। उन्होंने मिट्टी छानकर एक पार्थिव शिवलिंग का निर्माण किया। फिर उसके सामने बैठकर विष्णु ने शिव के सहस्र नामों का जाप करना आरंभ कर दिया।

आशुतोष... भैरव... महाकाल... रुद्रदेव...

प्रत्येक नाम के लिए विष्णु, शिवलिंग पर कमल का एक फूल अर्पित करते गए। इस प्रकार, जब मंत्रोच्चारण समाप्त हुआ तो शिवलिंग पर एक हजार फूल चढ़ चुके थे। वह अत्यंत मनमोहक दृश्य था। फिर यह भगवान का दैनिक अनुष्ठान बन गया। विष्णु, प्रतिदिन शिव के सहस्त्र नामों का पाठ करके शिवलिंग पर एक हजार कमल के पुष्प चढ़ाने लगे।

आखिर शिव, विष्णु से प्रसन्न हो गए।

शिव प्रकट होने ही वाले थे कि उन्होंने आखिरी बार संरक्षक विष्णु की परीक्षा लेने का फैसला किया। शिव ने जब विष्णु को शिवलिंग का अभिषेक करते देखा। परिणामस्वरूप, विष्णु ने फूलों की व्यवस्था करके उनकी गिनती की तो पाया कि वे केवल नौ सौ निन्यानवे ही थे। भगवान चकित थे। उन्होंने इधर-उधर देखा, किंतु उन्हें कमल का पुष्प नहीं दिखा। एक भी फूल गुम होने का अर्थ यह था कि विष्णु का यज्ञ अधूरा रह जाता और वर्षों की तपस्या निष्फल हो जाती।

क्या 'हर' के समक्ष 'हरि' असफल होने वाले थे?

विष्णु सोच-विचार कर रहे थे कि तभी उनका चेहरे पर चमक आ गई। शिव के नामों का जाप करते समय वे भूल गए थे कि उनके भी अनेक नाम हैं। उनके भक्तों द्वारा दिए गए अनेक सुंदर नाम, जो उनके वैभव को समर्पित थे। उनमें से एक नाम कमलनयन था, यानी वह, जिसके नेत्र कमल के समान हों।

वह खुशी से बोले, 'यदि मेरे नेत्र कमल-पुष्प के समान हैं, तो निश्चित रूप से इन दोनों में से एक को शिवलिंग पर चढ़ाया जा सकता है।'

शिव ने देखा। देवताओं ने भी देखा। सारी सृष्टि ने देखा कि विष्णु ने अपना एक नेत्र निकालकर शिवलिंग को अर्पित कर दिया। एक हजारवाँ कमल जो अन्य फूलों के ऊपर रखा चमक रहा था। वह पुष्प, बल द्वारा उत्पन्न अन्य सभी रत्नों से अधिक देदीप्यमान था; ब्रह्मांड के अन्य कमल-पुष्पों से अधिक सुंदर; भक्ति की ओस से परिपूर्ण। शिव तुरंत प्रकट हो गए और उन्होंने विष्णु को स्वस्थ कर दिया। शिव को पता था विष्णु को क्या चाहिए। उन्होंने विष्णु को एक स्वर्णिम चक्र भेंट किया। वह एक सौ आठ दाँतेदार फलों वाला चक्र था जिसमें दो संकेंद्रित वृत्त थे जो विपरीत दिशाओं में घूमते थे।

'यह सृष्टि का एकमात्र चलायमान अस्त्र है,' शिव ने कहा। 'यह आपकी इच्छा के अधीन रहेगा। यह उड़कर जाएगा और अपने लक्ष्य को नष्ट करके वापस आ जाएगा। इससे आप ब्रह्मांड में व्याप्त प्रत्येक अव्यवस्था का मुकाबला कर सकेंगे।'

'हम इस चक्र को क्या नाम दें?' विष्णु ने पूछा।

'सुदर्शन!' शिव ने अपने नेत्रों को स्पर्श करते हुए कहा। 'पावन दृष्टि से युक्त।'

14
संज्ञा की जुड़वां



सूर्यदेव ने ब्रह्मांड के शिल्पकार विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा से विवाह किया था। संज्ञा ने वैवस्वत, यमुना और मृत्यु के देवता यम को जन्म दिया।

जीवन सुखमय था किंतु संज्ञा ने एक रहस्य छिपा रखा था।

संज्ञा, सूर्य से बहुत प्रेम करती थी किंतु सूर्य का कठोर ताप और प्रकाश उसे सहन नहीं होता था। वह दिन में सृष्टि को पोषण देता किंतु रात को संज्ञा के लिए असहनीय हो जाता था। संज्ञा ने अच्छी पत्नी बनकर वर्षों तक नम्रता से सब कुछ सहा, किंतु एक दिन उसने फैसला किया कि वह और सहन नहीं करेगी। उसकी त्वचा पर जलने के निशान, उसके दिल में भरे स्नेह से कहीं अधिक थे। वह सूर्य को छोड़ने के बारे में सोचने लगी, किंतु जानती थी कि अगर उसने ऐसा किया तो सूर्य को दुख होगा। वह भी उससे बहुत प्रेम करता था। शीशे के सामने खड़ी संज्ञा को फिर एक युक्ति सूझी। वह ऐसी चाल थी जिससे न केवल वह स्वयं बच सकती थी अपितु उसके पति को भी परेशानी नहीं होती। संज्ञा ने एक स्त्री को प्रकट किया जो हू-ब-हू उसी की प्रतिकृति थी। चूँकि वह स्त्री, संज्ञा की प्रतिच्छाया थी इसलिए संज्ञा ने उसका नाम छाया रख दिया।

‘मैं सूर्य की चमक को और सहन नहीं कर सकती,’ संज्ञा ने छाया को विश्वास में लेकर कहा। ‘मैं उसे दिल से प्रेम करती हूँ किंतु मेरा शरीर अब उसके निकट जाने से घबराता है। मैं अपने पिता के घर जा रही हूँ।’

‘परिवार की देखभाल करना तुम्हारा कर्तव्य है। उसका क्या होगा?’ छाया ने पूछा।

‘पहले मुझे अपनी देखभाल करनी है। मैं अब अपने पति से पहले-सा प्रेम नहीं करती परंतु वह मुझसे उतना ही प्रेम करता है इसलिए मैंने तुम्हें बनाया है। तुम मेरी जगह ले लो। मेरे पति और बच्चों का ध्यान रखना और अपनी पहचान कभी किसी को मत बताना।’

‘मैं नहीं बताऊँगी,’ छाया ने संज्ञा को आश्वासन दिया। ‘किंतु यदि कोई मेरे बाल खींचेगा तो मैं सच बोल दूँगी।’

संज्ञा ने अपने पिता विश्वकर्मा के घर पहुँचकर उन्हें सारी बात बता दी। उसके पिता ने उसे लौट जाने का कई बार आग्रह किया किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। चूँकि संज्ञा अपने पति को बताए बिना आ गई थी, इसलिए विश्वकर्मा उसे अपने घर में आश्रय देने पर सहमत नहीं हुए। संज्ञा, निकट के एक राज्य उत्तरकुरु में पहुँची और वहाँ घोड़ी का रूप धारण करके रहने लगी। उधर, संज्ञा की युक्ति से अनजान, सूर्यदेव ने छाया को अपनी पत्नी समझकर उससे तीन संतानों को जन्म दिया। उनमें ताप्ती नाम की पुत्री और सावर्णी एवं शनि नामक दो पुत्र थे। संयोग से, खून का संबंध अधिक गाढ़ा सिद्ध हुआ और छाया का संज्ञा के बच्चों के लिए प्रति स्नेह कम होने लगा। वह संज्ञा के बच्चों की उपेक्षा करके अपने बच्चों से अधिक प्रेम करने लगी। वैवस्वत सरल-सीधा था इसलिए उसने विरोध नहीं किया किंतु शेष दोनों भाई-बहनों ने इस भेदभाव को स्वीकार नहीं किया। यमुना का ताप्ती के साथ भयानक झगड़ा हुआ और उसने ताप्ती को शाप दे डाला।

‘तुम पृथ्वी पर बहने वाली एक नदी में बदल जाओ!’

‘तुम्हारे साथ भी ऐसा ही हो!’ ताप्ती ने पलटकर कहा।

उन्होंने जैसे ही शाप दिया, दोनों युवतियाँ जल-धाराओं में बदल गईं। यमुना, उत्तर दिशा में और ताप्ती, पश्चिम की ओर बहने लगी। यह देखकर छाया, यम पर क्रोधित हो गई। किंतु यम को लंबे समय से छाया पर संदेह था। उसके भीतर हर दिन यह विचार जड़ पकड़ता जा रहा था कि यह स्त्री उनकी माँ नहीं अपितु दृष्टि-भ्रम है। छाया के व्यवहार से नाराज यम ने उसे लात मारने की धमकी दी। यह सुनकर छाया के होंठ रोष से काँप उठे और उसने यम को शाप दे दिया।

‘तुम्हारी इतनी हिम्मत कि तुम मुझे लात मारो? मैं शाप देती हूँ कि तुम्हारे पाँव सड़ कर गिर जाएँ!’

यम को अब विश्वास हो गया कि वह स्त्री असल संज्ञा नहीं थी। उसने तुरंत अपने मन का संदेह अपने पिता के साथ साझा किया।

‘मैंने केवल अपना पैर उठाया था और उसने मुझे शाप दे दिया। कौन-सी माँ अपने ही पुत्र के शरीर को इस तरह विरूपित करेगी?’

इस प्रश्न ने सूर्य को दुविधा में डाल दिया। उस रात, सूर्यदेव ने छाया से बात की। छाया पहले से ही अपना बचाव करने के लिए तैयार थी।

‘मुझे बहुत बुरा लग रहा है कि क्रोध मुझ पर हावी हो गया और मैंने यम को शाप दे दिया। मैं उसे वापस नहीं ले सकती किंतु उसके प्रभाव को कम कर सकती हूँ। यम के पैरों को क्षति

तो नहीं पहुँचेगी किंतु उसके माँस के टुकड़े पृथ्वी पर गिरेंगे और उन्हें कीड़े खा जाएँगे। अब से, मैं अपनी जिह्वा पर नियंत्रण रखूँगी।'

यह भूलकर कि वह सूर्य के सामने खड़ी थी, छाया बोलती गई। उसे ध्यान नहीं रहा कि कोई भी सूर्य को अँधेरे में नहीं रख सकता। सूर्य ने पूछताछ शुरू की तो छाया हड़बड़ा गई। उसने नए झूठ गढ़े और वह अनजाने में अपने ही कही बातों का विरोध करने लगी। सूर्य को जल्द ही छाया की कहानी में छिद्र मिलने लगे। वह अपनी झूठी कहानी पर कायम रही किंतु सूर्य ने उसके सारे झूठ पकड़ लिए। फिर जैसे ही सूर्य ने छाया को बालों से पकड़ा तो उसने हार मान ली।

'संज्ञा नहीं... छाया...'

'तुम मेरे बच्चों के प्रति इतने निष्ठुर कैसे हो गईं?' सूर्य ने पूछा।

'मुझे अपने बच्चों की चिंता होती थी कि कहीं वे भी मेरी तरह परछाई बनकर न रह जाएँ।'

दोनों स्त्रियों द्वारा धोखा दिए जाने से क्रुद्ध सूर्य, तुरंत विश्वकर्मा के घर पहुँचे। श्वसुर ने सूर्य से क्षमा माँगी और उन्हें समझाने का प्रयास किया।

'मैं यह नहीं कहता कि संज्ञा ने बुद्धिमानी का काम किया, किंतु आप भी दोषी हैं। आपका ताप उसके लिए असहनीय हो गया था। क्या आपने कभी सोचा कि आपके स्पर्श से वह कितनी डरी हुई थी?'

सूर्य ने जल के पात्र में स्वयं को देखा तो उन्हें समझ में आया कि इतने वर्षों तक वे संज्ञा को नहीं अपितु केवल स्वयं को ही प्रसन्न कर रहे थे। उनके प्रकाश की चकाचौंध ने संज्ञा को जैसे अंधा कर दिया था और ताप से उसके शरीर पर फफोले पड़ गए थे। फिर भी उनका इस ओर ध्यान नहीं गया। यह देखकर सूर्य का चेहरा काला पड़ गया मानो उसे किसी बादल ने ढक लिया हो।

'संज्ञा को वापस लाना होगा। अब मुझे क्या करना चाहिए?'

'हम प्रयास कर सकते हैं। सारा दोष अत्यधिक ऊर्जा का है जो आपके भीतर से निकलती है। मैं अपने औजारों से उसे काटकर थोड़ा कम कर देता हूँ। तब संज्ञा आपको देख पाएगी और मिल भी सकेगी।'

यह युक्ति काम कर गई। सूर्य के पास अब अपनी मूल आभा का केवल सोलहवाँ भाग बचा था। वह उत्तर कुरु राज्य पहुँच गए। वहाँ उन्होंने घोड़ी के रूप में संज्ञा को पहचान लिया। उसे देखते ही सूर्यदेव अश्व में बदल गए। संज्ञा ने जैसे ही अपने पति को पहचाना, वह डर के मारे इधर-उधर भागने लगी। फिर वह रुक गई।

सूर्य में परिवर्तन आ गया था।

सूर्य की अग्नि अब उसे जला नहीं रही थी। उनमें अब कोमल-सी चमक थी जो संज्ञा के

चेहरे को सहला और आँखों को चूम रही थी। एक मंद-सी आभा, जो संज्ञा के कटि-प्रदेश में गरमाहट उत्पन्न कर रही थी। सूर्य की लपटों में अब भी तेज था किंतु वे मधुर प्रतीत होती थीं। आमंत्रण से भरी। मनमोहक!

संज्ञा ने सूर्यदेव को कसकर पकड़ लिया। वह जानती थी कि वह फिर कभी उनसे अलग नहीं होगी।

दोनों ने पशु-रूप में ही एक-दूसरे का रसास्वादन किया। उनके जुड़वाँ बच्चे हुए। चूँकि उस समय सूर्य और संज्ञा का युगल अश्व-रूप में था इसलिए उनके जुड़वाँ बच्चे हुए तो उन्हें अश्विनीकुमार कहा गया। वे देवताओं के चिकित्सक बने। इसके बाद, सूर्य और संज्ञा अपने मूल रूप में लौट आए। फिर संज्ञा को कभी दूसरी छाया की आवश्यकता नहीं पड़ी।

15

ध्रुव बना तारा



मनु और शतरूपा के ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत का झुकाव राजनीति से अधिक धर्मपरायणता की ओर था। परिणामस्वरूप, उनके छोटे पुत्र उत्तानपाद को पृथ्वी के राजा के तौर पर अभिषिक्त कर दिया गया। उत्तानपाद की दो पत्नियाँ थीं, सुरुचि और सुनीति। दोनों में सुरुचि अधिक सुंदर थी, और राजा उत्तानपाद उससे अधिक प्रेम करते थे। सुरुचि ने जब देखा कि उसका पलड़ा भारी था तो उसने सुनीति को महल से बाहर करके निर्वासित जीवन व्यतीत करने पर विवश कर दिया। हालाँकि राजा इस बात को जानते थे, किंतु वे सुरुचि पर इतना मुग्ध थे कि उसका विरोध नहीं कर पाए। जल्द ही, दोनों रानियों ने एक-एक पुत्र को जन्म दिया। सुरुचि के पुत्र का नाम उत्तम तथा सुनीति के पुत्र का नाम ध्रुव रखा गया।

ध्रुव यानी जो अडिग हो।

पत्नियों के प्रति उत्तानपाद के असमान स्नेह का प्रभाव पुत्रों के साथ उनके संबंधों पर भी पड़ने लगा। वे ध्रुव की तुलना में उत्तम की अधिक देखभाल करते थे और समय आने पर उन्होंने उत्तम को युवराज घोषित कर दिया। ध्रुव अभी पाँच साल का ही था। एक दिन उसने राजदरबार में प्रवेश किया तो देखा कि राजा उत्तानपाद सिंहासन पर बैठे थे और उत्तम उनकी गोद में बैठा था। ध्रुव ने बहुत समय से पिता का प्रेम अनुभव नहीं किया था। उस प्रेम को फिर से अनुभव करने की लालसा में ध्रुव सोने की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा कि तभी सुरुचि की आवाज़ सुनकर वह रुक गया।

‘बालक! तुम कहाँ जा रहे हो?’

‘पिता की गोद में बैठने।’

‘उनकी गोद में या उनके सिंहासन पर?’

सुनीति नीचे झुकी और उसने ध्रुव के सामने फुफकारते हुए कहा, 'तुम्हारी नजरें सिंहासन पर टिकी हैं। तुम राजा बनना चाहते हो। भूलोक के सम्राट! भूल जाओ, बालक। सर्वोच्च स्थान, हर किसी के लिए नहीं होता। उसे पाने के लिए उसके योग्य बनना पड़ता है। जो तुम प्राप्त नहीं कर सकते, उसकी आकांक्षा मत करो।'

ध्रुव ने उत्तानपाद की ओर देखा किंतु उसके पिता चुप रहे। पीड़ा और अपमान से आहत ध्रुव भागा और उसने अपनी माँ की गोद में मुँह छिपा लिया। उसने सुबकते हुए अपनी माँ को पूरी घटना सुनाई। सुनीति की आँख की कोर से आँसू की बूँद बह गई। सुनीति ने बहुत पहले ही जान लिया था कि उसके आँसुओं का कोई मूल्य नहीं था। अब पुत्र को भी यही सिखाने का समय आ गया था। सुनीति ने आँसू पोंछते हुए ध्रुव को चूमा।

'शोक मत करो, पुत्र। हम केवल भाग्य को स्वीकार कर सकते हैं। तुमने मेरे गर्भ से जन्म लिया है इसलिए तुम मेरे दुख से बँध चुके हो।'

'किंतु हमारे दुख का कारण क्या है, माँ?'

'मैं इसका उत्तर नहीं दे सकती। सब भगवान विष्णु की इच्छा से होता है। संभव है कि भगवान, सुरुचि और उत्तम से प्रसन्न हैं इसीलिए उन्हें हमसे श्रेष्ठ जीवन प्राप्त हुआ है।'

ध्रुव ने रोना बंद कर दिया। उसने रानी को देखा तो उसकी आँखों में चमक आ गई। 'भगवान विष्णु जिनसे प्रसन्न होते हैं, उन्हें आशीर्वाद देते हैं?'

'हाँ, बिलकुल। इसलिए अपने भाई से शिकायत मत करो। ईश्वर को प्रसन्न करने का प्रयास करो तो तुम्हें भी अगले जन्म में उनकी कृपा प्राप्त हो सकती है।'

बालक की आँखों में आई चमक और तेज हो गई। ऐसा लग रहा था जैसे ध्रुव की माँ के शब्द उसे सहारा देकर आगे को खींचकर, एक ऐसे मार्ग पर चलने को कह रहे थे जो ध्रुव के सामने खुल चुका था। ध्रुव ने सिर हिलाकर हामी भरी।

'अगला जन्म नहीं! मैं इसी जीवन में भगवान विष्णु को प्रसन्न करूँगा ताकि वे मेरी इच्छा पूरी करें।'

सुनीति की साँस थमने लगी। उसका पाँच साल का पुत्र भगवान को प्रसन्न करने की अनर्गल बात कर रहा था। क्या चल रहा था उसके मन में?

'तुम्हारी इच्छा? तुम्हें क्या चाहिए? पिता का सिंहासन? सुरुचि को दंड?'

'नहीं माँ,' ध्रुव ने सुनीति को आश्वासन दिया। 'उत्तम, चाहे तो राजसिंहासन अपने पास रख सकता है। यदि मैं भगवान विष्णु को प्रसन्न कर सकता हूँ तो मैं ऐसी वस्तु की क्यों माँग करूँ जो तुच्छ है? क्षणभंगुर है? मैं उनसे कोई स्थायी वस्तु प्रदान करने को कहूँगा। ऐसा वरदान, जिसके समान कोई दूसरा वरदान न हो। ऐसा वरदान, जो हर किसी के लिए दुष्कर हो। आपके जीवन में सदा खालीपन रहा है। मैं ऐसा सम्मान पाने का प्रयास करूँगा जो

आपको गर्व से भर दे।'

रानी सुनीति को अपने नन्हे बालक के मुख से निकले शब्दों पर विश्वास नहीं हो रहा था। उसकी दुविधा अब डर में बदल गई। अपने बालक को खोने का डर। यह डर कि उसका उत्साह उसे कहाँ ले जाएगा। सुनीति ने ध्रुव को रोकने की बहुत कोशिश की किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। ध्रुव अडिग था। वह अपनी माँ से विष्णु को प्रसन्न करने के तरीके पूछने लगा। जब सुनीति उसे कोई जवाब नहीं दे पाई तो वह माँ से आशीर्वाद लेकर चला गया। वन में पहुँचकर ध्रुव को सप्त ऋषि मिले तो उसने उनसे भी वही प्रश्न किया। ध्रुव की माँ की तरह, ऋषियों ने ध्रुव को रोकने का प्रयास किया किंतु वे भी असफल रहे। इतनी कम उम्र में किसी आयु में संकल्प का ऐसा स्तर देखकर उन्हें आश्चर्य हो रहा था। उन्होंने आखिर समवेत स्वर में ध्रुव को यह बता दिया कि विष्णु को प्रसन्न करने का सबसे अच्छा तरीका तपस्या थी। कठोर तपस्या।

'तुम शेष वस्तुओं को देखना छोड़कर ही ईश्वर को देख सकते हो। क्या तुम यह कर पाओगे, बालक?'

ध्रुव मुस्कुरा दिया। उसने एक स्थान चुना और ध्यान में बैठा गया। लंबा और कठिन ध्यान। दिन बीते किंतु कुछ नहीं हुआ। उसका शरीर थकने और मनोबल गिरने लगा। उसकी आँखों के सामने सुनीति का चेहरा घूम रहा था। किंतु प्रकृति को पता था कि ध्रुव की खोज कितनी महान थी, उसकी आत्मा कितनी तेजोमय थी। तभी बालक ने कदमों की आहट सुनी। उसने पीछे मुड़कर देखा तो भगवा वस्त्र पहने एक ऋषि वीणा लिए खड़ा था। जैसे ही ध्रुव प्रणाम करने के लिए उठा, ऋषि ने बालक का मस्तक छू लिया।

'मुझे तुम्हारे बारे में पता है, पुत्र। तुम उन्हें प्रसन्न करना चाहते हो जिनकी उपस्थिति से सारा ब्रह्मांड प्रसन्न हो जाता है। परंतु ग्रीष्म की ऊष्मा तेज हो गई है और शरद् काल में ठंड भी बहुत होगी। तुम यहाँ की ऋतुओं का सामना कैसे करोगे?'

'मेरे साथ मेरी माँ का आशीर्वाद है।'

'परंतु यह वन, हिंस्र पशुओं से भरा है और तुम उनके लिए कोमल निवाला हो। अपनी रक्षा कैसे करोगे?'

'यदि आपका आशीर्वाद मिल जाए तो मेरी रक्षा भी हो जाएगी।'

ऋषि हँस पड़े। 'मैं देख रहा हूँ कि तुम अपने नाम की तरह अडिग हो। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है किंतु यदि तुम सही मंत्र का उच्चारण करोगे तो जल्द ही नारायण को प्रसन्न कर पाओगे।'

'सही मंत्र?'

'बारह अक्षरों वाला मंत्र।'

अपनी आँखें बंद करके ऋषि ने ध्रुव को अपने पीछे मंत्र दोहराने को कहा। उनकी सुरीली आवाज़ के प्रभाव से मंद वायु बहने लगी।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ऋषि जाने लगे तो बालक ध्रुव ने उनका नाम पूछा। ऋषि मुस्कुराकर बोले, 'मैं वो हूँ, जो सदैव भगवान की स्तुति गाता हूँ। संसार, मुझे नारद के नाम से जानता है।'

मंत्र के प्रभाव से ध्रुव को एक अजीब-सी ताजगी का अहसास हो रहा था। एक अनाम शक्ति उसकी कोशिकाओं में प्रवाहित होकर उसके रक्त को ऊर्जान्वित कर रही थी। वह आगे चला तो यमुना-तट पर स्थित मधुवन में पहुँच गया। उसने कदम्ब के पेड़ के नीचे एक पैर पर खड़े होकर मंत्रोच्चारण के साथ विष्णु का आह्वान करना आरंभ कर दिया। उसका उत्साह उसके भीतर से उठ रहा तथा उसके स्वरूप को स्पंदित कर रहा था। ध्रुव का हृदय और मस्तिष्क एक हो चुके थे और उसका रोम-रोम विष्णु के लिए प्रेम-गीत गा रहा था। समय बीतता गया। ध्रुव ने भोजन करना छोड़ दिया। और समय बीता तो उसने पानी का भी त्याग कर दिया। ध्रुव का अनुराग इतना तीव्र हो गया कि जल्द ही उसके प्रभाव से ब्रह्मांड और अन्य लोक काँपने लगे। जैसे ही ब्रह्मांड में कंपन हुआ, देवता एकत्रित होने लगे। उन्होंने ऐसी भक्ति कभी नहीं देखी थी। उन्हें संदेह हुआ कि वह बालक कोई कुटिल लक्ष्य प्राप्त करना चाहता था। उन्हें भय था कि उसकी सफलता उसे ब्रह्मांड का स्वामी बना देगी और वह देवराज इंद्र को पदच्युत कर देगा। देवताओं ने सर्वसम्मति से एक निर्णय लिया।

ध्रुव को रोकना आवश्यक था!

ध्रुव के मार्ग में हर संभव बाधा उत्पन्न करने का प्रयास किया गया। देवताओं ने भयानक चेहरों वाले राक्षसों को भेजा। दिन में बाघ दहाड़ते थे और रात में सियार गुर्राते थे। धूप ने ध्रुव के शरीर को झुलसा दिया और वर्षा ने उसकी त्वचा को छलनी कर दिया। यहाँ तक कि इंद्र ने ध्रुव को रोकने के लिए सुनीति का रूप भी धारण किया किंतु ध्रुव टस से मस नहीं हुआ। वह चट्टान बन गया था जिससे टकराकर लहरें केवल बिखर सकती थीं। उसके संतुलन के सामने हर शत्रु असफल हो गया। उसकी आंतरिक दृष्टि, परमात्मा में विलीन हो रही थी। बालक ध्रुव से डरे हुए देवता, विष्णु की शरण में पहुँचे तो विष्णु ने सहजता से उनका भय दूर कर दिया।

'ध्रुव को भौतिक वस्तुओं की लालसा नहीं है। यदि वह चाहे तो उसे कोई भी वस्तु प्राप्त हो सकती है। परंतु अब समय आ गया है कि मैं उसे वह वस्तु प्रदान करूँ, जिसका वह सचमुच अधिकारी है।'

सहसा, ध्यानस्थ बालक ध्रुव के चारों ओर सन्नाटा छा गया। पशु, राक्षस, हवा अथवा वर्षा की कोई आवाज़ नहीं आ रही थी। यमुना की लहरों का गीत भी सुनाई नहीं दे रहा था। केवल एक लौकिक स्वर उसका नाम पुकार रहा था।

'ध्रुव।'

बालक ने आँखें खोलकर सामने देखा। नीली त्वचा। पीले वस्त्र। सफेद शंख। गुलाबी कमल। ध्रुव की दृष्टि आँसुओं से धुंधली हो गई थी, फिर भी वह एकटक देख रहा था। उस दृश्य को देखकर ध्रुव तृप्त हो गया फिर भी उसकी देखने की ललक बढ़ती जा रही थी। उसके भीतर उत्साह का ऐसा संचार हो रहा था जिसे उसने पहले कभी महसूस नहीं किया था। और तभी, उसके मुख से बारह छंदों का एक रमणीय श्लोक निकला। उस छंद रचना को संसार ने ध्रुव-स्तुति का नाम दिया। स्तुति पूर्ण करने के बाद ध्रुव ने पूछा, 'प्रभु, क्या आप मुझसे प्रसन्न हैं?'

'हाँ।'

'क्या मैं आपके चरण स्पर्श कर सकता हूँ?'

'तुमने मेरे हृदय को स्पर्श कर लिया है। तुम्हें क्या चाहिए?'

ध्रुव कुछ बोल नहीं पा रहा था। विष्णु की छवि ने उसकी हर इच्छा को पूरा कर दिया था, उसके संपूर्ण जीवन को मान्यता दे दी थी। वह और कुछ नहीं सोच पाया। ध्रुव ने सिर हिला दिया। फिर भगवान ने उसे अपने शंख से स्पर्श किया।

'हे मनु के पौत्र! जो चाहो, माँग लो।'

ध्रुव फिर से मना करना चाहता था कि तभी उसे सुरुचि के शब्द याद आ गए।

सर्वोच्च स्थान हर किसी के लिए नहीं होता...

विष्णु मुस्कुराए।

'अपने राज्य वापस लौट जाओ। जब तुम्हारा नश्वर शरीर छोड़ने का समय आएगा, तो मैं तुम्हें वही स्थान प्रदान करूँगा।'

भगवान ने ऊपर की ओर संकेत किया।

'ब्रह्मांड का सर्वोच्च स्थान। समस्त सृष्टि से ऊपर। तुम वहाँ तारा बनकर प्रकाशित रहोगे। आकाश का सबसे दीप्तिमान तारा। तुम वहाँ उसी तरह अडिग रहोगे जैसे इस परीक्षा में अडिग रहे हो। मानव जाति, तुम्हें आस्था से देखेगी क्योंकि तुम अंधकार में उसका मार्गदर्शन करोगे। लोग तुम्हें आशीर्वाद देंगे और तुम्हें "ध्रुव तारा" कहकर पुकारेंगे।'

16
भरत ने हिरण को गोद लिया



राजा भरत, मनु के ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत के वंशज थे। वे एक आदर्श शासक बने। लोगों का कल्याण करना, उनका प्राथमिक कर्म और भगवान विष्णु की भक्ति उनका एकमात्र धर्म था। उनके कर्म इतने अच्छे थे कि वे शीघ्र ही आत्मा के हर दोष, हर बंधन से मुक्त हो गए। वे वृद्ध हुए तो उन्होंने राज्य, अपने पुत्रों को सौंप दिया, शरीर से राजसी वस्तुएँ उतार दीं और गंडकी नदी के किनारे स्थित पुलहाश्रम में रहने चल दिए। वहाँ उन्हें एकांत मिल गया जो ईश्वर के निकट ले जाने के लिए चाहिए था। भरत को किसी और वस्तु की इच्छा नहीं थी। जल्द ही वह आश्रम, भरत के पावन मंत्रों से गूँजने लगा।

ॐ नमो नारायणाय...

ॐ नमो नारायणाय...

एक सुबह जब भरत, सूर्य को अर्घ्य दे रहे थे तो एक गर्भवती हिरनी, गंडकी के विपरीत तट पर पहुँची। वह पानी पी रही थी कि तभी शेर की दहाड़ सुनाई पड़ी। हिरनी घबराकर जान बचाने के लिए नदी में कूदकर उसे पार करने लगी। परंतु भय और थकान उसके लिए घातक सिद्ध हुए और उसने बीच जलधारा में प्राण त्याग दिए। हिरनी का मृत शरीर जैसे ही नीचे ढुलका, उसके गर्भ से शावक बाहर आ गया। जलधारा में नन्हे शावक को छटपटाता देखकर भरत का हृदय द्रवित हो उठा। क्षण-भर पहले, सौम्य अंधकार में बंद शावक की आँखें सूर्य की तेज रोशनी से घबरा गईं। भरत, हिरण को अपने साथ आश्रम ले आए। उन्होंने उसकी गर्भनाल को काट दिया किंतु वे इस बात से अनजान थे कि उनके और शावक के बीच एक अदृश्य संबंध अंकुरित हो चुका था। दिन बीते और भरत का हिरण के साथ स्नेह बढ़ता गया। वे उसे नहलाते, अपने हाथों से खिलाते, कहानियाँ और गीत सुनाते। गंडकी नदी के पास बैठकर भरत को वह दिन याद आता जब शावक, उनके जीवन में आया था। वे सोचने लगे कि प्रेम की नदी उनके भीतर अब तक कहाँ छिपी थी जिसे वह

हिरण बाहर निकाल लाया था।

'असहाय जीवों की सहायता करना पुण्य का काम है। इस बेचारे का मेरे सिवा कोई नहीं है। मैं ही इसे पालूँगा,' भरत खुद से कहते।

समय के साथ भरत का प्रेम, जुनून में बदल गया। हिरण के प्रति मोह ने भरत को पूरी तरह घेर लिया और स्थिति यह हो गई कि अन्य सब वस्तुओं पर से भरत का ध्यान हट गया। विष्णु पर से भी! वह व्यक्ति जो समस्त बंधन तोड़कर पुलहाश्रम आया था, अब एक नए बंधन में बँध चुका था। हिरण की आवश्यकताओं को पूरा करना भरत का एकमात्र उद्देश्य बन गया। भरत को अच्छा लगता कि हिरण कैसे उन्हें अपने सींग चुभाता और पूजा की वस्तुओं के साथ खिलवाड़ करता था। फिर वह हिरण, आश्रम से बाहर भी विचरण करने लगा। उसके लौटने तक भरत व्याकुल रहते। इस डर से कि कहीं वह किसी वन्य पशु का शिकार न हो जाए, भरत का मन ध्यान में लगता ही नहीं था और वे बीच-बीच में आँखें खोलकर उसे देखने लगते थे। उन्हें चंद्रमा पर हिरण-सी आकृति के धब्बे दिखते तो उन्हें लगता कहीं चंद्रमा ने हिरण का अपहरण तो नहीं कर लिया! हर आवाज़ पर भरत, हिरण के कदमों की आहट सुनने को व्याकुल हो उठते थे। हिरण के लौटकर उनकी बाँहों में आ जाने तक भरत को सब व्यर्थ लगता था।

'तुम्हें इधर-उधर भटकने की क्या आवश्यकता है?' भरत हिरण को दुलारते हुए कहते। 'मैं तुम्हें अपने पुत्र की भांति याद करता रहता हूँ।'

फिर भरत के जीवन का अंत समय निकट आ गया किंतु वे हिरण को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। इस विचार से परेशान कि उनके बाद हिरण की देखभाल कौन करेगा, भरत अंत समय तक हिरण से चिपके रहे। उनका दुख इतना गहन था कि उन्होंने अगले जन्म में हिरण का रूप धारण किया!

हिरण के रूप में पैदा भरत जातिस्मर थे, यानी उस हिरण को अपना पूर्व जन्म याद था।

भरत को एहसास हुआ कि वे स्नेह और आसक्ति के बीच अंतर करने में विफल हो गए थे। अंत समय में उनकी आत्मा, माया-जाल में फँस गई थी। बाद में भरत की आत्मा को पछतावा हुआ तो उसने अपना हिरण का झुंड छोड़ दिया और पुन: पुलहाश्रम पहुँच गया और उसने अपना शेष जीवन फिर से मनुष्य रूप में जन्म लेने की लालसा में व्यतीत कर दिया। हिरण की प्रार्थना स्वीकार हुई और उसने फिर एक बार ब्राह्मण के रूप में जन्म लिया। वह पुन: जातिस्मर था।

भरत ने इस बार अपना नया जीवन सर्वोच्च ज्ञान की खोज और परब्रह्म में मिल जाने के लिए समर्पित कर दिया। वे अपने संसार में इतना डूब गए कि पुन: सबसे विलग हो गए। वे बहुत कम बोलते और हिलते थे। उन्हें सदैव विचारशील अवस्था में स्थिर रहना ही पसंद

था। इस जड़ता के कारण उन्हें एक विचित्र नाम मिला।

जड़भरत। वह भरत, जो अचल था।

अंत में भरत की आत्मा ने अनासक्त होकर मुक्ति प्राप्त कर ली।

17
भृगु का विष्णु को शाप



देवता और दैत्य, निरंतर युद्ध करते रहते थे। कभी देवताओं का उद्देश्य न्यायोचित होता था तो कभी दैत्यों का। कभी देवताओं का पलड़ा भारी होता, तो कभी असुर बाजी मार लेते थे। तथापि, युद्ध में देवताओं से अधिक, असुरों का रक्त बहता था। अपनी जाति की घटती संख्या से चिंतित दैत्य एक दिन अपने गुरु शुक्राचार्य के पास गए, जिन्हें असुराचार्य भी कहा जाता था।

गुरु शुक्राचार्य ने माना कि वास्तव में यह चिंता का कारण था। उन्होंने देवताओं की तुलना में दैत्यों और दानवों को अधिक विलाप करते सुना था। उन्होंने एक योजना बनाई।

'मैं महादेव की उपासना करके उनसे तुम्हें अमर करने वाले रहस्य को प्राप्त करूँगा। उस दिव्य ज्ञान की सहायता से फिर हम देवताओं को परास्त कर देंगे।'

'किंतु आपकी अनुपस्थिति में हम क्या करेंगे?' असुरों ने पूछा।

'कुछ नहीं।'

'कुछ नहीं?'

'हाँ। जब तक मैं लौटकर न आऊँ, किसी तरह भी युद्ध मत करना। अस्त्र-शस्त्र त्याग दो और देवताओं के साथ साथ शांति से मिलकर रहो।'

'वे इस युद्ध-विराम का कदापि सम्मान नहीं करेंगे। हम जैसे ही अस्त्र-शस्त्र का त्याग करेंगे, वे आक्रमण कर देंगे। तब हमारी रक्षा कौन करेगा?'

'मेरे पिता,' शुक्राचार्य ने उत्तर दिया। 'महर्षि भृगु। मेरे माता-पिता के पास चले जाओ। वे तुम्हें शरण देंगे।'

सारे असुर, भृगु के आश्रम की ओर चल पड़े। इस बीच उनके गुरु शुक्राचार्य ने भगवान शिव की तपस्या आरंभ कर दी। शिव प्रकट हुए तो शुक्राचार्य ने उनसे वरदान माँगा।

‘प्रभु, मुझे एक मंत्र चाहिए। ऐसा मन्त्र, जो मृत प्राणी को जीवित कर दे। तब असुरों को मरने का भय नहीं रहेगा अन्यथा देवता, असुर जाति को समाप्त कर देंगे।’

शिव ने उत्तर दिया, ‘मृत्यु की काट पाना सरल नहीं है। इसके लिए आपको एक हजार वर्ष तक तपस्या करनी पड़ेगी। इस दौरान, आपको केवल वायु पर जीवित रहना होगा। यदि आप सफल हुए तो मैं आपको वह अमृत प्रदान कर दूँगा।’

शुक्राचार्य ने तुरंत तपस्या आरंभ कर दी। उधर, असुर भृगु के पास पहुँचे तो महर्षि भृगु और उनकी पत्नी काव्यामाता ने असुरों के लिए अपने आश्रम के द्वार और हृदय दोनों खोल दिए। वे जानते थे कि उनके पुत्र ने असुरों को उनके पास क्यों भेजा था। भृगु और उनकी पत्नी ने असुरों को पूर्ण सुरक्षा का आश्वासन दिया। इस बीच जैसे ही देवताओं को यह पता लगा फैला कि शुक्राचार्य, अगले एक हजार वर्ष तक तपस्या में लीन रहेंगे, तो उन्होंने अवसर का लाभ उठाने का निर्णय लिया। असुरों के गुरु तपस्या में लीन थे और असुर भी निरस्त्र बैठे थे। देवताओं को पता था कि शुक्राचार्य के लौटते ही असुर, अमर हो जाएँगे।

कुछ भी करने के लिए यही समय उपयुक्त था।

विष्णु और इंद्र के नेतृत्व में देवताओं ने भृगु के आश्रम पर आक्रमण कर दिया। खूब रक्तपात हुआ और शवों के ढेर लग गए। देवताओं ने इतना संहार किया कि लगा जैसे उसी दिन असुर वंश समाप्त हो जाएगा। उस समय भृगु, आश्रम से बाहर थे तो शेष असुर, घबराकर काव्यामाता की शरण में दौड़े।

‘आप हमारे मार्ग की बाधा मत बनिए,’ इंद्र ने महर्षि की पत्नी को धमकाया। ‘हम आपको क्षति नहीं पहुँचाना चाहते। हम यहाँ केवल असुरों को मारने आए हैं।’

‘ये मेरे पुत्र के शिष्य हैं और इन्होंने मेरे आश्रम में शरण ली है,’ महर्षि की पत्नी ने कहा। ‘शुक्र के लौटने तक मैंने और मेरे पति ने असुरों को सुरक्षा का वचन दिया है। मैं उनके साथ विश्वासघात करके पाप की भागी नहीं बनूँगी।’

विष्णु ने हाथ जोड़कर कहा, ‘माता, मैं आपके वचन का सम्मान करता हूँ। परंतु दैत्य और दानव, लौकिक व्यवस्था के लिए बहुत बड़ा संकट हैं और शुक्राचार्य इन्हें अजेय बनाने का प्रयास कर रहे हैं। यदि ऐसा हो गया तो सर्वत्र अनाचार फैल जाएगा। अधर्म, ब्रह्मांड को संक्रमित कर देगा और इस जगत में जो कुछ अच्छा है, सब नष्ट हो जाएगा। जिस तरह गुरु शुक्राचार्य का असुरों के प्रति कुछ दायित्व है, उसी तरह नारायण के रूप में मेरा भी कुछ कर्तव्य है। शुक्राचार्य का धर्म, केवल असुरों के प्रति है, परंतु मेरा धर्म, ब्रह्मांड के प्रति, बृहत् उद्देश्य के प्रति है और उसका कुछ मूल्य तो चुकाना पड़ता है।’

‘कैसा मूल्य? जब महादेव स्वयं शुक्र के अनुरोध को पूरा करने के लिए तैयार हैं, तो आप उनका विरोध क्यों कर रहे हैं?’ काव्यामाता ने कहा।

‘महादेव, योगी हैं। वे तटस्थ हैं और ब्रह्मांड से विरक्त रहते हैं। उनके लिए देवता और असुर समान हैं किंतु मैं उनकी तरह अनासक्त नहीं रह सकता। मुझे अपना कार्य करना है और आपको भी वही करना चाहिए।’

परंतु काव्यामाता टस से मस न हुईं। देवता आगे बढ़े तो उन्हें क्रोध आ गया। उन्होंने दिव्य शक्ति से इंद्र के अंगों को स्तंभित कर दिया। देवराज को स्तंभित देखकर, देवता भयभीत हो गए; उनमें से बहुत-से वहाँ से भागने लगे। तब विष्णु ने देवराज इंद्र को अपने शरीर में प्रवेश करने को कहा किंतु काव्यामाता, मादा अजगर की तरह फुफकार उठीं।

‘सावधान! मैं तुम दोनों को भस्म कर दूँगी।’

‘इन्हें मार डालो,’ इंद्र ने चिल्लाकर कहा। ‘ये ब्रह्मांड के शुद्धिकरण में बाधा बन रही हैं। इनके रहते हम अपना लक्ष्य कभी पूरा नहीं कर सकते।’

विष्णु ने आँखें बंद कीं और अपना हाथ उठाया। अगले ही क्षण सुदर्शन चक्र प्रकट हो गया। वह चक्र, जो विष्णु के लिए पंख के समान हलका हुआ करता था, उस दिन उनके लिए भी भारी हो गया। विष्णु ने सोचा था कि चक्र को देखकर, भृगु की पत्नी डर जाएँगी किंतु काव्यामाता अपनी जगह से नहीं हिलीं। उनकी गर्दन सीधी और दृष्टि अपलक रही। वे वीरगति प्राप्त करने को तैयार थीं। विष्णु का चक्र चला और भगवान विष्णु ने असुरों के सामने एक स्त्री का सिर काट डाला। उनके हाथ माता के रक्त से लाल हो चुके थे। काव्यामाता का धड़, कुछ देर खड़ा रहा मानो वे अब भी विष्णु को चुनौती दे रही थीं और फिर वह नीचे गिर गया।

आश्रम में भयानक सन्नाटा पसर गया। सहसा भृगु की चीख सुनाई पड़ी।

‘काव्या!’

मृत शरीर की ओर लड़खड़ाते हुए पहुँचे ऋषि को समझ में आ गया कि वहाँ क्या हुआ था। असुरों के शव, चारों ओर बिखरे पड़े थे। सुदर्शन चक्र से भृगु की पत्नी के रक्त की गंध आ रही थी। भृगु, विष्णु की ओर मुड़े।

‘आपने यह क्या कर डाला?’

‘वही जो धर्म की रक्षा के लिए आवश्यक था! जिस तरह महादेव को ब्रह्मदेव का सिर काटना पड़ा, उसी तरह मैंने भी इनका सिर काट दिया। देवताओं को भी कई बार हत्या करनी पड़ती है ताकि ब्रह्मांड सुरक्षित रह सके।’

‘परंतु जो हत्या करते हैं, उन्हें प्रायश्चित भी करना पड़ता है, नारायण। महादेव को कपाल हाथ में लेकर भटकना पड़ा और अब आपको भी अपने किए का दंड भुगतना पड़ेगा। आपके कारण मुझे पीड़ा हुई है इसलिए मैं आपको शाप देता हूँ कि आपको भी मेरी तरह पीड़ा भोगनी पड़ेगी। आप भूलोक पर मनुष्य के रूप में अवतार लेकर जीवन-मृत्यु के चक्र से

गुजरेंगे और आपको भी वही पीड़ा भोगनी पड़ेगी जो आप अन्य नश्वर जीवों को देते हैं।'

विष्णु ने हाथ जोड़कर कहा, 'मुझे स्वीकार है।'

उधर, आश्रम से दूर शुक्राचार्य, ध्यान में लीन बैठे थे। सब बातों से अनजान। वर्षों की गिनती करते। एक हजार वर्ष की अवधि की प्रतीक्षा में। उस विद्या की प्रतीक्षा में, जिसे प्रदान करने का वचन शिव ने दिया था। उस विद्या का नाम कितना काव्यात्मक था!

मृतसंजीवनी।

18
शिव द्वारा यम का संहार



देवताओं के पास मनुष्यों के साथ खेलने के अनेक तरीके हैं। उनमें से एक यह भी है कि वे मनुष्य को किसी ऐसे मोड़ पर ले आते हैं जहाँ से दो मार्ग निकलते हैं और उनमें से एक को चुनना पड़ता है। बहुत कम ऐसा होता है जब दोनों मार्ग अच्छे होते हैं। प्राय: दोनों समान रूप से ही दुविधाप्रद होते हैं। उन पर लगभग बराबर मात्रा में स्वर्ग और नरक का दर्शन होता है। ऋषि मृकंद और उनकी पत्नी मरुद्वती, भी इसी तरह की दुविधा से घिरे थे। मृकंद, महर्षि भृगु के पुत्र थे और दोनों पति-पत्नी भगवान शिव को प्रसन्न करके उनसे संतान प्राप्त करने के लिए घोर तपस्या कर रहे थे। शिव उनके सामने वरदान देने के लिए प्रकट हो गए। परंतु शिव ने उनसे एक विकल्प चुनने को कहा।

'ध्यान से सुनिए। आपको या तो ऐसा पुत्र मिल सकता है जो दीर्घायु तो हो किंतु वह नासमझ होगा, अथवा ऐसा पुत्र, जो बुद्धिमान होगा किंतु वह केवल सोलह वर्ष तक जिएगा। आप दोनों में कौन-सा विकल्प चुनना पसंद करेंगे?'

मृकंद और मरुद्वती ने एक-दूसरे की आँखों में देखा। शिव ने फिर पूछा।

'आयु अथवा यश? क्या चाहिए?'

ऋषि ने शिव के सामने हाथ जोड़कर कहा।

'हम दोनों की एक ही इच्छा है, महादेव। दीर्घायु पुत्र की संभावना निस्संदेह मनमोहक है। उसकी उपस्थिति निश्चित रूप से वृद्धावस्था में हमें राहत देगी किंतु यदि वह नासमझ हुआ तो उसका अपना जीवन नरक बन जाएगा। यह विकल्प स्वार्थ से भरा है। इसके बजाय हम बुद्धिमान पुत्र चाहते हैं जिसकी मेधा, उसके भौतिक अस्तित्व से अधिक चिरस्थायी हो।'

कुछ समय बाद मरुद्वती ने एक बालक को जन्म दिया। उन्होंने अपने पुत्र का नाम मार्कण्डेय रखा। उसकी बुद्धि इतनी प्रखर थी कि उसने बचपन में ही शास्त्रों का ज्ञान

अर्जित कर लिया था। दूर-दूर से ऋषि-मुनि उससे शास्त्रार्थ करने आते और ज्ञान प्राप्त करके लौटते। किशोरावस्था में प्रवेश करने तक मार्कण्डेय को सभी वेदों और शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान हो चुका था। सारी धरती पर मार्कण्डेय की जय-जयकार होने लगी किंतु समय, अपनी गति से चल रहा था। जल्द ही मार्कण्डेय का सोलहवां जन्मदिवस आ गया। उसके प्रत्येक जन्मदिवस पर ऋषि मृकंद यज्ञ का आयोजन करते थे। परंतु उस दिन प्रात: बालक मार्कण्डेय उठा तो उस पर अजीब सी उदासी छाई हुई थी। उसे न मंत्रों की ध्वनि सुनाई दी और न ही प्रसाद की सुगंध आई। तिस पर उसने देखा कि उसके पिता अंतिम संस्कार के लिए एक चिता तैयार कर रहे थे।

'किसकी मृत्यु हो गई है?' उसने पूछा।

'अभी तक किसी की नहीं,' मृकंद मुस्कुराए। 'यह तुम्हारे लिए है।'

'मेरे लिए?'

'हाँ। महादेव ने हमें साथ में रहने के लिए केवल सोलह वर्ष दिए थे। आज वह अवधि समाप्त हो रही है।'

'आप शोक नहीं कर रहे?' उसने माँ से पूछा, जो उस समय कलश लेकर कुटिया से निकल रही थी।

'हमने यही विकल्प चुना था,' मरुद्वती ने मार्कण्डेय को स्नेहपूर्वक पकड़ लिया। 'और अगर महादेव हमसे पूछें तो हम हर बार यही विकल्प चुनेंगे। आज तुम्हारा भौतिक रूप से भले ही अंत हो जाएगा किंतु तुम्हारा यश सदा जीवित रहेगा। और उसी के साथ हमारा नाम सदा के लिए तुमसे जुड़ जाएगा। तुम नश्वर हो किंतु तुमने हमें अमर कर दिया।'

बालक मार्कण्डेय वहीं खड़ा अपनी चिता को देखता रहा। फिर वह बैठ गया और मिट्टी से शिवलिंग बनाने लगा।

'मैं महादेव से उसी तरह प्रार्थना करूँगा जैसे इतने वर्षों से करता आया हूँ। वह देवताओं में सबसे उदार हैं इसलिए वे निश्चय ही मेरे प्राण नहीं लेंगे।'

मृकंद ने कहा, 'किंतु उन्होंने ही तुम्हारी मृत्यु का समय तय किया है। वे उसे क्यों बदलेंगे?'

'वे बदल सकते हैं क्योंकि उन्हें पता है कि मुझे अभी बहुत ज्ञान प्राप्त करना है। बहुत सा प्रेम पाना है।'

बालक मार्कण्डेय ने आँखें बंद करके मंत्र जाप शुरू कर दिया। उसने शिव पर ध्यान केंद्रित किया। वह जितना उस नाम में गहरे उतर रहा था, उतना ही आनंद की ओर ऊपर चढ़ता जा रहा था। आनंद से उसकी प्रत्येक कोशिका भरने लगी, वह पाँचों इंद्रियों के पार चला गया। उसने सातों चक्रों को मिलाकर एक कर दिया। मार्कण्डेय का उत्साह इतना तीव्र

था कि उसका अस्तित्व भगवान शिव में घुलने लगा। उसका परमात्मा के साथ एकाकार हो रहा था। मार्कण्डेय के लिए, ब्रह्मांड के तीनों लोक, तीन शब्दों में समा गए।

ओम् नमः शिवाय

ओम् नमः शिवाय

ओम् नमः शिवाय

सहसा कुछ परछाइयाँ मार्कण्डेय को घेरने लगीं। यम के दूत, माँस के टुकड़े पर नजर गढ़ाए बैठे गिद्धों की भांति, वहाँ प्रकट हो चुके थे। उनमें से एक दूत जैसे ही मार्कण्डेय पर झपटा, वह नीचे गिर पड़ा मानो किसी अदृश्य शक्ति ने उसे खदेड़ दिया हो। उसने फिर कोशिश की, किंतु उसे फिर झटका लगा। फिर उन सबने मिलकर प्रयास किया किंतु एक-एक करके सारे प्रयास असफल होते गए। शिव के साथ हुए एकाकार ने मार्कण्डेय के चारों ओर एक सुरक्षा-कवच बना दिया था। उस कवच ने ऐसी विकराल बाधा उत्पन्न कर दी कि मृत्यु के दूत भी उसे भंग करने में असफल सिद्ध हुए। वे तत्काल यम को सूचित करने दौड़े।

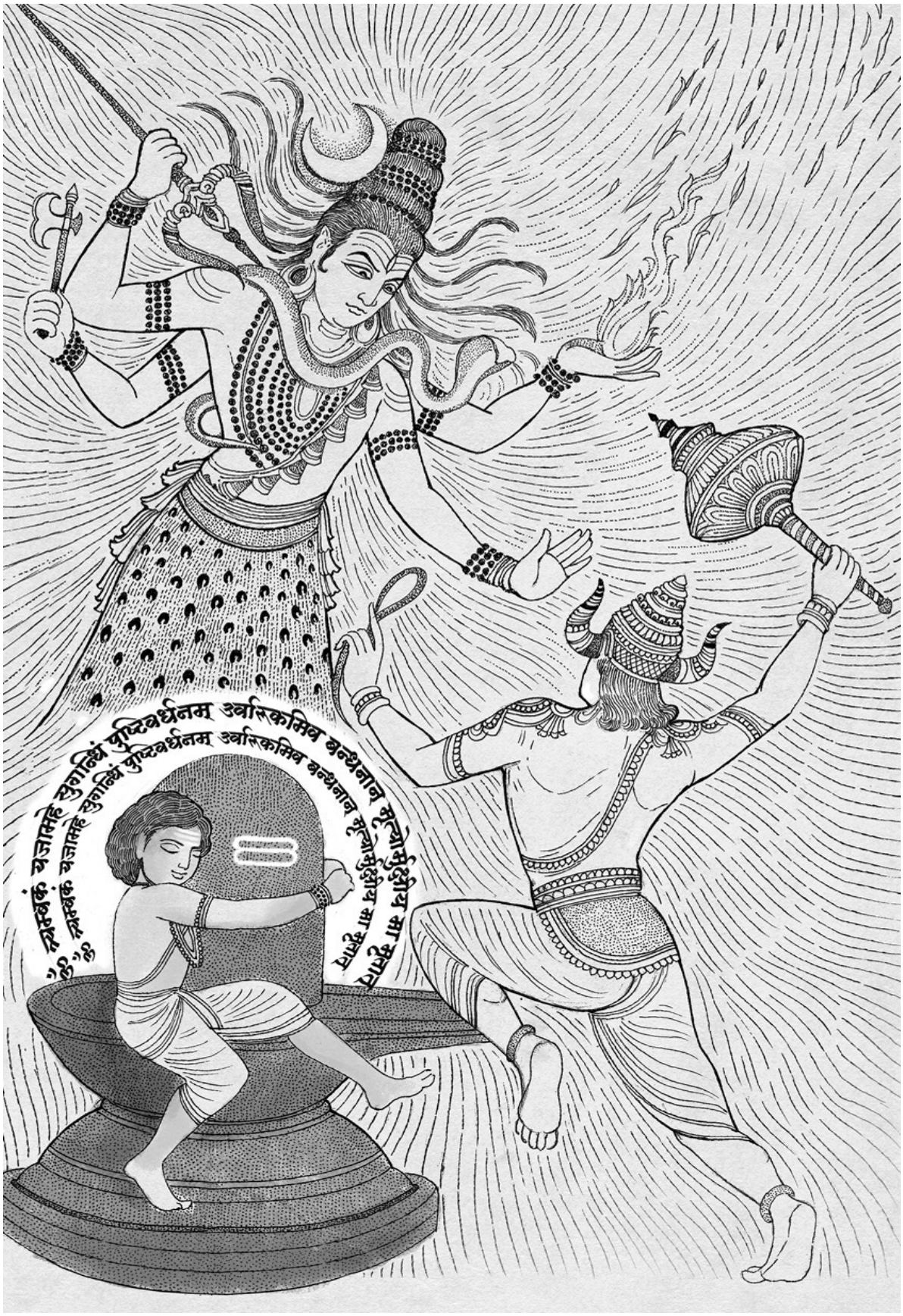
'लगता है मार्कण्डेय को लाने मुझे स्वयं जाना होगा,' यम ने धीरे-से कहा।

मार्कण्डेय का अचानक दम घुटने लगा। उसे लगा जैसे कोई रस्सी से उसका गला दबा रहा है। उसकी श्वास रुकने लगी। उसने आँखें खोलीं तो देखा कि मृत्यु के देवता साक्षात् उसके सामने खड़े थे। यम ने मार्कण्डेय के गले में फंदा डाल दिया और उसे शिवलिंग समेत घसीटकर ले जाने लगे। बालक ने फिर से शिव का जप करने का प्रयास किया किंतु रस्सी ने मार्कण्डेय को अजगर की तरह जकड़ लिया था। फंदा कसता जा रहा था। मार्कण्डेय की शक्ति शिथिल पड़ रही थी। शरीर थक चुका था। मार्कण्डेय हार मानने ही वाला था कि उसने अंतिम निवेदन के साथ शिवलिंग को पकड़ लिया।

महादेव, मैं आपकी इच्छा के आगे समर्पण करता हूँ..

सहसा यम रुक गए। हजारों डमरुओं की आवाज़ ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। वह गड़गड़ाहट यम के आगे हो रही थी। उनके पीछे, उनके ऊपर और नीचे भी गूँज रही थी। यम ने देखा कि शिव, उनके रास्ते में खड़े थे।

'बालक को छोड़ दो,' शिव ने आज्ञा दी।


ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मा मृतात्
ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मा मृतात्

मृत्यु के देवता ने शिव को प्रणाम किया। 'पृथ्वी पर मार्कण्डेय का जीवन-काल समाप्त हो गया है। आपने ही उसे सोलह वर्ष का समय दिया था और आज वह अवधि पूरी हो गई है।'

'मैं बालक मार्कण्डेय को जीवन देने यहाँ आया हूँ। मैं उसे अमर कर रहा हूँ।'

यम काँप उठे। 'अमर?'

'निस्संदेह।'

'किंतु आपने उसकी मृत्यु तय की थी। आप उसे जीवन कैसे दे सकते हैं?'

शिव निकट आ गए।

'मेरी ओर देखो। मैं भस्म लगाता हूँ किंतु रुद्राक्ष भी धारण करता हूँ। मैं जीवन के बीज और मृत्यु की धूल, दोनों से अलंकृत हूँ। इसी विरोधाभास में आपका उत्तर निहित है। जिस तरह मेरा शरीर दोनों तत्त्वों में सामंजस्य स्थापित करता है, उसी तरह मैंने मार्कण्डेय की मृत्यु तय की थी, और अब मैं ही उसे जीवन प्रदान कर रहा हूँ। मैं उसके लिए सारे नियम तोड़ रहा हूँ। पृथ्वी पर केवल कुछ ही लोग मार्कण्डेय की तरह ज्ञान से प्रकाशित हैं और उनकी चिरस्थायी उपस्थिति सभी को लाभान्वित करेगी।'

'अमरता प्रदान करना, लौकिक नियमों के मूल सिद्धांत के विरुद्ध है,' यम ने सिर हिलाते हुए कहा। 'आपने पहले भृगु के पुत्र, शुक्राचार्य को मृतसंजीवनी विद्या देने का वचन दिया और अब आप भृगु के पौत्र को अमरता प्रदान कर रहे हैं? मृत्यु का देवता होने के नाते, मैं किसी मनुष्य को अमर होने की अनुमति नहीं दे सकता। मेरी भी ब्रह्मांड में एक निर्धारित भूमिका है जिसे निभाना मेरा दायित्व है अन्यथा मुझे धर्मराज होने का अधिकार नहीं है। मेरे पिता सूर्यदेव, अपने पथ पर अडिग रहते हैं और मुझे भी वही करना चाहिए। आपसे प्रार्थना है कि मुझे मेरा धर्म निभाने दें। जो मेरा है, मुझे उसे ले जाने की अनुमति दें।'

यम ने जैसे ही कदम आगे बढ़ाया, डमरू और जोर से बजने लगे। उनकी गूँज तेज होती गई और वे यम के निकट आकर अदृश्य हाथों से उन्हीं का गला घोंटने लगे। यम तड़प रहे थे। उनकी श्वास रुकने लगी। डमरुओं की गूँज उनके भीतर धँस रही थी, उनके नाखून चुभ रहे थे। उन्होंने यम का गला घोंट दिया और उनकी श्वास-नली में छिद्र कर दिया। यम की आँखें बाहर निकल आईं। डमरू गरज रहे थे। यम हिंसक रूप धारण करने के लिए झुके तो डमरुओं ने यम की गर्दन मरोड़ दी। ब्रह्मांड की मानो साँस रुक गई।

स्वयं मृत्यु का अंत हो गया!

विनाश! देवतागण नीचे आने लगे। वे शिव को शांत कर रहे थे। यम को पुनर्जीवित करने के लिए विनती कर रहे थे। उन्होंने शिव को याद दिलाया कि यम की उपस्थिति ब्रह्मांड के लिए और पुनर्जन्म की लय को बनाए रखने के लिए महत्त्वपूर्ण है। देवताओं ने शिव से कहा कि वे अकेले कर्म के आधार पर न्याय कैसे कर सकेंगे। इस पर शिव ने देवताओं के समक्ष

एक साधारण से विनिमय का प्रस्ताव रखा।

'यम को उनका जीवन तभी वापस मिलेगा जब मार्कण्डेय को अमरता प्राप्त होगी।'

देवताओं ने आखिर शिव का प्रस्ताव मान लिया। यम ने जैसे ही आँखें खोलीं, सब शिव के समक्ष नतमस्तक हो गए।

'महादेव, आपने जो किया है वह इससे पहले किसी देवता ने नहीं किया। आपने न केवल काल का अंत किया, अपितु अपने भक्त को भी अमर कर दिया। इसलिए इस घटना की स्मृति में हम आपको 'कालांतक' नाम देते हैं। अर्थात वह, जिसने मृत्यु पर विजय प्राप्त की। वह, जिसने संसार को दिखाया कि सच्ची भक्ति में कितनी शक्ति होती है। मार्कण्डेय द्वारा आपका आह्वान करने के लिए उच्चारित किए गए शब्द, अब से "महामृत्युंजय मंत्र" कहलाएँगे, और जो भी इसका पाठ करेगा, उसे मृत्यु का भय नहीं रहेगा।'

भगवान शिव ने बालक मार्कण्डेय के चेहरे को स्नेह से सहलाया। 'तुम्हारे माता-पिता ने बुद्धिमत्ता से चुनाव किया था।'

'क्या हम मनुष्य वास्तव में कुछ चुन सकते हैं, भगवन्?' मार्कण्डेय ने पूछा। 'क्या यह चुनाव मेरे माता-पिता का था? क्या आपने पहले से ही उनके लिए यह चुनाव नहीं कर लिया था?'

डमरू हँस रहे थे। शिव मुस्कुरा दिए।

19
चंद्र ने खोया प्रकाश



ऋषि अत्रि की आँखों से निकलने वाले दीप्तिमान तरल पदार्थ से उत्पन्न हुए चंद्र देव, ब्रह्मांड का रात्रि-दीप बन गए थे। उनका विवाह दक्ष की सत्ताईस पुत्रियों के साथ हुआ। वे सभी नक्षत्र, चंद्र के चारों ओर झिलमिलाते हुए निशा-नभ को सुंदरता प्रदान करते थे। परंतु चंद्र की दृष्टि उन सत्ताईस में से केवल एक ही पर टिकी रहती थी।

लालिमा युक्त, रोहिणी।

रोहिणी के प्रति चंद्र का प्रेम इस सीमा तक बढ़ गया कि वे अपनी शेष पत्नियों की उपेक्षा करने लगे। जैसे-जैसे उनके प्रति चंद्र का प्रेम कम हुआ, वैसे-वैसे उनकी आभा फीकी पड़ने लगी। उनकी रोशनी अब अंधेरे को प्रकाशित और ब्रह्मांड को सुशोभित नहीं करती थी। वे सब नक्षत्र मिलकर अपने पति के प्रेम को फिर से जगाने की हरसंभव कोशिश करने लगीं। उन्होंने मधुर छंद गाए और चंद्र का मनपसंद भोजन पकाया। उत्तम वस्त्र पहने और उन्हें उतारने के लिए चंद्र को आमंत्रित किया। चंद्र को रिझाने के लिए उन्होंने अविश्वसनीय आकृति वाले समूह रचे। उन्होंने चंद्र के प्रेम को फिर से प्राप्त करने का हर संभव प्रयास किया किंतु कुछ काम नहीं आया। चंद्र ने प्रेम, सत्ताईस भागों में विभाजित न करके सारा रोहिणी को दे दिया। चंद्र की पत्नियों से जब उपेक्षा और सहन नहीं हुई तो उन सबने अपने पिता से चंद्र की शिकायत की। दक्ष ने अपने दामाद को समझाने का प्रयत्न किया किंतु चंद्र तो केवल रोहिणी पर मोहित थे।

'मैं अपना प्रकाश सभी को देता हूँ किंतु मुझे यह तय करने का अधिकार है कि मैं अपना प्रेम किसे दूँ।'

इस बात से क्रोधित होकर प्रजापति ने चंद्र को शाप दे दिया।

'तुम्हारी उपेक्षा ने मेरी पुत्रियों की आभा छीन ली है। तुम्हें चमकने का क्या अधिकार है? मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि तुम्हारा अपना प्रकाश और समस्त सौंदर्य चला जाएगा जिस पर

तुम्हें इतना अहंकार है। आँखों के अंधेपन की भांति, तुम्हारा तेज कम होता जाएगा। तुमने मेरी पुत्रियों का जीवन अंधकारमय कर दिया है इसलिए उसका छब्बीस गुना अंधकार अब तुम्हारा अस्तित्व मिटा देगा।'

चंद्रदेव हँसने लगे। उन्हें विश्वास था कि कोई उनकी आभा कम नहीं कर सकता। परंतु अगले ही क्षण उन्होंने देखा कि रोहिणी भयभीत दृष्टि से उन्हें ताक रही थी।

'आपकी चमक... वह लुप्त हो रही है।'

शाप का प्रभाव अभी आरंभ ही हुआ था। चंद्र की राजसी चमक दिनों-दिन कम होती गई। चांद की किरणें गायब हो रही थीं मानो कोई उन्हें चूस रहा था। किसी ने चंद्र के दीप्ति-ताप का बड़ा अंश लेकर उसे ठंडा और पीला करके छोड़ दिया था। अपने पति को बर्बाद होते देख नक्षत्र रूपी उनकी पत्नियाँ डर गईं। चंद्र, पृथ्वी पर पौधों के अधिष्ठाता थे। यदि वे मुरझा गए तो वनस्पतियाँ नष्ट हो जाएँगी। रात्रि अंधकार में डूब जाएगी और मनुष्य रास्ता भटक जाएँगे। उन्होंने चंद्र को ब्रह्मा से मिलने की सलाह दी। चंद्र ने ब्रह्मा से सुझाव माँगा तो सृष्टिकर्ता को केवल एक ही नाम याद आया।

'महादेव। आप उनसे प्रार्थना करें। वे ही आपका पुनरुद्धार कर सकते हैं।'

चंद्र ने पश्चिमी तट की ओर प्रस्थान किया। वहाँ, उन्होंने समुद्र के किनारे शिवलिंग का निर्माण किया और महामृत्युंजय मंत्र का जाप करने लगे। वे ऐसे निश्चल बैठे रहे मानो उन्हें भी किसी ने गढ़ा हो। लहरें आतीं और उनके शरीर से टकराती रहीं। खारा पानी, त्वचा पर शूल की तरह चुभता रहा। समुद्र ने उन्हें खींचने की कोशिश की किंतु चंद्र अपने स्थान पर डटे रहे। उनका माँस सड़ने लगा था किंतु आत्मा नहीं! फिर एक दिन चंद्र ने आँखें खोलीं तो रेत पर किसी के पैरों के निशान दिखाई दिए। भगवान शिव सामने खड़े थे।

'चंद्र, आपको क्या चाहिए?'

'मैं स्वयं को वापस पाना चाहता हूँ, भगवन्। मुझे अपना मूल स्वरूप वापस चाहिए। दक्ष के शाप से मेरा तेज नष्ट हो गया है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी महिमा मुझे लौटा दीजिए।'

'शाप को काटा नहीं जा सकता,' शिव ने सिर हिलाया। 'और प्रजापति का शाप तो बहुत शक्तिशाली है। समुद्र में फेंकी गई वस्तु की भांति, उनका शाप लौटकर आता रहेगा। मैं इस शाप को पूरी तरह समाप्त नहीं कर सकता किंतु इसे संशोधित अवश्य कर सकता हूँ। आपकी चमक प्रतिदिन कम होती जाएगी और आप अंततः दक्ष के शाप के प्रभाव से लुप्त हो जाएँगे। परंतु यह प्रभाव स्थायी नहीं होगा। आपको अगले ही दिन से अपना प्रकाश पुन: प्राप्त होने लगेगा। आप धीरे-धीरे फिर से दीप्तिमान हो जाएँगे किंतु आपको फिर क्षीण होना पड़ेगा। इस प्रकार, आपका तेज अनंत काल तक बढ़ता-घटता रहेगा। शुक्ल और कृष्ण। पूर्ण

और अर्द्ध। अब से यह आपके जीवन की सतत प्रक्रिया होगी।'

'जन्म और मृत्यु की तरह। निर्माण और विनाश की भांति।'

'हाँ। आप पूरी तरह अंधकार में डूब जाएँगे तो वह अमावस्या कहलाएगी, और जिस दिन आपका तेज पूर्ण रूप से लौट आएगा, उसे पूर्णिमा कहा जाएगा। इस प्रकार, आप शाश्वत प्रवाहमयी स्थिति में रहेंगे, जिससे भूलोक प्रभावित होगा क्योंकि आपके बढ़ने और घटने के साथ हर जगह समुद्री-ज्वार उठेंगे। मैं अब से आपको अपने मस्तक पर धारण करूँगा और मेरा एक नाम चंद्रशेखर भी होगा।'

चंद्र ने भगवान शिव को प्रणाम किया और पश्चिमी तट ने उसका अनुसरण किया। वह स्थान पूजनीय बन गया जो किसी को नया जीवन प्रदान कर सकता था। चूँकि चंद्र को सोम भी कहते हैं इसलिए शिव एवं उस तटीय तीर्थ को एक पवित्र नाम मिला।

सोमनाथ।

इसके बाद चंद्र ने सभी पत्नियों के लिए अपने हृदय के द्वार खोल दिए और सदा उनके प्रति निष्ठावान रहने का वचन भी दिया। दुर्भाग्य से, यह वचन सत्य नहीं हो पाया।

20
दधीचि और देवताओं का युद्ध



ऋषि दधीचि और राजा क्षुव के बीच अच्छी मित्रता थी। यद्यपि मैत्री में प्राय: ऐसा नहीं होता किंतु उनके बीच मैत्री-संबंध वर्षों तक बना रहा। फिर एक दिन दोनों में बहस हो गई कि दोनों में से किसका वर्ण श्रेष्ठ था। दधीचि ने ब्राह्मणों के पक्ष में तर्क दिया तो क्षुव ने क्षत्रियों की प्रशंसा की। वे दोनों अपने-अपने वर्ण के प्रति इतने अनुरक्त थे कि परिहास जल्द ही लड़ाई में बदल गया। स्पर्धा ने उनके बीच के प्रेम को मिटा दिया और क्षुव ने इंद्र से उनका सबसे घातक अस्त्र माँग लिया।

वज्र।

विश्वकर्मा द्वारा सूर्य से ली गई अतिरिक्त ऊर्जा से तैयार किया गया वज्र, इतना घातक था कि वह ब्रह्मांड की किसी भी वस्तु को नष्ट कर सकता था। क्षुव ने दधीचि पर अस्त्र चला दिया। वज्र ने तुरंत ही ऋषि के शरीर को चीर डाला। दधीचि की मृत्यु हो गई। राजा क्षुव इस बात से प्रसन्न होकर लौट आया कि क्षत्रिय ने ब्राह्मण को परास्त कर दिया था। उसे यह नहीं पता था कि एक और ब्राह्मण उस प्रयास को विफल करने वाला था; वह ब्राह्मण, जो पिछले एक हजार वर्ष से तपस्या कर रहा था; वह ब्राह्मण, जिसने सौ वज्र से भी अधिक घातक मंत्र प्राप्त कर लिया था।

शुक्राचार्य।

असुरों के गुरु शुक्राचार्य, भगवान शिव को प्रसन्न करके मृतसंजीवनी मंत्र लेकर लौटे थे। वह मंत्र, मृतकों को पुनर्जीवित कर सकता था। शुक्राचार्य को ज्यों ही दधीचि के बारे में पता लगा, वे तुरंत उस आश्रम पर पहुँचे जहाँ दधीचि का शव था। मृतसंजीवनी ने दधीचि के शरीर में फिर से प्राण फूँक दिए। तब दधीचि ने शुक्राचार्य से उनके इस चमत्कार के बारे में पूछा।

‘महादेव,’ शुक्राचार्य ने उत्तर दिया। ‘अगर आपकी भक्ति उन्हें छू जाए तो कुछ भी

असंभव नहीं है। उन्होंने जिस तरह मार्कण्डेय को अमरता का वरदान दिया था, उसी तरह मुझे भी आशीर्वाद दिया है कि मैं किसी भी मृतक को पुनर्जीवित कर सकता हूँ।'

ऋषि दधीचि अब तक अपमान से भरे थे। मृतसंजीवनी ने उनके शरीर को तो स्वस्थ कर दिया किंतु उनकी आत्मा आहत थी। वह न केवल क्षुव को पराजित करने के लिए व्याकुल थे अपितु अपने वर्ण के गौरव को पुनर्स्थापित करने के प्रति भी कृतसंकल्प थे। शुक्राचार्य के निर्देश पर, ऋषि दधीचि ने शिव को प्रसन्न करने के लिए घोर तपस्या आरंभ कर दी। भगवान शिव प्रकट हुए तो दधीचि ने उनसे तीन वरदान माँगे।

'मेरी अस्थियों को वज्र से अधिक शक्तिशाली बना दीजिए।'

'तथास्तु।'

'मुझे वरदान दीजिए कि कोई भी फिर से मेरी हत्या न कर पाए।'

'तथास्तु।'

'और यह वरदान दीजिए कि कोई मुझे फिर से अपमानित न कर पाए।'

'तथास्तु।'

इस प्रकार शिव से शक्ति अर्जित करके ऋषि दधीचि, राजा क्षुव के महल में घुसे और उन्होंने राजा को जोर से लात मारी। दधीचि को जीवित देखकर राजा दंग रह गया। क्षुव ने फिर से दधीचि पर वज्र का प्रयोग किया। परंतु इस बार वज्र, दधीचि से टकराकर वापस आ गया। क्षुव ने बार-बार दधीचि पर वज्र चलाया किंतु सफलता नहीं मिली। ऋषि अपने स्थान पर सकुशल खड़े रहे मानो वज्र भी अब उन्हें छूने से डर रहा था।

'ब्राह्मण की शक्ति को देखो,' दधीचि हँसे। 'स्वयं महादेव ने मुझे अजेय बना दिया है।'

यह सुनकर राजा क्षुव ने तुरंत विष्णु का आह्वान किया। वह विष्णु का अनन्य भक्त था तो उसे लगा कि केवल विष्णु ही ऋषि दधीचि का सामना कर सकते थे। परंतु विष्णु को जब यह पता चला कि शिव ने दधीचि को वरदान दिया था तो उन्होंने क्षुव को सावधानी बरतने की सलाह दी।

'तुम दधीचि को हरा नहीं सकते। रक्षा का अब एकमात्र तरीका युद्ध-विराम है।'

विष्णु ने फिर ऋषि दधीचि से कहा।

'इस युद्ध को समाप्त करने का समय आ गया है। ब्राह्मण और क्षत्रिय, दोनों ही संसार की व्यवस्था को कायम रखने के लिए समान रूप से आवश्यक हैं। दोनों में से कोई छोटा या बड़ा नहीं है। किसी एक को दूसरे से डरने की आवश्यकता नहीं है।'

'डर?' दधीचि ने हँसते हुए कहा। 'महादेव ने मुझे अजेय बनाया है। मैं अब किसी से नहीं डरता। आपसे भी नहीं!'

'मुझसे भी नहीं?'

‘आपसे भी नहीं।’

विष्णु ने आँखें तरेर लीं। वे समझ गए कि शिव से मिले वरदान ने ऋषि को अहंकारी बना दिया था। वे अपने वर्चस्व को स्थापित करने की धुन में इतने अंधे हो गए थे कि देवताओं तक को चुनौती दे बैठे। यदि उन्हें रोका न गया तो सृष्टि में अराजकता फैल जाएगी। विष्णु, शांति स्थापित करने गए थे किंतु उन्हें पता था कि युद्ध होना तय था। उन्होंने सुदर्शन का आह्वान किया और उसे ऋषि पर चला दिया। चक्र के आरे दधीचि के गले से टकराए किंतु उनकी त्वचा पर खरोंच तक नहीं आई। चक्र के आरे मुड़ गए और वह जमीन पर आ गिरा।

‘क्या यह वही चक्र है जिस पर आप इतना गर्व करते हैं?’ ऋषि ने ताना मारा। ‘यह शायद केवल स्त्रियों का सिर काट सकता है।’

विष्णु ने क्रोध में भरकर दधीचि पर गदा चलाई किंतु वह भी निष्प्रभावी सिद्ध हुई। भगवान विष्णु एक के बाद एक दिव्यास्त्रों का उपयोग करते रहे किंतु उनमें से कोई भी शिव के वरदान को काट नहीं सका। विष्णु की सहायता के लिए अनेक देवता प्रकट हो गए। उन्होंने ऋषि पर अपने अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया परंतु सब व्यर्थ सिद्ध हुआ। ऐसा लग रहा था मानो हर शस्त्र, दधीचि के पास जाने से डर रहा था। ऋषि मुस्कुराने लगे।

अब उनकी बारी थी।

उन्होंने मुट्ठी-भर कुश उठाई और उसे देवताओं पर छोड़ दिया। और लो! घास का प्रत्येक तिनका उग्र त्रिशूल में परिवर्तित हो गया जो देवताओं को नष्ट कर देना चाहता था। विष्णु को छोड़कर सब भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। विष्णु ने अपने अनेक प्रतिरूप बनाए परंतु दधीचि ने उन सबको नष्ट कर दिया। विष्णु के पास जब कोई विकल्प नहीं बचा तो उन्होंने सर्वोच्च लौकिक रूप यानी विश्वरूप दिखलाया। उसके भीतर पूरा ब्रह्मांड श्वास ले रहा था जिसमें असंख्य प्राणी थे। चेतन और अचेतन पदार्थ। सजीव और निर्जीव। अनंत आयामों में व्याप्त असीम संभावनाएँ। उस दृश्य को देखकर समूचा ब्रह्मांड नतमस्तक हो गया। परंतु ऋषि दधीचि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

‘माया। यह केवल भ्रम है। आपकी लीला मुझ पर हावी नहीं हो सकती, नारायण। आप चाहे जो करें, मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।’

अंत में, ब्रह्मा प्रकट हुए और उन्होंने क्षुव को दधीचि से क्षमा माँगने की सलाह दी। दधीचि मान तो गए किंतु उन्होंने देवताओं को शाप दे दिया।

‘आप सबको महादेव के क्रोध का सामना करना पड़ेगा। आप सबको...’

दधीचि चले गए किंतु उनके शब्द देवताओं को परेशान करते रहे।

आप सबको...

21
सती ने आत्महत्या की



दक्ष की सबसे छोटी पुत्री सती, बड़ी होकर बहुत आकर्षक हो गईं। वह आदिशक्ति का अवतार थीं और उन्होंने हर उस पुरुष से विवाह करने से मना कर दिया जिसके लिए सती के माता-पिता ने हामी भरी। प्रजापति ने अत्यंत सम्मानित परिवारों से बात चलाई परंतु सती के लगातार मना करने से प्रजापति बहुत नाराज हो गए। अंत में उन्होंने जब सती से पूछा कि वह किससे विवाह करना चाहती थीं तो सती ने वह नाम बता दिया जिसे वह बचपन से जप रही थीं।

'महादेव।'

दक्ष भड़क उठे। वह भूले नहीं थे कि शिव ने कैसे दक्ष के पिता ब्रह्मा का सिर काटा था, कैसे उन्होंने ब्रह्मा को पूजा के अयोग्य घोषित किया था और किस तरह उन्होंने दक्ष द्वारा चंद्र को दिए शाप को संशोधित कर दिया था। हाल में, शिव ने फिर प्रजापति को नाराज कर दिया था। दक्ष ने एक दिन ब्रह्मा की सभा में प्रवेश किया तो शिव को छोड़कर सभी देवता दक्ष के सम्मान में उठ खड़े हुए। तब दक्ष ने क्रोध में एक नियम बना दिया।

'यह शिव इतना असभ्य है कि देवताओं के साथ मिलने-जुलने के योग्य नहीं है। अब से इस अशिष्ट को कोई अपनी सभा में आमंत्रित नहीं करेगा।'

शिव के वाहन नंदी ने तुरंत उत्तर दिया, 'महादेव को सांसारिक अनुष्ठानों से कोई सरोकार नहीं है। उन्हें अपशब्द कहने वाला कोई पशु ही हो सकता है। प्रजापति, अपने शब्दों पर नियंत्रण रखिए अन्यथा आप स्वयं ही पशु के समान दिखने लगेंगे।'

किंतु सती को इन घटनाओं का आभास नहीं था। वह केवल इतना जानती थीं कि उनका अस्तित्व अंश मात्र था जिसे केवल शिव पूर्ण कर सकते थे। वनवास में रहकर सती ने भगवान शिव को प्राप्त करने के लिए घोर तपस्या शुरू की। महादेव के प्रति उनके भीतर से

इतनी ऊष्मा पैदा हुई कि कैलाश पर जमी बर्फ भी पिघलने लगी। सती के प्रेम से अभिभूत, शिव उन्हें पत्नी बनाने के लिए सहमत हो गए। यह सुनकर दक्ष को बहुत क्रोध आया तो ब्रह्मा ने हस्तक्षेप किया।

'सती का जन्म शिव के लिए हुआ था।'

'वह शिव पशु-चर्म पहने घूमता है। गांजा पीता है और शरीर पर राख मलता है। बैल की सवारी करता है और सर्प धारण करता है। एक राजकुमारी, ऐसे संन्यासी के साथ कैसे रह सकती है?'

'शिव, स्वतंत्र हैं। उन दोनों का मिलन प्रकृति का नियम है। आप उन्हें अलग नहीं कर सकते।'

'क्या आपको याद नहीं कि शिव ने कैसे आपको अपमानित किया था? वह भी एक नहीं अपितु दो बार?'

दक्ष ने बहुत तर्क-वितर्क किया किंतु ब्रह्मा ने घोषणा कर दी कि विवाह होकर रहेगा। प्रजापति ने अपने पिता की इच्छा के समक्ष समर्पण कर दिया। फिर हुआ यह कि जैसे ही नव-दम्पत्ति ने पवित्र अग्नि की परिक्रमा की, दक्ष के भीतर कुछ जलकर भस्म हो गया।

मैं उन्हें उनकी सही जगह दिखाऊँगा...

सती और शिव के दाँपत्य जीवन का आरंभ हुआ ही था कि उन्हें समाचार मिला कि प्रजापति, कनखल में एक भव्य यज्ञ का आयोजन करने वाले थे जिसमें सभी देवताओं को आमंत्रित और ऋषियों को सम्मानित किया गया था। उसमें सर्वश्रेष्ठ हवन सामग्री अर्पित होनी थी जिससे भारी यश अर्जित किया जाना था। सती हर्षित थीं। माता-पिता और बहनों से मिलने की आशा ने सती के मन को खुशी से भर दिया और वे जाने की तैयारी करने लगीं। दिन बीते किंतु उन्हें निमंत्रण नहीं मिला। सती को बुलाने न दक्ष पहुँचे और न ही सती की माँ। कोई पुजारी या दूत भी नहीं गया। धीरे-धीरे प्रसन्नता का स्थान भय ने ले लिया। सती न कहीं बाहर जातीं और न रात को सोती थीं। उन्हें डर था कि यज्ञ का निमंत्रण मिलने से रह न जाए। उनकी आँखों में उम्मीद तो थी किंतु दिल, बीतते समय के साथ डूबता जाता था।

इस बीच शिव ने उनसे कुछ नहीं कहा।

यज्ञ का दिन आ गया। सती ने देवताओं को कनखल की ओर जाते देखा। क्या वे ऊपर से गुजरते समय सती को ताना मार रहे थे? या दया दिखा रहे थे क्योंकि दक्ष ने सती का बहिष्कार कर दिया था?

'पिताजी ऐसा क्यों कर रहे हैं?' सती ने पति के सामने रोते हुए कहा। 'ऐसा कैसे हो गया कि उन्होंने अपनी ही पुत्री को नहीं बुलाया? उन्होंने प्रत्येक देवता को आमंत्रित किया किंतु

महादेव को नहीं?'

'प्रजापति के मन में मेरे लिए जो घृणा है, उसने तुम्हारे लिए उनके प्रेम को भी भस्म कर दिया है। वे अब तुम्हें अपनी पुत्री नहीं मानते। तुम केवल मेरी पत्नी हो।'

'पिता, अपनी संतान से कभी घृणा नहीं कर सकता। मुझे वहाँ जाकर उनसे बात करनी चाहिए।'

'हमारा वहाँ स्वागत नहीं होगा, सती। ऐसी सभाओं में अनामंत्रित व्यक्ति सदा अपमानित होता है। इसके अलावा, तुम्हारी उपस्थिति प्रजापति के मन में नकारात्मक भावनाओं को भड़का देगी जिससे उनका यज्ञ दूषित हो जाएगा और उनका अनुष्ठान व्यर्थ हो जाएगा। इसमें तुम्हारी भी हानि हो सकती है और वहाँ तुम्हारी रक्षा करने वाला कोई नहीं होगा।'

'मेरी हानि?' सती की आँखें आश्चर्य से फैल गईं। 'मेरे घर में मेरी क्या हानि हो सकती है? अपने परिवार की उपस्थिति में? मैं यह अन्याय नहीं होने दूँगी। आप कहते हैं कि मेरे पिता मुझसे घृणा करते हैं परंतु जब मैं उनके सामने जाऊँगी तो वह पुन: मुझसे प्रेम करने लगेंगे।'

शिव ने सती को बार-बार रोकने की कोशिश की किंतु सती ने हठ नहीं छोड़ा। अंत में, भगवान शिव ने नंदी को सती को कनखल ले जाने का आदेश दिया। सती यज्ञ में पहुँचीं तो चकित रह गईं। उनकी माँ प्रसूति ने सती को गले लगाया किंतु दक्ष की आँखों में तिरस्कार के अलावा कुछ नहीं था। यहाँ तक कि सती की बहनें भी बिन बुलाए आ जाने पर पर उन्हें तिरस्कार से देख रही थीं। उन्होंने जंगली पुष्प से सज्जित होकर आईं सती का मज़ाक भी उड़ाया। यज्ञ-स्थल को देखकर सती की पीड़ा और बढ़ गई। सभी देवता मौजूद थे किंतु शिव के लिए आसन तक नहीं रखा गया था। उनके लिए यज्ञ का भाग भी आरक्षित नहीं किया गया। उनके नाम के मंत्र का जाप नहीं हुआ था। यज्ञ में शिव का पूर्ण बहिष्कार कर दिया गया था और किसी ने इसका विरोध तक नहीं किया; ब्रह्मा और विष्णु ने भी नहीं। नंदी की आँखों से आँसू बहने लगे किंतु सती, अपने पिता से बहस करने लगीं।

'महादेव के बिना आपने यज्ञ का आयोजन कैसे कर लिया? मैं यहाँ देवताओं और राक्षसों को देख रही हूँ। यक्ष और गंधर्व भी हैं। यहाँ तक कि अच्छी और बुरी दोनों आत्माएँ भी। आपने अपने दामाद को क्यों नहीं बुलाया?'

'क्योंकि वह इनमें से किसी भी श्रेणी का नहीं है,' प्रजापति ने परिहास किया। 'वह न देव है, न राक्षस। न इंसान है, न पशु। वह प्राणियों में सबसे तुच्छ है। जीवों में सबसे अधम। क्या उसने तुम्हें निमंत्रण की भिक्षा माँगने भेजा है?'

'पिताजी! आप मेरे पति का अपमान कर रहे हैं।'

'हाँ। उस पति का, जिससे तुमने मेरी इच्छा के विरुद्ध विवाह किया। अपने चारों ओर देखो। मेरी सभ्यता, कैसे संस्कृति, संस्कार और रीति-रिवाज का उत्सव मना रही है। यहाँ

उस अराजकता पसंद शिव के लिए कोई जगह नहीं है। वह अधनंगा व्यसनी है जिसे हमारे द्वारा श्रमपूर्वक बनाई सृष्टि की परवाह नहीं है। तुम हमारे लिए उसी दिन मर गई थीं जिस दिन तुमने उससे विवाह किया था और मृतकों को आमंत्रित नहीं किया जाता।'

अविश्वास से मानो सती का चेहरा झुलस गया। उसने आहत स्वर में कहा, 'चंद्र ने जब आपकी पुत्रियों की उपेक्षा की थी तो आपने चंद्र की निंदा की थी और आज आप स्वयं अपनी पुत्री की निंदा कर रहे हैं? आज मेरे अपने मेरी उपेक्षा कर रहे हैं? महादेव सही कह रहे थे। मुझे इस यज्ञ में नहीं आना चाहिए था, जहाँ ब्रह्मा और विष्णु चुप बैठे हैं जबकि शिव को अपमानित किया जा रहा है। क्या आप भूल गये कि आप महादेव के साथ मिलकर ही त्रिमूर्ति कहलाते हैं? आप परमात्मा की इच्छा के प्रतिनिधि हैं? क्या प्रजापति का मेरे पति को अपशब्द कहना आपको अपशब्द कहने के बराबर नहीं है? अथवा इन आहुतियों के लिए आपकी क्षुधा ने आपका मुँह बंद कर दिया है?'

'तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई?' दक्ष ने हाथ उठाया मानो सती पर वार करना चाहता हो। 'तुम्हारे शिव के अलावा ये सब लोग निमंत्रण के योग्य हैं। ये दोनों अपना कार्य करते हैं। एक रचना करता है और दूसरा उसकी देख-रेख, किंतु तुम्हारे पति को कुछ भी स्वीकार नहीं है। उसने परमपिता ब्रह्मा को भस्म करना चाहा किंतु असुरों को आशीर्वाद में मृतसंजीवनी प्रदान कर दी। जब उसने खुद को हमसे अलग कर लिया तो मैं उसे अपने साथ क्यों सम्मिलित करूँ? उसके लिए मेरे पास घृणा के अतिरिक्त कुछ नहीं है।'

'आप उनसे घृणा नहीं करते,' सती ने गुर्राते हुए कहा। 'आप उनसे डरते हैं। आपको डर है कि आप उन्हें अपने वश में नहीं कर सकते इसलिए कि वह आपके द्वारा बनाई किसी वस्तु को नहीं मानते।'

'इसलिए कोई परित्यक्त व्यक्ति मेरे अनुष्ठान में भाग लेने योग्य नहीं है। उसे यहाँ की जूठन भी नहीं मिल सकती।'

'बहुत हुआ!'

सभा स्तब्ध रह गई। यह ऋषि दधीचि की आवाज़ थी। वह अपने आसन से उठ खड़े हुए।

'कोई यज्ञ जहाँ महादेव का अपमान हो, ब्रह्मांड के मस्तक पर कलंक के समान है। अब यहाँ बैठना पाप है और मैं इस पाप का भागी नहीं बनूँगा।'

दधीचि के जाते ही प्रसूति चिल्ला पड़ी। सबकी निगाहें दधीचि पर टिकी थीं किंतु किसी ने नहीं देखा था कि सती, यज्ञ-वेदी के किनारे पर खड़ी थीं।

'मैं ऋषि दधीचि की तरह वापस भी नहीं जा सकती,' सती ने कहा। उनका चेहरा आँसुओं से भीग गया। 'मैं अब इस सती रूप में महादेव के पास लौट नहीं सकती। यह शरीर अब एक अभिशाप है। प्रजापति की बेटी होना शाप है। आज मेरे कारण मेरे स्वामी का

अपमान हुआ है। यह इसलिए हुआ क्योंकि मैं दक्ष की पुत्री हूँ। मुझे इस पहचान को, अपने इस शरीर को नष्ट करना होगा। तभी मैं अपने पति से दोबारा मिल सकूँगी। और तभी आपको शिव का सही अर्थ समझ में आएगा। आपके यज्ञ में मेरे स्वामी के नाम का कोई भाग नहीं है इसलिए मैं स्वयं को इस वेदी में अर्पित करती हूँ। मुझे क्षमा करें, महादेव। मुझे क्षमा करें।'

दक्ष ने दाँत पीसते हुए कहा, 'शिव का नाम जपना बंद करो। तुम मेरी यज्ञ-वेदी को अपवित्र कर रही हो।'

'दुष्ट दक्ष!' सती ने गरज कर कहा। उनकी आँखें सूज गई थीं और आवाज़ तीखी थी। 'तुम भूल गए हो कि मैं आदिशक्ति हूँ। मैंने तुम्हारे और प्रसूति के घर में इसलिए जन्म लिया क्योंकि तुमने मेरा आह्वान किया था। मैंने तुम्हें उस समय सावधान किया था कि जिस दिन तुम मेरा अपमान करोगे, मैं तुम्हारा परित्याग कर दूँगी।'

यह कहकर सती यज्ञाग्नि में कूद गईं। सब लोग पीछे हट गए। उनका माँस जलना शुरू हुआ तो वहाँ भयंकर अपशकुन होने लगे। आसमान काला हो गया। गिद्ध झपट्टा मारने और गीदड़ हाहाकार करने लगे। वायु, क्रुद्ध आत्मा की भांति अग्नि-शिखाओं को बुझाने लगी। सती ने जैसे ही अंतिम श्वास ली, शिव के नेत्र खुल गए। पीड़ा और रोष से काँपते हुए शिव ने अपने सिर से केश की लट तोड़ी और नीचे पटक दी। जमीन से टकराते ही वीरभद्र नाम का तीन नेत्र और एक हजार भुजाओं वाला एक भयानक प्राणी प्रकट हुआ। उसने शिव को प्रणाम किया। महादेव ने उसे आज्ञा दी।

'दक्ष के यज्ञ को ध्वंस कर दो!'

यज्ञ-स्थल पर सब लोग भयभीत होकर भाग रहे थे। वीरभद्र ने अपनी त्वचा के छिद्रों से अनेक भयानक प्राणियों को उत्पन्न किया और वे सब यज्ञ को ध्वंस करने लगे। देवताओं को आहत और मनुष्यों को मारने लगे। उन्होंने आहुति पर मूत्र-विसर्जन कर दिया और चारों ओर रक्तपात किया। वे जगह-जगह आग लगाकर उसकी राख के साथ खेलने लगे। ब्रह्मांड में जो कुछ घातक हो सकता था, वह सब उस यज्ञ में हुआ। भृगु ने उनका सामना करने के लिए ऋभु नामक योद्धाओं को प्रकट किया किंतु उन्हें सफलता नहीं मिली। वीरभद्र की सेना गतिमान शिलाखंड की भांति अथक रूप से यज्ञ को नष्ट करने में लगी थी। कैलाश की बर्फ कनखल में उठ रही लपटों को दबा रही थी। दक्ष ने विष्णु से सुदर्शन चक्र का उपयोग करने की विनती की किंतु उन्होंने मना कर दिया।

'वीरभद्र स्वयं शिव की ऊर्जा का प्रतीक है। वह मेरे चक्र के समान ही शक्तिशाली है। यदि दोनों टकरा गए तो ब्रह्मांड नष्ट हो जाएगा।'

इससे पहले कि प्रजापति कुछ और कहते, वीरभद्र ने उन पर भी आक्रमण कर दिया।

उसने दक्ष के केश पकड़कर उसका सिर काट डाला और उसे आग में झोंक दिया। देवतागण समझ गए कि दधीचि का शाप सच हो गया था।

आप सबको महादेव के क्रोध का सामना करना पड़ेगा... आप सबको...

यज्ञ अपवित्र हो चुका था और यह अत्यंत अशुभ घटना थी। तीनों लोकों में इसके विनाशकारी परिणाम हो सकते थे। ब्रह्मा और विष्णु से परामर्श किया गया तो उनका एक ही मत था।

'महादेव को शांत करना होगा। वही दक्ष को पुनर्जीवित करके यज्ञ को पूर्ण करवा सकते हैं।'

सभी देवता मिलकर शिव के पास पहुँचे और उन्हें दंडवत प्रणाम किया। उन्होंने शिव से क्षमा माँगी और अपने साथ कनखल ले आए। चूँकि वीरभद्र ने दक्ष का सिर जलाकर नष्ट कर दिया था इसलिए शिव ने उनसे कोई विकल्प खोजने को कहा। अंत में, प्रजापति के शरीर पर एक मेढ़े का सिर लगाया गया जिससे नंदी का वचन भी सत्य सिद्ध हो गया। दक्ष ने शिव को पशु कहा था और अब वह स्वयं पशु के माध्यम से ही पुनर्जीवित हो पाया था। शिव ने भविष्यवाणी करते हुए कहा कि दक्ष अपने वास्तविक रूप में पृथ्वी पर पुनर्जन्म लेंगे। फिर यज्ञ संपन्न हुआ और उससे अर्जित पुण्य सभी को प्राप्त हुआ।

तभी अचानक ब्रह्मांड में कंपन होने लगा।

ब्रह्मांड ऐसे काँप रहा था मानो कोई निर्दयता से उसे पीट रहा हो। ब्रह्मांड के दोनों भाग टूटने के कगार पर आ गए। सभा के लोग दृश्य देखने के लिए बाहर निकले तो स्तब्ध रह गए। भगवान शिव, सती के जले हुए शव को कंधे पर लटकाए नृत्य कर रहे थे। उनकी आँखों में जैसे खून उतर आया था, चेहरा पीला पड़ गया था और शरीर के अंग छटपटा रहे थे। उनका पूरा शरीर फड़क रहा था और हिंसक मुद्रा में स्पंदित हो रहा था मानो सब कुछ नष्ट कर देना चाहता था।



रुद्र तांडव...

महादेव विलाप कर रहे थे। अपनी प्रियतमा की मृत्यु का शोक।

ब्रह्मांड को बचाने के उद्देश्य से सबकी दृष्टि विष्णु की ओर मुड़ी। विष्णु समझ गए कि सती के अवशेष ही शिव को पीड़ा दे रहे थे। महायोगी को माया की ज्वाला से झुलसा रहे थे। कपाली के ऊपर जैसे हजार खोपड़ियों का भार आ गया था। विष्णु ने अपना सुदर्शन चक्र छोड़ दिया। शिव जिस समय झूम रहे थे, तो चक्र ने सती के शव के इक्यावन टुकड़े कर दिए। एक-एक करके वे अंग पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों पर गिरे। उन स्थानों पर शक्तिपीठों की स्थापना हुई। शिव रुक गए थे। उनके शरीर से बोझ उतर गया था किंतु हृदय अब भी भारी था।

शिव चले गए। वे फिर अकेले रह गए थे।

22
विष्णु द्वारा हाथी की रक्षा



क्षीरसागर के मध्य त्रिकूट नाम का एक विशाल पर्वत था। समुद्र की लहरें पर्वत की तलहटी से टकरातीं और उसकी ऊँचाई को छूने की कामना करतीं। स्वर्ण, रजत और लौह से ढकी उसकी चोटियाँ, सूरज और चाँद के नीचे इस तरह चमकतीं कि घाटी सदा प्रकाशमान रहती थी। पर्वत के निकट ऋतुमाता नामक वन था जिसमें एक सुंदर तालाब था। कमल-पुष्पों ने उसकी सतह को ढक रखा था और उसका पानी अमृत के समान शुद्ध रहता था। ऋतुमाता के हाथी नियमित रूप से उस तालाब पर आते और पानी पीते तथा उसमें स्नान करते थे। हाथियों के झुंड का नेतृत्व करने वाला हाथी, विष्णु का अनन्य भक्त था।

उस गजराज का नाम गजेंद्र था।

एक दिन जब हाथी पानी में खेल रहे थे तो उन्होंने अपने राजा को जोर से चिंघाड़ते सुना। वह बहुत भयानक चिंघाड़ थी। उन्हें जब कारण पता लगा तो सब घबरा गए।

एक ग्राह यानी मगरमच्छ ने गजेन्द्र का पैर पकड़ लिया था।

ग्राह के दाँत, गजेन्द्र के शरीर में गढ़ रहे थे और वह पीड़ा से बुरी तरह कराह रहा था। वह अपने पैर को खींचने के लिए जोर लगाता किंतु इससे उसकी त्वचा छिल जाती और माँस फटता जा रहा था। मगरमच्छ के जबड़े कस रहे थे। खून बहता रहा जिससे तालाब गंदा हो गया। हाथियों का झुंड असहाय-सा उस दृश्य को देखता रहा। सब जानते थे कि मगरमच्छ, गजेन्द्र से अधिक शक्तिशाली था। उसके दाँत हाथी की शिराओं को भेदते हुए धीरे-धीरे उसकी हड्डी के निकट पहुँचने वाले थे। गजेंद्र के चारों ओर मौत का फंदा कस रहा था। उसने देखा कि शेष हाथी उसे छोड़कर जा रहे थे। उन्होंने गजेन्द्र को उसके हाल पर छोड़ दिया था। वह बिलकुल अकेला था। आँसुओं की धारा ने उसकी दृष्टि को स्पष्टता प्रदान की तो उसे समझ में आ गया कि उसका अंत अब निकट था। गजेन्द्र ने छटपटाना बंद कर दिया। उसे केवल एक काम करना था। उसने ऊपर देखा और विष्णु से प्रार्थना की।

‘मैं आपके सामने समर्पण करता हूँ, श्री हरि। मैं खुद को बचाने के लिए और कुछ नहीं कर सकता। यदि आप चाहते हैं कि मैं जीवित रहूँ तो मेरी रक्षा कीजिए और यदि मेरी मृत्यु का समय आ गया है तो मुझे मुक्ति प्रदान दीजिए। मैं आपकी इच्छा के सामने सिर झुकाता हूँ।’

गजेंद्र ने अपनी सूँड़ में सफेद कमल पकड़कर कहा, ‘आप पूरे ब्रह्मांड में व्याप्त हैं। मैं आपकी शरण में हूँ। आप सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी हैं। आप ही आदि और आप ही अंत हैं। मैं आपकी शरण में हूँ।’

सुबह से शाम हो गई। फिर अंधेरा हो गया। त्रिकूट पर अब कहीं प्रकाश नहीं था। सूरज भी दिखाई नहीं दे रहा था। तभी क्षितिज पर एक दिव्य रूप नज़र आया। नीला चेहरा। नीला तन। सुदर्शन चक्र थामे एक नीली अंगुली। हाथी ने भयभीत होकर चक्र को देखा। तभी चक्र नीचे उतरा और उसने मगरमच्छ का सिर काट दिया। विष्णु मुस्कुरा रहे थे।

‘इंद्रद्युम्न, क्या तुम्हें अपना सबक मिल गया?’

गजेंद्र ठिठक गया।

इंद्रद्युम्न...

तालाब में गिरे पत्थर के समान उस नाम ने गजेन्द्र के मन में तरंगें पैदा कर दीं। दूर उठी प्रतिध्वनि की तरह, वह उसके अतीत, उसके पूर्व जन्म के दृश्यों और स्वरों को जगा रहा था। तब गजेंद्र को याद आया कि किसी समय उसने मनुष्य के रूप में जन्म लिया था।

तब उसका नाम राजा इंद्रद्युम्न था।

उसे याद आया कि एक बार ऋषि अगस्त्य उसके दरबार में आए तो उसने ऋषि का अभिवादन नहीं किया था। वह अपने विचारों में इतना खोया था कि उसने आँखें तक नहीं खोलीं। इसलिए ऋषि अगस्त्य ने इंद्रद्युम्न को हाथी के रूप में जन्म लेने का शाप दिया ताकि वह अपने अहंकार का त्याग करना सीख सके और श्रेष्ठ शक्ति के समक्ष समर्पण करना सीखे, जैसा कि उसने उस दिन तालाब पर किया।

‘क्या तुम्हें अब ज्ञान हो गया, इंद्रद्युम्न?’ विष्णु ने फिर पूछा। ‘वह मगरमच्छ भी अपने पूर्वजन्म में हूहू नाम का गंधर्व था। उसने ऋषि देवल का अपमान किया था और इस रूप में मूल्य चुकाया। तुमने कुछ सीखा?’

त्रिकूट के शिखरों ने देखा कि गजेंद्र विष्णु के सामने नतमस्तक हो गया था।

23
पृथु ने किया मनुष्यता के भोजन का प्रबंध



ध्रुव के वंश में हुए महान सम्राटों में से एक थे राजा अंग। वे बहुत धार्मिक थे और वेदों के प्रत्येक सिद्धांत का पालन करते थे। देवता उनसे प्रसन्न थे और पृथ्वी फल-फूल रही थी। अंग की पत्नी सुनीता, मृत्यु की पुत्री थी जिसका अंतर्मन कलुषित एवं विकृत था। दुर्भाग्य से, राजा अंग के पुत्र के अंदर उसके पिता के गुण कम और माता मृत्यु के दोष अधिक थे। वह बालक, मृत्यु के साथ अधिक समय व्यतीत करता था। इस कारण और भ्रष्ट हो गया।

बालक का नाम वेन था।

वेन, राजा बना तो राज्य की कानून-व्यवस्था में कपट समाहित हो गया। वेन ने वैदिक संस्कारों और विचारधारा को ध्वस्त कर दिया, यज्ञ आदि पर प्रतिबंध लगा दिया। जो यज्ञ करता, वेन उसे दंडित करता था। उसने स्वयं को एकमात्र देवता बताकर भूलोक में अपनी पूजा करने पर लोगों को विवश कर दिया। उसका अत्याचार बढ़ा तो सप्तऋषियों ने उसे व्यवहार में सुधार करने की सलाह दी और कहा कि वह शास्त्र-परंपरा को फिर से स्थापित करके ब्रह्मा, विष्णु और शिव की सर्वोच्चता को स्वीकार करे। उन्होंने वेन को यज्ञ की अनुमति देने के लिए भी कहा क्योंकि यज्ञ से राजा और प्रजा दोनों को लाभ होता है। परंतु वेन केवल स्वयं से प्रेम करता था।

'मैं ब्रह्मांड हूँ,' वेन ने घोषणा की। 'मैं यज्ञ पुरुष हूँ। सबसे महान। मेरे शरीर में समस्त देवताओं का वास है। फिर मैं किसी के आगे क्यों सिर झुकाऊँ?'

ऋषि समझ गए कि वेन को उसके भीतर के अंधकार ने निगल लिया था। यदि वह जीवित रहा तो न्याय-व्यवस्था को गंभीर आघात पहुँचेगा। इसलिए ऋषियों ने एक तिनका उठाया और उसे अभिमंत्रित करके वेन पर छोड़ दिया। वेन की तत्काल मृत्यु हो गई। सप्तऋषियों ने एक समस्या तो दूर कर दी किंतु इससे दूसरी समस्या उत्पन्न हो गई। उन्होंने पृथ्वी को अत्याचारी वेन से मुक्ति तो दिला दी किंतु साथ ही पृथ्वी को राजा से विहीन भी कर दिया।

वेन का कोई पुत्र नहीं था और वेदों के अनुसार राजा के बिना भूमि समृद्ध नहीं हो सकती। उन्हें जब कोई अन्य उपाय नहीं सूझा तो मरीचि ने ऋषियों को एक उपाय बताया।

उन्हें अब वेन के शव को मँथ कर उससे पुत्र उत्पन्न करना था।

ऋषियों ने वेन के शव की दाहिनी जाँघ को मँथना शुरू किया तो उससे एक कुरूप प्राणी उत्पन्न हुआ। चंद्र रहित काल-रात्रि जैसी त्वचा वाला एक बौना। अत्रि ने बताया कि वेन के भीतर जितना भी तामसिक तत्त्व था, वह सब इस भयानक रूप में प्रकट हो हुआ था। ऋषि ने ज़ोर से कहा 'निषद', जिसका अर्थ था 'बैठ', किंतु वह बौना बाहर आ गया। फिर वही उसका नाम हो गया, और अंततः उसके वंश में उत्पन्न हुए शिकारियों की जाति को निषाद कहा गया। इस प्रकार जब वेन के शरीर से बुराई बाहर निकल गई तो उसका शव शुद्ध हो गया। ऋषियों ने फिर उसकी दाहिनी भुजा को मँथना आरंभ किया जिससे एक युवक उत्पन्न हुआ। वह युवक देदीप्यमान कवच पहने था जिसकी आभा को देखकर सप्तऋषियों की आँखें भी चौंधिया गईं। मरीचि ने भूलोक के इस नए राजा को नाम दे दिया।

पृथु।

पृथ्वी आनन्दित हो उठी। महासागरों और नदियों ने उसका अभिषेक किया तथा उत्तम किस्म के मूँगे और रत्न भेंट किए। ब्रह्मा स्वयं पृथु को मुकुट पहनाने पहुँचे। उन्होंने पाया कि पृथु के शरीर पर जन्म से ही सुदर्शन चक्र का चिह्न था।

'आपके सम्राट पर विष्णु की कृपा है,' उन्होंने कहा। 'ये प्रथम चक्रवर्ती सम्राट होंगे। चारों दिशाओं का स्वामी!'

अपनी बात को सिद्ध करने के लिए ब्रह्मा ने पृथु को अश्वमेध यज्ञ करने की आज्ञा दी। इसके लिए एक शाही अश्व को भूलोक में विचरण के लिए खुला छोड़ा गया। उस अश्व को सब जगह राजा पृथु के प्रभुत्व की घोषणा को लेकर जाना था। नियम यह था कि अश्व को चुनौती देने वाले को राजा पृथु की सेना से युद्ध करना होगा। पृथु मान गए और घोड़ा निकल पड़ा।

दुर्भाग्य से, इस यज्ञ से एक व्यक्ति को ईर्ष्या हो रही थी। इंद्र ने पृथ्वी वासियों को किसी मनुष्य से इतना प्रेम करते कभी नहीं देखा था। ब्रह्मा को किसी नश्वर प्राणी की ऐसे पूजा करते भी नहीं देखा था। इंद्र को भय सताने लगा कि कहीं यह नया राजा अपने लोक से असंतुष्ट होकर और लोगों की प्रशंसा पाकर इंद्रलोक को छीनने का प्रयास न करने लगे। इंद्र इस बात से इतना घबरा गए कि उन्होंने एक अकल्पनीय कृत्य कर डाला।

इंद्र ने पृथु का अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा चुरा लिया।

पृथु को जैसे ही सूचना मिली उसने अपनी सेना को देवराज को मार देने का आदेश दिया। पृथु के पराक्रम पर प्रश्न लग गया था और उसे यह बात पसंद नहीं आई। राजा पृथु

की सेना ने आक्रमण कर दिया किंतु इंद्र ने पहले ही रक्षा का उपाय सोच लिया था। वे अपने शरीर पर भस्म लगा कर साधु के वेश में सेना के सामने खड़े हो गए। सैनिक, साधु पर हमला करने से डरते थे इसलिए तुरंत पीछे हट गए।

देवराज की इस चालाकी के बारे में जानकर पृथु का क्रोध फूट पड़ा। उसने देवराज की हत्या करने का निर्णय लिया किंतु ऋषियों ने उसे रोक दिया। 'आपको इंद्र से लड़ने की आवश्यकता नहीं है। हम यहाँ मंत्रों का जाप करेंगे और उसी की शक्ति से इंद्र, यज्ञ-वेदी तक खिंचे चले आएँगे। हम उन्हें यज्ञ की आग में खींच लेंगे और फिर जलकर उनकी मृत्यु हो जाएगी।'

मंत्रोच्चारण शुरू हुआ और जैसे ही वे अंतिम आहुति देने वाले थे, ब्रह्मा प्रकट हो गए। इंद्र उनके प्रपौत्र थे इसलिए उन्होंने पृथु से इंद्र को क्षमा करने का अनुरोध किया। इसी बीच चारों कुमार-ऋषि भी आ गए और उन्होंने भी पृथु को हिंसक-कर्म के साथ शासन आरंभ करने से मना किया। अश्व को विधिवत् वापस प्राप्त कर लिया गया और अश्वमेध यज्ञ पूर्ण हो गया।

परंतु इससे पहले कि पृथु प्रसन्न हो पाता, एक और बड़ा संकट सिर उठाने लगा।

प्रजा ने पृथु को बताया कि पृथ्वी ने भोजन का उत्पादन बंद कर दिया था। जड़ें मुरझा रही थीं और पेड़ फल नहीं देते। जानवर मर रहे थे और इंसान भुखमरी का शिकार हो रहे थे। राजा पृथु ने दुविधा से सप्तऋषियों की ओर देखा तो ऋषियों ने गम्भीर स्वर में समझाया। 'यह तो होना ही था! वेन की मृत्यु और आपके राज्याभिषेक के बीच काफी समय बीत गया है। प्रकृति का नियम कहता है कि राजा न हो तो भूमि कुछ नहीं देती। चूँकि भूलोक कुछ समय के लिए शासक विहीन रहा है इसलिए सारी वनस्पति सूख गई है। धरती अधर में लटक गई है और कुछ भी अंकुरित नहीं होता। भूलोक ने सब अपने भीतर छिपा लिया है।'

'छिपा लिया है?'

'हाँ। समस्त भोजन सामग्री भूलोक के गर्भ में छिपी है।'

यह सुनकर पृथु उछल पड़ा। 'मैं भूलोक को खोदकर पुन: भोजन प्राप्त करूँगा।'

पृथु ने जैसे धनुष चढ़ाया, राजसभा भयभीत हो गई।

'अगर भूलोक हमें जीवित रखने में असमर्थ है तो उसके जीवन का क्या लाभ?'

भूलोक ने पृथु के शब्द सुने तो वह गाय का रूप धारण कर भागने लगा। किंतु गाय जहाँ भी गई, पृथु ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। वह हाथ में बाण लिए गाय को मारने की धमकी देता रहा। अंत में थककर पृथ्वी ने उससे याचना की।

'तुम मुझे क्यों मार रहे हो? मैं तुम्हारी माँ के समान हूँ। मुझे मारने से तुम्हें पाप लगेगा।

यदि तुम मुझे नष्ट कर दोगे तो मानव जाति रहेगी कहाँ? तुम पर श्री हरि की कृपा है और सबकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य है।'

'और पोषण करना आपका कर्तव्य है किंतु आपने भोजन छिपा रखा है। क्या हो यदि सूर्य और चंद्र भी आपका अनुसरण करने लगें और अपना प्रकाश छिपा लें? क्या हो अगर आपकी तरह तत्त्व अपने कर्तव्य का त्याग कर दें? कैसे कार्य करेगा ब्रह्मांड? यदि आप धर्म का त्याग कर सकती हैं, तो मैं भी कर सकता हूँ। आपके कारण मेरे लोग मर रहे हैं इसलिए मैं आपको मार दूँगा। आपका उदर भेदकर उसमें छिपे संसाधनों को बाहर निकाल लूँगा।'

भूलोक ने कहा, 'मैंने कभी अपनी सम्पत्ति को साझा करने से मना नहीं किया। यहाँ तक कि जब स्वर्ग लोक में देवता भूखे थे तब भी मैंने सभी को यथासंभव भोजन उपलब्ध करवाया। परंतु मैं केवल राजा के होने पर ही भोजन प्रदान कर सकती हूँ। राजा की उपस्थिति अनिवार्य है। वेन की मृत्यु से पृथ्वी राजा से विहीन हो गई थी इसलिए मैं कुछ नहीं दे सकी। किंतु अब आप मेरे स्वामी हैं तो मैं फिर से भोजन प्रदान करूँगी।'

पृथु सोच में पड़ गया। उसने भूलोक की ओर देखते हुए सिर हिलाया।

'आप केवल प्रदान नहीं करेंगी। हम भोजन को खींचकर बाहर भी निकालेंगे।'

'बाहर निकालेंगे?'

'हाँ। जैसे मैं अपने पिता के शरीर से उत्पन्न हुआ हूँ वैसे ही हम आपके भीतर से भोजन प्राप्त करेंगे।'

'मैं समझी नहीं।'

राजा पृथु इस नियम पर विचार कर रहा था कि पृथ्वी केवल राजा की उपस्थिति में ही भोजन का उत्पादन कर सकती है। उसे एहसास हुआ कि इसका मुकाबला करने का एकमात्र तरीका यह था कि मनुष्य को आत्मनिर्भर बना दिया जाए। उन्हें पेट भरने के लिए राजा पर निर्भरता से मुक्त करना होगा। पुरुषों को भोजन उत्पन्न करना सिखाने का समय आ गया था। भूलोक द्वारा दिए जाने वाले भोजन के अतिरिक्त पृथ्वी के गर्भ से भोजन को पैदा करना भी सीखना होगा। और भोजन इस तरह पैदा करना होगा कि यह चक्र समाप्त न हो। पृथु के चेहरे पर मुस्कान आ गई।

'आप ठीक कहती हैं। मुझे भगवान विष्णु का आशीर्वाद प्राप्त है इसलिए मुझे रक्षा करनी चाहिए।'

उसने धनुष की डोर खींची और बाण छोड़ दिया। भूलोक की यात्रा करके उस बाण ने पहाड़ों को समतल कर दिया और मैदानों का निर्माण किया। पृथु ने भूलोक का दोहन करके उससे बीज प्राप्त किए। उसने निर्देश दिया और जल्द ही सबने मिलकर भू-क्षेत्रों को खेतों में बदल दिया। उन्होंने बस्तियों का निर्माण किया और पशुओं का पालन आरंभ कर दिया।

मानव जाति अब खेती करने लगी थी। वह अनाज और धान उगा रही थी तथा फसल की कटाई कर रही थी। भूलोक समृद्ध था किंतु मनुष्य निष्क्रिय नहीं बैठा था।

पृथु ने भूलोक को बदल कर रख दिया था। उसने कृषि का आरंभ किया। तब भूलोक ने चक्रवर्ती सम्राट पृथु के नाम से अपना नया नाम पाया।

पृथ्वी।

24
मारिशा के दस पति



पृथु के प्रपौत्र प्राचीनवर्हि ने समुद्र की कन्या से विवाह किया और उनके दस पुत्र हुए। वे सामूहिक रूप से 'प्रचेतस' कहलाए और बड़े होकर विष्णु के अनन्य भक्त बन गए। जल्द ही, वह दिन भी आ गया जब प्राचीनवर्हि को अपना सिंहासन अगली पीढ़ी को सौंपना था। उसने अपने दस पुत्रों को एक पौधा भेजा। यह इस बात का संकेत था कि राज्य को एक नए शासक की आवश्यकता थी परंतु प्रचेतस भाइयों ने पौधा वापस भेज दिया।

'हम कैसे शासन कर सकते हैं जब स्वयं नारायण हमारे शासक हैं?' सभी राजकुमार एक स्वर में बोले। 'उनके प्रति श्रद्धा के चलते हम उन्हीं में लीन रहते हैं तथा हमारे जीवन में किसी अन्य चीज़ के लिए स्थान नहीं है। उनका चिंतन करना ही हमारा एकमात्र उद्देश्य है। सर्वोच्च उद्देश्य। हम संतुष्ट हैं और हमें कुछ नहीं चाहिए।'

किंतु राजा भी सरलता से हार मानने वाला नहीं था। उसने अपने पुत्रों को शासक के कर्तव्य याद दिलाए। साथ ही इस धरती पर और यहाँ रहने वाले लोगों के प्रति उनके दायित्व पर भी बल दिया। बहुत वाद-विवाद के बाद अंत में प्रचेतस ने एक प्रस्ताव रखा।

'हम नारायण का ध्यान करेंगे। उनका आह्वान करेंगे ताकि वे हमारा मार्गदर्शन करें। यदि वे हमें शासन करने को कहेंगे तो हम उनकी आज्ञा का पालन करेंगे। यदि उन्होंने हमें अपनी आध्यात्मिक खोज जारी रखने को कहा तो आप वचन दीजिए कि आपको इसमें आपत्ति नहीं होगी।'

प्राचीनवर्हि ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और प्रचेतस भाई समुद्र-तट की ओर चल पड़े। पानी में गोता लगाकर, वे समुद्र-तल में गहन ध्यान करने बैठ गए। वर्षों बीत गए और राजा प्रतीक्षा करते-करते थक गया। वह प्रतिदिन समुद्र के किनारे जाता परंतु उसे बालू के सिवा कुछ नहीं मिलता था। वह हर रात समुद्र से याचना करता, परंतु लहरों के हँसने की आवाज़ के अलावा उसे कुछ सुनाई नहीं देता था। वह अपने पुत्रों की प्रतीक्षा करता रहा और उसके

पुत्र नारायण की प्रतीक्षा करते रहे।

इस प्रकार दस हज़ार वर्ष बीत गए।

प्रचेतस भाइयों के स्नेह से प्रभावित होकर, भगवान विष्णु अंततः प्रकट हुए। उन्होंने प्रचेतस को उनकी अमर भक्ति और अटूट आस्था के लिए आशीर्वाद दिया और साथ ही प्राचीनवर्हि की बात का समर्थन भी किया।

'आपके महान पूर्वज पृथु ने भूलोक को एक नई पहचान दी थी। उनके वंशज होने के नाते शासन करना आपका कर्तव्य है। धर्म और कर्म, सदा से अविभाज्य रहे हैं। एक के बिना दूसरे को कैसे प्राप्त किया जा सकता है? मैं चाहता हूँ कि आप मुझे इस कार्य से बचने का साधन नहीं अपितु अपनी शक्ति का स्रोत बनाएँ।'

'प्रभु, आपने हमारा मार्गदर्शन किया है। हम पृथ्वी की भलाई के लिए हरसंभव प्रयास करेंगे।'

'यही आपका धर्म भी है। इस समय भूलोक को आपकी सबसे अधिक आवश्यकता है।' जगन्नाथ के इन शब्दों से सभी भाई विचलित हो गए। 'सबसे अधिक आवश्यकता? ऐसा क्यों कहते हैं, भगवन्?'

परंतु विष्णु अन्तर्धान हो चुके थे। प्रचेतस भाई समुद्र-तल से बाहर निकल आए किंतु विष्णु के कहे शब्द उनके कानों में गूँजते रहे।

इस समय भूलोक को आपकी सबसे अधिक आवश्यकता है...

जैसे ही प्रचेतस समुद्र से बाहर आए, उन्हें आसपास का दृश्य देखकर विश्वास नहीं हुआ। क्या वह सच था या फिर पंचतत्त्व कोई लीला कर रहे थे? समुद्र का तट और वहाँ की रेत, दोनों गायब हो गए थे। नगर और किला भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। वहाँ अब एक अंतहीन वन था। जहाँ तक नज़र जाती, विशालकाय वृक्ष दिखाई देते थे। वे वृक्ष इतने ऊँचे थे मानो वे नीचे सागर और ऊपर अंबर को भेद रहे हों। वृक्ष चारों ओर फैले हुए थे और उनके पार कहीं कुछ नहीं दिखाई पड़ता था। उस जंगल में प्रवेश करने और कई दिनों तक घूमने के बाद भी प्रचेतस भाइयों का किसी मनुष्य से आमना-सामना नहीं हुआ। उनके आस-पास अनंत पेड़-पौधे और पत्ते थे, जो हर जगह हरी फफूंद की तरह उग आए थे और उनके सिवा लगभग हर चीज घुटन का शिकार हो गई थी। प्रचेतस भाइयों की दुर्दशा देखकर सूर्य ने उन्हें बताया कि उनकी अनुपस्थिति में क्या कुछ हुआ था।

'आप लोग दस हज़ार वर्षों तक समुद्र के भीतर थे। उस बीच आपके पिता का देहांत हो गया, पृथ्वी भी शासक विहीन हो गई। अव्यवस्था फैल गई और सभ्यता का पतन हो गया। मैंने देखा कैसे उस भीषण अव्यवस्था के बीच मानव जाति समाप्त हो गई। पेड़- पौधों के अतिरिक्त कुछ नहीं बचा। अब भूलोक पर अत्यधिक मात्रा में वनस्पति उग आई है। पृथु ने

पृथ्वी को साफ़ कर दिया था किंतु अब यह फिर से पहले जैसी हो गई है।'

यह सुनकर प्रचेतस क्रोध और पछतावे से काँप उठे। वह जंगल अब उन्हें दैत्य के समान लग रहा था जिसने चारों ओर पत्तेदार जाल फैला रखा था। दसों भाई हाथ पकड़कर एक वृत्ताकार घेरे में खड़े हो गए और उन्होंने अपने मुँह खोल दिए। अगले ही क्षण उनके मुख से अग्नि निकलने लगी। वृक्ष झुलसने लगे और तेज हवा ने पेड़-पौधों को उखाड़ फेंका। ऐसा लगा जैसे कोई उन्मत्त सेना भूलोक को निर्वस्त्र कर रही थी। पृथ्वी का हरा आवरण, धुएँ में परिवर्तित होकर उड़ रहा था। प्रचेतस आग उगलकर विशाल वन को नष्ट कर रहे थे कि तभी उन्हें एक आवाज़ सुनाई दी।

'रुकिए!'

उन्होंने ऊपर देखा तो पाया कि चंद्रमा उनसे रुक जाने की विनती कर रहा था।

'मैं पृथ्वी पर वनस्पति का पोषण करता हूँ और आप इन्हें नष्ट कर रहे हैं। मेरी आपसे प्रार्थना है कि कृपया इस विनाश को रोक दीजिए। आपकी अनुपस्थिति ही इस वन के प्रजनन का कारण बनी थी। ऐसे में क्या वन को दंड देना उचित है? यह पेड़-पौधे भी आपकी प्रजा का अंश हैं और आपको इनकी रक्षा करनी चाहिए।'

किंतु प्रचेतस भाइयों ने चंद्रमा की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा कि मानव जाति के विलुप्त हो जाने के बाद, उनके लिए प्रजनन करना संभव नहीं है। उनकी मृत्यु के साथ मनुष्यता का अंत हो जाएगा। इसलिए वे सब कुछ नष्ट कर रहे हैं।

'यदि मैं आपसे कहूँ कि आपका वंश समाप्त नहीं होगा?' चंद्र ने कहा।

'आप क्या कहना चाहते हैं?'

'यह सच है कि सभी मनुष्य मारे जा चुके हैं, परंतु अब भी एक प्राणी जीवित है। वही आपके वंश को आगे बढ़ाएगा।'

तब भाइयों ने किसी के कदमों की आहट सुनी। साथ ही पायल की झनकार भी। वे पीछे मुड़े तो उन्होंने देखा एक स्त्री खड़ी थी।

'यह कौन है?' उन्होंने पूछा।

'मारिशा। ऋषि कंडू की बेटी। ऋषि ने एक अप्सरा के साथ मिलकर मारिशा को जन्म दिया। उस अप्सरा का अंश होने के कारण यह जीवित रह पाई है और इन वृक्षों ने ही इसका पालन-पोषण किया है। मैं अब यह बात समझा हूँ कि सृष्टि ने मारिशा के माध्यम से आपके वंश की रक्षा की है। जिस गर्भ से मनुष्य पुन: जन्म लेंगे, उसे वनस्पतियों ने पाला है। भूलोक ने अपनी भूमिका निभाई है और अब आपको भी यही करना चाहिए। मानव जाति आपके कारण विलुप्त हुई और अब आपको अपनी भूल को सुधारना है। आप दसों को मारिशा से विवाह करके पृथ्वी को पुन: आबाद करना होगा।'

‘दसों को?’

‘हाँ, आप सभी को,’ मारिशा ने पुष्टि की। ‘पूर्वजन्म में मेरा विवाह एक राजा से हुआ था जिनकी बीमार होने के कारण युवावस्था में ही मृत्यु हो गयी थी। उसके बाद मैंने भगवान विष्णु से प्रार्थना करके उनसे दो वरदान माँगे। पहला यह कि मेरा पुत्र ब्रह्मदेव जैसा हो, और दूसरा यह कि मुझे अगले दस जन्मों में दस स्वस्थ पति मिलें। ईश्वर ने मुझे पहला वरदान दे दिया परंतु दूसरे को थोड़ा बदल दिया। उन्होंने मुझे यह आशीर्वाद दिया कि मेरे एक ही जीवन में दस पति होंगे।’

वह मुस्कुराई। ‘उनका दूसरा आशीर्वाद भी अब सत्य हो गया है।’

‘और पहला भी होगा,’ चंद्रमा ने मारिशा को आश्वासन दिया। ‘आपका पुत्र वास्तव में परमपिता ब्रह्मा जैसा होगा क्योंकि वह स्वयं सृष्टिकर्ता का पुत्र होगा। पराक्रमी दक्ष।’

‘दक्ष? सती के पिता?’

‘हाँ। महादेव ने उन्हें वचन दिया था कि उनका पुनर्जन्म होगा। वह समय आने वाला है। प्रचेतस भाइयों के साथ आपके मिलन के फलस्वरूप, प्रजापति का जन्म होगा।’

वन में लगी आग बुझ चुकी थी। तूफान भी थम गया था। दसों प्रचेतस भाइयों ने मारिशा की ओर अपने हाथ बढ़ा दिए।

25

मत्स्य अवतार



सूर्य और संज्ञा के ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत, पृथ्वी के शासक बन चुके थे। एक दिन वह कृतमाला नदी के बीच में खड़े होकर भगवान विष्णु को अर्घ्य दे रहे थे। उन्होंने जैसे ही चुल्लू में पानी भरकर अपने हाथ उठाए, चाँदी-सा प्रकाश उनकी आँखों में चुभने लगा। वैवस्वत ने आँखें खोलीं तो देखा कि उनकी हथेलियों के बीच एक नन्ही-सी मछली थी जिसका शरीर रोशनी में झिलमिला रहा था। वह उस मछली को नदी में वापस छोड़ने के लिए जैसे ही झुके, मछली ने उनसे याचना की।

‘हे परोपकारी आत्मन्! कृपया मुझे अपने साथ ले चलिए। मैं आकार में बहुत छोटी हूँ और मुझे नदी से डर लगता है।’

‘किंतु क्या यह तुम्हारा प्राकृतिक निवास स्थान नहीं है?’

‘कोई बड़ी मछली सरलता से मुझे मार सकती है। आप इस धरा के स्वामी हैं। क्या आप अपनी प्रजा की रक्षा नहीं करेंगे?’

मछली ने वैवस्वत को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। उन्होंने हामी भरी और कहा, ‘मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा।’

‘क्या वह मेरे आकार के अनुरूप है?’

वैवस्वत मुस्कुराए। फिर उन्होंने उस नन्ही मछली को अपने ताम्र-कमंडल में डाल लिया। किंतु वह बड़ी होने लगी और सूर्यास्त होने तक सोलह अंगुल लंबी हो गई।

‘मुझे बचाइए, राजन्! आपका यह कमंडल मेरे लिए पर्याप्त नहीं है।’

राजा ने उस मछली को कमंडल से निकालकर घड़े में डाल दिया किंतु जल्द ही घड़ा भी मछली के लिए छोटा पड़ गया। फिर वैवस्वत ने उसे कुएँ में छोड़ दिया लेकिन फिर वही हुआ। उसके बाद वैवस्वत ने उस मछली को एक तालाब में ले जाकर छोड़ा तो शीघ्र ही वह

इतनी बड़ी हो गई कि तालाब भी उसके लिए छोटा पड़ने लगा। फिर राजा ने मछली को वापस कृतमाला नदी में छोड़ दिया, किंतु नदी भी मछली के आकार को सँभाल पाने में विफल रही। अंत में, वैवस्वत ने उसे महासागर में छोड़ दिया। मछली ने जैसे ही लहरों का स्पर्श किया, उसका आकार और बढ़ गया। आखिर उसने पूरे समुद्र को ढक लिया। राजा ने मछली के सामने घुटने टेक दिये।

'आप कोई साधारण मछली नहीं हैं।'

'राजन्, आपने सही कहा।'

'आप कौन हैं? भूलोक पर कोई स्थान आपके आकार को समेटने में समर्थ नहीं है। क्या आप भगवान विष्णु हैं? आप केवल विष्णु हो सकते हैं। क्या मैंने अज्ञानतावश उसकी रक्षा करने का प्रयत्न किया है, जो पूरे संसार का रक्षक है?'

'मैं विष्णु ही हूँ। और आपको अगला मनु बनना है।'

वैवस्वत यह सुनकर विस्मित खड़े रहे। उससे पहले छह मनु हो चुके थे जिनमें से प्रथम, मनु थे जिनकी रचना स्वयं ब्रह्मा ने की थी। मनु, शतरूपा के पति थे। मानव जाति के सर्वप्रथम पूर्वज। प्रत्येक मनु के जीवनकाल की समयावधि को मन्वंतर कहा जाता है। अब तक छह मन्वंतर बीत चुके थे, जिनकी अगुआई छह मनुओं ने की। और अब भगवान विष्णु ने सातवाँ मनु घोषित कर दिया था। वैवस्वत मनु।

'अगले सात दिनों में, पृथ्वी पर प्रचंड बाढ़ आएगी और सभी जीव-जंतुओं का अंत हो जाएगा,' भगवान विष्णु ने बताया। 'एक नए कालचक्र का आरंभ होगा। आप अगले मन्वंतर के मनु हैं इसलिए सृष्टि को बचाने का दायित्व अब आपके ऊपर है।'

'हे प्रभु! मेरा मार्गदर्शन कीजिए!'

'एक विशाल नौका बनाइए और जीवन के सभी स्रोतों को उसमें रख लीजिए। पौधे और अनाज। जड़ी-बूटियाँ और दवाएँ। फल और फूल। पशुओं के युगल। आपको सप्तऋषियों एवं अपनी पत्नी सहित अन्य मनुष्यों द्वारा लिखा समस्त ज्ञान भी साथ रखना होगा। जब प्रलय आएगी तो मैं पुन: इसी अवतार में प्रकट होऊँगा। फिर आप उस नौका को मुझसे बाँध दीजिए और तब मैं आपको सुरक्षित स्थान पर ले जाऊँगा।'

यह कहकर मछली अदृश्य हो गई। भूलोक पर भयंकर सूखा पड़ गया। सबकुछ ऐसे सूख गया मानो जल का अस्तित्व था ही नहीं। ऐसा लग रहा था जैसे किसी ने पृथ्वी से जीवन का तत्त्व चूस लिया हो। धरती से अमृत की हर बूँद छीनकर उसकी रगों को सुखा दिया हो। जमीन में दरारें पड़ गईं। मनुष्य दम तोड़ने लगे। जगत, विशाल मरघट में बदल गया जहाँ हरियाली का निशान तक नहीं था। सब निर्जीव हो गया। वैवस्वत की नौका के अतिरिक्त और कहीं जीवन के चिह्न शेष नहीं बचे थे। छह दिनों तक वे चुपचाप बैठे रहे। सातवें दिन,

किसी चीज़ ने मनु की त्वचा को स्पर्श किया।

जल की एक बूँद।

वैवस्वत ने ऊपर आकाश की ओर देखा। काले बादल मँडरा रहे थे। वे विशाल वर्षा-मेघ दूर-दूर तक फैले हुए थे। वे सूर्य को भी जैसे गीला कर रहे थे। क्षितिज धुँधला पड़ गया। बिजली कड़कने लगी और बादल गड़गड़ाने लगे। हर क्षण के साथ उनकी आवाज़ तेज होती गई और आखिर में वर्षा शुरू हो गई। वर्षा की बूँदें ऐसे गिर रही थीं मानो मेघ, आँसू बहा रहे हों। उनके आँसू पहले से बड़े हो गए थे, जो अधिक संख्या में तथा तीव्र गति से बह रहे थे। वे धरती पर, जल-धाराओं, नदियों और समुद्रों पर बरसने लगे। ऐसा लगा मानो पृथ्वी से छीन ली गई प्रत्येक बूँद को किसी ने घर लौटने का मार्ग बता दिया हो। भूलोक पर इतनी मूसलाधार वर्षा हुई कि जमीन दिखना बंद हो गई। हर जगह केवल पानी था। जहाँ देखो, वहाँ पानी। जैसे-जैसे धरती डूबने लगी, वैसे-वैसे वैवस्वत की नौका ऊपर उठती गई। उसके अलावा अब भूलोक पर कुछ भी शेष नहीं रह गया था। मनुष्य ने जो कुछ उपलब्ध किया था, उसके कुछ अंश ही शेष रह गए थे।

संस्कृति। ज्ञान। पोषण। बोध।

मनु की बनाई नौका, अनंत जल पर तैर रही थी। वह भगवान विष्णु के बनाए विचित्र मार्ग पर चल रही थी। उसमें सँभाल कर रखे गए जीवन के अंश का उसी तरह पोषण हो रहा था जैसे कभी सुनहरे ब्रह्मांड का आद्य-जल में हुआ था। क्या वह अनंत महासागर, नौका को ताक रहा था? क्या वह शेष वस्तुओं की भांति उस नौका को भी लील जाने को व्याकुल हो रहा था? वैवस्वत ने डर कर चारों ओर देखा। उसे अवतार की तलाश थी जिसने उसे वचन दिया था। तभी सप्तऋषियों ने संकेत किया। समुद्र के नीचे से एक सींग प्रकट हो रहा था।

मत्स्य।

वह मत्स्य, लहरों को चीरती हुई ऊँची उठने लगी। स्वर्णिम मछली का सिर, जल के देवता की तरह उभर रहा था। वैवस्वत ने नौका को मत्स्य के सींग से बाँध दिया और उत्तर की ओर बढ़ने लगा। समुद्र, इस तिमिंगल के सामने नतमस्तक हो गया क्योंकि वह सागर के हृदय को चीरता हुआ उन्हें एक दिव्य-पथ पर ले जा रहा था। पहले मनु ने मछली को बचाया था; अब मछली, मनु को बचा रही थी। इस दृश्य को देखने के लिए देवतागण भी आकाश में प्रकट हो गए। वे देख रहे थे कि विष्णु कैसे पृथ्वी के अवशेष का संरक्षण कर रहे थे जिससे मानवता के प्रति उनके गहन प्रेम का पता चल रहा था। सब देख रहे थे कि कैसे विशाल मत्स्य जल की सतह पर सावधानीपूर्वक किंतु गर्व के साथ सवारी कर रहा था क्योंकि उसे पता था कि उस पर अत्यंत अनमोल बोझ रखा था। सप्तऋषि, विष्णु की महिमा का गुणगान करने लगे। कुछ ही देर में रात्रि, भोर में बदल गई। वैवस्वत ने देखा कि समुद्र में

से एक पर्वत बाहर की ओर निकला हुआ था। उसका हिमाच्छादित शिखर यह संकेत दे रहा था कि मत्स्य अवतार उन्हें हिमालय से बाँधने जा रहा था।

उन्होंने ज्यों ही भूमि पर पैर रखा, विष्णु ने वैवस्वत मनु को संबोधित किया।

'हे सूर्य पुत्र! आपसे गौरवशाली सूर्य वंश उत्पन्न होगा। अपने वंश को आगे बढ़ाइए और भूलोक को फिर से समृद्ध कीजिए। आपने जिस तरह मुझे मछली के रूप में सुरक्षित रखा था, उसी तरह ऐसे समाज का निर्माण कीजिए जो सभी की रक्षा कर सके।'

मत्स्य अवतार ने मनु को आशीर्वाद दिया। सप्तऋषि, क्षितिज के सामने खड़े थे। पक्षी, नए घोंसले बनाने के गीत गाने लगे।

26

वराह अवतार



दिति के दैत्य-पुत्रों में सबसे बड़े दो भाई, हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु थे। एक की सुनहरी आँखें थीं और दूसरा सुनहरे वस्त्र धारण करता था। हिरण्याक्ष ने ब्रह्मा से वरदान पाने के लिए कठोर तप किया। आखिर जब सृष्टि के निर्माता प्रसन्न हुए, तो हिरण्याक्ष ने ब्रह्मा से अमरता का वरदान माँगा।

‘असंभव!’ ब्रह्मा ने अस्वीकृति में चारों सिर हिला दिए। ‘महादेव की तरह मैं किसी को अमर नहीं कर सकता। कुछ और माँगो।’

‘तो फिर मुझे भूलोक का शासक बना दीजिए। उसका स्वामी। मुझे कोई प्राणी परास्त न कर पाए। मुझे वरदान दीजिए कि न कोई मनुष्य, और न ही कोई पशु मुझे मार सके।’

‘कौन-कौन से पशु? तुम्हें सभी प्रजातियों के नाम स्पष्ट करने होंगे।’

हिरण्याक्ष ने बहुत से जीव-जंतुओं के नाम लिए। हर स्थान पर रहने वाले प्राणी। भूमिगत जीव। सभी तरह के थलचर, जलचर और नभचर।

ब्रह्मा ने सिर हिला दिया। ‘तथास्तु।’

देवताओं को जैसे ही ब्रह्मा द्वारा दिए इस वरदान के बारे में पता लगा वे सब क्रोधित होकर उनके पास पहुँचे। पहली बार किसी दैत्य को पृथ्वी पर संपूर्ण अधिकार दिया गया था। हिरण्याक्ष जैसे दुस्साहसी राक्षस के लिए शक्तियों का दुरुपयोग करना स्वाभाविक था। वह भूलोक की आत्मा तक को निर्दयता से नष्ट कर सकता था।

‘मैं आपकी बात समझ रहा हूँ किंतु आप भी मेरी दुविधा को समझिए,’ ब्रह्मा ने देवताओं से कहा। ‘अडिग तपस्या कभी निष्फल नहीं जाती। यह प्रकृति का नियम है। हिरण्याक्ष की भक्ति प्रचंड थी और मैं उसे वरदान देने के लिए उसी तरह बाध्य था जैसे महादेव ने विवश होकर शुक्राचार्य को मृतसंजीवनी मंत्र दिया था। ऐसा अतीत में होता आया है और भविष्य

में होता रहेगा। वह चाहे देवता हो या दैत्य, वरदान पाने की उत्कट अभिलाषा सदा पूर्ण होगी।'

'यदि वरदान अमंगल हो, तो भी?' देवताओं ने प्रश्न किया।

'वरदान, मंगल या अमंगल नहीं होता। वरदान, मात्र अवसर है जो साधक को सशक्त बनाता है। महत्त्वपूर्ण यह है कि साधक उसका उपयोग कैसे करता है। भूलोक का स्वामी हिरण्याक्ष अब भूलोक का अच्छी तरह पालन-पोषण कर सकता है अथवा उसे नष्ट सकता है। यदि उसने दूसरा विकल्प चुना तो उसका अपना विनाश पहले हो जाएगा।'

'परंतु कोई जीव उसे हानि नहीं पहुँचा सकता। आपने स्वयं उसे वरदान दिया है।'

'ऐसा नहीं है,' ब्रह्मा का स्वर गूढ़ था। 'समय आने पर आप समझ जाएँगे। देखते हैं कि वह दैत्य मेरे वरदान का किस प्रकार उपयोग करता है।'

शीघ्र ही देवताओं की आशंका सच हो गई। हिरण्याक्ष ने अत्याचार शुरू कर दिया और उसकी आग में भूलोक झुलसने लगा। प्राणियों की पीड़ा भरी चीखें आसमान में गूँज रही थीं। उस दैत्य ने न केवल क्रूरता जारी रखी अपितु समस्त सीमाएँ पार करके एक अकल्पनीय कृत्य कर डाला। उसने पृथ्वी को धुरी से नीचे गिरा दिया और फिर उसे खींचकर आद्य गर्भोदक महासागर के तल में ले गया।

'विनाश! विनाश!' ब्रह्मा ने देवताओं की चीख-पुकार सुनी। 'अयोग्य लोगों को दी गई शक्ति कभी प्रेरणा का स्रोत नहीं बन सकती अपितु, वह विभीषिका को जन्म देती है। हम भूलोक को अब उस अनंत गहराई से कैसे बाहर निकालेंगे?'

तभी उन्होंने पृथ्वी की आत्मा को धेनु के रूप में आते देखा। उसकी आँखों में समुद्री-जल के कारण जलन हो रही थी। उसका चेहरा, मुक्ति की विनती कर रहा था। देवता पुन: ब्रह्मा के पास पहुँचे।

'आपने हमें आश्वासन दिया था कि हिरण्याक्ष अजेय नहीं है। हमें बताइए यह कैसे संभव है? क्या उसने सभी प्राणियों से स्वयं को रक्षित नहीं कर लिया है?'

'नहीं,' ब्रह्मा ने मुस्कुराकर कहा। 'इसीलिए मैंने उसे पशुओं की सभी प्रजातियों के नाम लेने को कहा था। मेरी रचना इतनी विपुल है कि कोई प्राणी, सभी प्रकार के जीवों को सूचीबद्ध नहीं कर सकता। हिरण्याक्ष भी इसमें विफल रहा। उसने एक प्राणी को छोड़कर पृथ्वी पर मौजूद सभी प्राणियों के नाम लिए थे।'

'कौन-सा प्राणी?'

'वराह। और वही उसके अंत का कारण बनेगा,' ब्रह्मा ने हाथ जोड़कर कहा। फिर वे बोले, 'देखिए! देखिए, कैसे श्री हरि पुन: अवतार लेते हैं। उन्होंने पहले मत्स्य अवतार लिया था और अब वे वराह अवतार लेंगे।'

तभी सबने देखा कि भगवान विष्णु अपने भव्य और तेजस्वी वराह रूप में समुद्र में प्रवेश कर रहे थे। वराह अवतार, जो किसी लौकिक स्तंभ के समान उदात्त था। उसके दाँत, जुड़वां पहाड़ियों जितने विशाल थे। वराह ने दैत्य को ललकारा और दोनों के बीच युद्ध छिड़ गया। पानी में उफनते हुए झाग दिखाई देने लगे। समुद्र कभी ताप से उबल उठता तो कभी बर्फ-सा जम जाता था। विष्णु और हिरण्याक्ष के बीच एक सहस्त्र वर्ष तक युद्ध चलता रहा। इस बीच महासागर, आक्रोश से भरे विशाल भँवर की भाँति गोल-गोल घूमता रहा। अंत में, वराह ने हिरण्याक्ष का वध कर दिया। उसके रक्त से समुद्र का जैसे दम घुट रहा था, फिर भी वह आह्लादित था। फिर वराह ने भूलोक को ऊपर खींच लिया। उसने भूलोक को अपने विशाल दाँतों पर टिका कर उसे इतनी सहजता से उठाया मानो हथेलियों पर फूल रखा हो। फिर वराह ने भूलोक को उसकी धुरी पर पुनर्स्थापित कर दिया। ब्रह्मा हर्षित थे। देवता उत्सव मना रहे थे।

परंतु प्रसन्नता के इस क्षण में विष्णु उनके साथ नहीं थे। इसका कारण यह था कि हिरण्याक्ष मर चुका था किंतु हिरण्यकशिपु अभी जीवित था।

27
नृसिंह अवतार



शीघ्र ही राक्षसी उत्सव का शोर ब्रह्मांड के प्रत्येक लोक में गूँजने लगा। असुरों ने दिति के ज्येष्ठ पुत्र का राज्याभिषेक कर दिया था। शुक्राचार्य ने स्वयं उसके सिर पर मुकुट रखा था। दैत्यराज बनते ही हिरण्यकशिपु को सबसे पहले अपने जीवन की रक्षा का विचार किया। हिरण्याक्ष के मार्ग पर चलते हुए उसने भी मंदार पर्वत पर ब्रह्मा की उपासना की। ग्यारह हज़ार वर्ष बाद, ब्रह्मा ने उसे दर्शन दिए।

'तुम्हें क्या वरदान चाहिए?'

हिरण्यकशिपु क्षण-भर को सोचने लगा। उसे अपनी आँखों के सामने अपने भाई का अंत दिखाई दे रहा था। हिरण्याक्ष ने सोचा था कि उसने खुद को हर खतरे से सुरक्षित कर लिया था। किंतु वह भूल गया कि उसने एक द्वार खुला छोड़ दिया था और वहीं से मृत्यु ने प्रवेश किया और उसे अपने साथ ले गई। हिरण्यकशिपु उस भूल को दोहराना नहीं चाहता था। वह सावधानी से मन में वरदान के विषय में विचार करने लगा। उसने ध्यान से अपने शब्दों को चुना, उनमें उपवाक्य जोड़े, उसके विवरण को बार-बार संशोधित किया। वह यह सुनिश्चित कर लेना चाहता था कि उसने हर संभावना और हर संकट पर विचार कर लिया था। वह चाहता था कि उसका वरदान, ऐसा अभेद्य किला हो जिसमें कोई द्वार खुला न रह जाए।

'हे ब्रह्मदेव, मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं किसी देवता अथवा असुर, मनुष्य अथवा पशु द्वारा न मारा जाऊँ। मेरी मृत्यु न दिन में हो, न रात में। न घर के अंदर, न बाहर। न आकाश में, न धरती पर। न जल में, न थल पर। मुझे वरदान दीजिए कि किसी धातु, पत्थर या लकड़ी से बने किसी अस्त्र-शस्त्र से मेरा वध न किया जा सके। हे विधाता, मुझे यही वरदान दीजिए।'

ब्रह्मा ने उसकी इच्छा पूरी कर दी और उसे वह वरदान दे दिया। इसके बाद

हिरण्यकशिपु, अपने भाई की तुलना में दुगुना अत्याचारी हो गया। उसने न केवल पृथ्वी वासियों को प्रताड़ित किया अपितु इंद्र को भी स्वर्ग लोक से निकाल दिया। उसने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर ली। वह ब्रह्मांड का अकेला स्वामी था जिसकी फैलाई अव्यवस्था ने ब्रह्मांड को जैसे अपंग बना दिया था। परंतु उस मल-कुंड में भी एक कमल खिल गया। वह कमल था, हिरण्यकशिपु का सबसे छोटा पुत्र, जिसका नाम आनंद का प्रतीक था।

प्रह्लाद।

असुर-पुत्र होने के बावजूद, प्रह्लाद, भगवान विष्णु का उपासक था। जिस समय हिरण्यकशिपु, ब्रह्मा की तपस्या कर रहा था, तभी इंद्र ने असुर की गर्भवती पत्नी कयाधू का अपहरण कर लिया। उस समय नारद ने हस्तक्षेप करके हिरण्यकशिपु की पत्नी और उसके नवजात पुत्र की रक्षा की थी। वह बालक, नारद से नारायण की महिमा सुनकर बड़ा हुआ और उसने विष्णु को वास्तविकता के रूप में ग्रहण कर लिया। तपस्या के उपरांत हिरण्यकशिपु जब लौटकर आया तो उसने प्रह्लाद को दैत्य वंश के बारे में ज्ञान प्राप्त करने शुक्राचार्य के पास भेजा। परंतु बालक, भगवान विष्णु का नाम जपता हुआ वापस लौट आया।

'विष्णु?' हिरण्यकशिपु गुर्राया। 'क्या तुम्हें पता नहीं कि वह कितना हेय प्राणी है? वह स्वयं को देवता कहता है जबकि उसने मेरे भाई को मारने के लिए एक तुच्छ पशु का रूप धारण किया था।'

'विष्णु, एक उदार देवता हैं जिनकी दृष्टि में सभी जीव एक समान हैं।'

'तुम अपने वंश का अपमान कर रहे हो। हमारे शत्रु का नाम लेना तुम्हें किसने सिखाया?'

'स्वयं भगवान विष्णु ने क्योंकि वे शिक्षकों के शिक्षक हैं। शासकों के शासक। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करने के मार्ग के एकमात्र पथ-प्रदर्शक।'

असुर आगबबूला हो गया। समूचा ब्रह्मांड उसके सामने झुकता था किंतु उसका अपना पुत्र उसके प्रभुत्व को अस्वीकार कर रहा था। उसने प्रह्लाद के मन से भक्ति निकालने की हरसंभव कोशिश की किंतु असफल रहा। प्रह्लाद के मन पर विष्णु का नाम अंकित हो चुका था। कुछ दिन बाद, हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद से उसके जीवन का उद्देश्य पूछा, तो भी प्रह्लाद का उत्तर नहीं बदला।

'भगवान विष्णु की आराधना।'

'तुम किस वंश से हो? तुम निश्चित रूप से देवता नहीं हो और यदि तुम विष्णु की उपासना करते हो तो तुम दैत्य भी नहीं हो सकते। मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूँ फिर भी तुम उस दुष्ट प्राणी की स्तुति कर रहे हो?'

‘विष्णु, एकमात्र सत्य हैं। सबसे श्रेष्ठ। आपसे भी।’

‘तुम अपने पिता का अपमान कर रहे हो?’

‘मैं उनकी स्तुति कर रहा हूँ जो हम सबके पिता हैं।’

हिरण्यकशिपु ने दाँत पीसते हुए प्रह्लाद को मृत्यु-दंड का आदेश दिया। परंतु दैवीय रूप से यह भी असंभव हो गया। दैत्यराज के सैनिकों ने प्रह्लाद को हाथियों से रौंदने, साँपों से डसवाने तक के प्रयास किए किंतु प्रह्लाद को कुछ नहीं हुआ। उन्होंने उसे चट्टान से नीचे धकेल दिया किंतु वह बच गया मानो उसे विष्णु की अदृश्य हथेलियों ने थाम लिया था। उन्होंने प्रह्लाद को समुद्र में फेंका परंतु लहरें उसे वापस तट पर छोड़ गईं। उन्होंने प्रह्लाद के भोजन में विष मिलाया तो वह अमृत बन गया। शस्त्र उसे मार नहीं सके और हत्यारों ने उसकी हत्या करने से मना कर दिया। तब कृत्या नाम की एक राक्षसी को प्रह्लाद के प्राण लेने के लिए बुलाया गया किंतु उसका त्रिशूल प्रह्लाद के शरीर को स्पर्श करते ही चकनाचूर हो गया। जिस तरह शिव ने मार्कण्डेय की रक्षा की थी, वैसे ही विष्णु, प्रह्लाद की रक्षा कर रहे थे। हिरण्यकशिपु का धैर्य समाप्त होने लगा था। अंत में उसकी बहन होलिका ने एक कुटिल योजना बनाई।

‘आप भूल गए कि मुझे भी वरदान मिला है,’ होलिका ने हिरण्यकशिपु को याद दिलाया। ‘मेरा शरीर आग में जल नहीं सकता। आप एक चिता तैयार कीजिए। मैं प्रह्लाद को गोद में लेकर चिता पर बैठ जाऊँगी। फिर आप उसे प्रज्ज्वलित कर दीजिएगा। आग में प्रह्लाद जलकर मर जाएगा और मैं जीवित बच जाऊँगी।’

निर्देश का तुरंत पालन हुआ। प्रह्लाद को समझ में आ गया कि उसके साथ क्या होने वाला था किंतु उसने विरोध में एक शब्द तक नहीं कहा। वह केवल भगवान का नाम जपता रहा। जैसे-जैसे लपटें ऊँची होती गईं, वैसे-वैसे प्रह्लाद का जाप भी तेज होता गया।

वंदे विष्णु... वंदे विष्णु... वंदे विष्णु...

प्रह्लाद ने विष्णु के समक्ष पूर्ण समर्पण कर दिया था।

वंदे विष्णु... वंदे विष्णु... वंदे विष्णु...

चिता से अब चीखें सुनाई देने लगीं किंतु वे चीखें प्रह्लाद की नहीं अपितु होलिका की थीं। अग्नि ने उसकी त्वचा को जला दिया। उसका माँस पिघलने लगा। परंतु प्रह्लाद का बाल भी बाँका नहीं हुआ मानो किसी दिव्य और मनोहारी आवरण ने उसे ढक लिया था। होलिका, जलकर भस्म हो रही थी। उसने अपने वरदान का दुरुपयोग किया था इसलिए दैवी शक्तियों ने होलिका से उसका वरदान वापस ले लिया था। आग की लपटें मंद पड़ीं तो हिरण्यकशिपु स्तब्ध रह गया। प्रह्लाद जीवित बैठा था और होलिका जलकर मर चुकी थी। हिरण्यकशिपु क्रोध से काँप रहा था। उसने प्रह्लाद को चिता से बाहर घसीटा और चंद्रशिला के स्तंभ के

सामने फेंक दिया।

'बहुत हो चुका! लगता है मुझे ही अपने हाथों से तुम्हारे जीवन का अंत करना पड़ेगा।'

'यह तभी संभव है यदि मेरे प्रभु की ऐसी इच्छा हो। यदि वे नहीं चाहेंगे तो आप भी कुछ नहीं कर सकते।'

'मैं तुम्हें इस खंभे से बाँधकर तुम्हारी आँतें बाहर निकाल लूँगा। क्या तुम्हारा विष्णु मुझे रोकने के लिए यहाँ आएगा?'

'उन्हें कहीं आने की आवश्यकता नहीं है,' प्रह्लाद मुस्कुराया। 'वे तो सर्वत्र व्याप्त हैं। वे हर जगह मौजूद हैं। हर तत्त्व में हैं। हर कोशिका में हैं। आप में, मुझ में और इस खंभे में भी हैं।'

'खंभे में?' हिरण्यकशिपु ने ठहाका लगाया।

'हाँ, पिताजी। वे थे, हैं और रहेंगे।'

'मुझे भी दिखाओ।'

हिरण्यकशिपु ने अपनी गदा से स्तंभ पर प्रहार किया तो प्रह्लाद ने आँखें बंद कर लीं।

'बुलाओ अपने भगवान को। मुझे भी उसे देखना है। उसकी---'

हिरण्यकशिपु के शब्द उसके गले में ही रह गए। स्तंभ बीच में से फट रहा था। उसके दोनों हिस्से टूट रहे थे और भीतर से प्रकाश की लहर निकल रही थी। उसके अंदर से एक प्राणी प्रकट हुआ जिसे स्तंभ ने शायद छिपा रखा था। एक विशाल प्राणी जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। शरीर-विज्ञान उसकी कल्पना नहीं कर सकता। वह न मनुष्य था, न पशु। न देवता और न दानव। वह उनमें से कोई न होकर भी सबकुछ था। सभी संभव स्वरूपों का मिश्रण। एक पारलौकिक संकर, भयावह किंतु सम्मोहक।

नृसिंह। इनसानी सिंह के रूप में विष्णु। दैत्य की मृत्यु की हर शर्त को पूरा करने वाला रूप।

नृसिंह ने हिरण्यकशिपु को बाँहों में भरा और उसे घसीटकर महल के प्रवेश-द्वार की दहलीज तक ले गया। अब हिरण्यकशिपु न घर के अंदर था, न बाहर। गोधूलि की बेला थी जिसे न दिन कह सकते थे और न रात। नृसिंह ने दैत्य को अपनी गोद में लिटा लिया। अब वह धरती और आकाश के बीच में था। जल और थल दोनों से दूर।

'तुझे वरदान मिला है कि तू धातु, पत्थर या लकड़ी के बने अस्त्र-शस्त्र से नहीं मारा जा सकता,' नृसिंह अवतार ने गरजकर कहा। 'मैं इनमें से किसी का उपयोग नहीं करूँगा। मेरे पंजे तेरा माँस चीर देंगे।'

नृसिंह ने जैसे ही अपने नाखून दैत्य के शरीर में गढ़ाए, वह जोर से चिल्लाया। उसका पेट फट गया और आँतें बाहर आ गईं। नृसिंह ने उसकी आँतों को अपने गले में लटका लिया और फिर दैत्य का रक्त चाटने लगा। प्रह्लाद, भगवान के सामने नतमस्तक हो गया। विष्णु

हँस रहे थे क्योंकि अब दोनों भाई मारे जा चुके थे। विष्णु ने प्रह्लाद की रक्षा कर ली थी।

और पृथ्वी पर जय और विजय का पहला जन्म समाप्त हो चुका था।

28
नृसिंह और शिव का सामना



हिरण्यकशिपु के अंत से सभी अत्यंत प्रसन्न थे। देवता हर्षित थे। मनुष्य आनंद से झूम रहे थे। पंचतत्त्व उत्सव मना रहे थे। तभी कुछ ऐसा हुआ कि सभी सन्न रह गए। वे भयभीत होकर एक-दूसरे के निकट आ गए। इशारे करने लगे और उस गर्जना को सुनने लगे जिसने समूचे ब्रह्मांड को भीतर तक हिला दिया था।

एक क्षण पहले, उस ध्वनि ने उन्हें हर्षोल्लास से भर दिया था। किंतु अब वही आवाज़ उन्हें भयभीत कर रही थी।

विष्णु ने एक संकट का तो अंत कर दिया किंतु साथ में एक नया संकट उत्पन्न हो गया जो पिछले वाले से भी अधिक भयंकर था। ऐसा प्रतीत हुआ कि भगवान विष्णु मूल रूप में लौटने के बजाय नृसिंह रूप में ही रह गए थे। वह अब भी रोष की अवस्था में थे जिसमें उन्होंने असुर की आँतों को निकाला था। ऐसा लगा कि उस नृशंस वध ने नृसिंह अवतार को और भड़का दिया था। वे उग्रता से आगे बढ़ रहे थे मानो सब कुछ नष्ट कर देंगे। ब्रह्मांड काँप उठा। वह भयभीत था कि कहीं नृसिंह उसे चीर न डालें। ब्रह्मा ने तुरंत प्रह्लाद को विष्णु से प्रार्थना करने को कहा। प्रह्लाद ने हरसंभव प्रयास किया किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। फिर ब्रह्मा ने शिव की ओर देखा।

‘श्री हरि ने आपके रुद्र तांडव रूप को शांत किया था। अब उन्हें नियंत्रित करने की आपकी बारी है।’

‘इस अवतार में रजस् गुण की अधिकता है क्योंकि इसने हिरण्यकशिपु का रक्त चखा है,’ शिव ने स्पष्ट किया। ‘इसी कारण यह क्रोधाग्नि भड़क रही है। यदि हमने इस देह को नष्ट नहीं किया तो श्रीहरि सदा के लिए हिंस्र रूप में रह जाएँगे।’

यह कहकर शिव ने अपना एक बाल तोड़कर वीरभद्र को उत्पन्न किया।

‘नृसिंह, पूरे जगत में वीभत्स रूप लिए घूम रहे हैं। उन्हें शांत करो।’

वीरभद्र ने देखा कि नृसिंह अवतार नक्षत्रों के निकट खड़े गुर्रा रहे थे। वे एक-एक करके उन सबको तोड़ने का प्रयास कर रहे थे। वीरभद्र ने नृसिंह अवतार के सामने हाथ जोड़े और कहा।

‘शांत हो जाइये, प्रभु! आप परम रक्षक हैं और आपने धर्म की पुनर्स्थापना लिए अवतार लिया है। नृसिंह के रूप में आपका उद्देश्य पूर्ण हो चुका है। यह अवतार, मुखौटा मात्र है। इसे अपना चेहरा न बनने दें। इस बर्बर और हिंसक शरीर के नीचे आत्मा को न दबने दें। इसका अंत करके पुन: अपने परोपकारी स्वरूप में लौट आइये।’

किंतु नृसिंह ने अंबर को खरोंचना शुरू कर दिया। उन्होंने झपटकर वीरभद्र पर भी आक्रमण किया तो उसने तुरंत समर्पण कर दिया। वीरभद्र को पता था कि उसके लिए विष्णु का सामना करना असंभव था। वह पीछे हटा और फिर अचानक रुक गया। कुछ विचित्र हो रहा था। सूरज छिपने लगा था। नक्षत्रों की चमक फीकी पड़ रही थी। आकाशगंगा पर जैसे ग्रहण सा लग गया था। नृसिंह के समक्ष कोई प्रकट हो रहा था। विशालकाय पंखों ने संपूर्ण आकाश को ढक लिया। उनकी सरसराहट नृसिंह की गर्जना से भी तेज थी और उनकी चमक, सभी नक्षत्रों के प्रकाश से अधिक थी। वीरभद्र, घुटनों के बल बैठ गया और महादेव को देखने लगा।

परंतु इस बार शिव उस रूप में प्रकट नहीं हुए थे जिस रूप में वीरभद्र उन्हें देखता था।

महादेव ने भी एक अवतार ले लिया था। नृसिंह जैसा एक प्रतापी संकर रूप। उस अवतार का आधा भाग, आठ पैरों वाले सिंह का था और शेष आधा भाग, सहस्त्र भुजाधारी सुनहरे पक्षी का। उसकी कलगी में से अनोखा प्रकाश निकल रहा था और आँखों में चमक थी। उसके पंजे अत्यंत नुकीले और प्रचंड थे।

शिव ने शरभ का रूप धारण कर लिया था।



नृसिंह ने जब ऊपर एक अन्य जीव को मँडराते देखा तो उसने शरभ के पंखों को नोंचने के लिए ऊपर छलांग लगाई। वह शरभ की आँखें फोड़ना और चोंच तोड़ देना चाहता था। किंतु हिंसक नृसिंह जितनी ऊँची छलांग लगाता, शरभ उतना ही ऊपर उड़ जाता था। वह नृसिंह के ठीक ऊपर था किंतु हर बार उसकी पहुँच से दूर!

ऊँचा। ऊँचा। और ऊँचा।

फिर शरभ ने झपट्टा मारा। उसने नीचे की ओर गोता लगाया और नृसिंह को पंजों में जकड़ लिया और ऊपर उड़ गया।

ऊपर। और ऊपर। बहुत ऊपर।

हर लोक से ऊपर। हर आयाम और हरसंभव क्षेत्र से पार।

बहुत ऊपर।

ब्रह्मांड के सर्वोच्च शिखर से भी ऊपर पहुँचकर शरभ ने नृसिंह को छोड़ दिया। ब्रह्मांड नृसिंह को पृथ्वी की ओर गिरते देख रहा था। वह विशाल उल्का की भाँति तेजी से नीचे गिरता चला गया। नृसिंह अवतार ज्यों ही धरती से टकराया, वह आवेश की मुद्रा से बाहर आ गया। शरभ ने तत्काल नृसिंह का सिर काट डाला। अंत में शरभ ने नृसिंह की खाल उतार ली और शरीर के भीतर के अवयव भी निकाल दिए।

इस प्रकार विष्णु, अपने अवतार से मुक्त हुए।

29

इंद्र द्वारा भ्रूण-हत्या का प्रयास



दिति नदी-तट पर खड़ी थी। नदी का जल आकाश के प्रतिबिंब के समान नीला था, किंतु दिति को केवल लाल रंग दिखाई पड़ रहा था। विष्णु द्वारा मारे गए उसके पुत्रों, हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु के रक्त के समान लाल। उसे देवताओं द्वारा मारे गए अपने असंख्य दैत्य पुत्रों का रक्त दिख रहा था। वे सब दिति से कह रहे थे कि उन्हें शांति नहीं मिली थी। वे अपनी माँ से अपनी मृत्यु का बदला लेने को कह रहे थे। दिति बैठ गई और फिर उसने कश्यप का स्मरण किया।

‘तुम क्या चाहती हो, दिति?’ उसके पति ने पूछा।

‘एक पुत्र। मुझे ऐसा पुत्र प्रदान करें जो इंद्र को मार सकता हो।’

‘इंद्र ही क्यों?’

‘विष्णु अमर हैं, किंतु इंद्र नहीं। वह देवराज है। देवताओं का शासक। उसी के कारण मेरे पुत्रों की मृत्यु हुई है। इंद्र को मरना होगा। क्या आप एक माँ को ऐसा पुत्र देंगे?’

कश्यप ने गहरी श्वास ली। इंद्र भी उन्हीं का पुत्र था, जिसका जन्म दिति की बहन, अदिति के गर्भ से हुआ था। परंतु कश्यप, निष्पक्ष थे। उन्हें लगा कि दिति की पीड़ा को सचमुच शांत किया जाना चाहिए। अतः उन्होंने दिति की बात मान ली, किंतु साथ में कुछ कड़ी शर्तें भी रखीं।

‘वह भ्रूण, तुम्हारे गर्भ में सौ वर्ष तक रहेगा। इस अवधि के दौरान तुम्हें तपस्विनी की तरह रहना होगा। वचन और कर्म, दोनों से अहिंसा का अभ्यास करना होगा। स्वच्छता से संबंधित प्रत्येक नियम का पूर्ण रूप से पालन करना तथा अशुद्ध वस्तुओं से दूर रहना होगा। कभी मैले वस्त्र धारण मत करना और बिना पैर धोए मत सोना। यदि तुम इस प्रयास में सफल हो गईं तो तुम्हारा होने वाला पुत्र अवश्य ही इंद्र का अंत कर देगा। परंतु यदि ऐसा न

हो पाया और तुमने किसी नियम का उल्लंघन कर दिया तो तुम्हारा पुत्र, इंद्र का मित्र बन जाएगा।'

दिति हँस पड़ी। वह देवराज के मित्र को नहीं, अपितु उसके काल को जन्म देने वाली थी। वह श्रद्धापूर्वक सभी नियमों का पालन करने लगी। शीघ्र ही अपने उद्देश्य के प्रति उसका समर्पण इतना प्रचंड स्तर हो गया कि यह समाचार चारों ओर फैल गया। गंधर्वों ने देवताओं को, और यक्षों ने दैत्यों को इस बारे में बताया। समाचार जैसे ही अदिति तक पहुँचा, उसने तुरंत इंद्र को सतर्क कर दिया।

'पुत्र! दिति के गर्भ में पल रहा शिशु तुम्हारी मृत्यु का कारण बन सकता है। शीघ्र कोई उपाय करो।'

देवराज को एहसास हो गया कि संकट गंभीर था। उसने दैत्यों को आसानी से जीत लिया था, परंतु दिति एक स्त्री थी। वह माँ थी। इंद्र, माँ के संकल्प की शक्ति से भली-भाँति परिचित था। उसे पता था कि जितना प्रबल माँ का प्रेम होता है, उसकी घृणा भी उतनी ही उग्र होती है। उसे इस बात का आभास था कि वह देवताओं से जो चाहेगी, छीन लेगी और सभी उसके सामने असमर्थ से खड़े रह जाएँगे। ऐसे में इंद्र की मूल प्रवृत्ति निकलकर सामने आ गई। एकमात्र उपाय यही था कि दिति के शरीर में प्रवेश करके उस संकट का अंत कर दिया जाए किंतु यह कार्य इतना सरल नहीं था। दिति की कठोर तपस्या ने उसके गर्भ को अभेद्य बना दिया था।

दिति की तपस्या...

देवराज के मन में अचानक एक विचार कौंधा। दिति की तपस्या की सफलता पूरी तरह से कश्यप ऋषि की शर्तों पर निर्भर करती थी। उसका शरीर, गर्भ में पल रहे भ्रूण के लिए अभेद्य इसलिए हो गया था क्योंकि उसने अब तक प्रत्येक नियम का सफलतापूर्वक पालन किया था।

किंतु यदि उससे कोई भूल हो जाए तो?

इंद्र, धरती पर आया और दिति से छिपकर उसके आश्रम के निकट रहने लगा। वह सदा इस बात पर दृष्टि रखता था कि दिति से कब कोई भूल हो जाए। किंतु दिति की तपस्या पूर्णतः दोषरहित थी। तपस्या उसकी जीवन-शैली बन चुकी थी और वह सभी नियमों का त्रुटिहीन ढंग से पालन कर रही थी। देवराज इंद्र के मन में प्रतिदिन सूर्योदय के समय आशा बँधती लेकिन वह सूर्यास्त के साथ बिखर जाती थी। वह देख रहा था कि प्रतिदिन दिति के उदर का आकार बढ़ता जा रहा था। इंद्र को अपना अंत निकट प्रतीत होने लगा। प्रसव का समय पूरा होने वाला था। केवल तीन दिन शेष थे।

तीन दिन...

इंद्र ने हारकर समर्पण कर दिया। उसने अपने लिए शोक-गीत तक लिखना शुरू कर दिया था कि अचानक एक नया दिन उसके पक्ष में उदित हुआ। दिति की गर्भावस्था पूर्ण हो चुकी थी, किंतु अब उसे थकान रहने लगी थी। कठोर तपस्या ने उसके शरीर पर नकारात्मक प्रभाव डाला था। उस शाम, दिति रोज की अपेक्षा अधिक थकान महसूस कर रही थी। वह बिना पैर धोए ही सो गई। देवराज की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा! इंद्र को इसी एक अशौच कृत्य की प्रतीक्षा थी। सहसा दिति, दुर्बल हो गई और उसका गर्भ असुरक्षित हो गया।

अगले ही क्षण, इंद्र उसके गर्भ में प्रवेश कर गया।

इंद्र ने वज्र का आह्वान किया और गर्भ में पल रहे भ्रूण के सात टुकड़े कर डाले। वह हाँफ रहा था, परंतु हँस भी रहा था। अचानक उसका दम घुटने लगा। गर्भपात पूर्ण नहीं हुआ था। सातों टुकड़े अब भी जीवित थे। वे छटपटा रहे और विलाप कर रहे थे। क्रोध और उलझन से भरे इंद्र ने चिल्लाकर कहा, 'मा रुद्' यानी 'रोओ मत'। परंतु उसका प्रयास व्यर्थ गया। गर्भ के सात टुकड़ों का स्वर लगातार ऊँचा होता जा रहा था। देवराज ने हताश होकर प्रत्येक टुकड़े के फिर सात-सात टुकड़े कर डाले परंतु फिर भी उनका अंत नहीं हुआ अपितु उनका रुदन सात गुना बढ़ गया। गर्भ में हो रहे कोलाहल को सुनकर दिति जाग गई। इंद्र वहाँ से गायब हो गया।

दिति ने पेट पर हाथ रखा तो वह तुरंत समझ गई कि उसके साथ क्या हुआ था।

वह हार चुकी थी।

एक क्षण की चूक ने सौ वर्ष की तपस्या को नष्ट कर दिया था।

दिति का भ्रूण, उनचास भागों में खंडित हो चुका था। उसने सभी उनचास जीवों को जन्म दिया। कश्यप के वचनानुसार, वे सभी इंद्र के लिए संकट नहीं बने अपितु उसके मित्र हो गए। चूँकि इंद्र ने उन्हें सबसे पहले 'मा रुद्' कहकर संबोधित किया था इसलिए वे उनचास भाई, सामूहिक रूप से मरुत्त कहलाए।

तूफान के देवता।

कुछ समय बाद मरुत्त, अपनी माँ को छोड़कर स्वर्ग के देवता बन गए। परंतु दिति अकेली नहीं थी। क्रोध अब भी उसके सीने में धधक रहा था। उसने इंद्र को नष्ट करने के लिए कश्यप से एक और पुत्र की माँग की। ऐसा पुत्र, जो इंद्र के वज्र के समक्ष अजेय हो। ऋषि ने एक बार फिर दिति की प्रार्थना को स्वीकार किया।

'क्या तुम्हें पता है तुम क्या माँग रही हो? वज्र के आघात को सहना लगभग असंभव है। दस सहस्त्र वर्षों तक साधना करने पर ही तुम्हें ऐसा पुत्र प्राप्त हो सकता है।'

'मैं करूँगी।'

'दस हजार वर्ष, दिति! क्या तुम यह कर पाओगी?'

दिति कुछ नहीं बोली। वह पद्मासन में बैठी और उसने अदिति को शाप दे दिया।

‘तुम मेरी बहन नहीं हो सकतीं क्योंकि तुमने अपने पुत्र को मेरी अजन्मी संतान की हत्या करने भेजा। तुम माँ होने के योग्य नहीं हो। तुम्हें देवमाता होने का अधिकार नहीं है। मेरी तरह तुम्हें भी अपने पुत्रों को अपनी आँखों के सामने मरते हुए देखना पड़ेगा।’

यह सुनकर अदिति, अपने पति कश्यप के सामने फूट-फूट कर रोने लगी।

‘शोक मत करो,’ कश्यप ने अदिति को सांत्वना दी। ‘दिति का शाप, इस युग में नहीं अपितु द्वापर युग में फलित होगा। देवकी के रूप में तुम्हारा पुनर्जन्म होगा। तुम्हारा भाई, कंस तुम्हें कारागार में बंद कर देगा और तुम्हारे पुत्रों को एक-एक करके मार डालेगा। परंतु वह तुम्हारी एक संतान को नहीं मार पाएगा क्योंकि तुम्हारे गर्भ में अंत में वह प्रविष्ट होगा, जिसे कोई नहीं मार सकता।’

‘कौन?’

‘महाविष्णु। उनका कृष्ण अवतार।’

कश्यप और अदिति से कोसों दूर बैठी दिति, गहरी श्वास ले रही थी। दस हजार वर्ष की तपस्या आरंभ करने का समय हो गया था। उसने आँखें बंद करने से पहले आकाश की ओर देखा।

‘इंद्र, यह कहानी समाप्त नहीं हुई। अभी नहीं!’

30
प्रह्लाद की पराजय



च्यवन ऋषि जिज्ञासा से राजकुमार को देख रहे थे। वह राजसी चेहरा किसी गहन सोच में डूबा था।

'प्रह्लाद, तुम राजा बनोगे। तुम क्या खोज रहे हो?'

'उत्तर।'

'यह शब्द प्राय: भ्रमित करता है। उत्तर, वास्तव में कुछ और नहीं अपितु एक नया प्रश्न होता है। यह छद्म रूप धारण करके इधर से उधर घूमता है किंतु सात्विक दृष्टि वाले इसका असली रूप देख सकते हैं। मैं तुम्हें ज्ञानवान बनाने को उत्सुक हूँ। पूछो।'

'पृथ्वी पर सबसे महान तीर्थ कौन-सा है? धरती का कौन-सा भाग सबसे धन्य है?'

'नैमिषारण्य,' ऋषि ने कहा।

'यह अत्यंत आकर्षक नाम है। परंतु इसका अर्थ क्या है?'

'इसकी उत्पत्ति भगवान विष्णु के चमत्कार से हुई थी। बहुत पहले, ब्रह्मांड के सभी ऋषियों ने विष्णु से ऐसे स्थान का पता पूछा जहाँ वे निर्बाध यज्ञ कर सकें। विष्णु ने अपना सुदर्शन चक्र छोड़ दिया और ऋषियों को उसके पीछे चलने का निर्देश दिया। उन्होंने कहा कि वे ज्यों ही सही स्थान पर पहुँचेंगे, चक्र का एक अरा अलग होकर नीचे गिर जाएगा।'

प्रह्लाद ने देखा कि ऋषि च्यवन ने धरती पर एक वृत्त बना दिया।

'कल्पना करो, प्रह्लाद! वह कितना अलौकिक दृश्य रहा होगा। सुदर्शन के पीछे-पीछे चलता ऋषियों का समूह। उनके हृदय में विश्वास और आस्था के अतिरिक्त कुछ नहीं था। वह घातक अस्त्र, उनके हाथ थामकर उन्हें अदृश्य डोरियों से खींच रहा था। फिर वह उन्हें एक पवित्र भूमि तक ले गया। वे जब सबसे अनुकूल स्थान पर पहुँचे तो सुदर्शन का एक अरा टूटकर नीचे गिर गया। चक्र ने स्थान निर्धारित कर दिया था।'

‘ठीक वैसे ही जैसे काशी में महादेव के हाथ से कपाल गिर गया था।’

‘बिलकुल! चूँकि सुदर्शन के संकेंद्रित वृत्तों की परिधि को नैमि कहते हैं इसलिए ऋषियों ने उस स्थान का नाम नैमिषारण्य रखा।’

उस स्थान की कथा से अभिभूत प्रह्लाद अगले ही दिन नैमिषारण्य जाने के लिए निकल पड़ा। वह सुदर्शन चक्र की विकटता से भली-भाँति परिचित था। उसे मालूम था कि वह कितना दुर्जेय अस्त्र है। और ऐसी भूमि जिसने चक्र को भी विघटित कर दिया, निश्चित रूप से, असाधारण होगी। जैसे ही प्रह्लाद ने नैमिषारण्य में प्रवेश किया, वह अश्व से नीचे उतरा और नंगे पैर चलने लगा। उसके पैर की अंगुलियाँ झनझना रही थीं, साँसें गहरी होती जा रही थीं। फिर वह उस पवित्र स्थान तक पहुँच गया। उसने सोचा क्या उन ऋषियों के पदचिह्न अब भी उस जगह होंगे? क्या चक्र का टूटा अरा अब भी कहीं दबा हो सकता है? क्या वह अरा उसके पैरों को घायल कर सकता था? अथवा उस चक्र का स्वर्ण पिघलकर नैमिषारण्य का अभिषेक कर रहा था?

प्रह्लाद रुक गया।

एक वृक्ष के नीचे दो तपस्वी बैठे थे। वृक्ष के तने में कई बाण घुसे हुए थे। प्रह्लाद ने उन दोनों के पास धनुष और तरकस भी रखे देखे।

‘आप तपस्वी हैं किंतु आपके कर्म, धनुर्धारियों वाले प्रतीत होते हैं। आप कौन हैं? ब्राह्मण या क्षत्रिय?’

‘हम जो हैं, वही हैं।’

‘आप कहना क्या चाहते हैं?’ प्रह्लाद ने भौहें चढ़ा लीं। ‘यदि आप ऋषि हैं, तो आपने वृक्ष को बाणों से छलनी क्यों किया है?’

‘व्यक्ति को वही कार्य करना चाहिए जिसे करने में वह सक्षम हो। सम्मान अर्जित करने का यही तरीका है।’

उनकी बातें प्रह्लाद को विस्मित कर रही थीं। उनका अवहेलना भरा स्वर सुनकर प्रह्लाद को क्रोध आने लगा।

‘आप संभवत: जानते नहीं आप किससे बात रहे हैं। मैं राजकुमार प्रह्लाद हूँ। मैं वही हूँ जिसे बचाने के लिए भगवान विष्णु ने नृसिंह अवतार लिया था।’

‘विष्णु, हर उस प्राणी के लिए अवतार लेते हैं जो उनकी शरण में जाता है।’

प्रह्लाद आवेश में आ गया। उसने तपस्वियों के धनुष की संकेत करते हुए कहा, ‘तुम लोगों के ये पुराने अस्त्र-शस्त्र तुम्हारे स्वर से मेल नहीं खाते। यदि मैंने तुम्हारे साथ युद्ध किया तो तुम्हारे रक्त से यह भूमि अपवित्र हो जाएगी।’

तपस्वी उठकर खड़े हुए। ‘परंतु हम अजेय हैं।’

प्रह्लाद का अपने क्रोध पर से नियंत्रण समाप्त हो गया। उसने तपस्वियों से युद्ध आरंभ कर किया, और एक के बाद एक घातक अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करने लगा। उसने अपने बाणों को शक्तिशाली बनाने और दोनों तपस्वियों को पराजित करने के लिए विष्णु का भी ध्यान किया। किंतु सब उसकी इच्छा के विपरीत हो रहा था। तपस्वियों के छोटे और जीर्ण धनुष-बाण ने प्रह्लाद के अस्त्र-शस्त्रों को विफल कर दिया। उन दोनों ने प्रह्लाद के अस्त्रों का पूर्ण सामर्थ्य के साथ उत्तर दिया। राजकुमार प्रह्लाद की शक्ति और उसके अस्त्र-शस्त्र, दोनों क्षीण हो चले थे परंतु तपस्वियों का शस्त्रागार असीमित प्रतीत होता था। इस घटना को नैमिषारण्य का माया जाल मानकर प्रह्लाद वहाँ से भाग खड़ा हुआ और उसने वैकुंठ में शरण ली।

'वे कौन लोग हैं?' उसने विचलित होकर पूछा। 'मैं उन्हें पराजित क्यों नहीं कर सका?'

'क्या भक्त, ईश्वर को हरा सकता है?' विष्णु ने पूछा।

'ईश्वर? किंतु ईश्वर तो केवल आप हैं।'

विष्णु मुस्कुराने लगे। राजकुमार प्रह्लाद सहम गया।

'आप? क्या वे आप थे, प्रभु? वे दोनों?'

'हाँ। नर और नारायण। मेरा जुड़वां अवतार।'

प्रह्लाद स्तब्ध रह गया और प्रभु के चरणों में जा गिरा। 'मैं इतना अज्ञानी कैसे हो सकता हूँ? मैं उनमें आपके दर्शन क्यों नहीं कर सका? मैं आपको पराजित करने की चेष्टा कैसे कर बैठा?'

'तुम मुझे हरा नहीं सकते, प्रह्लाद। तुम मुझे केवल जीत सकते हो।'

'हरा नहीं सकता, किंतु जीत सकता हूँ?'

'हाँ। इस पहेली को सुलझाओ। फिर तुम मुझे और भी प्रिय हो जाओगे।'

प्रह्लाद ने बहुत सोच-विचार किया परंतु उसे कोई उत्तर नहीं मिला। तब उसने एक और प्रश्न पूछा।

'आप कहते हैं कि नर और नारायण, आपके जुड़वां अवतार हैं। क्या आप किसी और युग में उन रूपों को धारण कर पुन: पृथ्वी पर प्रकट होंगे?

'हाँ। द्वापर युग में।'

'और वे दोनों कौन होंगे?'

'मैं नारायण बनूँगा। और अर्जुन, नर का रूप होगा। मैं एक युद्ध के दौरान अर्जुन को गीत भी सुनाऊँगा।'

31
तारक का स्वर्ग पर आक्रमण



सूर्य, उदय होने से झिझक रहा था।

उस दिन सूर्योदय के साथ किसी की तपस्या के दस हजार वर्ष समाप्त होने वाले थे। एक माँ की तपस्या का लक्ष्य पूर्ण होने को था। उस माँ को इसी क्षण की प्रतीक्षा थी और वह अब नई अव्यवस्था को जन्म देने वाली थी। वह अपनी संतान को उसके भाई से प्रतिशोध लेने के भाव से सिक्त दूध पिलाना चाहती थी। परंतु सूर्य को पता था कि वह प्रकृति के नियम से बँधा है। उसके रथ के पहिये आगे बढ़ने लगे। आसमान में लालिमा फैलने लगी मानो किसी घाव से अब तक रक्त रिस रहा था। आखिर दिन निकल आया और सूर्य ने घबराकर उस माँ की ओर देखा।

दिति।

वह आँखें खोल रही थी। उसने अपने गर्भ को महसूस किया। वह जानती थी कि कश्यप का आशीर्वाद फलीभूत हो चुका था। उसने एक ऐसे पुत्र की माँग की थी जो इंद्र का वध कर सके, जो इंद्र के वज्र के सामने भी अजेय रहे। दिति, अब उस बालक को अपने भीतर अंकुरित होता महसूस कर सकती थी। उसने अपने हृदय में धधकती ज्वाला का संचार अपनी संतान में भी महसूस किया। उसका पुत्र प्रतिज्ञा कर रहा था कि वह अन्य दैत्यों की भांति इंद्र से पराजित नहीं होगा और मरुत्त की तरह अपनी माँ के साथ विश्वासघात नहीं करेगा। वह देवराज के केश पकड़कर उसे घसीटकर अपनी माँ के चरणों में डाल देगा। दिति ने मुस्कुराकर अपने पुत्र का नामकरण कर दिया।

वजरांग। वह, जिसका हर अंग वज्र के समान था।

शीघ्र ही, कश्यप की वाणी सत्य हो गई और दिति के पुत्र ने इंद्र को पराजित कर दिया। देवराज ने दिति के सामने घुटने टेक दिए। वह भय से काँप रहा था। ऐसा लगा मानो दिति की दृष्टि इंद्र को दो भागों में चीर देगी। फिर वह बोली।

‘इसका सिर काट दो।’

वजरांग ने तलवार उठाकर ज्यों ही इंद्र का सिर काटना चाहा, ब्रह्मा बीच में आ गए।

‘रुको! ऐसा मत करो, दिति। इंद्र, देवताओं का राजा है। ब्रह्मांड की कार्य-पद्धति का अभिन्न अंग है। इंद्र की मृत्यु से तुम्हें प्रसन्नता हो सकती है परंतु ब्रह्मांड में भयंकर अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी। तुम्हारा पुत्र इंद्र का अभिमान तोड़ चुका है। अब उसको जीवनदान दे दिया जाए तो वह और लज्जित महसूस करेगा। हर लोक में इंद्र का अपमान होगा। इससे बुरा दंड क्या हो सकता है?’

दिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। परंतु वजरांग को ब्रह्मा की बात उचित लगी।

‘मैं आपसे सहमत हूँ। अपमान, मृत्यु से अधिक घृणित होता है। यदि हम इंद्र को अपमानित जीवन जीने पर विवश कर सकते हैं तो इसे मारने की क्या आवश्यकता है? परम पिता, मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।’

वजरांग से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसके लिए वजरांगी नामक एक सुंदर स्त्री की रचना की। दोनों का विवाह हो गया और फिर वजरांग तपस्या करने वन में चला गया। अपने पति की भक्ति देखकर, वजरांगी ने भी अपने पति के लौटकर आने तक ध्यान करने का निर्णय लिया। उन दोनों की धर्मपरायणता ने सबको अचंभित कर दिया था। इंद्र को छोड़कर सभी विस्मित थे। देवराज अब भी अपनी पराजय से पीड़ित था। उसने प्रतिशोध लेने के लिए वजरांगी को निशाना बनाया। वह एक सर्प का रूप धारण करके वजरांगी के पास पहुँचा और उसे अनेक बार डस लिया। परंतु ब्रह्मा की कृपा से वजरांगी बच गई। इंद्र का यह प्रयास विफल हो गया तो उसने वजरांगी पर वर्षा करने के लिए मेघों का आह्वान किया। मूसलाधार वर्षा हुई किंतु ध्यान में बैठी वजरांगी वर्षा को सहन करती रही। जब वजरांग लौटकर आया तो उसने देखा कि उसकी पत्नी पूरी तरह भीग चुकी थी और उसकी माँ क्रोधाग्नि में जल रही थी।

‘तुमने अपने भीतर के दैत्य को शांत कर लिया और उदारता अपनाई,’ दिति ने चीखकर कहा। ‘परंतु तुम्हारे किए का दुष्परिणाम वजरांगी को भुगतना पड़ रहा है।’

यह सुनकर वजरांग क्रोधित हो गया और ब्रह्मा के पास पहुँचा। उसने इंद्र का सिर धड़ से अलग कर देने की धमकी दी। ब्रह्मा ने घबराकर वही किया जो वह कर सकते थे। उन्होंने वजरांग को एक और वरदान दे दिया!

‘मैं तुम्हें एक पुत्र का आशीर्वाद देता हूँ। चूँकि तुम्हारे परिवार को एक देवता ने सताया है इसलिए तुम्हारा पुत्र बड़ा होकर सभी देवताओं के लिए संकट बन जाएगा। उसका नाम तारक होगा।’

कई वर्षों बाद, तारक नाम के दैत्य ने जन्म लिया और उसे ब्रह्मा की भविष्यवाणी के बारे

में पता चला। बड़ा होने पर तारक, ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए परिपत्र पर्वत की ओर चल दिया। उसने तपस्या के लिए बर्फीला स्थान चुना जहाँ जीवन का चिह्न तक नहीं था और वहीं बैठकर कठोर तप करने लगा। वह सौ वर्ष तक एक पैर पर खड़ा रहा, फिर वह पैर के अंगूठे पर खड़ा हो गया। उसके बाद उसने सौ साल तक पानी के भीतर रहकर तप किया, और फिर आग के बीच में बैठकर ब्रह्मा की उपासना की। उसके संकल्प की दृढ़ता से चकित होकर ब्रह्मा को प्रकट होना पड़ा।

'तुम अद्वितीय हो। परंतु मैं तुम्हें पहले ही आशीर्वाद दे चुका हूँ कि तुम्हें पराजित करना अत्यंत कठिन होगा। तुम्हें और क्या चाहिए?'

'मैं मृत्यु पर विजय पाना चाहता हूँ।'

'यदि तुम अमर होना चाहते हो, तो यह असंभव है।'

'तो फिर मुझे यह वरदान दीजिए कि मुझे बालक के अलावा कोई न मार सके।'

'बालक?'

'हाँ। और वह भी महादेव का पुत्र।'

'महादेव? मैं समझ...'

ब्रह्मा कहते-कहते रुक गए।

महादेव का पुत्र...

उन्हें तारक की माँग तलवार की भाँति चुभ गई। तारक की यह धूर्ततापूर्ण चाल थी। हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु की तरह वह भी अनंत जीवन को प्राप्त करने का प्रयास कर रहा था। ब्रह्मा के वरदान के बाद तारक ने स्वर्ग पर आक्रमण कर दिया। देवताओं ने इंद्र के नेतृत्व में युद्ध किया किंतु वरदान के चलते तारक ने देवताओं का संयुक्त प्रतिरोध भी ध्वस्त कर गया। उसने देवराज इंद्र को बंदी बनाकर, उसके केश काट दिए और शरीर पर कुत्तों के पैरों के चिह्न अंकित कर दिए। विष्णु भी तारक को पराजित करने में विफल रहे। तब देवताओं को पुन: ब्रह्मा के पास जाना पड़ा।

'उस दैत्य का अंत किया जा सकता है,' ब्रह्मा ने देवताओं को आश्वासन दिया। 'किंतु इसके लिए हमें महादेव के पुत्र की आवश्यकता है।'

'महादेव तो अब तक सती के शोक में डूबे हैं,' देवताओं ने एक स्वर में कहा। 'उन्होंने ब्रह्मांड के समस्त क्रिया-कलापों से दूरी बना रखी है और वे अनंत ध्यान में लीन हो गए हैं। संभव है कि वह संतान उत्पन्न ही न करें।'

'तारक को भी यही लगता है। इसीलिए उसने मुझसे यह वरदान माँगा जिसे पाकर वह लगभग अमर हो गया है। परंतु हमें उसके प्रयास को विफल करना होगा। महादेव अब और अधिक विरक्त नहीं रह सकते। उन्हें विवाह करना होगा और एक संतान भी उत्पन्न करनी

होगी जो तारक का काल बनेगी।'

'परंतु आदिशक्ति...'

'आदिशक्ति का पुनर्जन्म हो चुका है।'

'पुनर्जन्म?'

'हाँ। सती का पुनर्जन्म हो चुका है और वह फिर से शिव को पाने के लिए तप कर रही हैं। एक वही हैं जो शिव को संतान उत्पन्न करने के लिए प्रेरित कर सकती हैं। किंतु प्रश्न यह है कि...'

ब्रह्मा चुप हो गए। सबके भीतर वही प्रश्न गूँज रहा था।

क्या तपस्वी शिव, संतान उत्पन्न करेंगे?

32
पार्वती ने शिव को मनाया



ब्रह्मा, बाणों को शोभित करने वाले पुष्प सहला रहे थे। कमल, अशोक, आम और मल्लिका। फिर वे ईख से बने धनुष और मधुमक्खियों से निर्मित प्रत्यंचा को सहलाने लगे। फिर वे मुस्कुराकर बोले।

'कामदेव, तुम इन फूलों को कांतियुक्त कैसे रखते हो?'

प्रेम के देवता ने हाथ जोड़कर कहा, 'मैं कुछ नहीं करता, परम पिता। इसका कारण आप हैं। आपकी जीवनदायी ऊर्जा, जिसने मुझे बनाया है, मेरे बाणों को जीवंत रखती है।'

'क्या तुम जानते हो कि तुम मेरे शरीर के किस अंग से उत्पन्न हुए हो?'

'आपके वक्ष से।'

'हाँ। इसीलिए तुम्हारा प्रधान भाव प्रेम है। तुम मेरे हृदय से प्रकट हुए हो ताकि तुम दूसरों के हृदय में प्रवेश कर सको।'

'यही मेरे लिए सर्वोच्च आनंद है। मेरे धनुष की झंकार। प्रेम की प्रथम बहार, जब मेरा बाण किसी को घायल करता है। वह भावना उस व्यक्ति के भीतर फूल की पंखुड़ियों की तरह उभरती है। वह उसे मिलन की ओर ले जाती है जहाँ से नई सृष्टि का उदय होता है। और जब भी ऐसा होता है, मैं आप, यानी परमपिता बन जाता हूँ। मैं ब्रह्मा हो जाता हूँ।'

'तुम्हें यह कार्य फिर से करना होगा।'

'मुझे प्रसन्नता होगी। किंतु मेरा लक्ष्य कौन है? मेरे बाण किसी के भी हृदय को बींध सकते हैं।'

'क्या ये बाण महादेव के हृदय को बींध सकेंगे?'

कामदेव घबरा गए। उनका चेहरा मुरझाने लगा, गला सूख गया। वह सती की मृत्यु और शिव की पीड़ा के बारे में कहने लगे।

‘परम पिता, महादेव ने आपको कामुकता-प्रदर्शन के लिए दंडित किया था। अब आप उन्हीं के भीतर काम का संचार करना चाहते हैं?’

ब्रह्मा ने कामदेव को तारक को मिले वरदान और आदिशक्ति के पुनर्जन्म के बारे में बताया।

‘आदिशक्ति का पुनर्जन्म हो गया है?’

‘हाँ, काम। वे तीन बहनें थीं। पहली बहन, कुटिला बहुत अहंकारी थी तो मैंने उसे नदी बन जाने का शाप दिया। दूसरी, रागिनी अत्यधिक दुर्बल थी इसलिए उसे संध्या बन जाने का शाप दिया। परंतु तीसरी बहन, आदिशक्ति का अवतार है।’

‘उनका नाम क्या है?’

‘पार्वती।’ ब्रह्मा ने दूर किसी स्थान की ओर संकेत करते हुए कहा। ‘वे महादेव के ध्यान में लीन हैं। काम! केवल तुम ही महादेव को ध्यान से बाहर ला सकते हो। तुम्हें उनके भीतर वासना का संचार करना होगा। उनके मन में पुन: प्रेम जगाना होगा।’

कुछ समय पहले ही, पार्वती ने शिव की भक्ति और तपस्या आरंभ की थी। हिमालय राज हिमवंत और उनकी पत्नी मैना से जन्मीं राजकुमारी पार्वती उन्हें पीछे छोड़ आई थीं। उनके माता-पिता उनकी बहनों के लिए शोक करते थे, जिन्हें ब्रह्मा ने शाप दिया था। मैना ने पार्वती से रुकने की विनती की लेकिन उन्होंने माँ को अपने जन्म से जुड़ी भविष्यवाणी याद दिला दी।

‘क्या आप भूल गईं कि नारद मुनि ने मेरी जन्म-कुंडली देखकर क्या कहा था? उन्होंने कहा था कि मेरा जन्म शिव की पत्नी बनकर उन्हीं में विलीन हो जाने के लिए हुआ है। मैं बचपन से कैलाश पर्वत पर महादेव के साथ रहने का स्वप्न देखती आई हूँ। शिव ही मेरी नियति हैं और मुझे उसी मार्ग पर रहना है। आप शोक मत कीजिए, माँ। मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं अपने अस्तित्व का अर्थ जान सकूँ।’

हिमालय पर्वत पर जाकर पार्वती ने शिव की उपासना आरंभ कर दी। कामदेव उनकी ओर देख रहे थे। तभी उनकी दृष्टि महादेव पर पड़ी जिसे देखकर कामदेव भयभीत हो गए। वह महायोगी, ध्यान की मुद्रा में स्थिर बैठे थे। उनकी आँखे बंद थीं, बाँहें तनी हुई थीं। रीढ़ बिलकुल सीधी। वह दुख में ऐसे डूबे थे मानो पत्थर से लहू रिस रहा हो। कामदेव भय से काँपने लगे। उनकी अँगुलियाँ बाण उठा नहीं पा रही थीं किंतु ब्रह्मा के शब्द कामदेव का हाथ पकड़कर धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा रहे थे।

तारक के लिए...

कामदेव ने निशाना साधा और बाण छोड़ दिया। बाण जैसे ही शिव की ओर बढ़ा, मधुमक्खियाँ गुंजार करने लगीं और पक्षी गुनगुनाने लगे। सुगंधित बयार महादेव के केश

सहलाने लगी। उसने महादेव के नथुनों से प्रवेश करके इंद्रियों को सिक्त कर दिया। कामदेव के प्रभाव से वसंत प्रकट हो गया था। मिलन की ऋतु। प्रकृति में संभोग का समय। कामदेव का बाण भगवान शिव के हृदय में उतर गया। उसके चार पुष्प, शिव के चट्टान जैसे दृढ़ मन में जड़ें जमाने का प्रयास करने लगे। वे उनके भीतर प्रेम जगाने का प्रयत्न कर रहे थे। संताप के ढेर में भाव उत्पन्न करना चाह रहे थे। शिव कुपित हो गए। उन्होंने अपने नेत्र खोल दिए।

फिर उन्होंने तीसरा नेत्र भी खोल दिया।

उनके तीसरे नेत्र से नारकीय ज्वाला निकली जिसने कामदेव को भस्म कर दिया। सारे पक्षी और फूल जल गए। ब्रह्मांड थर्रा उठा। कामदेव का बाण नष्ट हो गया। उसने शिव में उत्तेजना को न जगाकर विस्फोट उत्पन्न कर दिया था। कैलाशनाथ अत्यंत क्रोधित थे। आग की लपटों ने वसंत को झुलसा दिया। भोग के बाण ने शिव के योग में बाधा डाली थी और उनकी ज्वाला अब कामदेव के रोम-रोम को जला रही थी।

'यह आपने क्या कर डाला?'

ब्रह्मा विलाप करने लगे। वे दौड़ते हुए शिव के पास आए। अन्य देवता भी प्रकट हो गए और कामदेव के भीषण अंत पर शोक मनाने लगे। उन्होंने शिव को तारक और उसे मिले वरदान के बारे में बताया जो समस्त ब्रह्मांड के लिए संकट बन गया था।

'आपने यम को मार डाला, जो मृत्यु के अधिष्ठाता हैं,' ब्रह्मा ने काँपते हुए कहा। 'और अब आपने काम को भी समाप्त कर दिया जो जीवन का स्रोत है।'

शिव कुछ देर चुपचाप बैठे रहे। फिर वे उठकर कामदेव की पत्नी रति की ओर बढ़ने लगे। वह धरती पर पड़ी विलाप कर रही थी। उसने मुट्ठी में भस्म उठा रखी थी।

'सती और रति।' उसकी आँख से आँसू बह रहे थे। 'ऐसा प्रतीत होता है कि अग्नि को हम दोनों पसंद हैं। सती ने आत्म-दाह किया था। अब रति को जलना पड़ रहा है। सती जलकर भस्म हो गई थी किंतु रति सदा जलती रहेगी।'

'नहीं,' शिव ने उसके शीर्ष को स्पर्श किया। 'कामदेव द्वापर युग में पुन: जन्म लेंगे, और तुम दोनों का फिर से मिलन होगा।'

रति ने अपने ऊपर पति की भस्म लगाई तो ब्रह्मा ने महादेव को उनका त्रिशूल सौंप दिया।

'आपको भी सती से पुन: मिलना होगा। उन्होंने कठोर तपस्या आरंभ कर दी है।'

'मैं फिर किसी के प्रति आसक्त नहीं होना चाहता। मैं देख चुका हूँ इच्छा कैसे माया से बाँध देती है।'

'किंतु वह आपकी सती हैं। आपकी अपनी हैं। उन्होंने आपसे कभी अलग न होने के लिए ही पुनर्जन्म लिया है। आपने मुझे सृष्टि की रचना का मंत्र दिया था और अब आपकी संतान

ही इसकी रक्षा कर सकती है। शिव और शक्ति का यह मिलन चिरस्थायी है। कृपया इसे होने दें। यह तारक को पराजित करने के लिए ही नहीं अपितु ब्रह्मांड के पालन-पोषण के लिए भी अनिवार्य है।'

'अभी नहीं। अभी नहीं।'

शिव पार्वती को देखने लगे। वह देख रहे थे किस प्रकार वे बर्फीले शिखर पर तपस्या कर रही थीं। कैसे वह हर रात बर्फ में जम जातीं और सुबह फिर सामान्य हो जाती थीं। महादेव देख रहे थे कि वे किस प्रकार भोजन और पानी का त्याग करके केवल पत्तों पर जीवित थीं; फिर कैसे उन्होंने धीरे-धीरे पत्तों का भी त्याग कर दिया; कैसे पार्वती केवल शिव के नाम के बल पर निर्वाह कर रही थीं; कैसे उनकी देह ढह रही थी परंतु उनका प्रेम उन्हें बल दे रहा था।

'अपर्णा।'

पार्वती अपने स्थान से नहीं हिलीं।

'अपर्णा।'

पार्वती ने आँखें खोलीं। वह शब्द गूँज रहा था मानो बर्फ ने धीमे-से कुछ कहा हो। शिव, पार्वती के समक्ष खड़े थे। कामदेव की वासना को ठुकराने वाले शिव ने पार्वती के प्रेम को अपना लिया था। पार्वती के योग ने शिव को पुन: भोग के लिए प्रेरित कर दिया था। शिव ने पार्वती को ऐसे दुलारा कि उनकी क्षुधा पूर्णतः शांत हो गई।

'अपर्णा?' पार्वती ने पूछा।

'हाँ। आप अपर्णा हैं यानी वह, जिसने पर्ण (पत्ता) का भी त्याग कर दिया।'

'परंतु स्वामी! मेरे माता-पिता ने मेरा नाम पार्वती रखा था।'

'पार्वती। सती। अपर्णा। उमा।' शिव ने उन्हें गले लगा लिया। 'यह सब आप हैं। और यह सब मेरी हैं।'

33
कार्तिकेय की माताएँ



पार्वती और महादेव एक हो गए थे। शिव और शक्ति का पुनर्मिलन हो गया था। पार्वती की माँ, मैना ने वर को प्रवेश करते देख विवाह रोक देने की धमकी दी। शिव अपने तीन नेत्र, पाँच मुख और असंख्य भुजाओं के साथ प्रकट हुए थे। सर्पों से विभूषित शिव, बैल पर सवार होकर आए थे। उनके उलझे हुए केश, सर्प की बाँबियों के समान दिख रहे थे और उन्होंने सिंह-चर्म पहन रखा था। शिव के शरीर पर भभूत लगी थी और उन्होंने भांग का सेवन किया था। परंतु उस समय शिव रूपांतरित हो गए थे और उनके आभामंडल ने ब्रह्मांड को प्रकाशित कर दिया था। वे सूर्य और चंद्रमा से भी अधिक तेजोमय लग रहे थे। वे सभी देवताओं से अधिक मनमोहक दिख रहे थे मानो संसार में जो कुछ उदात्त था, वह सब शिव का अंश बन गया था। मैना की आँखों में खुशी के आँसू थे और उन्होंने सत्य को न देख पाने के लिए क्षमा माँगी। शिव, शंकर हो गए थे। संन्यासी, गृहस्थ हो चुका था। समस्त ब्रह्मांड ने उस नए आरंभ का उत्सव मनाया। अब केवल अंत की प्रतीक्षा थी।

तारक का अंत।

दिन बीतते गए किंतु शिव की संतान का समाचार नहीं आया। तारकासुर के पाप ब्रह्मांड के लिए असहनीय हो गए और देवताओं का धैर्य समाप्त होने को था। हताशा ने उन्हें घेर लिया। उनसे जब और अधिक प्रतीक्षा नहीं हुई तो उन्होंने अग्निदेव को कैलाश भेजा। परंतु अप्रत्याशित अतिथियों को प्रायः विचित्र परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। अग्निदेव जैसे ही कैलाश पहुँचे, उनके सामने विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गई। वे उस समय पहुँचे जब शिव और पार्वती काम-क्रीड़ा में रत थे! वह दृश्य देखकर अग्निदेव पीछे हट गए किंतु तब तक देर हो चुकी थी। निजता का उल्लंघन देख शिव-पार्वती अलग हो गए और शिव का वीर्य नीचे गिर गया।

आपदा!

सती की मृत्यु के बाद से महादेव अविवाहित थे। इस कारण उनका वीर्य, शरीर में जमा हो रहा था और वह अत्यंत प्रचंड हो चुका था। उसमें वह बीज भी सम्मिलित था जिससे तारक के शत्रु का जन्म होना था। दुर्भाग्य से, सारा वीर्य धरती पर गिर गया। अग्निदेव को ज्यों ही इसका आभास हुआ उन्होंने कबूतर का रूप धारण करके वीर्य को निगल लिया। परंतु शिव के वीर्य में इतनी ऊष्मा थी कि अग्निदेव भी झुलसने लगे। अग्निदेव फिर वीर्य को साथ लेकर उड़ने में असमर्थ हो गए तो उन्होंने उसे कुटिला नदी में छोड़ दिया। परंतु शिव के वीर्य की ऊष्मा से कुटिला का पानी भी उबलने लगा और वह झुलस उठी। पीड़ा से छटपटाती कुटिला ने समस्त वीर्य-तत्त्व को तट पर स्थित घने शर-वन में छोड़ दिया।

इस तरह, शिव के बीज को पहले अग्नि, फिर जल और फिर धरती ने धारण कर लिया था। आखिर, मार्गशीर्ष मास की षष्ठी के दिन एक बालक का जन्म हुआ। उसके तेज से शर-वन सुनहरे रंग से सुशोभित हो गया।

वह बालक रो रहा था कि तभी छह कृत्तिकाओं ने, जो मूलतः तारामंडल के नक्षत्र हैं, उस बालक को देख लिया। शिशु की एक झलक ने सबको मंत्रमुग्ध कर दिया। वे दौड़कर उसके पास पहुँच गईं और आपस में झगड़ने लगीं। उन सभी के स्तनों में दूध उतर आया और वे बालक को स्तनपान कराने के लिए मचलने लगीं। जिस समय कृत्तिकाएँ आपस में झगड़ रही थीं, कुछ ऐसा हुआ कि सब स्तब्ध रह गए। उस शिशु के अचानक छह सिर प्रकट हो गए!

अब उस बालक के पास सभी कृत्तिकाओं से स्तनपान करने के लिए एक-एक सिर था। इस कारण बालक को षडानन और शणमुख नाम दिए गए अर्थात्, जिसके छह मुख हों। कुछ ने उसे आग्नेय कहा क्योंकि उसे अग्नि ने जन्म दिया था तो कुछ ने शरवण क्योंकि उसने शर के वन में सांसारिक रूप ग्रहण किया था। चूँकि छह कृत्तिकाओं ने बालक का पोषण किया था इसलिए अपना मुख्य नाम उसे उन्हीं से मिला।

कार्तिकेय, यानी कृत्तिकाओं द्वारा पोषित।

इसके पश्चात अनेक प्राणी उस शिशु के माता-पिता होने दावा करने लगे। अग्निदेव, जो उसे कैलाश से अपने साथ लेकर उड़े थे, कुटिला नदी जिसने बालक को अपने जल में धारण किया था और शर-वन, जिसने बालक को आश्रय दिया था, और वे छह कृत्तिकाएँ, जिन्होंने उसे स्तनपान कराया था। यह समाचार जल्द ही शिव तक भी पहुँचा कि उनकी संतान का जन्म हो चुका था। पार्वती उसे वापस लाने के लिए शर-वन गईं। जैसे ही उन्होंने शिशु को बाँहों में उठाया, उसके छह सिर, पुनः जुड़कर एक हो गए। आकाश हर्षित हो उठा। देवता प्रसन्न हो गए। कार्तिकेय को देवताओं का सेनापति घोषित कर दिया गया। उन्होंने मयूर को अपना वाहन बनाया और मुर्गे को अपनी ध्वजा पर स्थान दिया। जन्म के सात

दिन बाद ही, कैलाश पर्वत के शिखर से कार्तिकेय ने गर्जना की।

‘तारक! मैं आ रहा हूँ।’

34
कार्तिकेय और तारक का युद्ध



शिव का पुत्र युद्ध करने निकल पड़ा था।

कार्तिकेय का मयूर, तीव्र स्वर में कूक रहा था। उसके हरे और सुनहरे पंख चमक रहे थे। कार्तिकेय की मुर्गे के चिह्न वाली ध्वजा शत्रु को युद्ध का संकेत दे रही थी। तारकासुर से दुखी हो चुका ब्रह्मांड यह देखकर विस्मित था किस प्रकार देवता, उस बालक के पीछे चले जा रहे थे। इंद्र, अग्नि, यम और वरुण। सूर्य, चंद्र और वीरभद्र भी उस पंक्ति में सम्मिलित थे। वे सभी कार्तिकेय के नेतृत्व में उनके पीछे चल रहे थे। या शायद कार्तिकेय नहीं अपितु ब्रह्मा की भविष्यवाणी उनका मार्गदर्शन कर रही थी। ब्रह्मा ने देवताओं को वचन दिया था कि वह बालक उनकी सहायता करेगा और इसलिए सभी देवता उस सात दिन के बालक के पीछे चल रहे थे।

कार्तिकेय ने अपने भाले से प्रहार किया तो पूरा ब्रह्मांड सिहर उठा। नियति ने उनके लिए जो तय किया था, उसे पाने के लिए उनके हाथ व्याकुल हो रहे थे। तारक काँपने लगा किंतु उसने जोर से ठहाका लगाया।

'क्या स्वर्ग लोक में कोई योद्धा नहीं बचा? क्या मेरे दैत्यों ने सभी को मार दिया है?'

'तुमने भगवान शिव का अंश माँगा था। मैं आ गया हूँ।'

दोनों सेनाएँ एक-दूसरे पर टूट पड़ीं। राक्षस, भयंकर अस्त्र-शस्त्रों से आक्रमण करने लगे। तारक ने तंत्र-विद्या का प्रयोग शुरू कर दिया। काले जादू में निपुण तारकासुर ने माया से अनेक डरावने दृश्य रचे। भयानक दानवों वाले दृष्टि-भ्रम, मृत्यु और प्रलय की छद्म तस्वीरें। तारक ने ऐसे भयावह चित्र का निर्माण किया कि सभी देवताओं का जैसे खून जम गया। उसने इंद्र को अचेत कर दिया और यम को भी परास्त कर दिया। वीरभद्र ने उससे कुछ देर युद्ध किया किंतु अंतत: वह भी तारक से परास्त हो गया। जब अग्नि और वरुण ने भी उस असुर के सामने घुटने टेक दिए, तो सारे देवता पीछे हट गए। ऐसे में कार्तिकेय ने तुरंत

अपनी सेना को पुन: एकत्रित किया और ऐसी व्यूह-रहना की जिसमें से सभी योद्धाओं को बाहर निकलने पर विवश होना पड़ा। उस व्यूह में स्वयं युद्धक्षेत्र का तक दम घुटने लगा था।

अब मध्य में केवल कार्तिकेय और तारक खड़े थे।

तारकासुर ने पुन: काले जादू का प्रयोग करना चाहा परंतु बालक कार्तिकेय भी आश्चर्यजनक रूप से माया और जादू में निपुण था। तारक ने बादलों का रूप लिया तो कार्तिकेय गर्जना बन गए। एक अग्नि में बदल जाता तो दूसरा जल में परिवर्तित हो जाता। अंधकार के विरुद्ध प्रकाश। सिंह के विरुद्ध गज। बाज के विरुद्ध नाग। तारक जब मायाजाल से कार्तिकेय को पराजित करने में विफल रहा तो उसने तलवार उठा ली। उस धारदार तलवार की चमक कार्तिकेय के भाले पर पड़ रही थी। उस भीषण युद्ध से चारों ओर धूल उड़ने लगी। दोनों के आस-पास धूल का घना बादल उठने लगा जिसमें यह देखना कठिन था कि युद्ध में किसकी हार और किसकी जीत हो रही है। केवल अस्त्र-शस्त्रों के टकराने के शोर से द्वंद्व की उग्रता का पता लगता था। धीरे-धीरे, तारक की तलवार का विलाप सुनाई देने लगा। उसकी बर्बरता कम हो चली थी। वह मौन होने लगी थी। धूल का बादल छँटा, तो सबने देखा कि ब्रह्मा की वाणी सच हो चुकी थी। कार्तिकेय ने भाले से तारक की छाती को चीर डाला था। छह सिरों और बारह भुजाओं वाला बालक कार्तिकेय अपने समस्त वैभव के साथ खड़ा मुस्कुरा था। देवताओं ने पुन: आक्रमण कर दिया और दैत्य पराजित हो गए।

मयूर नृत्य कर रहा था। मुर्गे के चिह्न वाली पताका आकाश में लहरा रही थी। ब्रह्मा का हृदय प्रसन्नता से झूम उठा किंतु अगले ही क्षण वे फिर चिंता में डूब गए।

35
शिव बने त्रिपुरारी



ब्रह्मा ने कार्तिकेय के भाले से तारकासुर का अंत होते देखा था। एक और असुर मारा गया। अव्यवस्था का अंत हो रहा था। सृष्टि में संतुलन की पुनर्स्थापना हो रही थी। सब जगह खुशियाँ छा गईं।

फिर भी ब्रह्मा चिंतित थे क्योंकि मरने से पहले वह असुर एक संतान को जन्म दे चुका था।

ब्रह्मा अचानक हँसने लगे। विडंबना! ऐसी विडंबना जो ब्रह्मा की सृष्टि के केंद्र से जुड़ी थी। वे जानते थे कि ब्रह्मांड के लिए संतानोत्पत्ति महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने इस प्रक्रिया के स्थापित होने से पहले भी अनिश्चितताओं से जुड़ी अनेक समस्याओं का सामना किया था। कई बार उन्हें पहले भी इस तरह के संदेह हुए थे कि उनका ब्रह्मांड अस्तित्व में रह सकेगा या नहीं। और अब उन्हें दुख था कि तारक ने मरने से पहले संतान उत्पन्न कर दी थी। किंतु यह अकारण नहीं हुआ था। पंचतत्त्वों की तरह, प्रजनन की प्रक्रिया ने भी वरदान और अभिशाप दोनों का रूप लिया था। जन्म लेने वाला हर जीव पूर्ण नहीं होता। धड़कने वाला प्रत्येक हृदय शुद्ध नहीं होता। बुराई बड़ी संख्या में फैलती प्रतीत हो रही थी। इसी कारण ब्रह्मा के चार सिर उत्पन्न हुए थे। और यही कारण था कि तारक ने भी तीन पुत्रों को जन्म दिया था।

विद्युन्माली, वीर्यवान और तारकाक्ष।

कुछ समय के बाद, तीनों असुर भाई ब्रह्मा के सामने खड़े उनसे प्रश्न कर रहे थे।

‘आपके आशीर्वाद के पश्चात भी हमारे पिता का वध कर दिया गया,’ विद्युन्माली ने कहा। ‘आपने हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु को वरदान दिये, किंतु वे भी मारे गए। आपके पास जो जीवन माँगने आता है, उसे आप मृत्यु क्यों देते हैं?’

‘जीवन नहीं,’ ब्रह्मा ने विरोध किया। ‘अनंत जीवन। मैं किसी को अनंत जीवन प्रदान नहीं

कर सकता और न ही कोई उसे प्राप्त कर सकता है। वे भी अमरता के केवल समीप पहुँच गए थे। वही दूसरा सबसे अच्छा विकल्प है किंतु वह पूर्ण रूप से सुरक्षित नहीं होता। उनके कर्म ही उनके अंत का कारण बने।'

'हम तीनों भी वरदान माँगने आए हैं, परंतु हमें नहीं पता कि यह उचित है या नहीं।'

'उसके लिए तुम्हें मुझे प्रसन्न करना होगा। पहले तपस्या करो।'

'इतना लंबा मार्ग चुनने की क्या आवश्यकता है?' उन्होंने मुस्कराते हुए कहा। 'हम तारक के पुत्र हैं। आप भली-भाँति जानते हैं कि तपस्या हमारे लिए कठिन नहीं है। हम शिव को प्रसन्न करने के लिए विष्णु की तुलना में अधिक नेत्र अर्पित कर सकते हैं। हम प्रचेतस से अधिक समय तक जल में रह सकते हैं और पार्वती से अधिक दृढ़ता के साथ क्षुधा से लड़ सकते हैं। आप भविष्य में झाँकेंगे तो पाएँगे कि हम कठोर तप करने में सफल हैं। क्या आपको नहीं लगता कि जो अपरिहार्य है, आप उसमें मात्र विलंब कर रहे हैं?'

ब्रह्मा ने सहमति में सिर हिलाया। 'हाँ। एक सहस्त्र वर्ष प्रतीक्षा करने से बेहतर है कि इस कार्य को अभी समाप्त कर दिया जाए। कहो, तुम क्या चाहते हो?'

'तीन दुर्ग,' तीनों भाई एक स्वर में बोले। 'एक दुर्ग सोने का, दूसरा चांदी का और तीसरा लौह से निर्मित होना चाहिए। हम तीनों को एक-एक दुर्ग चाहिए और वे तीनों दुर्ग हर प्रकार से अभेद्य हों।'

'इसका अर्थ यही है कि तुम अनंत जीवन माँग रहे हो जो प्रदान नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार प्रत्येक जीवित प्राणी का अंत होना निश्चित तय है, उसी तरह निर्जीव वस्तु का भी नाश अनिवार्य है। मैं तुम्हारे दुर्ग को अभेद्य होने का वरदान नहीं दे सकता। परंतु उन्हें सुरक्षित रखने के लिए तुम कोई असंभव प्रतीत होने वाली शर्त रख सकते हो।'

'ठीक है। तीनों दुर्ग हवा में स्थित हों और उन्हें केवल एक ज्वलंत बाण से ध्वस्त किया जा सके और वह भी उस समय जब वे तीनों दुर्ग एक रेखा में हों।'

'तो फिर वे दुर्ग एक वृत्ताकार मार्ग पर घूमते रहेंगे,' ब्रह्मा ने कहा। 'उनके अक्षिकूप इस तरह के होंगे कि वे एक सहस्त्र वर्ष में केवल एक बार एक रेखा में आएँगे जिस समय पुष्य नक्षत्र, चन्द्रमा के साथ युति में होगा। ऐसा संयोग भी केवल एक क्षण के लिए बनेगा।'

तीनों भाई ब्रह्मा की बात से सहमत थे। राक्षसों के प्रसिद्ध वास्तुकार, मय को यह कार्य सौंपा गया और शीघ्र ही तीन दुर्ग आकाश में विचरण करने लगे। स्वर्ण-दुर्ग में तारकाक्ष का निवास था। रजत-दुर्ग वीर्यवान को मिला और विद्युन्माली के हिस्से में लौह-दुर्ग आया।

वे तीन दुर्ग, त्रिपुर कहलाए।

धीरे-धीरे एक विचित्र विरोधाभास दिखने लगा। तारक के पुत्र धर्म के मार्ग पर चलने लग गए। उनका आचरण पवित्र हो गया और वे अनुष्ठान एवं उपवास भी करने लगे। उन्होंने ईश्वर

की उपासना शुरू कर दी और मनुष्यों से मैत्री स्थापित कर ली। संभवतः अन्य दैत्यों की तरह मारे जाने के भय से उनमें विनम्रता का संचार होने लगा था। शीघ्र ही, अनेक राक्षस उनके गढ़ में रहने लगे। वे तीनों दुर्ग समृद्ध हुए तो देवताओं को घबराहट होने लगी। त्रिपुर की दीवारों के पीछे क्या हो रहा है, इसे लेकर उनके मन में भय उत्पन्न हो गया। क्या तीनों भाई जैसे दिख रहे थे, उतने ही सच्चे थे या फिर भीतर कोई षड्यन्त्र रचा जा रहा था? क्या होगा यदि वे अपने गढ़ों को सैन्य दुर्गों में परिवर्तित करके आक्रमण की तैयारी कर रहे हों? देवता अपनी शंका लेकर ब्रह्मा के पास पहुँचे।

'दैत्य निश्चय ही सेना एकत्रित कर रहे हैं,' देवताओं ने तीखे स्वर में कहा। 'तारक के पुत्र सबको धोखा दे रहे हैं।'

'आपका क्या सुझाव है?' ब्रह्मा ने पूछा।

'विनाश! तीनों दुर्ग को नष्ट करके तीनों भाइयों को मार दिया जाना चाहिए ताकि...'

'यह अन्याय है,' ब्रह्मा ने उनकी बात काट दी। 'उन्होंने कुछ नहीं किया जिसके कारण उन्हें मारा जाए। मैं किसी अनुमान के आधार पर इसकी अनुमति नहीं दे सकता।'

देवताओं का स्वर ऊँचा होता गया किंतु ब्रह्मा अपनी बात पर अडिग रहे। उन्होंने हस्तक्षेप करने से मना कर दिया। फिर देवताओं ने शिव से बात की तो उन्होंने भी इसी आधार पर सहायता करने से मना कर दिया। परंतु विष्णु ने देवताओं की बात ध्यान से सुनी।

'मैं आपके डर को समझता हूँ,' उन्होंने देवताओं को सांत्वना दी। 'परंतु जब तक त्रिपुर में रहने वाले असुर किसी को नुकसान नहीं पहुँचाते, तब तक हमारे हाथ बँधे हैं।'

'इतनी प्रतीक्षा क्यों की जाए?' देवताओं ने माँग की। 'वे दैत्य हैं। स्वभाव से हिंस्र हैं। भले ही वे धर्मपरायण होने का प्रयास कर रहे हैं किंतु वे अपने भीतर के अंधकार पर विजय नहीं पा सकते। उनके भीतर अधर्म सदा विद्यमान रहेगा। उन्हें मिटा देना ही बेहतर है।'

'परंतु यदि वे सचमुच सुधर गए हों, तो उन्हें मारना अनुचित है। बहुत अनुचित। यह एक नाजुक परिस्थिति है, और हमें सावधानी से इसका समाधान निकालना होगा।'

फिर विष्णु ने हाथ उठाया और समुद्र की गहराइयों में से एक जीव प्रकट हुआ। श्वेत वस्त्र पहने उस केश रहित जीव का नाम अरिहंत था।

'प्रभु, मेरे लिए क्या आदेश है?'

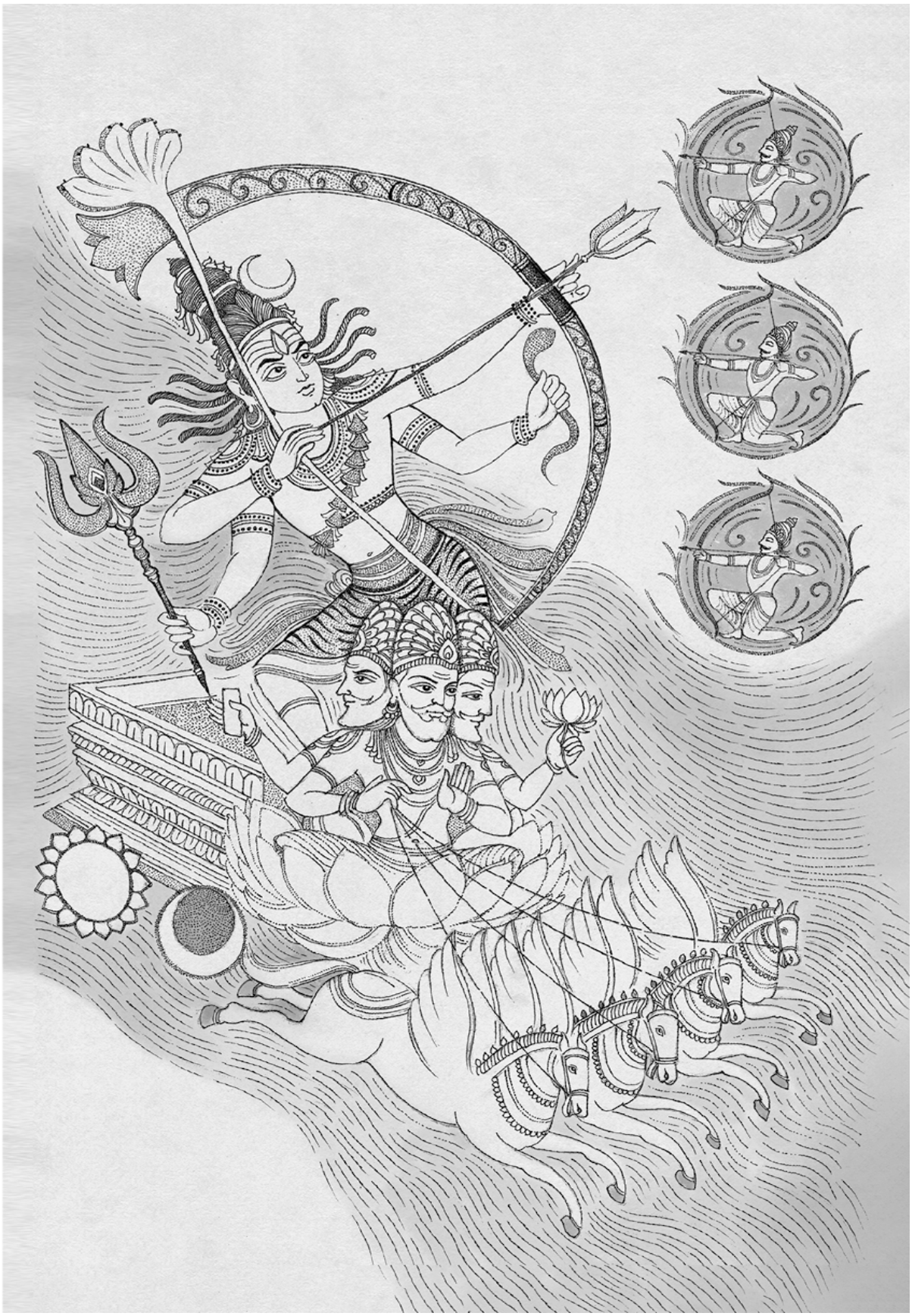
'तुम्हें त्रिपुर जाना है। यदि तुम वहाँ दैत्यों को धर्मपरायण जीवन व्यतीत करता पाओ तो उन्हें भटका कर पाप के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करो। वहाँ ऐसे मत का प्रचार करो जो वेदों की आलोचना करता हो, उन्हें सिखाओ कि स्वर्ग और नरक कल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। उनसे कहो कि पुण्य करने से कोई पुरस्कार नहीं मिलता और पाप के लिए दंड

निर्धारित नहीं है। तुम्हें वहाँ प्रत्येक असुर के साथ छल करके उसे पथभ्रष्ट करना है। यदि तुम्हारे प्रलोभन के पश्चात भी वे नहीं भटकते, तो हम उनसे कुछ नहीं कहेंगे। परंतु यदि उन्होंने तुम्हारी बात मानकर सदाचार को त्याग दिया तो हमें उनके विरुद्ध कार्रवाई करने का कारण मिल जाएगा।'

अरिहंत, त्रिपुर पहुँच गया और उसने विष्णु की योजना पर कार्य करना आरंभ कर दिया। उसने शुरू में पाया कि दैत्यों पर उसके उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। तीनों दुर्ग, वैदिक जीवन-शैली के केंद्र बन चुके थे और सभी दैत्यों ने स्वयं को आदर्श प्राणियों में परिवर्तित कर लिया था। अरिहंत निराश होकर लौटने ही वाला था कि अचानक पाँसा पलट गया। उसके वचन त्रिपुरवासियों के हृदय में जगह बनाने लगे। कुछ ही समय में अरिहंत द्वारा प्रचारित अनैतिकता, त्रिपुर के प्रत्येक प्राणी में व्याप्त हो गई। असुरों के भीतर की सुप्त अराजकता ने उनके द्वारा बनी भंगुर दीवार को ध्वस्त कर दिया। असुर भाई फिर से अधर्मी हो गए। उन्होंने त्रिदेव को ललकारा। इसके तुरंत बाद देवता, कैलाश पहुँच गए।

'वह आदर्श लोक एक छद्म था,' विष्णु ने शिव से कहा। 'हमें त्रिपुर को नष्ट करना होगा।'

'किंतु यह कार्य आसान नहीं है,' ब्रह्मा ने उन्हें याद दिलाया। 'तारक के पुत्रों को केवल तभी मारा जा सकता है जब पुष्य नक्षत्र, चंद्रमा के साथ युति में हो और उस क्षण पर तीनों दुर्ग एक रेखा में हों। ऐसा कल होगा, परंतु केवल एक क्षण के लिए। और त्रिपुर को केवल एक ही जलते हुए बाण से ध्वस्त करना होगा।'



शिव ने मुस्कुराकर कहा, 'सबको एकत्रित कीजिए। मैं बताता हूँ कि यह कैसे होगा।'

अगले दिन, तीनों दुर्ग एक-दूसरे के आसपास घूम रहे थे। तभी इंद्र की सेना ने आक्रमण कर दिया। कई दैत्य मारे गए, किंतु शुक्राचार्य ने उन्हें पुनर्जीवित कर दिया। शीघ्र ही बाजी पलट गई। तारक के पुत्र, देवताओं की सेना पर भारी पड़ने लगे। फिर अचानक सब कुछ थम गया।

क्षितिज के ऊपर एक खगोलीय दृश्य उभर रहा था। वह विशालकाय चमकदार आकृति थी। शिव, हवाई रथ पर सवार होकर तीव्र गति से आगे बढ़ रहे थे। उनका स्वर्ण-निर्मित रथ ऐसा दिख रहा था मानो ब्रह्मांड की सारी अग्नि उसमें समा गई थी। ब्रह्मा, उस रथ के सारथी थे। सूर्य और चंद्र, उसके पहिए तथा चारों वेद, उसके अश्व थे। मेरु पर्वत स्वयं मुड़कर शिव के पिनाक धनुष में बदल गया था। वासुकि नाग ने धनुष की प्रत्यंचा का काम किया। अंत में स्वयं विष्णु ने बाण का रूप धारण कर लिया। वायुदेव, बाण को दिशा दे रहे थे और अग्निदेव उसके शीर्ष को शक्ति प्रदान कर रहे थे।

पुष्य ने अपना स्थान ले लिया था। त्रिपुर एक सीधी रेखा में आ चुके थे।

शिव ने वह धधकता हुआ बाण छोड़ दिया जिसने एक ही बार में तीनों दुर्ग ध्वस्त कर दिए। असुरों के गढ़ जल चुके थे। उल्का-वर्षा की भाँति उनमें विस्फोट होने लगे। शिव ने त्रिपुर की भस्म को चुटकी में लेकर अपने मस्तक पर तीन क्षैतिज रेखाएँ बनाईं। चारों ओर झिलमिलाती धुंध फैल गई। इस अवसर पर महादेव को नए नाम दिए गए।

उन्होंने पिनाक को धारण किया था, इसलिए वे पिनाकी कहलाए।

उन्होंने त्रिपुर को नष्ट किया था, इसलिए उनका नाम त्रिपुरारी पड़ गया।

36
अंधक और पार्वती



कैलाश से निकलते प्रकाश में सूर्य भी चौंधिया गया था। उस प्रकाश ने पर्वत को ऐसी गरमाहट से भर दिया था कि वहाँ फूल खिलने लगे और फल पक गए। कैलाश पर जमी बर्फ भी श्वेताग्नि-सी चमक रही थी। सूर्य को पता था कि वह प्रकाश उसका नहीं है अपितु उसका स्रोत, कैलाश पर विराजमान भगवान शिव थे। उनके रोम-रोम से निकलते प्रकाश के संपर्क में आने वाली हर वस्तु सुशोभित हो रही थी।

वह महादेव की आभा थी।

यह दृश्य पार्वती को भी मंत्रमुग्ध कर रहा था। प्रकाश चारों ओर उपस्थित तत्त्वों में मिल गया। पार्वती, उस प्रकाश को अपना अंश बना लेना चाहती थीं। वे दबे पाँव अपने स्वामी के पास गईं और हँसकर हथेलियों से उनकी आँखों को ढक लिया।

अंधकार। अब चारों ओर अंधकार था।

क्या शिव के नेत्र ही ब्रह्मांड को प्रकाशित कर रहे थे? क्या पार्वती की अँगुलियाँ उस पवित्र स्रोत के मार्ग में बाधा बन गई थीं? पार्वती ने हाथ पीछे खींच लिए किंतु महादेव के नेत्रों के स्पर्श से उनके हाथों पर पसीना आ गया था। पसीने की एक बूँद जमीन पर गिरी तो कैलाश पर भीषण गर्जना सुनाई दी। पसीने की बूँद उबल रही थी और निषेचित अंडे की तरह उसका आकार बढ़ रहा था। यह देखकर पार्वती स्तब्ध रह गईं कि उस बूँद से एक बालक का जन्म हो गया। वह काला और अंधा था।

‘यह कैसा प्राणी है?’ पार्वती चिल्लाईं।

‘यह हमारा पुत्र है, पार्वती।’

‘पुत्र?’

‘तुमने मुझे स्पर्श किया इसलिए इसका जन्म हुआ है।’

‘परंतु यह नेत्रहीन है।’

‘हाँ। जिस क्षण तुमने मेरी आँखों को ढका था, उसी क्षण इसका जन्म हुआ। परिणामस्वरूप इस बालक ने अपनी दृष्टि खो दी और इसकी त्वचा काली पड़ गई।’

‘इसकी आवाज़ अपशकुन की तरह सुनाई पड़ती है। हम इसका क्या करें?’

‘एक दैत्य कई वर्षों से पुत्र प्राप्ति के लिए मेरी तपस्या कर रहा है,’ शिव ने उत्तर दिया। ‘यह बालक उसका पुरस्कार होगा।’

शीघ्र ही, वह दैत्य अपने तप का फल प्राप्त करके अत्यंत प्रसन्न हुआ। उसके हृदय में बालक को पालने की बहुत खुशी थी। उसने बालक को उसके असली माता-पिता के बारे में नहीं बताया और उसकी नेत्रहीनता को ध्यान में रखते हुए उसका नामकरण कर दिया। दैत्य ने उस बालक को ऐसा नाम दिया जो उसकी विकलांगता का मज़ाक नहीं उड़ाता था अपितु उसके हर्ष को दर्शाता था।

अंधक।

कई वर्ष बाद, जब दैत्य की मृत्यु हो गई तो अंधक, राक्षसों का स्वामी बन गया। किंतु दैत्य इस बात से प्रसन्न नहीं थे। उनकी अप्रसन्नता का कारण केवल यह नहीं था कि उनका राजा नेत्रहीन था अपितु वे इसलिए भी अप्रसन्न थे क्योंकि वह उनके जैसा नहीं था। उसका स्वभाव राक्षसी न होकर दैवीय था क्योंकि वह पार्वती के जल और शिव की अग्नि से उत्पन्न हुआ था। पिछले दैत्य ने दैत्यों को आदेश दिया था कि वे अंधक के वास्तविक माता-पिता के बारे में उसे कभी न बताएँ इसलिए सबने अपना क्रोध दबा लिया। उनका इस बात पर ध्यान नहीं गया कि अंधक यद्यपि आनुवंशिक रूप से उनसे भिन्न था फिर भी दैत्य के उपदेशों ने उसे भ्रष्ट कर दिया था। अब प्रह्लाद भी उनके सिंहासन की माँग करने लगा था, जिसके चलते परिस्थितियाँ और जटिल हो गईं।

‘राक्षस मार्ग से भटक गए हैं, अंधक,’ प्रह्लाद ने चेतावनी दी। ‘उनकी आत्मा को भक्ति के मार्ग पर वापस लाना चाहिये। यदि तुम ऐसा करते हो, तो उन्हें वापस लाने वाली डोर बहुत दुर्बल होगी। वे तुम्हें अस्वीकार करते हैं। वे मुझसे कहते हैं कि उन्हें तुम्हारे रक्त की गंध से घृणा है। वे तुम्हारी बात कभी नहीं मानेंगे। तुम मुझे अपने पिता का उत्तराधिकारी बनने दो।’

अंधक को प्रह्लाद के स्वर में दया का भाव सुनाई पड़ रहा था। वह आसपास उपस्थित दैत्यों में धधक रहे क्रोध को महसूस कर सकता था। वह तुरंत सिंहासन त्याग कर वन में चला गया और ब्रह्मा की उपासना करने लगा। उसने अपना माँस काट डाला और रक्त जलाया। उसने अपने केश काट दिए और हड्डियों को खंडित कर दिया। उसकी तपस्या इतनी विकट थी कि शीघ्र ही ब्रह्मांड पर उसकी छाया मँडराने लगी। जिस प्रकार स्याही की बूँद फैलती है, उसी प्रकार उसका अंधकार हर चीज़ को अपने भीतर समेट रहा था और

काली कीच-सी एक परत ब्रह्मांड के आसपास फैलती जा रही थी। ब्रह्मा भयभीत हो गए।

'रुक जाओ!' वह ज़ोर से चिल्लाए। 'तुम्हारे कारण सबका दम घुट रहा है।'

'मुझे यह सुनकर प्रसन्नता हुई। क्या अब आपको वह अंधकार दिख रहा है जिसने मुझे सदा से जकड़ रखा है?'

'परंतु तुम उससे ऊपर उठ चुके हो, अंधक। जिनके पास नेत्र हैं, वे तो केवल देखते हैं किंतु तुमने स्वयं को एक नई दृष्टि प्रदान की है। तुम सबसे श्रेष्ठ हो।'

'मुझे भी ऐसा ही लगता था, किंतु अन्य लोग मेरी योग्यता पर प्रश्न चिह्न लगा रहे हैं। मेरे पास जिस एक क्षमता का अभाव है, वे उसकी तुलना अन्य प्रकार के सामर्थ्यों से करते हैं। उनके हृदय में मेरी नेत्रहीनता से अधिक अंधकार भरा है और मैं दोषी नहीं बनना चाहता। मैं दो वरदान माँगता हूँ। मुझे मेरी दृष्टि प्रदान कर दीजिए।'

'और दूसरा? अमरता मत माँगना क्योंकि जिस प्रकार हर मृत प्राणी का पुनर्जन्म होता है उसी तरह प्रत्येक जन्म लेने वाले प्राणी की मृत्यु भी निश्चित है।'

'तो फिर मैं अपनी मृत्यु के लिए शर्त रखना चाहता हूँ।'

'कहो।'

अंधक कुटिलता पूर्वक मुस्कुराया। 'मैंने सुना है कि आपको एक बार दंडित किया गया था क्योंकि आपने एक ऐसी स्त्री को प्राप्त करना चाहा जिसकी कामना करना आपके लिए अनुचित था।'

ब्रह्मा चुप रहे। उनके सिर का घाव कई वर्षों के बाद अचानक हरा हो गया।

'मेरी भी यही इच्छा है। मैं चाहता हूँ कि मेरी मृत्यु तभी हो जब मैं अप्राप्य वस्तु को प्राप्त करने का प्रयास करूँ। जिस समय किसी स्त्री के प्रति मेरी वासना अनुचित हो।'

ब्रह्मा ने जल छिड़क कर अंधक को दृष्टि प्रदान कर दी और दूसरा वरदान भी दे दिया। वरदान पाकर अंधक उपद्रवी हो गया। उसने प्रह्लाद के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और स्वयं दैत्यों पर हावी हो गया। अंधक ने देवताओं को पराजित कर दिया। सब उसके भय से काँपते थे। वह एक लोक से दूसरे लोक में शासन का विस्तार करता चला गया। ब्रह्मांड में उपस्थित हर वस्तु और प्राणी को देख सकने में सक्षम अंधक, लालसा में चूर हो गया था। उसे जो वस्तु पसंद आती, वह उसे बलपूर्वक छीन लेता था। प्रह्लाद देख रहा था कि अंधक का पालन-पोषण कैसे प्रकृति पर हावी हो गया था।

'मेरा जन्म पाप से हुआ परंतु मैंने पुण्य को चुना,' उसने स्वयं से कहा। 'काश तुम्हें पता होता कि तुम्हारा जन्म किससे हुआ है और तुम क्या बन गए हो।'

अनेक वर्ष बीत गए और फिर एक दिन अचानक अंधक के मन में शंका उत्पन्न हुई।

'क्या मैं सर्वशक्तिमान हूँ?' उसने अपने मंत्री से पूछा। 'हर दृष्टि से अद्वितीय?'

‘लगभग।’

‘लगभग? अब मेरे पास क्या नहीं है?’

‘स्त्री। ब्रह्मांड की सबसे सुंदर स्त्री, जो आपके वैभव को और बढ़ा देगी। परंतु उसका विवाह एक योगी से हुआ है।’

‘उसका नाम क्या है?

‘पार्वती। वह शिव की पत्नी है।’

मंत्री ने पार्वती के सौंदर्य का वर्णन करना आरंभ कर दिया। धनुषाकार भौंह। अमृत से भरे होंठ। वक्ष की घुमावदार आकृति। त्वचा की सुगंध। अंधक यह नहीं जानता था कि उसका मंत्री, अंधक की माता का ही अनुचित रूप से वर्णन कर रहा था। परंतु उसे सुनकर अंधक के मुँह में जैसे पानी आ गया। उसकी आँखें प्रकृति के चमत्कार को देखने के लिए उत्सुक हो उठीं।

‘योगी के लिए ऐसे सौंदर्य की कोई उपयोगिता नहीं है,’ अंधक ने कहा। ‘उसे आज्ञा दो कि वह अपनी पत्नी मुझे सौंप दे।’

अंधक के दूतों ने कैलाश पर आक्रमण कर दिया। शिव ने उनकी बात सुनी तो वे मुस्कुराए।

‘अपने स्वामी से कहो कि वह स्वयं आकर पार्वती को ले जाए।’

अंधक ने तुरंत अपनी सेना के साथ कैलाश की घेराबंदी कर दी। देवी को एक गुफा में अकेला पाकर वह अंदर घुस गया। उसने पार्वती को देखा तो स्तब्ध रह गया। उसकी जीभ सुन्न पड़ गई। उसके मन से केवल एक ही नाम निकल रहा था।

पार्वती... पार्वती... पार्वती...

अंधक की आँखें हिंसक ढंग से पार्वती को खोज रही थीं। वह देखने की कोशिश कर रहा था पार्वती का शरीर कितना सुंदर था। वह अब तक अनजान था कि वह अपनी ही माता का अनादर कर रहा था। उसे यह भी विचार नहीं आया कि अनजाने में वह अपनी मृत्यु की शर्त को पूरा करने जा रहा था।

जिस समय किसी स्त्री के प्रति मेरी वासना अनुचित हो...

अंधक आगे बढ़ा तो पार्वती ने उसे भ्रमित करने के लिए गुफा में अंधेरा कर दिया। एक पुत्र को अपनी माता के साथ अनुचित कर्म करने की चेष्टा करते देखकर सृष्टि भी स्तब्ध रह गई। आदिशक्ति अपनी ही संतान से जूझ रही थीं। सब आश्चर्य कर रहे थे कि कारण और प्रभाव के किस चक्र ने ऐसी लज्जाजनक स्थिति उत्पन्न की होगी। अंधक, पार्वती को पकड़ने ही वाला था कि पार्वती के शरीर से प्रकाश की सात दीप्तिमान किरणें उत्पन्न हुईं। अंधक के सामने अब सात देवियाँ साकार रूप ले रही थीं।

सप्त मातृकाएँ।

युद्ध छिड़ गया और देवियाँ राक्षसों का संहार करने लगीं। अनगिनत असुर मारे गए तो शुक्राचार्य ने मृतसंजीवनी का प्रयोग किया। यह देखकर शिव ने क्रोधित होकर अपना मुख खोल दिया। फिर उन्होंने अपने जबड़ों को फैलाया और शुक्राचार्य को जीवित निगल गए। गुरु के अनुपस्थिति ने दैत्यों को कमज़ोर कर दिया और वे धराशायी हो गए। अंधक को छोड़कर सभी दैत्य परास्त हो चुके थे। अंधक अभी आक्रमण से बचा हुआ था। तभी शिव की आवाज़ गूँज उठी।

'पुत्र, तुम अपनी ही माता की कामना कर रहे हो। पार्वती तुम्हारी माता हैं और मैं तुम्हारा पिता हूँ।'

अंधक पीछे हट गया।

पार्वती तुम्हारी माता हैं...

इस एहसास ने तुरंत उस वरदान को निरस्त कर दिया जिसकी आड़ में अंधक सुरक्षित था।

'आप मेरे माता-पिता हैं?'

'हाँ।'

'फिर आपने मुझे अस्वीकार क्यों किया था? क्या इसलिए कि मैं नेत्रहीन था?'

'नहीं,' शिव ने उत्तर दिया और उसे अपने त्रिशूल पर लटका दिया। 'क्योंकि तुम अब भी अंधे हो!'

मृत्यु, अंधक पर हावी होने लगी तो ब्रह्मा प्रकट हुए।

'अंधक, यह कैसी विडम्बना है! जीवन-भर तुम्हें यह दुख रहा कि किसी ने तुम्हें शरीर से परे जाकर नहीं देखा। परंतु तुम स्वयं पार्वती को शरीर से परे जाकर नहीं देख पाए कि वे वास्तव में कौन थीं। तुमने अपनी ही माता को पाने की कामना की। इसी तरह मेरे भीतर भी अपनी पुत्री को पाने की लालसा उठी थी। हम दोनों को महादेव के क्रोध का सामना करना पड़ा।'

अंधक को अब मूर्खता का एहसास हुआ और वह क्षमा माँगने लगा। शिव ने अंधक को स्वस्थ कर दिया और कैलाश में अपने गण के रूप में नियुक्त कर लिया।

'दया कीजिए! दया कीजिए!'

यह आवाज़ शिव के भीतर से आ रही थी। उनके अंदर फँसे शुक्राचार्य मुक्त होने के लिए याचना कर रहे थे। भगवान ने दया करके दैत्यगुरू को अपने जननांग के रास्ते बाहर निकाल दिया। वीर्य की बूँद के साथ शुक्राचार्य बाहर निकल आए। तभी से वीर्य के अणु को शुक्र कहा जाने लगा।

37
भृंगी की पार्वती को चुनौती



‘भृंगी। प्रभु, मैं भृंगी हूँ।’

ऋषि, दूध से आधा-भरा बर्तन लेकर शिव के सामने खड़े थे।

‘महादेव, मैं आपकी वंदना करता हूँ। आप आत्मन् हैं। परब्रह्म। अज्ञानी कहते हैं कि आप विनाशक हैं। वे नहीं समझ पाते कि आप नवीनीकरण करते हैं। पुनर्जन्म को संभव बनाते हैं। प्रभु, मैं एक विनती लेकर आया हूँ। क्या आप उसे स्वीकार करेंगे?’

‘कहो।’

‘मैं आपकी परिक्रमा करना चाहता हूँ जैसे परमानंद में डूबे हजारों ब्रह्मांड आपके चारों ओर घूमते हैं। आप इस जगत की धुरी हैं। मुझ समेत प्रत्येक प्राणी के अस्तित्व का केंद्र हैं। क्या मुझे परिक्रमा की अनुमति है?’

‘अवश्य। मुझे प्रसन्नता होगी।’

जैसे ही भृंगी ने पहला कदम उठाया, उन्हें एक स्त्री की आवाज़ सुनाई दी।

‘ठहरो!’

यह पार्वती थीं। वे निकट गईं और शिव के पास बैठ गईं।

‘शिव, अकेले इस ब्रह्मांड में सम्मिलित नहीं हैं। यह पुरुष और प्रकृति का मिलन है। शिव और शक्ति का संयोग। हम दोनों इस जगत के अंग हैं। एक के बिना आपको दूसरा प्राप्त नहीं हो सकता।’

परंतु भृंगी की भक्ति शिव के अतिरिक्त और किसी को नहीं मानती थी। उनके हृदय में बने गर्भगृह में केवल एक ही भगवान रहते थे। महादेव। विष्णु नहीं, ब्रह्मा भी नहीं। भृंगी ने पार्वती की ओर देखा।

और ये तो बिलकुल ही नहीं...

‘मुझे क्षमा कीजिए,’ भृंगी ने सिर हिलाकर कहा। ‘मैं किसी और की पूजा नहीं करता। मैं शैव हूँ।’

‘और मैं आदिशक्ति हूँ।’

‘मैं केवल महादेव की परिक्रमा करूँगा।’

‘परिक्रमा दोनों की करनी होगी या किसी की नहीं।’

भृंगी चल पड़े। उन्होंने पार्वती की उपेक्षा करके केवल शिव की परिक्रमा करनी चाही। पार्वती, अपने पति के और निकट आ गईं किंतु ऋषि फिर भी बचते रहे। वे और निकट आईं तो भी भृंगी ने उन पर ध्यान नहीं दिया। यह देखकर देवी पार्वती उठकर शिव की गोद में जा बैठीं।

‘अब क्या?’

भृंगी मुस्कुराए और फिर गायब हो गए। पार्वती देखती रह गईं। भृंगी न सामने थे, न पीछे। न नीचे, न ऊपर। पार्वती सोच रही थीं कि भृंगी ने पराजय स्वीकार कर ली होगी कि तभी भनभनाहट की आवाज़ ने उनका ध्यान खींच लिया।

मधुमक्खी।

वह मक्खी देवी के चेहरे के पास उड़ रही थी मानो उनकी आँख पर काट लेना चाहती हो। फिर वह शिव के चारों ओर उत्साह से उड़ने लगी जैसे कोई ग्रह सूर्य के आसपास चक्कर लगाता है। पार्वती उसे देख रही थीं। देवी को लगा कि भृंगी की अंडाकार चाल उनका उपहास उड़ा रही थी। शिव ने देखा कि पार्वती का खून खौल रहा था और उनका क्रोध बढ़ता जा रहा था। वह किसी भी क्षण फट सकती थीं। शिव ने आँखें बंद कर लीं।

अब केवल एक ही उपाय था।

मधुमक्खी रुक गई। कुछ हो रहा था। मक्खी का मार्ग अवरूद्ध होने लगा। शिव-पार्वती के बीच की दूरी कम हो रही थी। उनके शरीर के बीच का प्रकाश भी मंद हो रहा था। मधुमक्खी ने यह देखने के लिए बीच में से झाँका कि क्या पार्वती, शिव की ओर अधिक झुक गईं थीं। मक्खी वह दृश्य देखकर चकित रह गई। कुछ अविश्वसनीय घट रहा था। शिव और पार्वती के शरीर मिलकर एक हो रहे थे। शिव और शक्ति एक-दूसरे में विलीन होने वाले थे। उनके माँस और उनकी हड्डियाँ आपस में जुड़ रही थीं। उनकी आत्मा भी एक होने वाली थी। भृंगी, उस दिव्य मिलन को देख रहे थे जिसके दर्शन करके ब्रह्मा को ज्ञान प्राप्त हुआ था।

अर्द्धनारीश्वर। सृष्टि का स्रोत। ब्रह्मांड के दो भागों का संपूर्णता में विलय हो रहा था।

भृंगी चिल्ला पड़े। उस दृश्य के समक्ष घुटने टेकने के बजाय वह ईर्ष्या से भर गए। उन्हें शिव के साथ शिवांगी की एकात्मकता पसंद नहीं आई। उन्होंने देखा कि पार्वती भृंगी पर हँस रही थीं। भृंगी, देवी को शांत करना चाहते थे। भृंगी ने कीट का रूप धारण कर लिया

और कुछ ऐसा किया जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी। कीट ने माँस कुतरना शुरू कर दिया। वह अर्द्धनारीश्वर के माँस को चबाकर दोनों को एक-दूसरे से अलग कर देना चाहता था।

पार्वती ने झटके से खुद को शिव से अलग कर लिया और भृंगी को भयानक शाप दे डाला।

'भृंगी, तुमने उत्साह में सारी सीमाएँ पार कर डालीं। तुम ब्रह्मांड के एक पक्ष को श्रेष्ठ मानकर दूसरे के प्रति असहिष्णु हो गए हो। द्वैत को आत्मसात करके प्रसन्न होने के बजाय, तुम्हारा ध्यान विरोधाभास पर है जिसका तुम्हारे पास कोई समाधान नहीं है। तुम मूर्ख हो जो यह समझते हो कि तुम शिव को शक्ति से अलग कर सकते हो। तुम्हें यह मूलभूत सत्य दिखाई नहीं देता कि हम दोनों एक हैं। चूँकि तुमने ब्रह्मांड का पोषण करने वाली पवित्र स्त्री-शक्ति की अवहेलना की है इसलिए मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि तुम अपना समस्त माँस खो दोगे क्योंकि जीव को अपना माँस, माँ से विरासत में मिलता है। तुम्हारे पास केवल हड्डियाँ शेष रह जाएँगी क्योंकि वे पिता से प्राप्त होती हैं।'

पार्वती के शाप देते ही, भृंगी कंकाल में बदल गया। उसकी माँसपेशियाँ नष्ट हो गईं और उसके लिए सीधा खड़ा रहना असंभव हो गया। अंत में, शिव ने दया करके भृंगी को आशीर्वाद देकर तीसरा पैर प्रदान किया।

इस तरह, भृंगी तीन टाँगों वाला कीट बन गया।

38

समुद्र-मंथन



ऋषि दुर्वासा की प्रसिद्धि मुख्य रूप से उनके क्रोध के कारण थी। किंवदंतियों के अनुसार एक बार ब्रह्मा और शिव में किसी बात पर बहस हो गई जिसके बाद शिव को इतना क्रोध आ गया कि उससे ब्रह्मांड के भस्म हो जाने का संकट उत्पन्न हो गया। शिव को जब उस विध्वंसक ऊर्जा का एहसास हुआ तो उन्होंने उस ऊर्जा को ऋषि अत्रि की पत्नी अनसूया के गर्भ में स्थापित कर दिया। उस उग्र ऊर्जा के फलस्वरूप पैदा हुए मुनि दुर्वासा का क्रोध सदा उफनता ही रहता था। और इसी कारण उन्हें यह नाम मिला था।

दुर्वासा, यानी जिसके साथ रहना कठिन हो।

एक बार, दुर्वासा ऋषि की भेंट एक अप्सरा से हुई जिसने वैजयंती नामक उत्तम और सौभाग्यशाली माला पहन रखी थी। दुर्वासा ने ऐसे फूल पहले कभी नहीं देखे थे। उन्होंने उसकी सुगंध को महसूस किया। उन्होंने माला अप्सरा से ली और उसे पहनकर संसार-भर में घूमने लगे। वे जैसे ही स्वर्ग के द्वार के पास पहुँचे, उन्होंने देखा कि इंद्र अपने हाथी पर सवार थे। सहसा दुर्वासा के भीतर उदारता का संचार हुआ और उन्होंने माला इंद्र को भेंट कर दी। देवराज ने माला को अपने भाले से उठाया किंतु खुद पहनने के बजाय इंद्र ने वह माला अपने हाथी के सिर पर रख दी। दुर्भाग्य से फूलों की तेज सुगन्ध से हाथी उन्मत्त हो गया और उसने माला को जमीन पर पटक दिया।

‘दुष्ट मूर्ख,’ ऋषि दुर्वासा ने इंद्र से कहा। ‘तूने मेरी भेंट का उपहास करने का दुस्साहस कैसे किया? क्या देवताओं ने ऋषियों का आदर करना छोड़ दिया है?’

इंद्र, झटपट हाथी से नीचे उतरे और उन्होंने ऋषि के चरण स्पर्श किए।

‘ऋषिवर, मेरी मंशा आपका अनादर करने की नहीं थी। वैजयंती माला केवल वही धारण कर सकता है जिसने अहंकार पर विजय प्राप्त कर ली हो। मुझे पता है कि मैं यह नहीं कर पाया हूँ।’

परंतु ऋषि गुस्से से काँप रहे थे।

'तुम्हारे तर्क से तुम्हारा कर्म बदल नहीं सकता। स्वर्ग लोक के राज्य ने तुम्हें अहंकारी बना दिया है। हाथी पर विराजमान होकर तुम सबको हेय दृष्टि से देखने लगे हो। किंतु अब यह और नहीं होगा। मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि जैसे तुमने इन फूलों का त्याग किया है वैसे ही सौभाग्य भी तुम्हारा त्याग कर देगा।'

दुर्वासा के शब्द देवराज पर प्रभाव छोड़ने लगे और उनका तेज क्षीण होने लगा। जैसे-जैसे इंद्र का तेज कम हुआ, वैसे-वैसे उनके लोक का वैभव घटता गया। स्वर्ण ने अपनी चमक छोड़ दी और रत्नों ने आभा। पेड़ सूख गए और अस्त्र-शस्त्र शक्तिहीन होने लगे। समृद्धि चली गई। हर तत्त्व नष्ट होने लगा। यह जानकर कि स्वर्ग शक्तिहीन हो गया था, असुरों ने उस पर आक्रमण किया। प्रह्लाद के पौत्र बलि के नेतृत्व में, असुरों ने स्वर्ग लोक को अपने अधीन करके वहाँ अपना शासन स्थापित कर लिया। इंद्र और सभी देवता अब विष्णु के सामने सिर झुकाए खड़े थे। विष्णु ने लंबी श्वास भरी।

'दुर्वासा का शाप अकाट्य है।'

'असुर पहले से अधिक आग उगल रहे हैं। हम क्या करें?' वरुण ने याचना की।

'उनके पास अग्नि है तो आपके पास जल है।'

सभी ने देखा कि विष्णु किस ओर इशारा कर रहे थे। वह मचलते हुए तिमिंगल की बात कर रहे थे। समुद्र में लहरें ऐसे उठ रही थीं मानो कोई विशाल जन्तु, श्वास ले और छोड़ रहा हो।

'आप भूल रहे हैं कि जो ब्रह्मांड हमें अंधकार से भरता है, वही प्रकाश भी प्रदान करता है। समाधान हमारे आसपास ही है। हमें क्षीरसागर का मंथन करना होगा।'

'क्षीरसागर का मंथन?' इंद्र की भौहें तन गईं। 'उससे क्या मिलेगा, श्री हरि?'

'लक्ष्मी। धन और भाग्य की देवी। वह सबकुछ, जो शुभता का प्रतीक है। जब लक्ष्मी, जल से प्रकट होगी तो स्वर्ग लोक फिर से तुम्हारा हो जाएगा।'

किंतु उनके चेहरे अब भी डरे हुए थे।

'सागर!' अग्निदेव काँप उठे। 'जल का यह असीम विस्तार जिसका आरंभ और अंत दिखाई नहीं पड़ता। यदि सारे देवता भी एकजुट हो जाएँ तो इस कार्य को नहीं कर सकते।'

विष्णु ने हामी भरी। 'मुझे पता है। मैं असुरों के साथ युद्ध-विराम का आह्वान करूँगा। तुम उनके साथ मिलकर इस कार्य को पूर्ण करो।'

'असुरों के साथ मिलकर?' वायुदेव भड़क उठे।

'हाँ। आपके संयुक्त प्रयास से ही रत्नों की प्राप्ति होगी।'

'रत्न?'

‘क्षीरसागर के गर्भ में पड़े रत्न। उनमें से प्रत्येक रत्न, धर्म, अर्थ अथवा काम का प्रतीक है। वे न केवल स्वर्ग की रक्षा करेंगे अपितु पूरे ब्रह्मांड को उनसे लाभ मिलेगा।’

‘असुर कभी इसके लिए सहमत नहीं होंगे। वे किसी भी उद्यम में हमारी सहायता नहीं करेंगे।’

‘अमृत पाने के लिए भी नहीं?’

अमृत...

एक शब्द! उस एक शब्द ने जैसे सब कुछ बदल दिया। वह शब्द, हर जिह्वा पर विद्यमान हो गया।

‘अमृत? हम अमृत प्राप्त करेंगे?’

‘हाँ,’ विष्णु मुस्कुराए। ‘समुद्र से अनेक रत्न मिलेंगे किंतु अमृत से अधिक चमत्कारी कोई नहीं है। वह अमृत, जिसे पीकर कोई भी अमर हो सकता है। यदि यह सूचना असुरों को दी जाए तो वे तुरंत तैयार हो जाएँगे।’

‘किंतु फिर असुर भी अमृत में हिस्सा माँगेंगे,’ इंद्र ने धीरे से कहा। ‘क्या आप हमें उनके साथ अमृत बाँटने का सुझाव दे रहे हैं?’

‘आदर्श रूप से आपको यही करना चाहिए। दैत्य और दानव न केवल आपके सौतेले भाई हैं अपितु वे अमृत को बाहर निकालने के लिए वांछित शक्ति का आधा हिस्सा भी देंगे। परंतु ब्रह्मांड के हित में हम उन्हें अमर नहीं होने दे सकते। इसके अलावा, महादेव ने पहले ही उन्हें मृत्युसंजीवनी का आशीर्वाद दे दिया है जिससे वे व्यावहारिक रूप से मृत्यु को जीत चुके हैं। मैं यह सुनिश्चित करूँगा कि उन्हें अमृत प्राप्त न हो पाए।’

इस प्रकार देवता आश्वस्त हो गए और वे इस प्रस्ताव को लेकर बलि के पास पहुँचे। असुर राज बलि दयालु था और तुरंत सहमत हो गया।

‘मैं श्री हरि के सुझाव को अस्वीकार कैसे कर सकता हूँ? इस कार्य में सहयोग करना हमारे लिए सम्मान की बात होगी।’

दिन निकला। उस दिन क्षीरसागर वह दृश्य देखने वाला था जो उसने पहले कभी नहीं देखा था। देवता और असुर एक साथ खड़े थे। उनकी शिराओं में बहता रक्त, उनकी समान वंशावली को स्वीकार कर चुका था। ब्रह्मा का तेज। दक्ष का बीज। परंतु उनके मुख, चारों ओर व्याप्त जल के समान थे। ऊपर से स्वागत के भाव से परिपूर्ण, किंतु भीतर, नमक से भरे!

यम ने कहा, ‘मंथन के लिए एक मँथनी और एक रस्सी की आवश्यकता है। परंतु यह महासागर है। कौन-से उपकरण, इसकी विशालता को माप सकते हैं?’

सबकी दृष्टि विष्णु की ओर मुड़ गई।

विष्णु ने कहा, 'मैं मंदार पर्वत को उखाड़कर उसे मँथनी के स्थान पर रख दूँगा। और वासुकि नाग, रस्सी का काम करेंगे।'

जल्द ही, विष्णु ने पर्वत को उखाड़कर समुद्र के हृदय पर स्थापित कर दिया और वासुकि नाग उसके चारों ओर साढ़े तीन बार लिपट गया जैसे रीढ़ के चारों ओर कुंडलिनी लिपटी होती है। दैत्यों ने वासुकि को सिर की तरफ से पकड़ लिया और देवताओं ने उसकी पूँछ थाम ली। मंथन शुरू हुआ और तुरंत रुक गया। कुछ गड़बड़ हो रही थी। मंदार अपने स्थान से हिल जाता था। वह समुद्र-तल पर स्थिर नहीं था इसलिए बार-बार लड़खड़ा रहा था। सब उदास हो गए। तभी उन्होंने देखा कि शिव, विष्णु को देखकर मुस्कुरा रहे थे।

'समय हो गया।'

सबकी आँखों के सामने विष्णु का रूप बदल रहा था। नवोदित अंग और नया सिर। फिर एक विशाल उलटा खोल निकल आया। भगवान उभयचर बन गए थे। एक विशालकाय कच्छप।

'नए अवतार की जय हो,' ब्रह्मा ने स्तुति की। 'कूर्म अवतार।'

कूर्म ने क्षीरसागर में गोता लगाया और मंदार पर्वत को अपनी पीठ पर धारण कर लिया। अब मंदार मजबूती से कूर्म की पीठ पर टिक चुका था। मंथन फिर से आरंभ हो गया। देवता वासुकि को पूँछ की ओर से खींच रहे थे और दैत्य, सिर की ओर से। पर्वत, दक्षिणावर्त और वामावर्त घूम रहा था। गंधर्व, यक्ष और नाग इस लौकिक घटना के साक्षी थे। उस विशाल पर्वत की मदद से क्षीरसागर का मंथन होने लगा। एक ओर सबकुछ दैवीय था तो दूसरी ओर आसुरी। उस विशाल प्रक्रिया को संभालने के लिए स्वयं विष्णु ने अवतार लिया था। विशालता का ऐसा स्तर, ऐसा परिमाण पहले कभी किसी ने नहीं देखा था। देवता और असुर एक लक्ष्य की पूर्ति के लिए मिलकर काम कर रहे थे। वह ऐसी महान घटना थी जिसका स्वर प्रत्येक युग में गूँजने वाला था।

फिर क्षीरसागर में बुलबुले उठने लगे।

मंदार की गति से उसकी जड़ में अत्यधिक ऊर्जा उत्पन्न हो रही थी। वह गतिशीलता बाहर की ओर फैलने लगी जिससे जल, सर्पिल तरीके से घूमने लगा। समुद्र में झाग उठने लगे और अति विशाल भँवर बन गया। वासुकि का शरीर, पर्वत से रगड़ खा रहा था। सागर में उठा भँवर, उग्र होता गया जिससे पानी में हलचल हो रही थी। जल-प्रवाह का बल जैसे ही समुद्र की रीढ़ से होकर उसके तल तक पहुँचा, उसने नीचे पड़ी हुई वस्तुओं को ऊपर उछालना शुरू कर दिया।

'देखो!' वे सब चिल्लाए।

दूध पर पड़ी मलाई की तरह, सागर की सतह पर रत्न तैरने लगे।

‘कल्पवृक्ष।’ ब्रह्मा ने उसे पहचान लिया।
हर मनोकामना पूर्ण करने वाला वृक्ष।
‘ऐरावत।’
पाँच सिरों वाला हाथी।
‘उच्चैश्रवा।’
सात सिरों वाला घोड़ा।
‘कामधेनु।’
प्रचुरता प्रदान करने वाली गाय।
‘कौस्तुभ।’
चेतना की मणि।
‘वारुणी।’
मदिरा की अधिष्ठात्री।
‘रंभा और मेनका।’
दिव्य अप्सराएँ।
‘पारिजात।’
सदैव पल्लवित रहने वाला वृक्ष।
‘पाँचजन्य।’
दिव्य शंख।
‘शारंग।’
शक्तिशाली धनुष।
‘ज्येष्ठ।’
दुर्भाग्य का देवता।
‘लक्ष्मी।’
श्री का अवतार।

ब्रह्मांड आनंदित हो उठा। धन का आगमन हुआ था। भाग्य खुल गए। कमल खिलने और सिक्के खनकने लगे थे। श्वेत गज, जल छिड़क रहे थे। दसों दिशाएँ, श्री सूक्त गायन कर रही थीं। अचानक समुद्र के पानी में उबाल आने लगा। दुर्गंध से भरी वाष्प, घने कोहरे में बदल रही थी। दूषित वायु चारों ओर फैलने लगी और उसने आकाश को काला कर दिया तथा वायु को झुलसा दिया। क्या समुद्र-मंथन ने किसी राक्षस को जगा दिया था?

‘हलाहल,’ ब्रह्मा ने पहचान कर कहा। ‘विष।’

‘विष?’ देवता चिल्लाए। ‘श्री हरि ने हमें विष के संबंध में कुछ नहीं बताया।’

ब्रह्मा मुस्कुराए। 'क्या उन्होंने यह नहीं कहा था कि जहाँ प्रकाश है, वहाँ अंधकार भी होता है? बस, वही अंधकार अब बढ़ रहा है।'

क्षीरसागर के मध्य से रिसाव हो रहा था, मानो कोई घाव सड़ रहा हो। उसने जल पर विषैले मैल की परत चढ़ा दी। समुद्र के भीतर से इतना भयंकर विष निकल रहा था कि ब्रह्मांड के नष्ट होने का संकट उत्पन्न हो गया।

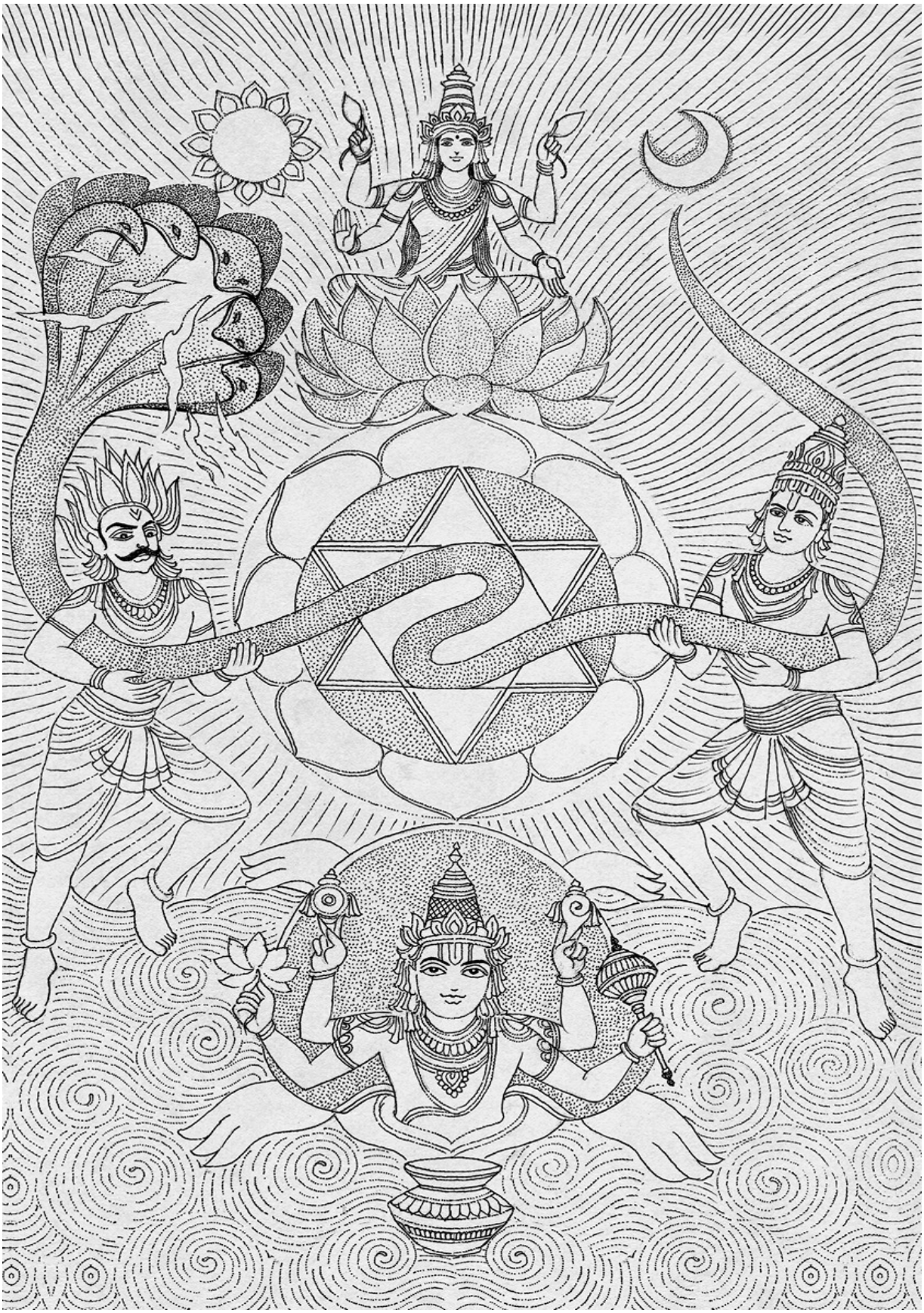
'यह जलप्रलय सारी सृष्टि को निगल जाएगी।' इंद्र ने डरते हुए कहा। 'हमें इसे रोकना होगा।'

'केवल एक व्यक्ति है जो यह कार्य कर सकता है,' ब्रह्मा ने कहा और एक ओर संकेत किया।

उन्होंने देखा। शिव, क्षीरसागर के बीच में उतर रहे थे। उनके चारों ओर विष था जो तट पर फैल जाने को व्याकुल था। शिव झुके और उन्होंने पानी के नीचे अपनी हथेलियों को जोड़ लिया।

'हलाहल,' बलि चिल्लाया। 'वह कम हो रहा है।'

लोग स्तब्ध थे। विष में विस्फोट हो रहा था। वह तेजी से शिव की हथेलियों में भर रहा था जैसे कोई अदृश्य परासरण उसे खींच रहा हो। समुद्र का जल छनने लगा और सारा विष, शिव ने अपने हाथ में रोक लिया। विष का असीम सागर, एक अंजुली में सीमित हो गया। सब आश्चर्य से देख रहे थे। शिव ने हाथ उठाए और विष पी लिया। जिन शिव के क्रोध से दुर्वासा की उत्पत्ति हुई थी, वही अब सबको बचाने के लिए विष पी रहे थे। हलाहल की बूँदें नीचे उतरीं तो भयभीत पार्वती ने अपना हाथ शिव के गले पर रख दिया। विष वहीं थम गया और शिव का कंठ नीला पड़ गया।



‘नीलकंठ!’ सबकी आँखों से आँसू बहने लगे। ‘नीलकंठ!’

देवता और असुर फिर से झूम उठे। उनकी कलाइयों में दर्द हो रहा था। मुट्ठियों की पकड़ ढीली पड़ रही थी। वासुकि ने खुद को इतना कस लिया कि लगा जैसे मंदार चटक ही जाएगा। उसके शरीर से रक्त बह रहा था, चमड़ी छिल गई थी। उन्होंने जैसे ही वासुकि को अंतिम बार घुमाने के उद्देश्य से जल में डुबाया, क्षीरसागर का मानो पुनर्जन्म हो गया। उसके भीतर से हाथ में एक स्वर्ण-कलश लिए कोई निकला।

‘धन्वंतरि,’ ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर कहा। ‘आयुर्वेद के अधिष्ठाता।’

‘और वह कलश?’ उन्होंने पूछा।

‘अमृत।’

39
विष्णु बने मोहिनी



समुद्र-मंथन हो चुका था और अमृत निकल आया था। वह अंतिम रत्न था।

अमृत। अमरता का प्रतीक।

धन्वंतरि ने जैसे ही समुद्र-तट पर कदम रखा, देवताओं और असुरों ने उन पर चारों ओर से धावा बोल दिया। सबकी दृष्टि धन्वंतरि के कलश पर टिकी थी।

'आज का दिन धन्य है,' ब्रह्मा ने कहा। 'क्षीरसागर ने अपना समस्त वैभव प्रदान कर दिया है और अब समय आ गया है कि--'

अचानक उठे शोरगुल में उनके शब्द दब गए। असुरों ने धन्वंतरि से कलश छीन लिया। उसमें से उठ रही अविश्वसनीय सुगंध ने उनके होश उड़ा दिए थे। असुर उस रत्न को चखने और अमर हो जाने के लिए व्याकुल हो रहे थे। इसके अलावा उन्हें संदेह था कि देवता, उन्हें अमृत देने से मना कर देंगे इसलिए उन्होंने कलश अपने नियंत्रण में ले लिया। असुरराज बलि का सिर शर्म से झुक गया था। देवता चकित रह गए। वे उस कलश को एक असुर से दूसरे असुर के हाथों में जाता देख रहे थे। किसी भी क्षण असुर अमृत का सेवन कर सकते थे।

तभी एक हँसी गूंजी।

तितली की तरह फड़फड़ाती रेशमी मछलियाँ।

मानो रेशमी पंख उनकी त्वचा से टकरा रहे हों।

उसके केश में कमल गुँथे थे, कानों में कुंडल और गले के चारों ओर सीपियों की माला थी।

एक ऐसी स्त्री, जैसी असुरों ने पहले कभी नहीं देखी थी, उनकी ओर आ रही थी। उसकी आँखें मानो उनके वस्त्र उतार रही थीं। उसके होंठ, उनकी त्वचा को छूने के लिए मचल रहे

थे। उसकी बाँहें उनके वक्ष के चारों ओर लिपट जाने को आकुल थीं और उसके नितंब उनके दिलों की धड़कन पर झूम रहे थे। उस स्त्री ने असुरों में ऐसी व्याकुलता पैदा कर दी कि वे अपने हाथ में पकड़े अमृत-कलश को भी भूल गए। उन्हें यह भान ही नहीं रहा कि उनके सामने एक भ्रम था; यह कि उनके समक्ष एक अलौकिक आभास खड़ा था; और यह कि विष्णु स्वयं उस आकर्षक स्त्री का रूप धारण करके समुद्र में से प्रकट हुए थे।

मन को मोह लेने वाली मोहिनी बनकर।

असुरों के बीच चलते हुए, मोहिनी ने धीरे-से कलश के किनारे को थपथपाया। उसकी अंगुलियों से मादक ध्वनि उत्पन्न होने लगी।

'तुम कितने भोले हो!'

'तुम ऐसा क्यों कह रही हो?' असुरों ने पूछा।

'अमृत का तत्त्व कलश के तल में नीचे बैठ गया है। वही समृद्ध और गाढ़ा द्रव्य है। ऊपर तो केवल तरल पदार्थ तैर रहा है।'

'तो हमें क्या करना चाहिए?'

'देवताओं को यह ऊपरी द्रव्य पी लेने दो। वे जब तृप्त हो जाएँगे तो तुम नीचे बैठे हुए असल अमृत का आनंद ले सकोगे।'

असुरों ने चुपचाप कलश, मोहिनी को सौंप दिया। देवता, अमृत का एक-एक घूंट पीने लगे। अमृत उनकी जिह्वा को स्पर्श करता हुआ उनमें उन्मादी आह्लाद जगा रहा था। अमृत, उनके शरीर में बहने लगा और उसने देवताओं की प्रत्येक कोशिका को अमर कर दिया। इस बीच असुर, मोहिनी की ओर ताकते रहे। उनकी आँखें उसके चेहरे को देखकर रोमांचित हो रही थीं। मोहिनी की पायल ने उनके होश उड़ा दिए थे। उनमें से किसी ने ध्यान नहीं दिया कि कलश में लगभग सारा अमृत पिया जा चुका था।

केवल एक असुर ने यह सब देखा।

उसका नाम स्वरभानु था। उसकी दृष्टि मोहिनी के बजाय अमृत पर थी। वह सावधानी से कलश को देख रहा था। उसने महसूस किया कि कलश हल्का हो गया था। उसमें भरी सामग्री कम रह गई थी। केवल थोड़ा-सा अमृत शेष था। असुरों का पूरा समूह मंत्रमुग्ध खड़ा था इसलिए स्वरभानु जानता था कि विरोध करना व्यर्थ होगा। अब केवल एक ही उपाय था।

छलिया के साथ छल किया जाए!

सबसे छिपकर स्वरभानु चुपचाप देवताओं की पंक्ति में घुसा और अंत में जाकर खड़ा हो गया। वह कलश को देखते हुए धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़ रहा था।

निकट... और निकट... और निकट... और निकट...

उसके कुल के साथ धोखा हो गया था। अब स्वयं के विषय में सोचने का समय था।

वह निकट पहुँचा... और पास... और निकट...

वही मादक सुगंध फिर महसूस होने लगी। स्वरभानु उन्मत्त हो गया।

और निकट... और पास...

उसे मुँह खोलने को कहा गया।

और पास...

मोहिनी ने स्वरभानु के मुँह के सामने कलश को टेढ़ा कर दिया। अमृत को देखकर स्वरभानु की आँखों में आँसू भर आए। अमृत की बूँदें, उसके मुँह में टपकीं तो स्वरभानु की जीभ काँपने लगी। उसका गला भरा तो अंतःकरण हर्षित हो उठा। उसे यह सोचकर आश्चर्य हो रहा था कि समुद्र के खारे जल में से इतना मीठा द्रव्य कैसे निकल सकता है।

'असुर! असुर!'

अचानक सूर्य ने चिल्लाना शुरू कर दिया। उसने स्वरभानु को धक्का दिया। चंद्र ने लपक कर मोहिनी के हाथ से कलश छीन लिया।

'यह स्वरभानु है। इसने अमृत पी लिया।'

भगदड़ मच गई। देवताओं ने उस पर हमला बोल दिया। असुर भागने लगा। लेकिन उसके अंग अकड़ गए। उसे एक परिचित स्वर सुनाई दिया। उसे किसी धातु के घूमने की घातक आवाज़ सुनाई पड़ी। अगले ही क्षण, स्वरभानु का सिर, उसके धड़ से अलग हो गया।

सुदर्शन...

विष्णु, अब मोहिनी रूप में नहीं थे। उन्होंने असुर का सिर काटने के लिए वह रूप त्याग दिया था। विष्णु ने देखा कि स्वरभानु के रक्त से समुद्र का रंग लाल हो रहा था। उसके सिर और धड़ तैरते हुए एक-दूसरे से दूर जा रहे थे। अचानक राक्षस की आँखें खुल गईं। उसका सिर ऊपर उठने लगा और धड़ उठकर किनारे पर खड़ा हो गया।

'असंभव,' इंद्र ने चिल्लाते हुए कहा।

'अमृत!' ब्रह्मा ने आह भरी। 'अब उसे कोई नहीं मार सकता। न विष्णु और न शिव।'

स्वरभानु का कटा सिर क्रोध से काँप रहा था। उसके धड़ की भुजाएँ, सूर्य और चन्द्र की ओर संकेत कर रही थीं।

'तुम दोनों के कारण मेरी यह दशा हुई है इसलिए अब तुम्हें भी इसका परिणाम भुगतना पड़ेगा। हे सूर्य, भले ही यम तुम्हारा पुत्र है किंतु तुम्हें भी मरना होगा। और चंद्र, तुम्हें महादेव ने भले ही स्वस्थ कर दिया हो किंतु तुम पर भी अंधकार अवश्य छाएगा।'

स्वरभानु का कटा सिर, घातक ढंग से दोनों देवताओं के ऊपर मँडराने लगा।

'अब से जब भी मैं चाहूँगा, मेरा सिर सूर्य को ग्रस लेगा और मेरा धड़, चंद्रमा को ढक

लेगा। तुम दोनों आकाश से मिटा दिए जाओगे। जैसे तुमने अमृत साझा करने से मना कर दिया, उसी तरह तुम अपना प्रकाश भी साझा नहीं कर सकोगे। मैं जब तक तुम्हें मुक्त नहीं करूँगा, तब तक पूरा ब्रह्मांड अंधकार में डूबा रहेगा। मेरा सिर, राहु और धड़, केतु कहलाएगा। और वे दोनों अनंत काल तक तुम्हें इसी तरह अपना ग्रास बनाते रहेंगे।'

वह ज्यों ही गायब हुआ, लक्ष्मी ने विष्णु का हाथ पकड़ लिया। उन्होंने विष्णु को माला पहनाई और उन्हें वनमाली नाम दे दिया। वह विष्णु की पत्नी बन गईं और देवताओं को स्वर्ग लोक वापस मिल गया। कुछ दिनों बाद, शिव को फिर से विष्णु का मोहिनी रूप देखने की इच्छा हुई तो वे वैकुंठ पहुँच गए।

'मुझे अपना वही अवतार फिर दिखाइए। वह आपका एकमात्र स्त्री अवतार है। ब्रह्मांड में सबसे मनमोहक।'

विष्णु ने फिर से मोहिनी रूप धारण किया तो शिव मंत्रमुग्ध होकर उन्हें देखते रह गए। मोहिनी ने शिव में उत्साह भर दिया था। उनमें भोग का संचार हो गया। शिव का वीर्य टपकने लगा जिससे सोने-चांदी के अयस्कों के स्फटिक बन गए। उस दिव्य रूप की लालसा में शिव ने मोहिनी को गले लगा लिया। उनका हर्षोन्माद समाप्त हुआ तो उन्होंने देखा कि वे विष्णु से लिपटे हुए थे। विष्णु मुस्कुरा दिए।

'हम सदा एक थे, महादेव। हरि और हर फिर से हरिहर बन गए हैं।'

'और मोहिनी जल्द ही मोहन बन जाएगी।' शिव ने आँखें बंद कर लीं।

40
कद्रू और विनता की शर्त



समुद्र-मंथन से प्रसन्न होने वाले अनेक लोगों में से एक थी, कद्रू। वह दक्ष की पुत्री थी और उसने कश्यप से विवाह करके उनसे एक हजार पुत्रों का वरदान प्राप्त किया था। कद्रू ने एक हजार नागों को जन्म दिया, जिसके चलते वह नाग जाति की माता कहलाई। उसका ज्येष्ठ पुत्र शेषनाग, क्षीरसागर पर भगवान विष्णु की शय्या बना। और अब उसके दूसरे पुत्र वासुकि ने क्षीरसागर के मंथन में विष्णु की मँथनी की भूमिका निभाकर अपार श्रेय अर्जित किया।

कद्रू प्रसन्न थी, परंतु उसकी बहन विनता नहीं!

बहनें होने के बावजूद उनके बीच लंबे समय से मूक संघर्ष चल रहा था। विनता का भी कश्यप से विवाह हुआ था लेकिन विनता ने कश्यप से केवल दो ही पुत्र माँगे थे। उसने यह चाहा था कि वे दोनों पुत्र, कद्रू के हजार पुत्रों से श्रेष्ठ हों। कुछ समय बाद विनता ने दो अंडे दिए किंतु उनमें से काफी समय तक बच्चे नहीं निकले। एक दिन विनता का धैर्य समाप्त हो गया और उसने दो में से एक अंडा समय से पहले फोड़ दिया। उसने देखा कि अंडे के अंदर एक नर-भ्रूण मौजूद था जिसके तन से लाल आभा निकल रही थी परंतु उसका केवल आधा शरीर विकसित हो पाया था। उसका चेहरा और धड़ पूर्ण विकसित था किंतु शरीर के निचला भाग के स्थान पर केवल माँस का लोथड़ा लटक रहा था। विनता के इस विकृत पुत्र अरुण ने क्रोध में भरकर अपनी माता को शाप दे दिया।

'तुम जल्द ही अपनी बहन कद्रू की दासी बनोगी। तुम्हारी दासता तभी समाप्त होगी जब तुम दूसरे अंडे को समय से फूटने दोगी।'

उसके बाद भी बहुत समय बीत गया किंतु दूसरा अंडा हिला तक नहीं। उसमें जीवन का कोई संकेत दिखाई नहीं पड़ा। विनता बैठी उसे वर्षों से देख रही थी। उसकी अँगुलियाँ भी अंडे को तोड़ने के लिए मचल रही थीं किंतु अरुण के शब्द उसके कानों में गूँज रहे थे। तभी

कद्रू वहाँ आई तो विनता ने अपने आँसू पोंछ लिए।

‘क्या तुमने सागर-मंथन के बारे में सुना और तुम्हें पता है मेरे वासुकि ने क्या किया?’ वह खुश होकर बोली।

‘हाँ, मैंने सुना। उसने कितना भला कार्य किया है।’

‘श्री हरि की सेवा करने वाले पुत्रों का होना सौभाग्य की बात है। विनता, यदि तुम्हारा पुत्र होता तो तुम समझ पातीं।’

‘संभवत: मेरा भी एक पुत्र होगा।’

‘पुत्र ही वे निधि हैं, जिनसे माताएँ प्रसन्न होती हैं।’

‘मैंने सुना है कि समुद्र में से चौदह प्रकार की निधियाँ प्राप्त हुई हैं?’

‘हाँ, यह सच है। उनमें से एक यहीं है,’ कद्रू ने ऊपर की ओर संकेत किया। ‘सात सिरों वाला घोड़ा, उच्चैश्रवा!’

‘कितना सुंदर है!’ विनता ने कहा। ‘सिर से पूँछ तक श्वेत।’

‘इसकी पूँछ सफेद नहीं है; वह काली है।’

‘काली? नहीं, वह सफेद ही है। उसका हर कोना सफेद है।’

‘वह निश्चित रूप से काली है।’

‘वह स्पष्ट तौर पर सफेद है।’

दोनों बहनें झगड़ती रहीं। दोनों में से कोई हार मानने को तैयार नहीं थी। फिर उन्होंने एक शर्त में लगाई और भोर के समय घोड़े की पूँछ के रंग की जाँच करने का फैसला किया। यह तय हुआ कि शर्त हारने वाली बहन, जीतने वाले की दासी बनकर रहेगी। कद्रू के पुत्रों ने जैसे ही इस शर्त के बारे में सुना, उन्होंने निराशा से अपनी जीभ हिलाईं।

‘यह तुमने क्या किया, माँ? तुम हार जाओगी।’

‘हार जाऊँगी?’

‘हाँ। हमने उच्चैश्रवा को देखा है। वह सफेद है। पूरा सफ़ेद। उसकी पूँछ का हर बाल सफेद है।’

कद्रू का चेहरा सिकुड़ गया। अचानक उसके आसपास की हर चीज का रंग उड़ने लगा। पूरा ब्रह्मांड मानो एक रंग का हो रहा था।

सफ़ेद...

कद्रू ने सिर हिलाया। उसने तय किया कि वह विनता को जीतने नहीं देगी। उसे अपनी बहन की दासी बनना स्वीकार नहीं था।

‘सफेद रंग, काला हो सकता है,’ वह मुस्कुराई।

‘क्या मतलब, माँ?’

‘बहुत आसान है। मैं चाहती हूँ कि कल सुबह, तुम सब घोड़े की पूँछ के चारों ओर लिपट जाओ। अपने काले बदन को उसकी पूँछ पर इस तरह लपेट लेना कि उसका एक भी सफेद बाल दिखाई न दे। विनता हमारी चाल को समझ नहीं पाएगी और मैं शर्त जीत जाऊँगी।’

कद्रू के कुछ पुत्र तो इसके लिए सहमत हो गए किंतु कुछ ने उसकी बात मानने से मना कर दिया। कद्रू को क्रोध आ गया और उसने अवज्ञा करने वाले अपने पुत्रों को शाप दे दिया कि उनके वंशज कलियुग में होने वाले एक यज्ञ में जलकर भस्म हो जाएँगे। अगले दिन दोनों बहनें उच्चैश्रवा को देखने के लिए खड़ी हो गईं। पूँछ पर बहुत-से काले सर्प लिपटे हुए थे और इस कारण वह पूरी तरह काली दिखाई दे रही थी। कद्रू और उसके पुत्रों की चाल से अनजान, विनता ने पराजय स्वीकार कर ली और कद्रू की दासी बन गई।

अरुण का शाप सत्य हो गया था।

पाँच सौ साल बाद, ब्रह्मांड में चरमराने की ध्वनि गूँजी। विनता का दूसरा अंडा फूट गया था। उसके खोल में से सुनहरी आभा निकल रही थी मानो दूसरा सूर्य उदय हो रहा हो। परंतु भीतर से जो निकलकर सामने आया, वह संकर प्राणी था। आधा पक्षी, आधा मानव। उसके सुनहरे शरीर पर उगे लाल पंख फड़फड़ा रहे थे तथा उसके पंजे बता रहे थे कि वह नागरी अर्थात् नागों का शत्रु था। कद्रू के हजार पुत्रों से अधिक शक्तिशाली, जैसा कि कश्यप ने विनता को वचन दिया था।

वह गरुड़ था। मानवाभ पक्षी।

गरुड़ को जैसे ही अपनी माता की दासता का पता लगा उसने तुरंत उसकी मुक्ति की माँग की। नाग इस बात के लिए मान तो गए किंतु उन्होंने एक शर्त रखी।

‘समुद्र से जब अमृत निकला था तब तुम्हारी माँ विनता हमारी दासी बनी थी। परंतु हमें अमृत को चखने का अवसर नहीं मिला। तुम हमें अमृत लाकर दे दो और हम तुम्हारी माता को दासता से मुक्त कर देंगे।’

गरुड़ ने शर्त स्वीकार कर ली। परंतु उसे पता था कि वह कार्य बहुत कठिन है। अमृत को सुरक्षित रखने के लिए देवताओं ने अनेक तरह की सावधानियाँ बरती थीं। अग्नि ने अमृत-कलश को चारों ओर से घेर रखा था और बहुत पैनी धार वाले अरे उसकी खोह के प्रवेश द्वार पर घूमते थे। दो भयानक सर्प भी उसकी रक्षा के लिए नियुक्त किए गए थे ताकि कोई वहाँ प्रवेश करने का साहस न कर सके। यह जानकर गरुड़ को हँसी आ गई।

‘अमृत की रक्षा विष करता है?’

गरुड़ ने हर बाधा को पार कर लिया। उसने नदियों के जल से बौछार करके आग के घेरे को बुझा दिया। पैने अरों से बचने के लिए गरुड़ ने अपना आकार छोटा कर लिया और सर्पों को भी मार डाला। अमृत-कलश लेकर गरुड़ वापस उड़ा तो मार्ग में उसे रुकना पड़ा।

उसके मार्ग में स्वयं भगवान विष्णु खड़े थे।

विष्णु, कुछ समय से गरुड़ को देख रहे थे। उन्हें पता था कि गरुड़ ने अमृत क्यों चुराया था किंतु वे प्रसन्न भी थे क्योंकि अमृत पास होते हुए भी गरुड़ ने उसे चखा नहीं था। विष्णु ने गरुड़ को अमृत ले जाने दिया और उसे वरदान भी दिया। फिर गरुड़ की भेंट इंद्र से हुई। देवराज ने वज्र उस पर फेंका किंतु इंद्र का शक्तिशाली वज्र, गरुड़ के शरीर से टकरा कर उसका केवल एक सुनहरा पंख गिरा पाया। इंद्र ने भी गरुड़ की योग्यता को पहचान लिया था। देवराज भी उसके मार्ग से हट गए और दोनों ने एक-दूसरे को वचन दिया।

गरुड़ ने कहा, 'मैं वचन देता हूँ कि सर्पों द्वारा अमृत चखने से पहले ही आप इसे वापस ले जा सकेंगे।'

'और मैं यह घोषणा करता हूँ कि अब से सर्प, तुम्हारा भोजन होगा,' देवराज ने वचन दिया।

इधर, कद्रू के पास पहुँचकर गरुड़ ने जानबूझकर अमृत-कलश को धरती पर रख दिया।

'जो तुम्हें चाहिए था, मैं उसे ले आया हूँ! अब मेरी माता को मुक्त कर दो।'

नागों ने विनता को छोड़ दिया। फिर उन्होंने जैसे ही अमृत की ओर रेंगना शुरू किया, इंद्र ने झपट्टा मारकर कलश उठा लिया और उसे लेकर उड़ गए। इस भगदड़ में अमृत की कुछ बूँदें, घास पर गिर गईं और ओस की तरह चमकने लगीं। सर्पों ने अमृत चाटने के लोभ में नुकीली कुश को चाटना शुरू कर दिया जिससे उनकी जीभ दो हिस्सों में विभक्त हो गई। परिणामस्वरूप, हर सर्प की जीभ काँटेदार होती है। चूँकि उन्होंने थोड़ा-सा अमृत चख लिया था इसलिए नागों में भी अमरता का अंश विकसित हो गया। इसी कारण, उनकी पुरानी केंचुली उतर जाती है उसकी जगह नई त्वचा विकसित हो जाती है।

कद्रू ने विनता को देखा तो उसे गुस्सा आ गया। 'तुम्हारे पुत्र ने हमारे साथ छल किया है।'

'जैसे तुम्हारे पुत्रों ने मेरे साथ छल किया था। यह दुख की बात है कि दिति और अदिति की तरह हमें भी एक-दूसरे से प्रेम नहीं है। उनके बच्चे सदा लड़ते हैं और अब हमारे पुत्र भी एक-दूसरे के शत्रु हो गए हैं।'

'परंतु मेरे पुत्र श्रेष्ठ हैं,' कद्रू ने ताना मारा। 'मेरा पुत्र वासुकि, श्री हरि के काम आया और मेरा दूसरा पुत्र शेषनाग, उन्हें क्षीरसागर में ले जाता है।'

तभी गरुड़ ने कहा, 'मैं भी विष्णु को ले जा सकूँगा। उन्होंने मुझे वरदान दिया है।'

'कैसा वरदान?' विनता ने पूछा।

'श्री हरि ने मुझे अपना वाहन बनाया है।'

कद्रू ने विनता की ओर देखा। विनता मुस्कुरा रही थी।

41
गणेश को मिला जीवन



पार्वती रो रही थीं।

कार्तिकेय की तारकासुर पर विजय ने उन्हें गौरव से भर दिया था। परंतु कार्तिकेय जितना अधिक युद्ध के लिए जाते, पार्वती उतना ही कम प्रसन्न होतीं क्योंकि वे फिर उन्हें कम देख पाती थीं। देवताओं के सेनापति कार्तिकेय निरंतर युद्धरत रहते थे। उनके आगमन ने पार्वती के भीतर की माँ को जगा दिया और उनकी अनुपस्थिति ने उन्हें लालसा से भर दिया था। उनका मातृ-प्रेम बढ़ता जा रहा था किंतु उसे ग्रहण करने वाला कोई नहीं था। ब्रह्मांड ने उनके पुत्र को उनसे माँग लिया था तो वे कर भी क्या सकती थीं?

दूसरा पुत्र...

पार्वती हिचकिचाईं। किसी ने उनके कान में कुछ कहा? किंतु वे अकेली थीं। तो क्या वे शब्द उनके ही भीतर से उपजे थे? क्या यह उनकी अपनी आवाज़ थी? क्या उनके विचार, पंख लगाकर आए और उनके हृदय को झकझोर गए? पार्वती मुस्कुराईं। क्या ब्रह्मांड ऐसे ही कार्य करवाता है, उन्होंने सोचा। क्या वह किसी को भी साधन बना लेता है और विचारों को इस तरह आरोपित करता है कि वे क्रियाओं में बदल जाते हैं? पार्वती बैठ गईं। एक और पुत्र होने से उनका ममत्व संतुष्ट हो जाएगा। वह न केवल पार्वती का प्रेम ग्रहण करेगा अपितु बदले में उन्हें भी प्रेम देगा। परंतु शिव उस समय कैलाश पर उपस्थित नहीं थे। महायोगी की कार्तिकेय के बाद दूसरी संतान उत्पन्न करने में रुचि नहीं थी। पार्वती स्नान की तैयारी करने लगीं। इस बीच एक अन्य योजना आकार ले रही थी।

महादेव ने कार्तिकेय को उत्पन्न किया...

मैं भी ऐसा कर सकती हूँ...

पार्वती ने पूरे बदन पर हल्दी का लेप लगा रखा था। कुछ देर बाद वे उसे मल कर उतारने

लगीं। उतरे हुए लेप से पार्वती ने एक लोई बनाई और उसे बालक के रूप में ढालने लगीं। सिर। धड़। हाथ और पैर। आँखें और कान। लोई, आकार ग्रहण कर रही थी जैसे भ्रूण ढलता है। यह बालक, पार्वती के गर्भ में नहीं अपितु उनकी हथेलियों में ढल रहा था। उन्होंने उसमें प्राण फूँकने के लिए आँखें बंद कर लीं किंतु फिर वे रुक गईं।

क्या महादेव इसे स्वीकार करेंगे?

उन्होंने सिर हिलाकर हामी भरी।

मैं कार्तिकेय से प्रेम करती हूँ... महादेव भी इससे प्रेम करेंगे...

पार्वती ने श्वास ली। उनका बनाया शिशु भी श्वास लेने लगा।

'माँ!'

'मेरा पुत्र!'

'मेरा नाम क्या है, माँ?' बालक ने पूछा।

'हमारे अनुयायी गण कहलाते हैं। तुम्हारा नाम गणेश होगा। गणपति। गणों के स्वामी।'

उन्होंने गणेश को पकड़ लिया और फिर छोड़ा ही नहीं। कुछ क्षण बाद, उन्होंने गणेश को अपने अनुचर के पास सौंप दिया।

'मैं अब स्नान करूँगी। पुत्र, तुम यहीं पहरा देना और किसी को भीतर मत आने देना।'

'ऐसा ही होगा, मैं वचन देता हूँ।'

भीतर जाकर पार्वती, शिव के बारे में सोचने लगीं। वे सोच रही थीं कि शिव जब उस सुंदर बालक को देखेंगे तो क्या कहेंगे। उन्हें पता नहीं था कि शिव कैलाश पहुँच चुके थे और वे पार्वती से ही मिलने आ रहे थे। परंतु गणेश ने उन्हें द्वार पर रोक दिया।

'भीतर कौन जा रहा है?'

'बाहर कौन खड़ा है?'

'मैं गणेश हूँ। पार्वती का पुत्र।'

'मैं महादेव हूँ। पार्वती का पति। मुझे जाने दो।'

'मेरी माँ स्नान कर रही हैं और किसी को भीतर प्रवेश करने की अनुमति नहीं है। आपको प्रतीक्षा करनी होगी।'

'समय मेरी प्रतीक्षा करता है, मैं किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। मैं महाकाल हूँ। ब्रह्मांड की कोई जगह मेरे लिए दुर्गम नहीं है।'

'परंतु यह कक्ष आपके लिए दुर्गम है, जब तक मैं इसके द्वार पर खड़ा हूँ।'

'यदि तुम वास्तव में पार्वती के पुत्र हो, तो इस नाते मैं तुम्हारा पिता हूँ। क्या तुम आज्ञाकारिता का अर्थ नहीं जानते?'

'मैं आपका मार्ग रोक कर अपनी माँ की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। आप मेरे पिता हो

सकते हैं किंतु अभी मेरी माँ की आज्ञा आपसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।'

'मेरा त्रिशूल तुम्हें मार सकता है।'

'मेरा दंड आपको चोट पहुँचा सकता है।'

शिव हैरान रह गए। उनके आगे सृष्टि काँपती थी किंतु यह बालक निश्चिंत खड़ा था। वह अपने दंड को ऐसे घुमा रहा था मानो त्रिशूल से टक्कर लेना चाहता हो। गणेश, देवी के कहे शब्दों को मंत्र की तरह दोहरा रहे थे। जिस तरह भृंगी ने केवल शिव के सामने सिर झुकाया था, उसी तरह गणेश केवल पार्वती का नाम जप रहे थे। गणों ने भी गणेश से विनती की किंतु सब व्यर्थ गया। नारद ने भी प्रयास किया किंतु वे भी असफल रहे। सप्त ऋषियों ने गणेश को शास्त्रों का पाठ याद दिलाया किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। यहाँ तक कि ब्रह्मा और विष्णु ने भी उन्हें मार्ग छोड़ने को कहा परंतु फिर भी गणेश ने शिव को मार्ग नहीं दिया। उस बालक ने देवताओं और दानवों को समान रूप से दूर खदेड़ रखा था।

'लगता है आज सब मेरे संकल्प के सामने दुर्बल पड़ गए हैं,' गणेश हँसे।

'बस!' शिव की आँखें लाल हो चुकी थीं। 'तू इस तरह अवज्ञा करके अपनी माता का अपमान कर रहा है। ऐसी अंधभक्ति, लाभ से अधिक हानि होती है। अब या तो मैं पार्वती से मिलूँगा अथवा तू यम से मिलेगा।'

'मेरी माँ का आशीर्वाद मेरे साथ है। यदि किसी ने मेरे प्राण लिए तो मैं फिर से जीवित हो जाऊँगा।'

अब शिव ने अपना त्रिशूल छोड़ दिया। वह हवा में उछला और तीन रेखाएँ बनाता हुआ बालक की ओर लपका। गणेश ने दंड उठा लिया किंतु तब तक त्रिशूल ने गणेश पर वार कर दिया था। गणेश का सिर, धड़ से अलग हो गया।

'माँ--'

मृत्यु की चीख गगनभेदी थी। सब मौन खड़े थे। पार्वती के कदमों की आहट, सन्नाटे को चीरती हुई सुनाई पड़ी। त्रिशूल पर माँस की परत लगी थी और उसकी सतह से खून टपक रहा था।

गणपति, गणों के चरणों में मृत पड़े थे।

आदिशक्ति पार्वती, क्रोध से उबलने लगीं। पार्वती प्रकृति हैं और वे चिल्ला रही थीं। ब्रह्मांड काँप रहा था मानो उसके परतें उतर रही थीं। देवी के शरीर से चौंसठ योगिनियाँ सर्वनाश करने के लिए प्रकट हो गईं। महासागर वाष्प बनकर उड़ने और पहाड़ फटने लगे थे। तीनों लोक विलुप्त होने के कगार पर पहुँच गए। पूरा संसार भयभीत होकर चिल्ला रहा था तो शिव ने हाथ जोड़ लिए।

'शांत हो जाओ, पार्वती। तुम हम सबको खतरे में डाल रही हो।'

‘यह आपने क्या कर डाला?’

‘यह उन्होंने नहीं किया,’ कश्यप ने कहा। ‘यह मेरे कारण हुआ है। मैंने शाप दिया था।’

‘आपने शाप दिया था?’

‘हाँ। बहुत पहले, मेरे पुत्र सूर्य ने माली और सुमाली नाम के असुरों को मारने की कोशिश की थी। वे महादेव के भक्त थे तो उन्होंने शिव से सहायता की प्रार्थना की। महादेव ने सूर्य को नीचे गिराकर संसार को अंधकार में डुबा दिया था। उस समय अपने पुत्र सूर्य की पीड़ा देखकर मुझे क्रोध आ गया और मैंने महादेव को शाप दिया था कि एक दिन, वह स्वयं अपने ही पुत्र का सिर काट डालेंगे। वह शाप आज पूरा हो गया है।’

‘क्या मेरे गणेश का केवल यही काम था?’ पार्वती गरज उठीं। ‘एक शाप को पूरा करने के लिए उपकरण की तरह उसका उपयोग किया गया? मैंने उसे उत्पन्न किया था, महादेव। अपने शरीर से। आपने उसे नहीं मारा; आपने मुझे मार डाला है। अब देखिए, मेरा शव ब्रह्मांड के ऊपर गिरेगा।’

‘तुम ऐसा नहीं कर सकतीं। आप स्वयं को नष्ट नहीं कर सकतीं।’

‘क्यों नहीं? मैंने सती के रूप में भी वही किया था और अब मैं पार्वती के रूप में वही कार्य फिर से करूँगी। आपने मार्कण्डेय को अमर किया क्योंकि उन्होंने आपको देवता माना था किंतु आपने गणेश के प्राण ले लिए क्योंकि उसने आपकी अवहेलना की। आपने हमारे पुत्र अंधक को क्षमा कर दिया, जिसने मेरा अपमान करना चाहा था। फिर आप हमारे पुत्र गणेश को कैसे मार सकते हैं, जिसने मुझे बचाने की कोशिश की? अब आप मुझे तभी बचा पाएँगे जब आप मेरे पुत्र को बचाएँगे। आपकी मृतसंजीवनी जिस तरह जीवन दान देती है, उसी तरह गणेश को फिर से जीवित कीजिए। जिस तरह आपने दक्ष को पुनर्जीवित किया था, उसी तरह आपको गणेश को भी पुनर्जीवित करना होगा।’

‘परंतु दक्ष को भेड़ का सिर लगाकर पुनर्जीवित किया गया था,’ ब्रह्मा ने कहा।

शिव ने अपने गणों की ओर देखकर कहा। ‘इसका समाधान भी उसी तरह होगा। उत्तर दिशा में मिलने वाले प्रथम पशु का सिर लेकर आओ।’

‘ज्ञान की दिशा?’

‘हाँ। उसी से गणेश जी को फिर से जीवन दिया जा सकता है। परंतु वह पशु इसके लिए तैयार होना चाहिए।’

विष्णु ने सिर हिलाया। ‘वह तैयार हो जाएगा। जैसे कश्यप का शाप सत्य हुआ वैसे ही गजासुर को दिया हुआ वरदान भी पूरा होगा।’

‘गजासुर?’ ब्रह्मा ने चकित होकर पूछा।

‘हाँ। महादेव ने गजासुर को यह वरदान दिया था कि उसके सिर की हमेशा पूजा की

जाएगी। वह सिर अब गणपति की शोभा बनेगा।'

कुछ देर बाद गण, गजासुर का सिर लेकर लौट आए। शिव ने उसे जैसे ही जगह पर लगाया, गणेश ने अपनी सूँड़ से पार्वती को स्पर्श किया।

'माँ!'

आदिशक्ति को दया आ गई। चारों ओर फैला प्रकोप शांत हो गया। ब्रह्मा ने बालक गणेश को आशीर्वाद दिया।

'आप पवित्र हैं, गणपति। पहले आपकी माता ने आपको जीवन दिया और अब आपके पिता ने।'

महादेव ने घोषणा की, 'अब से, गणेश प्रमुख देवता होंगे। अग्र देवता। सबसे पहले इन्हीं की पूजा की जाएगी। इन्होंने मेरे मार्ग में बाधा डालने की कोशिश की थी किंतु यह स्वयं विघ्नेश कहलाएँगे अर्थात् जो दूसरों के मार्ग की बाधाओं को दूर करता है। इनका एक नाम गजानन होगा यानी जिसका मस्तक हाथी का है। और वह विनायक होगा। नायकों में श्रेष्ठ!'

42

दुर्गा द्वारा महिषासुर का वध



‘हे पराक्रमी, मुझे बताओ कि तुम्हारा जन्म कैसे हुआ।’

वह दानव हँसा। ‘मैं दक्ष का वंशज हूँ।’

‘प्रजापति दक्ष?’

‘हाँ। जिस प्रकार दक्ष की पुत्री दिति ने दैत्यों को जन्म दिया, उसी प्रकार उनकी दूसरी पुत्री दनु से दानवों का जन्म हुआ। एक बार दो दानव भाइयों, रंभ और करंभ ने अजेय होने के लिए तपस्या करने का संकल्प लिया। रंभ, अग्नि को शांत करने के लिए आग की लपटों के बीच खड़ा हो गया जबकि करंभ ने वरुण को प्रसन्न करने के लिए जल के नीचे ध्यान लगाया। दोनों, दो आद्य तत्त्वों का आह्वान कर रहे थे। किंतु इंद्र!’

‘देवराज? उन्होंने क्या किया?’

‘वही, जो वह कायर हमेशा करता है। उसे डर था कि दोनों दानव भाई उसे स्वर्ग से निकाल देंगे इसलिए उसने दोनों पर आक्रमण कर दिया। उसने मगरमच्छ का रूप धारण करके जल में प्रवेश किया और करंभ को खा गया। फिर वह रंभ की हत्या करने के उद्देश्य से अग्नि में प्रविष्ट हुआ परंतु अग्नि ने उसी पर हमला कर दिया। अग्निदेव, रंभ की भक्ति से प्रसन्न थे और उसे मरता हुआ नहीं देख सकते थे।’

‘एक दानव के लिए दो देवता परस्पर लड़ रहे थे!’

‘हाँ। और अग्निदेव विजयी हुए। परंतु जैसे ही इंद्र भागे, रंभ ने कुल्हाड़ी उठा ली। करंभ की मृत्यु के समाचार ने रंभ को अंदर से तोड़ दिया था और इसलिए उसने अपने प्राण त्यागने का निश्चय किया। वह केश पकड़कर अपना सिर काटने ही वाला था कि अग्निदेव ने उसका हाथ रोक लिया।’

‘तो अग्नि देवता ने उसे दो बार बचाया।’

‘हाँ, अग्निदेव ने उसे भाई की मृत्यु का प्रतिशोध लेने का वरदान भी दिया। रंभ ने एक पुत्र माँगा। ऐसा अदम्य दानव, जो आगे चलकर ब्रह्मांड का स्वामी बना। अग्निदेव ने उसे वरदान दिया कि वह किसी भी प्रजाति की मादा से पुत्र पैदा कर सकता था।’

‘कोई भी प्रजाति?’

‘हाँ। असुर अथवा देवता। पशु अथवा मनुष्य। और सचमुच ऐसा ही हुआ जब रंभ को एक महिषी यानी एक भैंस से प्रेम हो गया। उस महिषी ने रंभ के प्रेम के आगे समर्पण कर दिया और उन दोनों से एक पुत्र का जन्म हुआ।’

‘तुम्हारा, हे महावीर! महिषासुर। आधा-भैंस और आधा-दानव।’

‘रंभ उसका पिता था। उसे अग्नि ने आशीर्वाद दिया था। किंतु मुझे अब एक और वरदान चाहिए।’

इस प्रकार, भैंसों के झुंड को अपने जन्म की कहानी सुनाते हुए महिषासुर, ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए जंगल की ओर चल पड़ा। वर्षों बाद, ब्रह्मा ने उसे दर्शन दिए और वे महिषासुर के चेहरे को बड़े स्नेह से देखने लगे जो रंभ से मिलता-जुलता था।

‘तुम्हारे पिता मेरे प्रपौत्र थे। महिषासुर, अग्नि ने तुम्हें पहले ही आशीर्वाद दिया है। तुम शासन करने के लिए ही पैदा हुए हो। अब और क्या चाहते हो?’

‘अमर होना चाहता हूँ। अग्नि ने मुझे वरदान में ब्रह्मांड पर विजय प्रदान की है किंतु अमरता नहीं। वही परम विजय है। मेरी विजय का क्या लाभ, यदि मैं उसका स्वाद चखने के लिए जीवित ही न रह पाऊँ?’

‘अमरता मिलना असंभव है।’

‘मुझे पता है।’ दानव ने अँगुलियों के पोर चटकाए। ‘मैं एक विकल्प की तलाश कर रहा हूँ। मुझे यह वरदान दीजिए कि स्त्री के अतिरिक्त कोई मुझे न मार सके।’

‘स्त्री ही क्यों?’

‘क्या यह सत्य नहीं कि आपकी समस्त रचनाओं में स्त्री सबसे दुर्बल है? उसका शरीर और मन दोनों दुर्बल हैं। वह किसी के लिए संकट नहीं हो सकती। यहाँ तक कि मुझे पैदा करते समय मेरे पिता को स्त्री की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। मैं जो माँग रहा हूँ, मुझे वही वरदान दीजिए तो मैं व्यावहारिक रूप से अमर हो जाऊँगा।’

ब्रह्मा मुस्कुराए और उन्होंने हामी भर दी। फिर वही हुआ, जो होना था। महिषासुर ने पाताल लोक, फिर भूलोक और अंत में स्वर्ग लोक पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। वह अपने सींगों से देवताओं और मनुष्यों को मारता था। उसके खुर ब्रह्मांड के कोने-कोने को रौंदने लगे। मृत्यु की दुर्गंध फैली तो सारे देवता एकत्रित हो गए।

‘एक देवी,’ ब्रह्मा बोले, ‘हमें एक देवी चाहिए। आदिशक्ति का योद्धा रूप। महिषासुर को दो

बार आशीर्वाद मिला है, जैसे उसके पिता की दो बार रक्षा हुई थी। उसने मुझसे और अग्नि दोनों से वरदान प्राप्त किए हैं।'

अग्निदेव ने सिर हिलाया। 'और उसने अनेक असुरों की तरह वरदानों का दुरुपयोग किया है। मेरा वरदान प्रयोग किया जा चुका है। अब आपके वरदान के सच होने का समय है।'

'तो फिर एकत्रित हो जाओ। हम अपनी सामूहिक आभा से एक स्त्री योद्धा को उत्पन्न करेंगे। उसमें हम सबकी ऊर्जा एवं आद्य शक्तियों का समावेश होगा।'

देवता घेरा बनाकर खड़े हो गए और सबने अपने मुख खोल दिए। उनमें से प्रकाश की किरणें फूटने लगीं। वह प्रकाश इतना तेज था मानो उनकी दिव्यता उस रूप में बाहर निकल रही थी। किरणें परस्पर टकरा रही थीं। वृत्त के केंद्र में उन सबका एक तंत्र में विलय हो रहा था। वह एक सुलगते हुए नक्षत्र में रूपांतरित हो रहा था। फिर उसने स्त्री का रूप लेना शुरू कर दिया। ऊँचा मस्तक। अनेक अंग। सुनहरा रंग। देवतागण उस तेज में स्वयं को ढाल रहे थे। उनमें से प्रत्येक से निकल रही किरणें, अनेक गर्भनालों की भांति अपना सर्वश्रेष्ठ तत्त्व देवी तक पहुँचा रही थीं। शिव उसके चेहरे और विष्णु उसकी भुजाओं को आकार दे रहे थे। इंद्र उसकी कमर और वरुण उसकी जांघों को रूप प्रदान कर रहे थे। धर्म ने उसके कूल्हे और ब्रह्मा ने उसके पैरों को आकार दिया। अंत में, वायु ने उसे कान दिए और अग्नि ने उसकी आँखें बनाईं।

इस तरह सब देवता एक देवी के रूप में प्रकट हो गए।

उन्होंने देवी का नाम दुर्गा रखा। दुर्गा यानी रक्षक।

विष्णु ने देवी दुर्गा को अपना चक्र और शिव ने अपना त्रिशूल दिया। इंद्र ने उन्हें वज्र और वायु ने धनुष प्रदान किया। दुर्गा ने वरुण से शंख और यम से उनका दंड प्राप्त किया। उसके साथ तलवार, गदा और भाला लेकर दस भुजाओं वाली देवी दुर्गा, दहाड़ते सिंह पर सवार हो गईं। दुर्गा और महिषासुर का युद्ध नौ दिन तक चला। महिषासुर अपना रूप बदलता रहा और दुर्गा उन सबका विनाश करती रहीं।

दसवें दिन, देवी ने महिषासुर को नीचे गिरा दिया और उसके शरीर को भाले से छलनी कर दिया। रक्त से लथपथ महिषासुर मरने वाला था और दुर्गा, उसे देख रही थीं।

43
पार्वती बनीं गौरी



पार्वती, हिमालय की संतान थीं। पर्वतराज हिमवंत की पुत्री, जिनकी त्वचा बर्फ की तरह सफेद थी। किंतु पार्वती का रंग, हिम की तरह नहीं था जिसने हिमालय के शिखरों को ताज पहनाया था। पार्वती का वर्ण मिट्टी के समान था जिसने उन पर्वतों को सँभाल रखा था। कैलाश को प्रकाशित करने वाली भोर की तरह नहीं अपितु संध्या की तरह, जो उसे अलौकिक रूप प्रदान करती थी। फिर भी, शिव हँस रहे थे।

'काली।'

'काली?' वह चौंक गईं। 'आपने मुझे काली कहा?'

शिव अब भी हँस रहे थे किंतु पार्वती को बात बुरी लग गई। इसलिए नहीं कि उन्होंने जब जल में अपना प्रतिबिंब देखा तो उन्हें कुछ कमी महसूस हुई। इसलिए भी नहीं कि उन्हें डर था कि उनके प्रति महादेव का प्रेम कम हो रहा है, बल्कि इसलिए कि उन्होंने प्रकृति का अवतार लिया था। उस माँ प्रकृति का, जिसे अपने हर रूप पर गर्व था। वह प्रकृति जिसे ब्रह्मांड का सबसे सुंदर अंश बनना पसंद था और वह हर उस विवरण से घृणा करती थी जो उसकी आभा को गलत ढंग से वर्णित करता था।

'आपको लगता है कि आप मुझे किसी भी नाम से पुकार सकते हैं क्योंकि आप कर्पूर गौरम हैं? कपूर की तरह श्वेत?'

शिव चुप रहे। देवी उठकर खड़ी हो गईं।

'मैं लौटकर आऊँगी और सुनिश्चित करूँगी कि आप फिर कभी मेरा उपहास न कर पाएँ।'

इससे पहले कि शिव कोई उत्तर दे पाते, पार्वती कैलाश छोड़कर जा चुकी थीं। खुले मैदान में पहुँचकर वे ब्रह्मा की तपस्या करने लगीं। 'काली' शब्द उनके हृदय में काँटे की तरह चुभ रहा था और वह उसे निकालने के लिए ब्रह्मा को खोज रही थीं। शीघ्र ही, ब्रह्मा

उनके सामने प्रकट हो गए।

'तपस्या किसलिए? मुझे बुलाने के लिए आपको तपस्या करने की आवश्यकता नहीं है।'

'मुझे पता है किंतु मैं साधक बनकर आई हूँ। मैं अपना पुरस्कार आपके मुख से बलपूर्वक खींचने के बजाय उसे सम्मानपूर्वक अर्जित करना चाहती हूँ ताकि आप मेरा उपहास न करें।'

'क्या कोई आपका उपहास कर रहा है?'

'महादेव। उन्होंने मुझे काली कहा। मैं चाहती हूँ कि आप मुझे गौरी बना दें।'

ब्रह्मा हँस पड़े। 'आप स्वयं प्रकृति हैं। हर दृष्टि से पूजनीय हैं। प्रकृति का हर रंग आप में है और आप उनमें हैं।'

'मुझे नहीं लगता महादेव इससे सहमत होंगे। आप मेरी इच्छा पूर्ण करेंगे अथवा नहीं?'

ब्रह्मा ने पार्वती पर जल छिड़का, और देखते ही देखते, उनके शरीर की कोशिकाएँ गिरने लगीं मानो वह पिघल रहा था। त्वचा उतर रही थी। गहरा रंग साफ होता जा रहा था। कोशिकाओं का ढेर लग गया। उन्होंने अपना श्वेत रंग छोड़ दिया था। पार्वती गौरी बन चुकी थीं। उन्होंने अपने अंगों को देखा तो वे चकित रह गईं। चमत्कार अभी समाप्त नहीं हुआ था। काले रंग की कोशिकाएँ अब भी धड़क रही थीं। उन्होंने अलग से एक नया रूप धारण करना आरंभ कर दिया मानो वे पार्वती से कह रही हों कि उन्हें अब उस शरीर की आवश्यकता नहीं है। वे नया रूप धारण कर रही थीं। एक नई देवी तैयार हो रही थी। काली त्वचा, काले केश, लाल आँखें।

कुछ देर बाद पार्वती, शिव के पास पहुँची। उनका शरीर कैलाश के बर्फीले मस्तक से भी अधिक श्वेत हो गया था। उन्होंने महादेव की ओर देखा। उन्हें पता था कि शिव पूछेंगे कि वे अचानक इतना कैसे बदल गईं।

'कौशिकी कहाँ है?' शिव ने पूछा।

'कौशिकी?' पार्वती ने त्यौरियाँ चढ़ाते हुए पूछा। 'आप कौशिकी के बारे में कैसे जानते हैं?'

'क्या ब्रह्मदेव ने उसे यही नाम नहीं दिया है? वह काले वर्ण वाली देवी जो आपकी त्वचा से ही तैयार हुई है?'

'हाँ। वह मेरे ही कोशिका से निकली है इसलिए उसका नाम कौशिकी है।'

'यह उपयुक्त नाम है। परंतु मेरे लिए वे हमेशा काली ही रहेंगी।'

पार्वती सिहर उठीं। उन्हें वह नाम बार-बार सुनाई दे रहा था। उनका मस्तिष्क उसे दोहरा रहा था या कैलाश उसे प्रतिध्वनित कर रहा था?

काली... काली... काली...

वह नाम पार्वती के धवल शरीर के अंगों में धड़क रहा था।

काली... काली... काली...

शिव के शब्द गूँज रहे थे।

वे हमेशा काली ही रहेंगी...

वे...

देवी पीछे हट गईं।

वे...

'मैं नहीं। आप मुझे काली कहकर नहीं पुकार रहे थे।' पार्वती ने आश्चर्य से भरकर कहा। 'आप उसे काली कह रहे थे। उस सांवले रूप को, जो मेरा अंश है। आप चाहते थे कि वह मेरे भीतर से प्रकट हो।'

'हाँ। आपका दूसरा पक्ष। आपका उग्र पक्ष। मैं अपने शरीर पर जो धूसर भस्म लगाता हूँ, वह रंग गौरी और काली के रंग से मिलकर बना है। काली के प्रकट होने का समय आ गया है। उन्हें एक कार्य करना है।'

'कार्य?'

'कुछ राक्षस हैं, जिन्हें केवल काली मार सकती हैं।'

'वे क्रूर हैं।'

शिव ने पार्वती को गले लगा लिया। 'काली सर्वोच्च शक्ति के अव्यक्त स्वरूप को दर्शाती हैं। गर्भ के उस अँधेरे गह्वर को, जिससे जीवन का प्रकाश प्रकट होता है। उस कालिमा को, जिसमें ब्रह्मांड के सब रंग विलीन हो जाते हैं। काली का रूप भार हीनता को दर्शाता है। अचेतन। स्वच्छंद। वह कुंडलिनी, जो हम सबके भीतर कुंडली मारकर बैठी है। वह महाकाली हैं। महाकाल यानी काल की पारलौकिकता का स्त्रैण रूप। जिस तरह आप अनुकूल बनाती हैं, काली समाप्त करती हैं। वे अव्यवस्था को नष्ट करती हैं। वे उन्हें ललकारती हैं, जो छिपाते हैं। पार्वती, तुम मुझे शांत करती हो किंतु मुझे काली को शांत करना पड़ेगा।'

पार्वती, शिव को देख रही थीं। शिव ने सिर हिलाते हुए कहा, 'बहुत शांत।'

44
शुंभ, निशुंभ और रक्तबीज



अभी ब्रह्मांड ने काली के आगमन का स्वागत किया ही था कि एक नया संकट मँडराने लगा।

जुड़वां संकट।

राक्षस भाई, शुंभ और निशुंभ, ब्रह्मांड को नष्ट करने में लगे थे। वे हर लोक को अपने अधीन कर रहे थे। चंड और मुंड नामक असुर उनके सेनापति थे। वे दोनों प्रतिदिन सुबह होते ही निकल जाते और संध्या के समय रक्त से लथपथ तलवारें लिए लौटते थे। उनके मुँह से अंतड़ियाँ लटकी होती थीं। वे मृत्यु और भय से भरे कारनामे सुनाते जिन्हें सुनकर शुंभ और निशुंभ हँसते थे।

किंतु उस दिन ऐसा नहीं हुआ।

उस दिन चंड और मुंड, देवी की चर्चा कर रहे थे। विष के समान उनकी काली आँखें, अंगारों की तरह लाल होंठ, अमावस्या की रात्रि जैसे केश और घातक सर्पों जैसे अंग।

'दुर्गा,' उन्होंने एक स्वर में कहा।

'वही जिसने महिषासुर का वध किया था?' शुंभ और निशुंभ ने पूछा। 'क्या वह इतनी मनमोहक है?'

'उससे भी अधिक। इस ब्रह्मांड की प्रत्येक मूल्यवान वस्तु तुम्हारे पास है, इसलिए अब तुम्हें दुर्गा को प्राप्त कर लेना चाहिए। हमने सुना है कि दुर्गा को समस्त देवताओं की आभा मिलाकर गढ़ा गया है। वह उनकी सभी महत्त्वपूर्ण शक्तियों का मिश्रण है। यदि तुम उसे अपना बना लो तो देवता तुम्हारे सामने सदा के लिए नतमस्तक हो जाएँगे।'

दोनों भाइयों ने तुरंत सुग्रीव नामक दूत को अपना प्रस्ताव लेकर दुर्गा के पास भेज दिया।

'हे देवी, क्या आपको यह प्रस्ताव स्वीकार है?'

देवी मुस्कुराईं। 'मैं प्रसन्न हूँ। किंतु मैंने एक प्रतिज्ञा ली है।'

‘प्रतिज्ञा?’

‘हाँ। मैंने प्रतिज्ञा ली है कि मैं केवल उसी को स्वीकार करूँगी जो मुझे युद्ध में पराजित कर देगा।’

‘युद्ध?’ सुग्रीव चकित रह गया। ‘क्या आप युद्ध करना चाहती हैं?’

‘हाँ।’

‘देवी, यह बात सोचकर कहिए। वे दोनों युद्ध करने आ जाएँगे तो स्त्री मानकर आपके ऊपर दया नहीं करेंगे।’

‘परंतु शुंभ का अर्थ है, जो खुद पर संदेह करता है,’ दुर्गा ने कहा। ‘और निशुंभ का अर्थ है, जो दूसरों पर संदेह करता है। वे इतना संदेह से भरे हैं तो क्या वे युद्ध कर पाएँगे?’

‘मेरे स्वामी पूरे ब्रह्मांड पर विजय प्राप्त कर चुके हैं। उन्होंने उन देवताओं को भी पराजित किया है जिन्होंने आपको बनाया है। आपने भले ही महिषासुर का वध किया हो किंतु आप इन दोनों भाइयों का सामना नहीं कर पाएँगी।’

‘फिर तो मामला सुलझ गया। यदि उन्होंने मुझे पराजित कर दिया तो मैं उन्हें युद्ध के मैदान में ही वरमाला पहना दूँगी।’

सुग्रीव के मुख से देवी दुर्गा की कही बातें सुनकर शुम्भ ने निशुम्भ ने एक-दूसरे की ओर देखा।

‘वह उत्साही स्त्री है। मैं उससे प्रभावित हूँ।’

‘भाई, हमें अब क्या करना चाहिए?’

‘उसके जैसी स्त्री के साथ क्या किया जाए! उसे पराजित करना है। हम उसकी रीढ़ को अँगुलियों से मोड़ देंगे। वह युद्ध करना चाहती है। धूम्रलोचन को भेजो। देखते हैं क्या वह उससे निपट सकती है।’

सुबह होते ही दैत्य धूम्रलोचन ने साठ हजार की सेना के साथ दुर्गा पर आक्रमण कर दिया। उसकी सेना को आगे बढ़ते देख देवी दुर्गा ने गर्जना की। उनकी चीख से ऐसी अग्नि उठी जिसने धूम्रलोचन को तुरंत भस्म कर दिया। देवी के सिंह ने छलांग लगाई और सब राक्षसों को मार डाला।

‘यह बहुत विचित्र है,’ धूम्रलोचन के अवशेष देखकर शुंभ ने गुस्से से कहा। ‘लगता है इस स्त्री के भीतर ऊष्मा ज्यादा है। मैंने जितना सोचा था, यह उससे कहीं अधिक खूँखार है।’

‘अब क्या करें?’ निशुंभ चिल्लाया।

‘चंड और मुंड। वे दोनों उसे दासी की तरह घसीट कर यहाँ ले आएँगे।’

अगले दिन दोनों सेनापति वीरतापूर्वक युद्ध करने निकल पड़े। वे अपने संपूर्ण कौशल और शस्त्रागार में उपलब्ध हर युक्ति का प्रयोग कर रहे थे। फिर भी, उनके भीतर से आवाज़

उठ रही थी कि उनकी शत्रु अजेय थी। और यह कि उनका अंत निकट आ चुका था। जैसे-जैसे दिन चढ़ता गया, भीतर की यह आवाज़ तेज होती गई। जैसे ही उनकी सेना समाप्त हुई और जैसे ही दुर्गा के अंदर से काली निकलकर बाहर आईं, उन्होंने दोनों राक्षसों के सिर काट डाले। चंड और मुंड के सिर धरती पर लुढ़क गए। ब्रह्मांड ने देवी को एक नया नाम दिया।

चामुंडा... चामुंडा... चामुंडा...

यह स्वर ब्रह्मांड में गूँजने लगा। किंतु यह शुंभ और निशुंभ के कानों में बुरी तरह चुभ रहा था।

'बस!' दोनों भाई गरज उठे। 'वह हमसे लड़ना चाहती है। अब युद्ध होगा।'

अगले दिन, शुंभ और निशुंभ पर्वतों की ओर कूच कर गए जहाँ दुर्गा उपस्थित थीं। युद्ध आरंभ हो गया। दोनों भाई प्रदर्शन कर रहे थे कि उन्होंने कैसे हर लोक को परास्त किया और देवी दुर्गा यह दिखा रही थीं कि वह महिषासुरमर्दिनी क्यों कहलाती हैं। शाम होने तक, दुर्गा का पलड़ा भारी पड़ने लगा। विष्णु के चक्र की सहायता से उन्होंने निशुंभ की ढाल को काट दिया। इससे पहले कि वह कुछ कर पाता, दुर्गा ने शिव के त्रिशूल से उसका वक्ष भेद डाला।

शुंभ ने क्रोध से काँपते हुए उपहास किया, 'तुम्हारे पास अपना भी कुछ है? तुम्हारे अस्त्र-शस्त्र उधार के हैं। तुम्हारी शक्ति उधार की है। तुम्हारा शरीर उधार का है। तुम्हारे पास जो कुछ भी है, वह सब देवताओं ने तुम्हें दिया है। मैं तुमसे क्यों लड़ूं?'

यह सुनकर देवी हँसने लगीं। ब्रह्मांड भी हँस पड़ा।

'तुम कितने अज्ञानी हो, शुंभ! मैं ब्रह्मा हूँ। मैं विष्णु हूँ। मैं महादेव हूँ।'

शुंभ चकित होकर देख रहा था। तभी दुर्गा ने अपने रूप को इतना विस्तार दे दिया कि ब्रह्मांड के प्रत्येक देवता उनके भीतर नज़र आने लगे। केवल ब्रह्मा, विष्णु और महेश ही नहीं अपितु ब्राह्मणी, वैष्णवी और माहेश्वरी भी। वे परब्रह्म थीं। पराशक्ति थीं। ब्रह्मांड के एक छोर से दूसरे छोर तक फैला हुआ सर्वव्यापी स्वरूप। शुंभ भागने के लिए मुड़ा किंतु देवी ने झपटकर उसे पकड़ लिया। उन्होंने राक्षस को जमीन पर लिटाकर उसके शरीर के दो टुकड़े कर दिए। वह मरने को ही था कि तभी दुर्गा ने अपना पैर उसके चेहरे पर दे मारा।

'ऐसा लगता है कि विवाह हो नहीं पाएगा।'

परंतु असुर हँस रहा था। उसने एक ओर संकेत किया। उसके प्राण निकल रहे थे। उसके शब्द देवी तक पहुँचे।

'उसका क्या होगा? तुम उसे जितना मारोगी, वह उतना ही सजीव होता जाएगा।'

देवी ने मुड़कर देखा। राक्षस उनके सामने खड़ा था। नरसंहार के बाद बचा हुआ एकमात्र

प्राणी। दुर्गा ने लपक कर उसका हाथ काट दिया। किंतु यह कैसा जादू? जैसे ही उसका रक्त जमीन पर गिरा, उसी के जैसा एक और राक्षस प्रकट हो गया। देवी ने फिर उसे मारा तो फिर वही हुआ। हर बार। बार-बार। उसके रक्त की बूँद जैसे ही पृथ्वी को छूती, उसके जैसे एक राक्षस का बीजारोपण हो जाता था। उसके समान और कई राक्षस लगातार अंकुरित होते गए।

'तुम कौन हो?' दुर्गा ने चौंक कर कहा।

'रक्तबीज। मेरा अपना रक्त ही मुझे पैदा करता है।'

दुर्गा को उपहास करते शुंभ की आवाज़ सुनाई दे रही थी।

तुम उसे जितना अधिक मारोगी, वह उतना अधिक जीवित होता जाएगा...

युद्धभूमि में अब सैकड़ों रक्तबीज खड़े थे। दुर्गा सबसे लड़ती रहीं किंतु वे जानती थीं कि यह युद्ध कभी समाप्त नहीं होगा। असुर का रक्त उसके लिए अमृत बन गया और उसकी अनगिनत प्रतिकृति तैयार होती गईं। देवी ने आँखें बंद कर लीं। अब इसका केवल एक ही उपाय था। केवल एक ही प्राणी उसका प्रतिकार कर सकता था। देवी का सिर ज़ोर से हिलने लगा और भीतर से दूसरी देवी बाहर आ गईं। दुर्गा को खोपड़ियों की खड़खड़ाहट सुनाई और तलवार की सरसराहट दिखाई पड़ रही थी। उन्हें क्रोधाग्नि महसूस होने लगी।

काली फिर से प्रकट हो चुकी थीं।



उन्होंने भयंकर चक्रवात का रूप ले लिया और एक-एक रक्तबीज को काटना शुरू कर दिया। उन सबका रक्त, बूँद-बूँद करके टपक रहा था और पृथ्वी को छूने के लिए आगे बढ़ रहा था जिससे रक्तबीज की और प्रतिकृतियाँ उत्पन्न होने वाली थीं। तभी अचानक कुछ होने लगा। टपकते रक्त और धरती के बीच कुछ दिखाई दे रहा था। कुछ लाल-सा, कोमल और माँसल, जो किसी विशाल सर्प के फण की तरह मुड़ा हुआ था। काली ने अपनी जिह्वा को खोलकर फैला दिया था और वे रक्त की बूँदों को पृथ्वी पर गिरने से पहले ही पी रही थीं। उन्होंने तलवार से वार किया। एक रक्तबीज कट गया। काली की जीभ लपलपाई और वे रक्त को पी गईं। वे रक्तबीज की प्रत्येक बूँद को पी रही थीं। उनकी जीभ ने पूरी रणभूमि को जैसे घेर लिया। यह सिलसिला चलता रहा और धीरे-धीरे रक्तबीज की प्रतिकृतियाँ कम होने लगीं। काली रक्त पीती जा रही थीं और रक्तबीज कम होते जा रहे थे। युद्ध का मैदान खाली होने लगा। काली की जिह्वा लाल हो गई। उस पर रक्त जम चुका था। अब उनके सामने केवल एक रक्तबीज खड़ा था। अंतिम रक्तबीज। असल रक्तबीज। काली ने तलवार से वार किया। उनकी जीभ फिर फड़फड़ाई और उसने अंतिम बार रक्त पी लिया।

शिव ने देखा तो वह मुस्कुरा दिए।

परंतु फिर उनकी भँवें तन गईं। रक्तबीज के वध ने काली को रक्त-पिपासु बना दिया था। वे अब और प्राणियों को मार रही थीं। उन्हें और रक्त पीना था। उनकी जिह्वा चारों ओर घूम रही थी मानो वह समूचे ब्रह्मांड को सुखा देना चाहती थी।

तभी शिव प्रकट हुए। वे काली को उनके हिंसक उन्माद में खोया देख रहे थे। उन्होंने पहले नृसिंह को शांत किया था और अब काली को शांत करने का समय आ गया था। भगवान शिव, देवी के मार्ग में लेट गए। उन्माद से भरीं काली, होठों को चबा रहीं और खोपड़ियों की माला को झंकृत कर रही थीं मानो उन्हें कुछ दिखाई नहीं दे रहा था।

अगले ही पल वह स्तंभित हो गईं। उन्होंने अपनी जीभ काट ली। उनका पैर उनके पति के ऊपर था।

45
नचिकेता की नरक-यात्रा



स्वाहा फिर से अग्नि का आलिंगन करने के लिए लालायित थी।

यह सिर्फ़ इसलिए नहीं कि वह अपने पति से प्रेम करती थी अपितु इसलिए कि वह ब्रह्मा का आदेश था। अग्निदेव, यज्ञ में मनुष्यों द्वारा दी आहुति को भस्म तो कर देते थे किंतु उस आहुति को देवताओं तक पहुँचाने वाली वाहिका का काम स्वाहा करती थी। वही एक पावन नारी थी जो देवताओं के लिए पोषण और मनुष्यों के लिए पुण्य सुनिश्चित करती थी। यज्ञ में 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करने पर अग्निदेव की प्रिय पत्नी, अपने पति के साथ मिलकर एक हो जाती थी। अब वह राजा वजश्रवा की प्रतीक्षा कर रही थी। यज्ञ-वेदी में अग्नि प्रज्ज्वलित हो चुकी थी। आहुति तैयार थी। वजश्रवा ने यज्ञ आरंभ कर दिया।

'ॐ स्वाहा! मैं इसे विष्णु को अर्पित करता हूँ।'

'ॐ स्वाहा! मैं इसे शिव को अर्पित करता हूँ।'

'और मैं, पिताजी? आप मुझे किसको अर्पित करेंगे?'

राजा ने मुड़कर देखा। उनका पुत्र उन्हें कौतूहल से देख रहा है।

'व्यवधान मत डालो, नचिकेता,' वजश्रवा ने बालक के चेहरे को धीरे-से सहलाया। 'इससे यज्ञ में बाधा पड़ेगी और देवता रुष्ट हो जाएँगे।'

राजा ने फिर से आहुति दी।

'ॐ स्वाहा! मैं इसे इंद्र को अर्पित करता हूँ।'

'ॐ स्वाहा! मैं इसे वायु को अर्पण करता हूँ।'

'ॐ स्वाहा! मैं इसे वरुण को अर्पित करता हूँ।'

'और मैं? क्या आप मुझे किसी को अर्पित नहीं करेंगे?' नचिकेता ने पूछा।

'मैंने तुमसे दूर रहने को कहा था,' राजा ने नचिकेता के हाथ पर मारा। 'मैं जब तक यज्ञ

पूरा न कर लूँ, मुझे परेशान मत करना।'

वह फिर से यज्ञ करने लगा।

'ॐ स्वाहा! मैं इसे सूर्य को अर्पित करता हूँ।'

'ॐ स्वाहा! मैं इसे चंद्र को अर्पित करता हूँ।'

'मुझे भी, पिताजी।' नचिकेता अब वजश्रवा की गोद में बैठ गया। 'मुझे भी किसी को अर्पित कर दीजिए।'

'अवश्य करूँगा,' राजा ने गुस्से में नचिकेता के बाल पकड़ लिए। 'मैं तुम्हें यम को अर्पित करता हूँ। तुम नरक में जाओ।'

बालक उठ खड़ा हुआ।

'यदि आपकी इच्छा यही है, तो मैं अवश्य पालन करूँगा।'

वजश्रवा ने नचिकेता को अपना सामान बाँधते देखा। फिर नचिकेता से सबसे विदा ली और जाने लगा। राजा ने घबराकर कर अपने पुत्र को रोक लिया।

'तुम कहाँ जा रहे हो?'

'आपकी आज्ञानुसार, मैं नरक में जा रहा हूँ।'

'पुत्र, मैंने वह आवेश में बोला था। मुझे क्षमा कर दो। मैंने अनेक मनोभावों पर विजय प्राप्त की है किंतु क्रोध पर अभी मेरा वश नहीं है। मेरे शब्दों को गंभीरता से मत लो।'

'पिता के द्वारा कहे गए शब्द, पुत्र के लिए सब कुछ होते हैं। जिस क्षण उन्हें कहा गया था, वे तुरंत आदेश बन चुके थे। यदि मैं उनका पालन नहीं करूँगा तो मुझसे पाप हो जाएगा और मैं अंत में नरक ही में जाऊँगा। तो आपकी अवज्ञा के लिए नरक जाने से क्या यह बेहतर नहीं है कि मैं आपकी आज्ञा का पालन करके नरक में जाऊँ?'

वजश्रवा असमंजस में पड़ गए। नचिकेता ने पिता के चरण छुए।

'मुझे आशीर्वाद दीजिए पिताजी कि मैं आपको गौरवान्वित कर सकूं।'

'परंतु कोई जीवित प्राणी नरक में प्रवेश नहीं कर सकता,' राजा ने कहा।

'संभवत: मैं करूँगा,' बालक मुस्कुराया।

वजश्रवा ने नचिकेता से अनेक बार विनती की परंतु ध्रुव की तरह नचिकेता भी अटल था। जल्द ही, वह पाताल लोक के सात तल पार करके नीचे उतर गया। ब्रह्मांड की आँतों जैसा वह स्थान, राक्षसों से भरा पड़ा था। अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल को पार करके, नचिकेता अंत में नरक के सामने पहुँच गया।

यम का लोक।

नचिकेता, वहाँ की अव्यवस्था को देख रहा था। चारों तरफ शोरगुल था। पापियों की भीड़ का शोर जिन्हें नरक के द्वार से नीचे घसीटा जा रहा था। कुछ दीवारों से चिपके हुए भीतर

अंदर जाने से डर रहे थे। कुछ अपना मार्ग खोज रहे थे। उनके टूटे नाखूनों से खून बह रहा था। वे चिल्ला रहे तथा काट-नोंच रहे थे। छटपटा रहे थे। किंतु नरक उन सबको अपने पाश में जकड़ रहा था। नचिकेता को छोड़कर अन्य सभी को। नचिकेता ने जितनी भी बार आगे जाने की कोशिश की तो नरक के द्वार ने उसके सजीव शरीर को रोक दिया। वह एक प्रमुख नियम का उल्लंघन करने की चेष्टा कर रहा था और नरक इस काम में उसका साथ देने को तैयार नहीं था। परंतु अपने पिता की आज्ञा को पूर्ण करने के लिए दृढ़ नचिकेता ने यम की प्रतीक्षा करने का निश्चय किया। तीन दिन तक वह ब्रह्मांड के मल को नरक में गिरते देखता रहा। चौथे दिन, एक आवाज़ ने उसे संबोधित किया तो उसने मुड़कर देखा।

'तुम कौन हो?'

आँधी वाले मेघों-सा स्वरूप। गले में अग्नि की माला। लाल एवं पीले वस्त्र। हाथ में गदा और फंदा। नचिकेता समझ गया कि वह मृत्यु के देवता के सामने खड़ा था।

'मैं आपको प्रणाम करता हूँ,' उसने हाथ जोड़कर कहा।

नचिकेता ने यमराज को उसके वहाँ आने के पीछे की पूरी घटना सुनाई तो यमराज को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने किसी संतान में ऐसा प्रेम पहले नहीं देखा था। कर्तव्य की ऐसी अद्भुत भावना। ऐसा विलक्षण विरोधाभास जिसके चलते एक पवित्र आत्मा नरक में प्रवेश करने को आतुर थी। बालक को अब यम के उत्तर की प्रतीक्षा थी। उसके चेहरे पर कोई डर नहीं था। उसकी आँखों में बस सत्य था। यम ने संकेत किया।

'आ जाओ।'

'क्या आप मुझे अंदर आने की अनुमति दे रहे हैं?'

'हाँ।'

'किंतु आपके उस नियम का क्या होगा जिसके अनुसार कोई जीवित प्राणी नरक में प्रवेश नहीं कर सकता?'

यमराज मुस्कुराए। 'संभवत: ब्रह्मांड चाहता है कि मैं तुम्हारे लिए इस नियम को तोड़ दूँ जैसे मार्कण्डेय के लिए नियम तोड़ा गया था।'

द्वार खुल गए और नचिकेता ने भीतर प्रवेश किया। नरक के बारे में उसने जितनी भी भयानक बातें सुनी थीं, वे सब दृश्य उसकी आँखों के सामने थे। पापियों को खौलते तेल में डाला जा रहा था, दाँतेदार आरी से उनके अंग काटे जा रहे थे, कुछ को सूली पर चढ़ाया तो कुछ को जलाया जा रहा था। कुछ को विष दिया जा रहा था। दूसरों को लटकाया जा रहा था। नरक के उपभोग के लिए हर प्राणी को पीसा जा रहा था। उनका माँस फटने से उनका रक्त बह रहा था। माँस जल रहा था। मर चुके प्राणी, मरने की विनती कर रहे थे।

'तुमने अपने पिता की आज्ञा का पालन किया है,' यम ने नचिकेता की प्रशंसा करते हुए

कहा। 'मैं तुमसे प्रसन्न हूँ और तुम्हें तीन वरदान देता हूँ।'

'तीन वरदान?' नचिकेता ने खुशी से कहा।

'हाँ, उन तीन दिनों के बदले जब तुमने मेरी प्रतीक्षा की। उन तीन दिनों के लिए जब तुमने अपने उद्देश्य को नहीं छोड़ा। तुम्हें क्या चाहिए?'

'मुझे पहला वरदान यह चाहिए कि आप मेरे पिता का कल्याण करें।'

'तथास्तु।'

'दूसरे वरदान में, आप मुझे स्वर्ग को प्राप्त करने का मार्ग दिखाइए। मैं यह सब केवल अपने लिए नहीं अपितु पृथ्वी के समस्त प्राणियों के लिए पूछ रहा हूँ। मैं वापस लौटकर उनका मार्गदर्शन करूँगा ताकि वे नरक की यातनाओं से बच सकें।'

'तथास्तु!' मृत्यु के देवता मुस्कुराए। 'अब अंतिम वरदान माँगो।'

'अंतिम वरदान में आप मेरे एक प्रश्न का उत्तर दीजिए। मृत्यु के आगे क्या है?'

यम चकित रह गए। थोड़ी देर बाद वे बोले।

'बालक, मुझसे यह मत पूछो। यह देवताओं के लिए भी रहस्य है। कुछ और माँग लो। इंद्र का सिंहासन। पाताल का ऐश्वर्य। स्वर्ग की अप्सराएँ। तुम जिस सुख के विषय में कल्पना कर सकते हो, उसे हजार गुना बढ़ा लो। वह सब तुम्हें मिल सकता है।'

किंतु नचिकेता अडिग रहा। 'ये भौतिक वस्तुएँ हैं जिनका अंत हो जाता है। मैं यह जानने को उत्सुक हूँ कि अंत के पार क्या है। क्या हम वहाँ से नीचे गिर जाते हैं या हमें यात्रा फिर से आरंभ करनी होती है?'

'इन रहस्यों को प्रकट नहीं किया जा सकता।'

'परंतु आपने तो कहा था कि मेरे लिए नियमों को तोड़ा जा सकता है?'

यम ने गहरी श्वास भरी। यह देखते हुए कि नचिकेता ने क्षणभंगुर की जगह शाश्वत को चुना था, यमदेव ने आखिर नचिकेता को आत्मा का ज्ञान दे दिया और उसे बताया कि आत्मा, अजन्मा और अमर है। यह कि आत्मा योद्धा है जबकि शरीर उसका रथ है, इंद्रियाँ घोड़े और मन, लगाम है। और यह कि वासनाओं के पीछे दौड़ने वाली आत्मा सदा के लिए जन्म-मरण के चक्रव्यूह में फँस जाती है। परंतु वह आत्मा जो इनसे मुक्त हो जाती है, उसे परमात्मा की प्राप्ति होती है। उसे मोक्ष मिल जाता है।

नचिकेता जब अपने पिता के महल में लौटा तो भीड़ उसकी जय-जयकार करने के लिए उमड़ पड़ी। वह एकमात्र व्यक्ति था जो नरक से जीवित लौट आया था। वह पृथ्वी का पहला सच्चा साधक बना।

उनमें से एक व्यक्ति ने अनुरोध किया, 'हमें उस यातना के बारे में बताओ जो तुमने वहाँ देखी।'

नचिकेता ने उत्तर दिया, 'मैंने देखा कुछ पापियों को जलती हुई मूर्तियों का आलिंगन करने के लिए विवश किया जा रहा था। उनका माँस धीरे-धीरे पिघल कर गिर रहा था।'

यह सुनकर लोगों में हड़कंप मच गया। 'उन्होंने क्या पाप किया था?'

'स्त्रियों का अपमान।'

46
गणेश और कार्तिकेय की दौड़



शिव और पार्वती में बहस हो रही थी।

‘कार्तिकेय बड़ा है।’

‘किंतु गणेश ज्यादा समझदार है।’

बात उलझ गई थी और सुलझने का नाम नहीं ले रही थी।

‘जन्म का क्या होगा?’

‘महत्त्व का क्या होगा?’

अब दोनों सोचने लगे कि क्या वे पक्षपात कर रहे थे।

‘कार्तिकेय को यह अच्छा नहीं लगेगा।’

‘और गणेश लड़ेगा नहीं।’

फिर दोनों चुप हो गए। शिव ने सिर हिलाया।

‘इसका केवल एक ही उपाय है।’

‘कैसा उपाय?’

‘वही जो ब्रह्मदेव और श्री हरि ने किया था।’

उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को बुलवाया। दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गए तो शिव बोले।

‘हम तुम्हारे विवाह के बारे में सोच रहे हैं। तुम्हारी माता ने मुझे गृहस्थ बना दिया और अब तुम्हें भी उस मार्ग का अनुसरण करना है।’

गणेश ने आँखें नीची कर लीं, जबकि कार्तिकेय मुस्कुरा दिए।

‘परंतु हम यह तय नहीं कर पा रहे कि पहले किसका विवाह किया जाए। जन्म से बड़ा होने के नाते कार्तिकेय का विवाह पहले होना चाहिए, किंतु प्रमुख देवता, गणेश है।’

गणेश नीचे ही देखते रहे जबकि कार्तिकेय उदास हो गए।

‘इसका समाधान करने का एक ही तरीका है। तुम दोनों की दौड़ होगी।’

‘दौड़?’

‘हाँ। कल सभी देवताओं की उपस्थिति में तुम दौड़ में भाग लोगे। जो विजेता होगा, उसका विवाह पहले होगा।’

गणेश ने एक कदम पीछे हटा लिया।

‘पिताजी, इसके लिए तमाशा करने की क्या आवश्यकता है? भैया कार्तिकेय, आपके ज्येष्ठ पुत्र हैं। इस नाते उनका विवाह पहले होना चाहिए। हमें दौड़ की आवश्यकता नहीं है।’

कार्तिकेय हँसे। ‘हमें किसी के दान की आवश्यकता नहीं है, गणेश। जन्म, संयोग की बात है किंतु महत्त्वपूर्ण होना, एक उपलब्धि है। मैं आयु में बड़ा होने के नाते पहले विवाह नहीं करना चाहता, परंतु श्रेष्ठ होने के कारण पहले विवाह अवश्य कर सकता हूँ। पिताजी का प्रस्ताव उचित है। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है और तुम्हें भी नहीं होनी चाहिए। तुम्हें डर लगता हो, तो बात अलग है!’

‘डर?’

‘संभवत: तुम्हें डर है कि मेरा मोर, तुम्हारे चूहे से आगे निकल जाएगा।’

‘मुझे किसी बात का डर नहीं है,’ गणेश ने उत्तर दिया। ‘मेरी एकमात्र चिंता यह है कि प्रतियोगिता से प्राय: गहन भावनाएँ उभर आती हैं और संबंध बिगड़ जाते हैं। जीतने के लिए कभी-कभी व्यक्ति स्वयं को हार जाता है। परंतु यदि आपको लगता है कि आप इन सबसे ऊपर हैं, तो हम निश्चित रूप से दौड़ लगा सकते हैं।’

गणेश ने अपने वाहन की ओर संकेत करते हुए कहा।

‘और वह चूहा नहीं, मूषक है।’

अगले दिन लगा भोर जल्दी हो गई मानो सूर्य भी उदय होने को उत्साहित था। सभी देवता भी कैलाश पर एकत्रित हो रहे थे। उन्होंने सुन रखा था कि कैसे पृथ्वी पर मनुष्य, मुर्गों की लड़ाई और घोड़ों की दौड़ करवाते हैं। बहुत समय पहले, देवताओं ने ब्रह्मा और विष्णु को एक-दूसरे के विरुद्ध, अग्नि-स्तंभ के सिरों का पता लगाने के लिए दौड़ते देखा था। आज वे एक बार फिर उसी तरह की दौड़ का आनंद लेने वाले थे। स्वयं हाशिये पर खड़े होकर दूसरों को प्रदर्शन करते देखने का आनंद। बिना अपने स्थान से हिले और बिना मेहनत किए अधिवृक्क रस का अनियंत्रित प्रवाह। फिर पार्वती ने नियमों की घोषणा की।

‘दोनों प्रतियोगियों को पृथ्वी के तीन चक्कर लगाने होंगे। तीन पूरे चक्कर! वे अपने वाहनों का उपयोग करेंगे और एक-दूसरे के मार्ग में बाधा नहीं डालेंगे। जो चक्कर लगाकर पहले लौट आएगा, उसे विजेता घोषित कर दिया जाएगा।’

दौड़ शुरू होते ही लोगों में खुशी की लहर दौड़ गई। जैसे ही कार्तिकेय के मयूर ने आकाश

की ओर उड़ान भरी, उनकी खुशी दुगुनी हो गई। वे पृथ्वी के ऊपर पहुँच गए थे और उन्होंने चक्कर लगाने शुरू कर दिए। मयूर के नीले, हरे और सुनहरे रंग के पंख तारों की तरह झिलमिला रहे थे। उसका स्वर शून्य में गूँज रहा था। कार्तिकेय, अपने वाहन के साथ समवेत हो गए थे। ऐसा लग रहा था मानो एक शानदार संकर भूलोक की परिक्रमा कर रहा था और अपने पीछे विजय-पथ के चिह्न छोड़ता जा रहा था आने वाली पीढ़ियाँ जिसकी प्रशंसा करेंगी।

'गणेश!' विष्णु ने कहा। 'गणेश को देखो!'

गणेश अभी कैलाश से निकले भी नहीं थे। ऐसा लग रहा था जैसे उनका ऐसा कुछ करने का इरादा ही नहीं था। सब देवता असमंजस में पड़ गए।

क्या उन्हें नियम समझ में नहीं आए हैं?

क्या उन्होंने कार्तिकेय की उड़ान देखकर हार स्वीकार ली है?

गणेश क्या करने वाले हैं?

अपने वाहन पर बैठे गणेश, शिव और पार्वती की परिक्रमा कर रहे थे। उन्होंने दृष्टि उठाकर आकाश की तरफ भी नहीं देखा जहाँ उनका भाई ओझल हो चुका था। भारी-भरकम गणेश के भार के नीचे दबा उनका मूषक धीरे-धीरे एक-एक करके कदम बढ़ा रहा था। शिव-पार्वती की तीसरी परिक्रमा पूरी करने के कुछ क्षण बाद उन्होंने पंखों की सरसराहट सुनी। कार्तिकेय लौट आए थे। उन्हें विश्वास था कि वही निर्विवाद विजेता होंगे।

'गणेश, विजेता है,' शिव ने घोषणा की। 'पहले गणेश का विवाह होगा।'

कैलाश पर सन्नाटा छा गया। सब देवता एक-दूसरे को देख रहे थे। पार्वती हैरान खड़ी थीं। केवल विष्णु और ब्रह्मा मुस्कुरा रहे थे। कार्तिकेय अपने मयूर से छलांग लगाकर नीचे उतर आए।

'गणेश? मैंने पूरी परिक्रमा तीन बार की है। गणेश ने तो दौड़ में भाग ही नहीं लिया।'

'उसने भाग लिया है और दौड़ तुमसे पहले पूरी की है।'

'क्या मतलब, पिताजी?'

'उसने मेरी और पार्वती की परिक्रमा लगाई है। बालक के लिए उसके माता-पिता ही उसका संसार होते हैं। उसके पिता आकाश का और माता पृथ्वी का प्रतीक हैं। साथ में मिलकर, वे उसके ब्रह्मांड होते हैं। तुमने भौतिक मार्ग अपनाया और गणेश ने रहस्यवादी मार्ग चुना। तुम्हारा आयाम भौतिक था, उसका आध्यात्मिक। तुम दोनों ने एक ही सत्य का आह्वान किया किंतु तुम्हारा केंद्र शरीर था जिसमें अधिक समय लगता है। गणेश ने मन को साधा है, जो छोटा मार्ग है।'

'सत्य है,' विष्णु सहमत थे। 'ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी को ब्रह्मांड में भटकने की

आवश्यकता नहीं है। एक स्थान पर रहकर भी यह काम किया जा सकता है।'

सभा में ज्ञान की बाढ़ आ गई तो सबने गणेश का नाम जपना शुरू कर दिया। उन्हें कंधों पर उठा लिया गया। उन पर पुष्प-वर्षा की। पार्वती का हृदय खुशी से भर गया किंतु वे अपने बड़े पुत्र को देख रही थीं। कार्तिकेय के चेहरे पर असंतोष साफ झलक रहा था। पार्वती ने उन्हें अपनी बाँहों में भर लिया किंतु कार्तिकेय ने खुद को माता से दूर कर लिया।

'यह गलत बात है,' कार्तिकेय अपने पिता पर चिल्लाए। 'आपने ठीक नहीं किया।'

'मैंने ठीक किया है। मुझे तुम दोनों समान रूप से प्रिय हो। तुम मेरे अंश हो और मेरे विनाशकारी पक्ष को दर्शाते हो। तुम्हारा भाई, पार्वती का अंश है और वह उनके रचनात्मक पहलू का प्रतीक है। तुम दोनों मिलकर हमें पूर्ण करते हो।'

'आप झूठ बोलते हैं। आप संभवत: अब भी अपराधबोध से ग्रस्त हैं कि आपने गणेश का सिर काट दिया था और अब इस तरह आप उससे मुक्त होना चाहते हैं।'

'ऐसा नहीं है।'

'सचमुच? गणेश ने दौड़ जीतने के लिए छल किया जैसे उस दिन ब्रह्मा ने किया था। आप एक को शाप देकर दूसरे का गुणगान कैसे कर सकते हैं?'

शिव ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब ब्रह्मा बोले।

'पुत्र, मैंने तो छल किया था किंतु गणेश ने ऐसा कुछ नहीं किया। उसने वही किया है जो वेदों में निर्धारित है। उसके कृत्य की निन्दा करके तुम शास्त्रों की निन्दा कर रहे हो। यह ब्रह्मांड के पवित्र ज्ञान को चुनौती देने के समान है। अपने छोटे भाई की विजय पर शोक मत करो। तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए कि गणेश ने सिद्ध कर दिया है कि वह वास्तव में प्रमुख देवता बनने योग्य है।'

गणेश ने जल्द ही रिद्धि और सिद्धि से विवाह कर लिया किंतु कार्तिकेय कहीं दिखाई नहीं दिए। वे दक्षिण की ओर चले गए और उन्होंने कभी कैलाश पर न लौटने का निश्चय किया।

47
सूर्य आकाश से गिरा



असुरराज सुकेशी, शिव का अनन्य भक्त था। राक्षस होने के बावजूद, उसका हृदय उदार था जिसके चलते वह प्राय: देवताओं के साथ शांति स्थापित करने और उसे बढ़ावा देने का प्रयास करता रहता था। राजा से प्रसन्न होकर, शिव ने उसे वरदान स्वरूप आकाश में स्थित एक नगर प्रदान किया। वह नगर अविश्वसनीय रूप से सुंदर और स्वर्ग की भांति भव्य था। इस हवाई नगर का ऐसा आकर्षण था कि निकट से तैरते बादल भी आश्चर्य में उसे टकटकी लगाकर देखते थे। पक्षी दिन-भर खुशी से उसके चारों ओर चक्कर लगाते और देवता रात-भर स्वप्न में उससे ईर्ष्या करते थे।

एक बार, सुकेशी भूलोक पर मगध में स्थित एक वन में गया। वहाँ उसकी भेंट कुछ ऋषियों से हुई। उसने महसूस किया कि वे ऋषि अत्यंत ज्ञानी थे। ज्ञान की धारा सुकेशी को ज्ञान को अँजुलि में भरकर उसका सेवन करने और कुछ प्रश्नों के उत्तर पूछने के लिए बाध्य कर रही थी। राजा ने ऋषियों को प्रणाम किया।

'मुनिवर, कौन-सा मार्ग मोक्ष की ओर जाता है?'

'धर्म का मार्ग।'

'धर्म का अभ्यास कैसे किया जाता है?'

'स्वयं को जानकर तथा सर्वशक्तिमान ईश्वर के समक्ष समर्पण करके।'

'और धर्म के गुण क्या हैं?'

'धर्म के दस गुण हैं। सत्य, अहिंसा, दान, क्षमा, संयम, करुणा, शुचिता, तपस्या, प्रेम और अचौर्य। ये दस धर्म के अंग हैं। इसलिए, इसे दशांग कहा जाता है।'

इस प्रकार ज्ञान प्राप्त करके सुकेशी लौट आया और उसने वह ज्ञान अपनी प्रजा को दिया। असुरों ने उस ज्ञान को न केवल अपनाया अपितु उसका नियमित अभ्यास भी करने

लगे। इन धर्म-सिद्धांतों ने उनके सामने नई संभावनाएँ प्रस्तुत कर दीं। अनेक सुंदर संभावनाएँ। राजा से प्रेरित होकर, असुरों ने अपनी जीवन-शैली में सुधार करना आरंभ कर दिया।

यह देखकर देवता चकित रह गए!

पिछली बार ऐसा त्रिपुर के निर्माण के समय हुआ था। तारक के पुत्रों ने नैतिक मार्ग अपनाने का प्रयास किया था किंतु सुकेशी के असुर उनसे भी आगे निकल गए थे। उन्होंने धर्म को सर्वोच्च सिद्धांत के रूप में सम्मान देना शुरू कर दिया। वेदों को देवता मान लिया। उस आकाशीय नगर में अब पुण्य की ऐसी आभा फैल गई कि वह नक्षत्र की भांति देदीप्यमान हो उठा। वह ब्रह्मांड को प्रकाशित कर रहा था। उसके प्रकाश ने सूर्य की रोशनी को भी फीका कर दिया जिसके चलते सूर्य का महत्त्व घटकर एक सामान्य तारे जैसा रह गया।

इससे सूर्य आग बबूला हो गया।

सूर्य की चमक ही उसका एकमात्र गुण था जिसने उसे दिव्य बनाया था। यही उसकी प्रतिभा थी। उससे अधिक प्रकाशवान कोई वस्तु सूर्य से सहन नहीं होती थी। राक्षसों के एक नगर का सूर्य से अधिक चमकना, सूर्य के लिए अपमान से कम नहीं था। उसने यह नहीं देखा कि असुरों का नगर अच्छाई का प्रचार कर रहा था बल्कि सूर्य का ध्यान केवल इस बात पर था कि त्रिपुर, आभा और तेज में उससे आगे निकल रहा था। सूर्य को अपने भाई इंद्र की तरह केवल यह डर था कि उसकी प्रतिष्ठा चली न जाए। सूर्य ने उस नगर की ओर क्रोध से देखा तो नगर नीचे की ओर गिरने लगा। वह पृथ्वी की ओर ऐसे गिरा मानो गुरुत्वाकर्षण ने उसे जकड़ लिया हो। खुद पर आया संकट देख, सुकेशी ने तुरंत शिव का स्मरण किया। शिव को जैसे ही इस घटना का पता चला तो उन्होंने सूर्य की ओर गुस्से से देखा। अब सूर्य भी आकाश से नीचे गिरने लगा।

विनाश!

सूर्य के नीचे गिरने से ताप और प्रकाश प्रदान करने वाला कोई साधन नहीं बचा। जीवन का पोषण करने के लिए ऊर्जा नहीं रही। तब सप्तऋषियों ने सूर्यदेव को काशी जाने का सुझाव दिया। वहाँ सूर्य ने वरुणा और असि नदियों में स्नान किया तो ऋषियों ने शिव से विनती की।

'आपने एक बार चंद्र को बचाया था। आपसे विनती है कि आप सूर्य को भी पुनर्स्थापित कर दीजिए।'

सूर्य का अहंकार टूट चुका था। उसे समझ में आ गया कि वह परब्रह्म के समक्ष कितना तुच्छ है और सर्वश्रेष्ठ बनने की उसकी इच्छा कितनी अनुचित थी। तब शिव ने उसको क्षमा

कर दिया।

सूर्यदेव और सुकेशी के नगर फिर से आकाश में जगमगाने लगे। यह देखकर समस्त संसार खुशी से झूम उठा।

48
भस्मासुर ने शिव का पीछा किया



ब्रह्मांड के अनेक राक्षसों की तरह, वृकासुर भी शिव का अनन्य भक्त था। नारद को जब पता चला तो उन्हें शरारत सूझी और वे तुरंत असुर की परीक्षा लेने पहुँच गए।

देवर्षि ने कहा, 'कोई भी स्वयं को महादेव का भक्त नहीं कह सकता जब तक वह उन्हें प्रसन्न करने के लिए तपस्या नहीं करता। तुम्हारा वास्तव में कल्याण तभी होगा जब तुम्हें प्रभु से वरदान प्राप्त होगा।'

उत्सुक वृकासुर, अपनी योग्यता को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से कैलाश पहुँच गया और शिव की तपस्या करने लगा। सैकड़ों वर्ष के तप के बाद भी जब भगवान प्रकट नहीं हुए तो उसने अत्यधिक राक्षसी कर्मकांड आरंभ कर दिए। छह दिन तक वह अपने शरीर के अंगों को काटता रहा और उनकी आहुति देता रहा। उसके शरीर पर से माँस घटता जा रहा था लेकिन उसका उत्साह उतना ही बढ़ता जा रहा था। परंतु शिव ने जब फिर भी उसे दर्शन नहीं दिए तो वृकासुर ने तलवार निकाली और अपनी गर्दन पर रख ली। वह तलवार चलाने ही वाला था कि शिव ने उसका हाथ रोक लिया और उसके घाव भर दिए।

'तुम्हें क्या चाहिए, वृकासुर जिसका मूल्य तुम अपना रक्त बहाकर चुका रहे हो?'

'एक वरदान, प्रभु। ऐसा वरदान जो किसी और के पास न हो। एक वरदान जो मुझे आपके भक्तों में सर्वोच्च पद प्रदान कर दे।'

'माँगो।'

'मेरी त्वचा को जादुई बना दीजिए। मुझे वरदान दीजिए कि मैं जिसके भी सिर पर हाथ रखूँ, वह तत्काल भस्म हो जाए।'

'किंतु यह भयंकर वरदान है। यह वरदान तुम्हें मेरे श्रेष्ठ भक्त के रूप में कैसे स्थापित करेगा?'

‘यही बात कि आपने मुझे यह भयंकर वरदान दिया है सिद्ध करेगी कि आप वास्तव में मुझसे प्रेम करते हैं।’

‘अच्छी बात है। मैं तुम्हें यह वरदान देता हूँ, वृकासुर। चूँकि अब तुम किसी को भी भस्म कर सकते हो इसलिए मैं तुम्हारा नाम बदलकर भस्मासुर रख रहा हूँ।’

भगवान शिव ने जैसे ही यह कहा, निकट ही पायल की आवाज़ सुनाई दी। उन्होंने देखा कि पार्वती शिव को खोजती हुई ढलान से नीचे उतर रही थीं। पार्वती को देखते ही भस्मासुर मंत्रमुग्ध हो उठा। उसने कभी इतनी सुंदर स्त्री नहीं देखी थी। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे असुर सम्मोहित हो गया था। वह भूल गया कि वह स्वयं आदिशक्ति को देख रहा था। भस्मासुर की प्रत्येक इंद्रिय, अब पार्वती के शरीर का अमृतपान करने को प्यासी हो रही थी, किंतु उसका मन कह रहा था कि वह विवाहिता थी और जब तक उस स्त्री के पति की मृत्यु नहीं हो जाती, तब तक वह उसे प्राप्त नहीं कर सकता।

जब तक महादेव की मृत्यु नहीं हो जाती...

भस्मासुर मुस्कुराया। वह अपना पहला शिकार करने वाला था। वह भगवान के दिए वरदान का प्रयोग स्वयं भगवान पर ही करने वाला था। सृष्टि के विनाशक का विनाश!

वह जैसे ही निकट आया, शिव ने कदम पीछे हटा लिया। वह समझ गए थे कि आगे क्या होने वाला था। भस्मासुर, अब शिव पर नहीं अपितु उनकी पत्नी पर मोहित था। वह हाथ जोड़कर शिव को प्रणाम करना नहीं बल्कि अपने हाथों को शिव के सिर पर रखना चाहता था। शिव मुड़े और वहाँ से भाग लिए। उन्हें पता था कि उनका दिया वरदान सर्वव्यापी था और वे स्वयं भी उससे बच नहीं सकेंगे। परब्रह्म को भी अपने नियमों का पालन करना पड़ेगा अथवा ब्रह्मांड अपना अर्थ खो देगा। शिव के पास जीवित बचने का अब एकमात्र तरीका भस्मासुर से दूरी बनाकर रखना था। शिव दौड़ते रहे। वे दसों दिशाओं में भाग रहे थे। परंतु वे जब भी पीछे मुड़कर देखते तो असुर ठीक उनके पीछे होता। वासना से जलती उसकी त्वचा, शिव को भस्म कर देने को आतुर थी। फिर शिव को थकान होने लगी। उनके पैर और भागने को तैयार नहीं थे। उन्होंने अपनी शक्ति के अंतिम सूत्र का हाथ थामा। अब उनके पास भस्मासुर से बचने का एक ही स्थान शेष था।

वैकुंठ।

शिव ने वैकुंठ में प्रवेश किया तो देखा कि विष्णु मुस्कुरा रहे थे।

‘मैं जानता हूँ, महादेव। आपने उसे भस्मासुर क्यों बनाया? आपको अपने भक्तों की हर इच्छा पूरी नहीं करनी चाहिए। देवताओं को इतना उदार नहीं होना चाहिए। आप सचमुच, भोलेनाथ हैं।’

‘और आप श्री हरि हैं। इस हर की रक्षा कीजिए।’

विष्णु अंतर्धान हो गए और उनके स्थान पर एक स्त्री खड़ी थी। वही स्त्री, वही माया, जिसने असुरों को समुद्र-मंथन के समय सम्मोहित करके उनसे अमृत छीन लिया था। स्त्री का वही अवतार, जिसने शिव को भी कामना से भर दिया। वह स्त्री जैसे ही भस्मासुर के सामने आई, वह असुर मानो सब कुछ भूल बैठा। पार्वती। महादेव। उसे मिला वरदान। यहाँ तक कि स्वयं को भी।

'तुम कौन हो?'

'मोहिनी।'

असुर कुछ नहीं बोला। उसकी आँखें अपने सामने खड़े भ्रम का पान कर रही थीं। तभी मोहिनी ने भस्मासुर का हाथ पकड़ लिया।

'आओ। मेरे साथ नृत्य करो।'

असुर ने मोहिनी का कहा मान लिया। उसकी अपनी अब कोई इच्छा नहीं थी। वह भस्मासुर नहीं अपितु कठपुतली बन चुका था जिसे मोहिनी की सुंदर अँगुलियाँ नचा रही थीं। वह पूरी तरह से उसके आदेश से बँधा उसके अनुसार नृत्य कर रहा था। वह हिलती तो असुर भी हिलने लगता और वह रुक जाती तो असुर भी उसके साथ रुक जाता था। उसका अपने शरीर पर कोई नियंत्रण नहीं रहा। उसके अंग भी जैसे अब उसके अपने नहीं थे क्योंकि वे मोहिनी के मन की इच्छा से कार्य कर रहे थे। भस्मासुर का स्वयं पर नियंत्रण पूरी तरह समाप्त हो चुका था और वह मोहिनी की प्रतिच्छाया बन गया। वह उसकी हर चाल और हरकत की नकल कर रहा था। मोहिनी पैरों पर घूमती तो वह भी उसी तरह घूम जाता, कूल्हों को उसी तरह निकालकर चलता जैसे मोहिनी निकाल कर चलती थी। उसने मोहिनी की तरह अपने धड़ को आगे की ओर झुका दिया। और फिर सहसा उसी की तरह अपने सिर पर हाथ रख लिया।

भस्मासुर राख के ढेर में बदल गया! उसके चारों ओर घूमती मोहिनी हँस रही थी।

49
चंद्र का व्यभिचार



नक्षत्र, अधूरे मन से टिमटिमा रहे थे। किसी ने उनका प्रकाश छीन लिया था। उन्हें किसी से घृणा हो गई थी। उनका पति किसी और से प्रेम करने लगा था।

‘तारा,’ पुष्य ने गुस्से से कहा।

‘बृहस्पति की पत्नी,’ स्वाति सिसकने लगी।

मेघा की आँखों में क्रोध उतर आया। ‘इससे पवित्रता भंग होती है! बृहस्पति देवताओं के गुरु हैं। चंद्रदेव, अपने गुरु की पत्नी से प्रेम कैसे कर सकते हैं?’

‘वे उस पर मुग्ध हो गए हैं,’ विशाखा ने दाँत पीसते हुए कहा। ‘जिस दिन उन्होंने तारा को हमारे यज्ञ में देखा था, तभी से वे उसके लिए व्याकुल हैं।’

रोहिणी क्रोध से लाल हो गई। ‘केतु तो केवल चंद्र पर ग्रहण लगाता है किंतु तारा ने तो हम सब सत्ताईस स्त्रियों के जीवन पर ग्रहण लगा दिया है।’

उन सबने रोहिणी की ओर देखा। ‘रोहिणी, अब तुम्हें समझ में आया कि यह कैसा लगता है! अभी कुछ समय पहले तक चंद्रदेव की दृष्टि तुम पर थी। तुम दिनभर उनके प्रेम में डूबी रहती थीं जबकि हमें कुछ नहीं मिलता था। अब चंद्र को कोई और मिल गया है। वे जैसे स्वयं घटते-बढ़ते हैं, उसी तरह उनका हृदय भी घटता-बढ़ता रहता है।’

‘चंद्रदेव अधिक समय तक प्रतीक्षा नहीं करेंगे,’ पूर्वा ने चेतावनी दी। ‘उन्हें तन चाहिए और तारा उन्हें रोक नहीं सकेगी।’

जल्द ही उनका डर, सत्य में बदल गया। पूरे ब्रह्मांड में समाचार फैल गया कि चंद्र और तारा भाग गए थे। किसी का पति, किसी की पत्नी को लेकर भाग गया था। ऐसी विसंगति पहले कभी सुनने में नहीं आई। कई लोगों ने विवाह की प्रतिज्ञा लेना छोड़ दिया तो कुछ ने इनके महत्त्व और मूल्य को लेकर प्रश्न उठाने आरंभ कर दिए। क्रुद्ध बृहस्पति ने चंद्र से

अपनी पत्नी को वापस माँगा किंतु चंद्रदेव ने स्पष्ट रूप से मना कर दिया। उन्होंने यह कहकर उपहास भी किया कि देवगुरु, इतनी सुंदर स्त्री रखने के योग्य नहीं थे और उन्हें अपने रूप के अनुकूल कोई स्त्री ढूंढ़ना चाहिए।

चंद्र ने बृहस्पति के दूत से कहा, 'तारा को हमारा संबंध अवैध प्रतीत नहीं होता। गुरुदेव, पति की अपेक्षा तपस्वी अधिक हैं। उन्हें तारा की आवश्यकता खुद से ज्यादा संस्कारों की पूर्ति के लिए पड़ती है। संज्ञा ने सूर्य को इसलिए छोड़ा था क्योंकि सूर्य बहुत गर्म था किंतु तारा ने अपने पति को इसलिए छोड़ा है क्योंकि वह बहुत ठंडा है। तारा का बिस्तर ठंडा रहता था। किंतु मैंने उसे गर्म कर दिया है। यदि तारा वापस जाएगी तो इससे दोनों को कष्ट होगा।'

गुरु बृहस्पति ने कई बार चंद्रदेव के पास दूत भेजा किंतु वह हर बार खाली हाथ लौट आता था। अब एक ही विकल्प बचा था। तारा को पाने के लिए युद्ध।

उन्होंने उसे तारकमय युद्ध का नाम दिया।

देवता और असुर इस युद्ध में पक्ष चुनने लगे। देवताओं ने बृहस्पति का साथ दिया तो असुरों की निष्ठा चंद्र के प्रति थी। इन शक्तियों को एक साथ देखना अत्यंत दुर्लभ था। आधा ब्रह्मांड, नियम का समर्थन कर रहा था और बाकी आधा, प्रेम के पक्ष में था। युद्ध छिड़ा तो शिव ने चंद्र पर पाशुपतास्त्र से वार कर दिया। उसे रोकने के लिए चंद्र ने सोमास्त्र का प्रयोग किया। दोनों टकराने ही वाले थे कि तभी ब्रह्मा ने हस्तक्षेप किया।

'तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई, चंद्र?' ब्रह्मा ने गरज कर कहा। 'तुम केवल जल की एक बूँद हो जबकि महादेव, सागर हैं। उन्होंने तुम्हें तब देदीप्यमान बनाया जबकि तुम्हारा सारा प्रकाश क्षीण हो चुका था। क्या तारा के लिए तुम्हारी वासना ने तुम्हें असुर बना दिया है? क्या तुम उस मस्तक को भी नहीं पहचानते जिसने तुम्हें शरण दी?'

यह सुनते ही चंद्रदेव घुटनों के बल गिर पड़े। युद्ध समाप्त हो गया।

'बृहस्पति की पत्नी को लौटा दो तो महादेव तुम्हें क्षमा कर देंगे,' ब्रह्मा ने चंद्र को समझाया।

चंद्र ने सिर हिला दिया। परंतु फिर तारा युद्ध में उतर आई। सैनिक बँट गए। तारा की पायल रणभूमि के सन्नाटे को चीर रही थी। उसके पैर उनके रक्त में डूब कर लाल हो गए थे जिन्होंने उनके लिए अपने प्राण गँवाए थे।

'क्या आप उसे स्वीकार करेंगे, बृहस्पति?'

'हाँ, कर लूँगा, परम पिता,' गुरु बृहस्पति ने उत्तर दिया। 'खराब फल को हमेशा फेंका नहीं जाता। वह अब शुद्ध नहीं रही, किंतु वह धर्मपरायण है। मेरे अनुष्ठानों के लिए उसकी उपस्थिति महत्त्वपूर्ण है और मैं उसे वापस स्वीकार करता हूँ।'

‘क्या आप इसे भी स्वीकार करेंगे?’

यह तारा की आवाज़ थी। उसने वस्त्र हटाकर अपना फूला हुआ पेट दिखाया। वह उसे फूल की तरह सहला रही थी।

‘आप कहते हैं कि मैं आपकी हूँ। क्या आप इसे भी अपना कह सकते हैं?’

देवता और असुर दंग रह गए। चंद्र का चेहरा काला पड़ गया था। बृहस्पति की दृष्टि गर्भवती पेट पर टिकी थी।

‘तुम किसके बच्चे को पाल रही हो?’

‘यह मेरा बच्चा है।’

‘किंतु इसका पिता मैं हूं या चंद्र?’

‘मैं इसका उत्तर नहीं दूँगी।’

गुरु ने उस पर दबाव डाला, किंतु वह नहीं बोली। देवताओं ने उसे सत्य कहने की आज्ञा तक दी किंतु वह चुप रही। राक्षसों ने उसे डराया-धमकाया परंतु वह फिर भी अडिग रही। अचानक उसके भीतर से आवाज़ आई।

‘माँ, मैं किसका पुत्र हूँ?’

तारा ने अपने गर्भ पर हाथ रख लिया।

‘मैं किसका बेटा हूँ?’

तारा की अँगुलियाँ उस आवाज़ को दबा नहीं पा रही थीं।

‘माँ, आप अपने पति, अपने प्रेमी का नाम लेने से बच सकती हैं। आप देवों और असुरों को यह बताने से मना कर सकती हैं। किंतु क्या आप मुझे भी मना करेंगी? अपने अजन्मे पुत्र को?’

वह काँप उठी।

‘आप करेंगी, माँ?’

‘मुझसे यह नहीं होगा। तुम मेरी चाँदनी हो।’

‘चाँदनी, माँ?’

‘हाँ,’ उसने अब पिता की ओर देखा। ‘चंद्र की एक किरण।’

युद्ध के मैदान में फिर से शांति छा गई। सब पुरुषों से घिरी उस स्त्री को देख रहे थे। सामने खड़ी एक सशक्त माँ को।

तारा ने बृहस्पति से फिर पूछा, ‘क्या आप मुझे इस पुत्र के साथ स्वीकार करेंगे?’

‘कभी नहीं। यह मेरा नहीं हो सकता।’

‘यह आपका ही है,’ इंद्र ने जोर देकर कहा। ‘संभव है कि यह आपका पुत्र न हो किंतु यह आपकी पत्नी के गर्भ में पल रहा है। इस नाते आप ही इसके पिता हैं। आपको इसे अपने पुत्र

की तरह ही पालना चाहिए।'

'क्या यह नियम है?'

'यही नियम है।'

'तो मैं इसे शाप देता हूँ,' बृहस्पति ने गुस्से से अपनी तलवार से वार किया। 'मैं सबके सामने इस बालक को शाप देता हूँ कि यह नपुंसक होगा। न नर, न मादा। ठीक अपने पिता की तरह, जो आकाश में न आधा है और न पूर्ण। ठीक अपनी माँ की तरह, जो न चंद्र की है, न मेरी।'

तारा मुस्कुरा दी। जल्द ही बालक का जन्म हो गया और उसका नाम बुध रखा गया। गुरु के शाप का पता लगा तो बुध ने तारा से पूछा कि उसे कौन-सा मार्ग अपनाना चाहिए।

'तुम जैसे हो, वैसे ही रहो,' तारा फिर से मुस्कुरा दी। 'तुम्हें अपनी इच्छा से जीने का अवसर भी मिलेगा।'

50

वामन अवतार



अदिति जमीन पर लेटी थीं।

इंद्र की माता आँसू बहा रही थीं। अपने आदित्यों के लिए। उन आँखों से बहता खारा पानी अंतहीन प्रतीत हो रहा था मानो उनके पीछे सागर उमड़ रहा था। शुक्राचार्य की सहायता से दैत्यों ने एक बार फिर स्वर्ग पर अधिकार कर लिया था। दैत्यराज बलि, राजा बन गया और उसने इंद्र को अपदस्थ कर दिया। इंद्र, अपने भाइयों के साथ ब्रह्मांड में भटक रहे थे। उन्हें जो मिलता, वही खा लेते और जहाँ जगह मिलती, वहीं विश्राम कर लेते थे। अत: अदिति ने भी भोजन त्याग कर जमीन पर सोना शुरू कर दिया। कश्यप, अदिति को कई दिनों से देख रहे थे। उन्होंने पहले तो कुछ नहीं कहा किंतु उस दिन उन्हें मौन तोड़ना पड़ा।

‘मैं तुम्हें इस तरह रोते हुए नहीं देख सकता। तुम्हें क्या चाहिए?’

‘माँ का हृदय संतान से जुड़ा होता है। आपको पता है कि हमारे पुत्रों पर क्या बीत रही है। मेरे आदित्य अब हँसते तक नहीं तो मैं कैसे मुस्कुरा सकती हूँ?’

‘तो विष्णु की तपस्या करो। फाल्गुन मास में सब प्रकार का अन्न त्याग कर केवल दूध का सेवन करो। अपनी सभी इंद्रियों को एकाग्र करके केवल विष्णु के नाम का ध्यान करो। यदि तुमने तपस्या जारी रखी तो तुम अपने पुत्रों को सुख देने में सफल हो सकती हो।’

देवमाता ने संकल्प लेकर तपस्या आरंभ कर दी। दिति ने एक बार इंद्र को समाप्त करने के लिए घोर तपस्या की थी। अदिति उसे फिर से स्थापित करने के लिए तप कर रही थी। जल्द ही, उनकी आँखों के सामने नीले रंग की दिव्य छटा बिखर गई।

‘मैं भी वही चाहता हूँ जो तुम चाहती हो,’ विष्णु ने कहा। ‘परंतु बलि अत्याचारी नहीं है। वह मेरा सम्मान करता है। उसने असुरों को समुद्र-मंथन में हमारी मदद करने के लिए केवल

इसलिए मनाया क्योंकि मैंने ऐसा करने को कहा था। प्रह्लाद की तरह, वह भी इस बात का उदाहरण है कि राक्षस भी दिव्य गुणों से युक्त हो सकते हैं। बलि, उदार भी है। उसके द्वार से कोई खाली हाथ नहीं लौटता। यदि वह अपने तन पर स्वर्ण की परत लिए पैदा हुआ होता, तो दान देने के लिए उसे भी चीर डालता। बलि, मुझे प्रिय है।'

'किंतु उसने इंद्रलोक पर आधिपत्य स्थापित कर लिया है। ब्रह्मांड की हितकारी शक्तियों को राक्षसी शक्तियों में बदल दिया है। वह स्वयं संत हो सकता है किंतु शेष असुर वैसे नहीं हैं। वे हर पवित्र वस्तु को उजाड़ रहे हैं और बलि, उन्हें रोकता नहीं है। कोई बुद्धिमान व्यक्ति, ऐसी लापरवाही कैसे कर सकता है?'

'वह दिति का वंशज हैं। उसमें तुम्हारा रक्त भी है।'

'सचमुच। उसमें मेरा खून है। इससे तो काम आसान हो जाता है। कोई यह नहीं कह सकता कि मैं अपने पुत्रों का पक्ष ले रही हूँ क्योंकि बलि भी मेरा अपना ही है। यह वंशावली की नहीं, सिद्धांत की बात है। इसका संबंध जाति से नहीं, अपितु धर्मपरायणता से है।'

विष्णु ने सिर हिलाकर कहा। 'मैं उससे निपट लूँगा।'

'आप नहीं,' अदिति ने हाथ जोड़ते हुए कहा। 'मैं चाहती हूँ कि मेरे पुत्रों में से एक को यह सम्मान मिले। आपसे विनती है कि मुझे यह वरदान दीजिए।'

'किंतु आपके आदित्य बहुत दुर्बल हैं, देवमाता। न इंद्र और न ही कोई और, बलि का सामना कर सकता है।'

अदिति का चेहरा उतर गया। विष्णु चुपचाप उसे देख रहे थे। उन्होंने अदिति के हाथ से दूध का कटोरा ले लिया।

'चूँकि मुझे आपको यह वरदान देना है इसलिए हम एक उपाय करेंगे। मेरा अगला अवतार आपके गर्भ से जन्म लेगा।'

अदिति चकित रह गई।

'इस प्रकार, मैं बलि को परास्त करूँगा तो वह दरअसल, तुम्हारा पुत्र होगा जिसके द्वारा यह कार्य सम्पन्न होगा।'

अदिति के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। उसका गर्भ अचानक भारी होने लगा जो उसे नीचे की ओर खींच रहा था। उसकी आँखें परमानंद से बंद हो गईं। विष्णु अन्तर्धान हो चुके थे परंतु अदिति जानती थी कि विष्णु उसके गर्भ में बड़े हो रहे थे। उन्होंने अदिति को भीतर से हजारों नीले रत्नों के प्रकाश से भर दिया था। उन्होंने स्वयं जन्म लेने के लिए अदिति का शरीर उधार लिया था। उसका माँस और लहू अब विष्णु की रक्षा कर रहा था जो सबकी रक्षा करते हैं। भाद्रपद के महीने में जब विष्णु ने जन्म लिया तो वृक्षों से फूल बरसने लगे। वे पीले रंग के फूल थे। ब्रह्मा ने उन्हें तांबे का बर्तन दिया, शिव ने रुद्राक्ष की

माला दी। बृहस्पति ने जनेऊ भेंट किया और कश्यप ने एक कमरबंद प्रदान किया। सूर्य ने उन्हें अपना छत्र, चंद्र ने काष्ठ का दंड और सप्त ऋषियों ने उसे घास का छल्ला भेंट किया। वह बालक, बावन अंगुल ऊँचा था लेकिन उसका कद इससे अधिक नहीं बढ़ा।

वह वामन था। बौना। त्रेता युग में विष्णु का पहला अवतार।

जल्द ही, बलि ने अत्यंत भव्य अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। उसकी यज्ञ-वेदी से एक अग्नि-स्तंभ उठ रहा था। गंधर्व झूम रहे थे और अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं। दैत्यों और दानवों की पूरी सेना उस यज्ञ में भाग ले रही थी। बलि का घोड़ा ब्रह्मांड में घूमकर बिना किसी चुनौती के लौट आया था। अब उसका सिर काटा जाना था। जैसे ही शुक्राचार्य ने तलवार उठाई, वे रुक गए। उन्हें कुछ सुनाई दे रहा था।

पदचाप।

वे उसे देखने के लिए मुड़े।

उन्हें एक वामन दिखा।

एक हाथ में छत्र और दूसरे में दंड। माथे पर चंदन का लेप और तन पर जनेऊ। वह छोटा-सा वामन, राक्षसों के सामने और भी छोटा दिखाई दे रहा था।

वह जैसे ही निकट आया, शुक्राचार्य धीरे-से बोले, 'हमसे कोई चूक हो गई है।'

'क्यों?'

'यह ब्राह्मण यहाँ क्या कर रहा है? हमने तो किसी को आमंत्रित नहीं किया।'

'क्या यह ब्रह्मदेव के चार कुमारों में से एक है?'

'नहीं। यह कोई और है। सावधान रहो। इसका आभामंडल सबसे अलग है।'

'हाँ, बिलकुल।'

'हो सकता है कि देवताओं ने हमसे छल करने के लिए इसे भेजा हो।'

'मुझे क्या करना चाहिए?'

'कुछ नहीं। इसे कोई वचन मत देना। यह कुछ भी माँगे, उसे स्वीकार मत करना।'

बलि मुस्कुराया। 'आप मुझे अपने विरुद्ध कार्य करने को कह रहे हैं। मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ, असुराचार्य?'

वामन, अब सामने खड़ा था। बलि ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया तो वामन ने उसे आशीर्वाद दिया।

'राजन, आप दीर्घायु हों। ब्रह्मांड के अधिक शासकों में अश्वमेध यज्ञ करने का सामर्थ्य नहीं है। आप वास्तव में असाधारण हैं।'

'पूज्य, मैं कुछ भी नहीं हूँ। आप अत्यंत उदार हैं।'

'आपके जितना नहीं! मैंने सुना है कि आपके पितामह प्रह्लाद भक्ति का स्वरूप हैं जबकि

आप दान की प्रतिमूर्ति हैं। आप किसी के अनुरोध को अस्वीकार नहीं करते।'

'यदि दाता ब्रह्मांड है तो मैं मना करने वाला कौन होता हूँ?'

'तो क्या जो मैं चाहूँगा, आप मुझे वह देंगे?'

शुक्राचार्य के माथे से पसीने की बूँद छलक पड़ी। उन्होंने धीरे-से अपना चेहरा नीचे कर लिया। सबकी सांसें थम गईं। बलि काँप उठा।

'मुझे बताइए, आदरणीय। आप क्या चाहते हैं?'

सभा स्तब्ध थी और सब वामन के बोलने के प्रतीक्षा कर रहे थे।

'भूमि।'

'भूमि?'

'हाँ। मुझे बस थोड़ी-सी भूमि चाहिए।'

'कितनी?'

'मेरे तीन पग के बराबर भूमि।'

सब हैरानी से देखने लगे। कोई हँस रहा था तो कोई सोच में डूबा था। शुक्राचार्य, वामन के पैरों को देख रहे थे। कमल की दो कलियों जितने नन्हे-नन्हे पांव।

'तीन पग?' बलि ने पूछा।

'हाँ।'

'क्या आप यह विश्वास से कह रहे हैं?'

'बिलकुल।'

'किंतु इतनी भूमि तो कुछ भी नहीं है।'

वामन मुस्कराए, 'यदि कोई तीन पग भूमि से संतुष्ट नहीं होता तो वह किसी वस्तु से संतुष्ट नहीं हो सकता। मैं जिस तरह अपने शरीर के आकार से संतुष्ट हूँ, उसी तरह इतनी-सी भूमि से मुझे संतोष हो जाएगा।'

'मैं निश्चित रूप से आपको इससे अधिक भूमि दे सकता हूँ--'

शुक्राचार्य ने बलि की बात को बीच में काट दिया। 'अगर इन्हें इतनी ही भूमि चाहिए तो हम तर्क क्यों करें? हे परम पूज्य, हमारे स्वामी आपको तीन पग भूमि दान करते हैं।'

'सचमुच?' वामन ने बलि की ओर देखा।

'हाँ, मैं दान करता हूँ। आप अपने पग कहाँ रखना चाहेंगे?'

तभी बलि स्तब्ध रह गया। सब लोग स्तब्ध रह गए। वामन का आकार बढ़ रहा था। उसके अंग खिंच कर लंबे हो रहे थे। उसका धड़ बड़ा हो रहा था। उसका चेहरा, बादलों के पार निकाल गया था। उसका अनुपात इतना अलौकिक था कि उसका शरीर पूरे ब्रह्मांड में फैल गया था। वह इतना विशाल था कि अब उन्हें वामन के दाहिने पैर के अँगूठे का केवल

एक सिरा दिखाई दे रहा था। वामन ने पैर उठाया। दैत्य काँपने लगे। बलि घबरा गया। और उन दो शब्दों ने शुक्राचार्य को जैसे निष्क्रिय बना दिया था।

तीन पग...

वामन ने ब्रह्मांड को बौना कर दिया था। वह त्रिविक्रम बन गया था। उसकी आवाज़ आकाशवाणी की तरह सुनाई दे रही थी।

'राजन, मैं अपना पहला पग यहाँ रखता हूँ।'

और उसने पूरी पृथ्वी को नाप लिया।

'राजन, मैं अपना दूसरा पग यहाँ रखता हूँ।'

फिर उसने समूचा स्वर्ग नाप लिया। ब्रह्मा ने वामन के चरणों में प्रणाम किया और उन्हें अपने पात्र के जल से धोया।

'राजन, मैं अपना तीसरा पग कहाँ रखूँ?'

बलि मुस्कुरा रहा था। उसकी आँखें भर आई थीं।

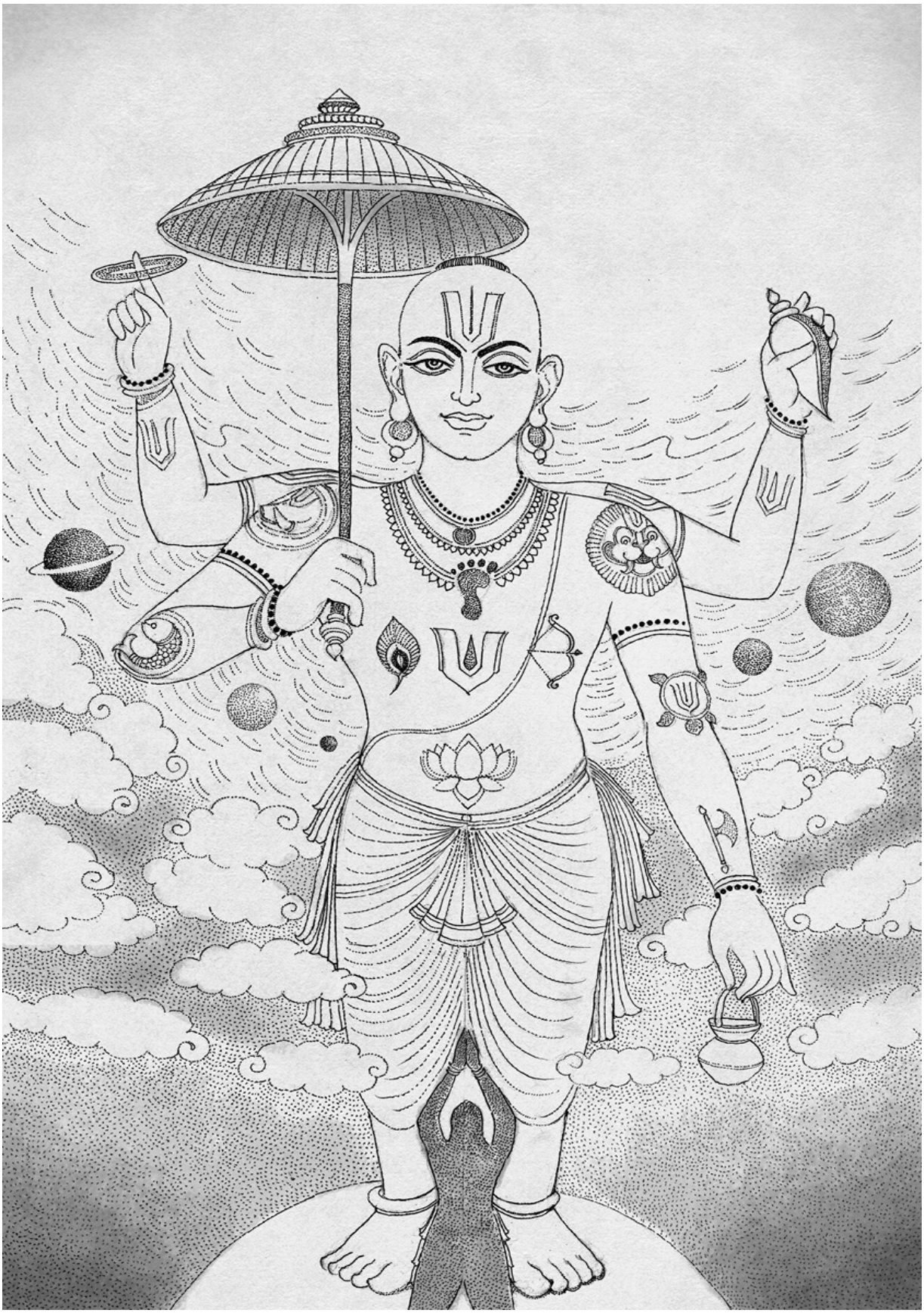
'राजन, तीसरा पग कहाँ रखूँ?'

'आप वामन नहीं हैं।'

'मैं वामन हूँ।'

'आप भगवान विष्णु हैं। वह असीमित शक्ति, जो मुझे बता रही है कि मैं कितना सीमित हूँ।'

'मैं अपना तीसरा पग कहाँ रखूँ?'



‘प्रभु, ब्रह्मांड आपके लिए खेल का मैदान है। दो पग में ही आपने सारा ब्रह्मांड नाप लिया और मेरे पास अब कुछ शेष नहीं है। केवल एक स्थान है जो मैं विनम्रतापूर्वक आपको प्रस्तुत कर सकता हूँ।’

असुरराज ने वामन को प्रणाम किया।

‘कृपया अपना तीसरा पग मेरे मस्तक पर रख दीजिए। मैं महाविष्णु के चरणों की धूलि बनकर पवित्र हो जाना चाहता हूँ।’

‘यह आपको छल रहा है, राजा बलि,’ शुक्राचार्य चिल्लाए। ‘इसने वामन बनकर आपके साथ उसी तरह छल किया है जैसे इसने मोहिनी बनकर हमारे साथ छल किया था। अपनी आँखें खोलिए।’

‘मैंने अपना हृदय खोल दिया है। मैंने अपने पूर्वज प्रह्लाद की भांति उनके सामने समर्पण कर दिया है।’

वामन ने पैर नीचे उतार लिया। उसका तलवा जैसे ही निकट आया, बलि के चारों ओर का प्रकाश क्षीण हो गया। विष्णु का नीला स्वरूप ऐसे निकट आ रहा था मानो आसमान नीचे गिर रहा हो। असुर भागने लगे। उन्हें विश्वास हो गया था वामन, बलि को कुचलने वाला था। उन्हें लगा कि जैसे ही वह पैर उठेगा, तो उनके राजा की अस्थियाँ उसके नीचे चिपकी होंगी। परंतु बलि जीवित था। वामन के पैर ने उसे कुचला नहीं अपितु नीचे की ओर धकेल दिया। नीचे और बहुत नीचे। वामन ने बलि को ब्रह्मांड की रीढ़ के सहारे धकेलते हुए उसे सुतल तक पहुँचा दिया।

वामन अचंभित होकर बोले, ‘तुम वास्तव में अतुलनीय हो। तीनों लोक सदा याद रखेंगे कि जैसे राक्षस बल ने अपना सर्वस्व दे दिया था उसी तरह राक्षस बलि ने भी मुझे अपना सर्वस्व दान कर दिया। मैं तुम्हें पाताल लोक का सम्राट घोषित करता हूँ। अब तुम यहीं रहकर शासन करो।’

जल्द ही, देवमाता अदिति दावत की तैयारी कर रही थीं। उनके पुत्र स्वर्ग लौट आए थे और इंद्र फिर से देवराज बन चुके थे। ब्रह्मा ने देवताओं को सूचित किया कि उन्होंने अपने बर्तन के जल को एक जीव में बदल दिया था।

‘यह जल कैसा है?’ उन्होंने पूछा।

‘यह वामन का चरणामृत है। इसी जल से मैंने श्रीहरि के चरण धोए थे। उस धारा ने एक सुंदर स्त्री का रूप धारण कर लिया है।’

‘उसका नाम क्या है, परम पिता?’

‘विष्णु के चरणों से पवित्र होने के बाद उसका नाम विष्णुपदी हो गया है। परंतु मुझे उसे गंगा कहना पसंद है।’

51

गंगा, लक्ष्मी और सरस्वती की लड़ाई



गंगा ने पूरे ब्रह्मांड को मंत्रमुग्ध कर दिया था। वह दूध के झरने की तरह श्वेत थी मानो लाखों चंद्रमा पिघल कर उसके जल में घुल गए थे। क्षीरसागर से निकले अमृत से कहीं अधिक अमृतमयी। उसका जल अमरत्व नहीं अपितु मोक्ष प्रदान करने वाला था। वह शाश्वत जीवन का नहीं अपितु शाश्वत मुक्ति का वाहक था। किंतु ब्रह्मांड को उससे प्रेम होता, इसके पहले ही वह स्वयं किसी से प्रेम कर बैठी।

विष्णु।

किंतु गंगा की प्रतिद्वंद्वी भी थी। ज्ञान और संगीत की देवी। उसने भी श्वेत वस्त्र पहन लिए। श्वेत हंसों एवं श्वेत कमल पुष्पों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। और वह भी विष्णु पर आसक्त हो गई।

सरस्वती।

एक बार, जब गंगा वैकुण्ठ में विचरण कर रही थीं, तब उन्होंने विष्णु को अकेला पाया। उनकी भावनाएँ बलवती होने लगीं। उन्होंने व्यापक रूप धारण किया और वे छलक उठी। उत्साह से सराबोर गंगा, विष्णु के पास पहुँची और कामुक स्वर में बात करने लगी। उसकी पलकें फड़क रही थीं और वक्ष-स्थल जोर से धड़क रहा था। उसकी अंगुलियाँ विष्णु को स्पर्श कर रही थीं। गंगा का तन, नीले सागर में विलीन होने को तड़प रहा था कि तभी वहाँ सरस्वती आ पहुँची। गंगा को देखकर वह तुरंत समझ गई कि वहाँ क्या हो रहा था।

'दुष्ट!' सरस्वती ने गंगा को पीछे खींचते हुए कहा। 'श्री हरि के इतना निकट खड़े होने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई? मैं देख रही हूँ कि तुम कैसे विष्णु पर आसक्त हो। क्या तुम स्वयं को भूल चुकी हो? तुम भूल गईं कि तुम उनके चरणों के स्पर्श से अस्तित्व में आई थीं?

'और तुम?' गंगा ने प्रतिवाद किया। 'तुम वाणी की देवी हो किंतु देखो तुम्हारी जिह्वा

कितनी निकृष्ट है!'

विष्णु ने दोनों को शांत करने का प्रयास किया किंतु वे सफल नहीं हो पाए। गंगा का प्रकोप शिखर पर था, जबकि सरस्वती, टूटी वीणा की तरह कर्कश स्वर में चीख रही थी। विष्णु ने दोनों देवियों को झगड़ते पहले कभी नहीं देखा था। उन्होंने दिव्य शक्तियों के बीच ऐसी असंगति नहीं देखी थी। गंगा, अनियंत्रित और सरस्वती, नासमझ हो गई थी। विष्णु, तुरंत वैकुंठ छोड़कर बाहर चले गए किंतु इससे दोनों देवियों का गुस्सा और भड़क गया और दोनों एक-दूसरे को दोषी ठहराने लगीं। सरस्वती ने उछलकर गंगा के बाल खींच लिए। इस दृश्य से चकित लक्ष्मी ने हस्तक्षेप किया। उसने दोनों को अलग करने की कोशिश की किंतु सरस्वती को लगा कि लक्ष्मी, गंगा का पक्ष ले रही थीं। क्रोध से उन्मत्त सरस्वती ने लक्ष्मी को शाप दे डाला। यह सुनकर गंगा ने भी सरस्वती को शाप दे दिया। तब सरस्वती ने पलटकर गंगा को शाप दे दिया।

विष्णु को जब पता लगा कि झगड़ा बहुत बढ़ गया था तो वह लौट आए। फिर उन्होंने तीनों को बुलाया।

'लक्ष्मी को तुमने क्या शाप दिया, सरस्वती?'

'यही कि उसे पृथ्वी पर पौधे के रूप में रहना होगा।'

विष्णु ने अपनी पत्नी की ओर देखा।

'ऐसा ही होगा। तुम्हारा एक अंश तुलसी के पवित्र पौधे के रूप में विकसित होगा। किंतु शोक मत करो क्योंकि मैं भी शालिग्राम नामक पत्थर के रूप में प्रकट होऊँगा और फिर हम एक साथ रहेंगे।'

फिर विष्णु ने सरस्वती से पूछा।

'तुमने गंगा को क्या शाप दिया?'

'मैंने उसे शाप दिया है कि वह धरती पर मृतकों की अस्थियाँ लेकर प्रवाहित होगी।'

'यह शाप भी फलित होगा,' विष्णु ने गंगा की ओर देखा। 'तुम मानव जाति के पापों को धोकर नष्ट करोगी और इसके लिए वे तुम्हारी वंदना करेंगे तथा तुम्हें माँ कहकर पुकारेंगे। परंतु गंगा, आज तुम्हें भी क्रोध आ गया था। तुमने सरस्वती को क्या शाप दिया है?'

'मैंने उसे शाप दिया है कि उसे भी भूलोक पर नदी बनकर प्रवाहित होना पड़ेगा।'

'यह शाप भी अवश्य फलित होगा। सरस्वती ने तुम्हें शारीरिक रूप से प्रताड़ित किया है इसलिए वह तुमसे पहले नदी में बदल जाएगी। वह ब्रह्मदेव की पत्नी बनेगी किंतु उसका एक अंश पृथ्वी पर जलधारा बनकर बहेगा और फिर एक दिन सरस्वती विलुप्त हो जाएगी।'

52
वृंदा का विष्णु को शाप



पार्वती ने देखा कि शिव की आयु बढ़ रही थी।

कैलाश की गुफाओं में पाषाण हो चुकी टपकते हुए जल की बूँदों की भांति शिव के सिर से चांदी-से बाल लटक रहे थे। चेहरे पर झुर्रियाँ उभर आई थीं। उनका स्नायु-तंत्र दुर्बल होने लगा था। यहाँ तक कि चंद्रमा और सर्प भी अब दिखाई नहीं देते थे।

‘स्वामी, आप अपना रूप क्यों बदल रहे हैं?’

‘इंद्र के लिए।’

‘इंद्र?’

‘हाँ, वे मुझसे मिलना चाहते हैं और आज बृहस्पति के साथ यहाँ आ रहे हैं। मैं उनकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।’

‘आप क्या करेंगे?’

‘वही जो मैं अपने भक्तों के साथ करता हूँ। उनकी आस्था की परीक्षा। देखते हैं उनके मन में मेरे लिए कितनी भक्ति है। मुझे देखना है क्या वे मुझमें आए परिवर्तन के बावजूद मुझे पहचान सकते हैं।’

शिव पर्वत की तलहटी में बैठे थे कि उन्होंने दोनों को आते देखा। देवताओं के राजा और देवताओं के गुरु। इंद्र की दृष्टि कैलाश के शिखर का अवलोकन कर रही थी। वे सामने बैठे व्यक्ति को देख नहीं पाए और शिव से टकरा गए।

‘ऋषिवर, मुझे क्षमा करें,’ इंद्र ने कहा। ‘मैं आपको देख नहीं पाया। आपको चोट तो नहीं लगी?’

शिव ने आँखें बंद कर लीं।

‘मैंने पूछा कि मेरे कारण आपको चोट तो नहीं आई?’

शिव की आँखें बंद रहीं।

'क्या आप बधिर हैं? आपने सुना नहीं मैंने क्या कहा?'

शिव की आँखें अब भी बंद थीं।

'कोई मेरी इस तरह अवमानना नहीं करता,' देवराज ने क्रोध में भरकर कहा।

इंद्र पीछे हटे और उन्होंने अपना वज्र उठा लिया। वज्र आगे बढ़ा किंतु अचानक स्तंभित हो गया। वह ध्यानस्थ आकृति से सिर्फ एक इंच की दूरी पर ठहरा हुआ था। वह आगे को मुड़ गया मानो ऋषि के समक्ष झुक रहा हो और फिर गायब हो गया। शिव के नेत्र खुल रहे थे। मस्तक धड़क रहा था। उनकी अंगुलियाँ, हाथ में पकड़े एक फूल को मसल रही थीं।

सहसा उनका तीसरा नेत्र खुल गया।

'महादेव!' बृहस्पति ने कहा। 'यह तो महादेव हैं।'

शिव के तीसरे नेत्र में अग्नि-दीप प्रज्ज्वलित हो चुका था। फिर उसने भयानक अग्नि का रूप लिया और इंद्र को भस्म करने के लिए वह शिव से अलग होने लगा।

'दया कीजिए!'

ऊष्मा उनके तन को झुलसा रही थी। वह जैसे ही बढ़ी, देवगुरु मार्ग में खड़े हो गए।

'दया कीजिए, महादेव।'

'मार्ग से हटिए,' शिव गरजे। 'यह अग्नि उसके लिए है जो आपके पीछे छिपा खड़ा है। जिसकी आस्था मिथ्या है और जिसकी उपस्थिति मेरे कैलाश को दूषित कर रही है।'

'महादेव, आपका क्रोध उचित है किंतु इंद्र को भस्म कर देने से स्वर्ग संकट में पड़ जाएगा। राक्षस लौट आएँगे। आपने सृष्टि के निमित्त हलाहल पिया था। कृपया अपने उस महान कृत्य को व्यर्थ मत कीजिए। आपने उस दिन जिसकी रक्षा की थी, उसे दोबारा संकट में मत डालिए।'

अग्नि अब भी धधक रही थी। शिव का स्वर उसको भेदता हुआ सुनाई पड़ा।

'फिर इस ज्वाला का क्या होगा? यदि इंद्र को नहीं, तो यह पूरे ब्रह्मांड को भस्म कर देगी।'

'मैं इसका प्रबंध कर देता हूँ। आपने क्षीरसागर से निकले विष को पी लिया था। अब वह जल, आपके द्वारा छोड़ी इस अग्नि को पी जाएगा।'

बृहस्पति ने तत्काल अग्नि-पुंज को क्षीरसागर की ओर मोड़ दिया। उसने जैसे ही सागर की सतह के भीतर प्रवेश किया, उससे एक बालक का जन्म हुआ। शिशु के रोने का स्वर लहरों से भी अधिक ऊँचा था। उसकी ध्वनि ब्रह्मा तक पहुँची तो उन्होंने क्षीरसागर को शिशु के पालन-पोषण की आज्ञा दी।

'मैं इसका क्या नाम रखूं, परमपिता?' सागर ने पूछा।

‘चूँकि आपका जल इस बालक का पालन-पोषण करेगा इसलिए इसका नाम जलंधर होगा।’

बालक शीघ्र वयस्क हो गया और उसने वृंदा नाम की एक सुंदर स्त्री से विवाह कर लिया। शुक्राचार्य ने अपने मनोयोग और पराक्रम से जलंधर को दैत्यों का स्वामी बना दिया और वे उसे देवताओं के विरुद्ध भड़काने लगे।

‘तुम्हारी पत्नी के पिता दैत्य कालनेमि को विष्णु ने निर्ममता से मार डाला था।’

‘किंतु वृंदा तो नारायण की भक्त है। वह मुझसे कहती है कि भले ही उसका तन मेरा है, किंतु उसकी आत्मा विष्णु को समर्पित है।’

‘मुझे पता है। मैंने उसे विष्णु के लिए उपवास रखते देखा है। वह पीले वस्त्र धारण करके विष्णु के नाम का जाप करती है। विष्णु में कुछ तो आकर्षण है जिस कारण उससे जिन लोगों को घृणा होनी चाहिए, वे भी उससे प्रेम करने लगते हैं। उसने हमें अमृत पीने से रोका, मोहिनी का रूप धारण करके हमारे मन को मलिन किया। स्वरभानु को राहु एवं केतु बना दिया। समुद्र-मंथन के फलस्वरूप सागर से निकले सर्वोत्तम रत्नों को भी देवताओं ने अपने पास रख लिया।’

‘क्या सचमुच उन्होंने ऐसा किया?’

‘यदि तुम्हें लगता है कि मेरे वचन मिथ्या हैं, तो क्षीरसागर से पूछ लो। तुम्हारा पिता उस कपट का साक्षी है जो उस दिन समुद्र-तट पर हमारे साथ हुआ था। यह तुम्हें बताएगा कैसे देवताओं ने हमारा उपयोग किया और फिर हमें वस्तुएँ देने से मना कर दिया।’

समुद्र ने इन सब तथ्यों की पुष्टि करके एक प्रश्न किया। ‘तुम अब क्या करने की सोच रहे हो, जलंधर?’

‘मैं देवताओं को आज्ञा दूँगा कि वे उन सब वस्तुओं को हमें लौटा दें।’

‘ऐसा मत करो। तुम मेरे पुत्र हो। मेरे जल में कुछ प्रवाहित किया जाता है तो मैं उसे लौटा देता हूँ। मैं अपने पास कुछ नहीं रखता और तुम्हें भी यही करना चाहिए।’

किंतु जलंधर ने समुद्र की बात पर ध्यान नहीं दिया। उसने रत्नों को वापस माँगने के उद्देश्य से एक दूत को स्वर्ग लोक भेजा और दावा किया कि क्षीरसागर का पुत्र होने के नाते सब रत्नों पर जलंधर का अधिकार था। इंद्र ने दूत को सभा से बाहर निकाल दिया जिसके बाद युद्ध छिड़ गया। देवताओं ने वीरतापूर्वक युद्ध किया किंतु असुरों ने उन्हें परास्त करके भगा दिया।

‘मुझे पता है कि हम क्यों हारे हैं,’ वायुदेव ने कहा। ‘क्योंकि श्रीहरि हमारे साथ उपस्थित नहीं थे।’

‘तुमने सत्य कहा। वे हैं कहाँ? उन्होंने युद्ध में भाग क्यों नहीं लिया?’ यम ने पूछा।

देवता वैकुंठ पहुँचे किंतु लक्ष्मी ने उन्हें द्वार पर ही रोक दिया।

'विष्णु ने मेरे कहने से युद्ध में भाग नहीं लिया।'

'आपके कहने से?' देवता बोले।

'हाँ। जलंधर मेरे भाई के समान है।'

'भाई?'

'वह मेरी तरह क्षीरसागर से उत्पन्न हुआ है। उसकी शिराओं में वही सागर बहता है जो मेरी शिराओं में है। श्री हरि, जलंधर पर कभी वार नहीं करेंगे। इतना ही पर्याप्त है कि उन्होंने बहुत पहले वृंदा के पिता का वध कर दिया था।'

देवताओं ने अविश्वास से एक-दूसरे को देखा। उन्होंने जिस देवी को अपनी रक्षा के लिए जल से बाहर निकाला था, वही उनके शत्रु की रक्षा कर रही थी। भगवान विष्णु के बिना, अब उनका बच पाना असंभव था। अब कौन उनकी रक्षा करेगा?

'महादेव,' नारद ने कहा। 'चक्र ने सहायता करने से मना कर दिया किंतु त्रिशूल अवश्य हमें बचा लेगा। और मुझे पता है कि यह कैसे होगा।'

'कैसे?' देवताओं ने पूछा।

'उसी तरह जैसे अंधक की चाल असफल हुई थी।'

देवर्षि नारद, जलंधर के पास पहुँचे और उसकी स्तुति करने लगे।

'हे समुद्र-नंदन, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। बड़े आश्चर्य की बात है कि आप क्षीरसागर से निकले हैं किंतु आपने स्वर्ग लोक को रक्त से स्नान करवा दिया।'

'हमने उतना रक्तपात नहीं किया जितना देवता करते हैं,' जलंधर ने विरोध किया।

'आज आपके पास सब कुछ है किंतु मैं आपके लिए दुखी हूँ। सब कुछ होकर भी आपके पास कुछ नहीं है।'

'कुछ नहीं है?'

'आपने देखा नहीं कैसे नदियाँ, क्षीरसागर में मिल जाती हैं? जिस तरह समुद्र को नदियों की आवश्यकता होती है, उसी तरह पुरुष को स्त्री की आवश्यकता होती है।'

'मुझे पता है। मेरे पास मेरी वृंदा है।'

नारद ने मोहक मुस्कान बिखेरते हुए कहा, 'आप जैसा सम्राट सबसे सुंदर स्त्री पाने के योग्य है।'

'आप किसकी बात कर रहे हैं?'

'पार्वती की।'

फिर देवर्षि, पार्वती के आकर्षण की प्रशंसा करने लगे। उन्होंने देवी का इतना विस्तारपूर्वक वर्णन किया कि ऐसा प्रतीत हुआ मानो पार्वती, जलंधर के सामने साकार रूप

ही धारण कर लेंगी। उनका प्रत्येक मनमोहक अंग स्वयं को जैसे प्रकट कर रहा था। उनके होंठ। आँखें। नाभि। वक्ष-स्थल। अंधक, जो पार्वती के जल से ही प्रकट हुआ था, उन्हीं पर मोहित हो गया। अब जलंधर, जो शिव की अग्नि से उदित हुआ था, वासना की अग्नि में जलने लगा। वह उस देह को निहार रहा था जिसे उसकी कल्पना ने गढ़ा था। वह उसे पकड़ना और प्राप्त करना चाहता था।

'मुझे पार्वती चाहिए।'

'नहीं। कभी नहीं।'

तभी वृंदा ने सभा में प्रवेश किया। उसने नारद का प्रत्येक शब्द सुन लिया था।

'देवी पार्वती का विवाह महादेव से हुआ है। उनके बारे में अशुद्ध विचार धारण करने से तुम पापी कहलाओगे।'

'मैंने सोचा था कि तुम विष्णु की भक्त हो,' जलंधर ने उपहास किया। 'फिर शिव की पत्नी के लिए इतनी चिंता क्यों?'

'प्रिय, मुझे केवल तुम्हारी चिंता है।'

परंतु दैत्यराज जलंधर के हाथ हवा में जैसे कुछ टटोल रहे थे। वह उस सुंदर कल्पना को सहलाने की कोशिश कर रहा था। अगले दिन, उसकी सेना ने कैलाश पर आक्रमण कर दिया। नीले वस्त्र पहनकर उसकी सेना पहाड़ पर चढ़ने लगी तो ऐसा लगा मानो समुद्र ने प्रकृति के नियम के विरुद्ध ऊपरी दिशा में बहना शुरू कर दिया था। घेराबंदी करते ही जलंधर, पार्वती को खोजने लगा। यह जानकर कि पार्वती कुटीर के अंदर हैं, वह मुस्कुराया। उसने एक युक्ति सोची। ऐसा अपवित्र दृष्टि-भ्रम जिसे इससे पहले किसी ने प्रयोग करने का साहस नहीं किया था।

जलंधर ने शिव का ही रूप धारण कर लिया!

गुफा में प्रवेश करके वह पार्वती की ओर बढ़ने लगा। वह पलकें नहीं झपक रहा था और उसका चेहरा भी अटल था। पार्वती देख रही थीं कि महादेव के छद्म-वेश से शुरू हुआ घटनाक्रम अब जलंधर के छद्म-वेश तक आ पहुँचा था।

'मेरी तीसरी आँख भले ही न हो,' पार्वती ने गुस्से से कहा, 'किंतु मैं देख सकती हूँ।'

'तो देखो,' वह हँसा। 'मैं समुद्र का पुत्र हूँ। पानी को जिस पात्र में ढाला जाए वह उसी का आकार ले लेता है। यदि शिव का रूप देखकर तुम्हें प्रसन्नता होती है तो मैं जीवन-भर इसी रूप में रहने को तैयार हूँ।'

'क्या तुम्हारे पास महादेव जैसा हृदय है?' पार्वती ने पूछा और फिर गायब हो गईं।

जलंधर ने उन्हें फिर से खोजना शुरू किया। इधर भगवान शिव, विष्णु के पास पहुँचे।

'इस समय देवताओं को आपकी आवश्यकता है तो आप यहाँ वैकुंठ में क्यों बैठे हैं?'

‘मैं असहाय हूँ, महादेव। लक्ष्मी मुझे रोकती हैं। मैं जलंधर पर हाथ नहीं उठा सकता।’

‘किंतु आप तो जानते हैं कि आपको उसकी पत्नी के साथ छल करना होगा।’

विष्णु ने अपनी आँखें बंद कर लीं।

‘आप जानते हैं कि आपको क्या करना है, श्री हरि। आप उस कार्य को करने में विलंब कर रहे हैं जो अपरिहार्य है। आप जानते हैं कि वृंदा की पवित्रता के कारण ही जलंधर अजेय है। आप यह भी जानते हैं कि जलंधर को शक्ति, अपने शरीर से नहीं अपितु अपनी पत्नी के पवित्र शरीर से प्राप्त होती है।’

विष्णु जैसे ही पीछे हटे, शिव ने उन्हें पकड़ लिया।

‘आप जानते हैं कि आपको वृंदा का मान-मर्दन करना होगा तभी हम जलंधर का अंत कर सकते हैं।’

विष्णु की आँख से आँसू की बूँद ढुलक आई। शिव ने उसे धीरे से पोंछ दिया।

‘श्री हरि, आप यह सदा से जानते हैं। आपको ज्ञात है कि मेरी तरह आपको भी धर्म के लिए यह विष पीना पड़ेगा।’

विष्णु ने सिर हिलाया। ‘मैं जानता हूँ। किंतु वृंदा मेरा आदर करती है। अपनी पवित्रता की रक्षा के लिए हर दिन मुझसे प्रार्थना करती है। यह कैसी लौकिक विडम्बना है कि मुझे ही उसकी पवित्रता को भंग करने के लिए चुना गया है?’

‘मेरे भाग्य में भी गणेश का सिर काटना लिखा था। कार्तिकेय से दूर होना लिखा था। परंतु हमारे उद्देश्य, हमारे कर्मों से बड़े होते हैं। वृंदा की पवित्रता एक घाव की रक्षा कर रही है जिसे दूर करना आवश्यक है। हम देवता हैं। हमारे पास मनुष्यों की तरह चुनने की सुविधा उपलब्ध नहीं हैं। हमें वही करना चाहिए जो किया जाना आवश्यक है। जलंधर ने पार्वती को पाने के लिए मेरा रूप धारण किया है। अब वृंदा को पाने के लिए आपको जलंधर बनना होगा।’

‘मैंने भृगु की पत्नी का सिर धड़ से अलग कर दिया था,’ विष्णु मानो ध्यान में लीन हो गए। ‘अब मुझे जलंधर की पत्नी का मान-मर्दन करना है।’

‘हाँ। और फिर से शापित भी होना पड़ेगा। श्री हरि, वास्तव में हम ब्रह्मांड के स्वामी हैं या उसके दास हैं?’

वृंदा घबराकर उठ बैठी। एक भयानक दुःस्वप्न ने उसकी नींद उड़ा दी थी। उसने अपने शरीर पर काले सर्पों को रेंगते देखा। उसकी नाभि से एक काला कमल उदित हो रहा था। काले फूलों से सजा जलंधर, वृंदा के सामने खड़ा उसे देख रहा था। तभी एक काले रंग के चक्र ने वृंदा के शरीर से माँस का एक टुकड़ा काट कर गिरा दिया। बिस्तर पर रक्त का धब्बा पड़ चुका था। वृंदा आँखें मलते हुए उठी तो उसे अपने पति की आवाज़ सुनाई दी।

‘प्रिये!’

वह उठ बैठी। ‘आप वापस आ गए?’

‘हाँ।’

‘युद्ध का क्या हुआ? देवी पार्वती का क्या हुआ?

‘मैं युद्ध छोड़कर पीछे हट गया।’

‘पीछे हट गए? आपने ऐसा तो पहले कभी नहीं किया।’

‘कभी-कभी वही करना चाहिए वृंदा, जो हमने कभी नहीं किया। पार्वती आकर्षक है, किंतु मैंने उसे जितना अधिक देखा मुझे उतना ही अधिक तुम्हारा चेहरा याद आया। तुम्हारी आँखें। होंठ। मैं गलत था। वह तुम्हारे सामने कुछ भी नहीं है। उसके पास न तुम जैसा तन है और न आत्मा।’

‘मुझे आत्मा के बारे में नहीं पता,’ वृंदा ने जलंधर को जकड़ लिया। ‘मैं केवल शरीर को देख सकती हूँ। मुझे केवल शरीर का स्पर्श पता है।’

जलंधर ने बाँहें फैला दी थीं।

‘चलो, वृंदा। सब प्राणियों की तरह हम भी एक हो जाएँ। अब तुम और मैं मायने नहीं रखते क्योंकि सब एक हैं और एक ही सब कुछ है।’

वृंदा को जलंधर के तन से सागर की गंध आ रही थी। उसे वह सुगंध पसंद थी। जैसे ही दोनों आलिंगनबद्ध हुए, कैलाश पर मौजूद जलंधर नीचे गिर पड़ा। उसकी शक्ति समाप्त हो रही थी। ऐसा लगा अचानक उसके भीतर कोई घाव हो गया जिसमें से उसकी शक्ति बाहर निकल रही थी। वृंदा की प्रसन्नता बढ़ रही थी किंतु जलंधर की पीड़ा उसे खा रही थी। उसका रूप भंग हुआ तो वह पूरी तरह बिखर गया। उसके मुख से भयानक चीख निकाली।

‘वृंदा!’

जिस तत्त्व ने उसे घेरा हुआ था, वह भंग हो चुका था। शिव ने अपना त्रिशूल उठाया और जलंधर के वक्ष को भेद दिया। जलंधर का सार-तत्त्व शिव में विलीन हो रहा था। वह शिव के तीसरे नेत्र में लौट रहा था जहाँ से वह बाहर निकला था।

अचानक, कैलाश पर गर्मी की लहर दौड़ गई। वह बर्फ को काट रही थी और पहाड़ को पिघला रही थी। तापमान इतना बढ़ गया कि देवताओं के तन पर छाले उभर आए।

‘यह क्या हो रहा है?’ वे चिल्लाए।

‘वृंदा को पता चल गया है,’ शिव ने उत्तर दिया। ‘मेरा तीसरा नेत्र उस दिन इंद्र के लिए खुला था किंतु अब उस अग्नि में वृंदा जल रही है।’

वृंदा, विष्णु को घूर रही थी। उसने जिन लपटों का आह्वान किया था, वे उसे भस्म कर रही थीं। वह दहाड़ उठी। ‘नारायण, आप मेरे प्रभु थे। आपने मुझे यह शरीर दिया; मैं इसे

आपको ही लौटा देती। किंतु आपने मेरे साथ छल किया। आप अपने भक्तों को विश्वास करने को कहते हैं किंतु आपको ही मुझ पर विश्वास नहीं था। आपने मुझे जलंधर से अलग कर दिया जिससे मैं प्रेम करती थी, इसलिए मैं भी आपको शाप देती हूँ कि राम के रूप में अवतार के समय आपकी प्रियतम को भी आपसे दूर कर दिया जाएगा। जिस तरह आपने किसी और की पत्नी को भ्रमित करने के लिए रूप बदला है, उसी तरह कोई रूप बदलकर आपकी पत्नी को भ्रमित कर देगा। आप भी मेरी तरह विलाप करेंगे। और आप अपने हृदय की ही भांति पत्थर के हो जाएँगे।

53
विष्णु का सिर कटा



विष्णु थक चुके थे।

वह सोलह हजार वर्षों से एक असुर से युद्ध कर रहे थे और फिर भी उस पर विजय प्राप्त नहीं कर पाए थे। उनके दिव्यास्त्र उनके साथ मानो छल कर रहे थे। उन्होंने पाञ्चजन्य शंख फूंका किंतु उसकी ध्वनि असुर को जलाने में विफल रही। उन्होंने अपनी कौमोदकी गदा फेंकी किंतु वह असुर के शरीर में समाई और फिर पलटकर उसने विष्णु के ही रथ को ध्वस्त कर दिया। फिर विष्णु ने अपना सुदर्शन चक्र छोड़ा किंतु असुर के चारों ओर विद्यमान अदृश्य दीवार ने चक्र से भी उसकी रक्षा कर ली।

'मुझे कोई भी अस्त्र मार नहीं सकता,' असुर हँसते हुए बोला। 'मुझे भगवान से आशीर्वाद मिला है। वही केवल मुझे मारने का रहस्य जानते हैं।'

विष्णु थक कर वैकुंठ लौट आए और अपनी ठुड्डी शारंग धनुष पर टिकाकर गहरी नींद में सो गए। जैसे ही उन पर योगनिद्रा का प्रभाव हुआ ब्रह्मा के नेतृत्व में देवताओं ने उनके निवास में प्रवेश किया। असुरों के समक्ष उनका समस्त देवत्व विफल हो गया था और उन्होंने एक यज्ञ करने का संकल्प लिया था। यज्ञ में विष्णु की उपस्थिति अनिवार्य थी किंतु वे गहरी नींद में सो रहे थे। विष्णु के कमल-नयन, पुष्प की पंखुड़ियों के समान बंद हो चुके थे। देवताओं ने बहुत प्रयास किया किंतु उन्हें जगा नहीं सके। वर्षों के युद्ध ने विष्णु के शरीर को थका दिया था और वह उठने को तैयार नहीं थे। देवताओं का धैर्य कम होने लगा तो ब्रह्मा ने एक चाल चली।

'वे अपने धनुष की डोरी के ऊपर सो रहे हैं। अगर वह टूट जाए तो उसकी ध्वनि ब्रह्मांड में गूँज उठेगी। संभव है कि उससे विष्णु की नींद खुल जाए।'

देवताओं ने दीमक का रूप धारण किया और डोरी को कुतरने लगे। उन्होंने पूरी उग्रता के

साथ डोरी को कुतरा। वह पतली होती जा रही थी क्योंकि देवता उसे तेजी से कुतर रहे थे। डोरी क्षीण होती गई। देवता उसे और तेज़ी से कुतरते गए। क्षीण और क्षीण। तेज और तेज। डोरी खुलने लगी थी। क्षीण और क्षीण। तेज और तेज। वह टूटने से पहले काँप रही थी। क्षीण और क्षीण। तेज और तेज। विष्णु अब भी सो रहे थे। क्षीण और क्षीण। तेज और तेज। क्षीण और क्षीण। तेज और तेज।

चटाक!

मानो कोई धूमकेतु दुर्घटनाग्रस्त हो गया। या जैसे कोई ग्रह फट गया। धनुष से अलग होकर डोरी टूट गई। झटका इतना तेज था कि उसने विष्णु का सिर ही धड़ से अलग कर दिया।

मौन।

विष्णु के धड़ से रक्त बह रहा था।

मौन।

उनका धनुष लाल हो गया था।

मौन।

उनका सिर लुढ़क रहा था।

मौन।

उनकी आँखें बंद थीं।

मौन।

जिनका चक्र सभी के सिर काटता था, आज उन्हीं का सिर कटा पड़ा था।

ब्रह्मांड स्तब्ध था। देवता, विष्णु के शरीर को देख रहे थे। उनके रोम छिद्रों से पसीना टपक रहा था और आँखों से आँसू। एक विचार उनकी आत्मा को लगातार झकझोर रहा था।

यह हमने क्या किया?

अब उनके सामने एक छाया प्रकट हुई। देवी लक्ष्मी निकट आ रही थीं। विष्णु के रक्त पर पैर रखते और लाल पैरों के चिह्न छोड़ते हुए। वह अपने पति से दूरी बनाकर खड़ी रहीं। फिर वह ब्रह्मा की ओर गईं। फिर सभी देवताओं की ओर। उन्होंने अपने हाथ ऊपर उठाए तो देवतागण काँपने लगे। किंतु लक्ष्मी ने हाथों को जोड़ लिया।

'मुझे क्षमा कर दीजिए।'

'आपको क्षमा?' ब्रह्मा ने डरते हुए कहा। 'दोषी तो हम हैं। यह अकल्पनीय कृत्य हमने किया है।'

'आप यह कृत्य इसलिए कर पाए हैं क्योंकि मैंने इसे संभव बनाया है।'

‘आपने?’

लक्ष्मी ने विष्णु का लटका हुआ हाथ थाम लिया। ‘यह असुर, वरदान के कारण अजेय है।’

‘हाँ। एक दैवीय वरदान जो...’

ब्रह्मा रुक गए।

दैवीय वरदान...

वे शब्द धनुष की डोरी से भी तेज गूँज रहे थे।

‘वो आप थीं, देवी?’

‘हाँ।’ लक्ष्मी की पकड़ मजबूत हो गई। ‘मैं। पराशक्ति। देवता प्राय: इस बात को लेकर दुखी होते हैं कि आप असुरों को किस तरह से वरदान देते हैं। यही महादेव कैसे करते हैं। किंतु इस बार नहीं। यह मेरा कृत्य है। मैं इस असुर से प्रभावित हो गई थी क्योंकि यह मुझे प्रसन्न करने के लिए प्रयत्न कर रहा था। प्रतिदिन वह सोचता कि क्या उसने मुझे प्रसन्न कर लिया है या मुझे प्रसन्न करने के लिए उसे कुछ और करना चाहिए।’

लक्ष्मी ने अपने पति का हाथ छोड़ दिया। वह कुछ और देख रही थीं। सुदूर, ब्रह्मांड के किसी अन्य आयाम में।

‘वह क्षण,’ लक्ष्मी धीरे-से बोलीं मानो वह खुद से बात कर रही हों। ‘वह क्षण, जब हम वरदान देते हैं। वह ‘हाँ’ अथवा ‘ना’ किसी के जीवन को सदा के लिए बदल सकता है। वह जो कारण और प्रभाव के चक्र को चलाने के लिए नया बीज बोता है। उस दिन मैंने वही किया और उसी कारण यह असुर जीवित है।’

‘रहस्य?’ ब्रह्मा ने पूछा। ‘उसकी मृत्यु का रहस्य क्या है?’

‘मैंने उसे आशीर्वाद दिया था कि वह केवल उस देवता द्वारा मारा जा सकता है जिसके कंधों पर घोड़े का सिर हो।’

देवता घबरा गए।

घोड़े का सिर...

उनकी दृष्टि सिर विहीन विष्णु की ओर गई।

‘इसीलिए! इसीलिए!’

लक्ष्मी ने सिर हिलाया। ‘हमारा ब्रह्मांड यादृच्छिक नहीं है। यह अपनी देखभाल स्वयं करता है।’

‘अब क्या होगा?’

‘एक घोड़े का सिर लाओ। श्री हरि पुन: हयग्रीव बनेंगे। घोड़े के सिर वाले देवता जिन्होंने सृष्टि के आरंभ में मधु और कैटभ का संहार किया था। वही अवतार एक बार फिर हमारा

उद्धार करेगा और फिर श्री हरि अपने वास्तविक रूप को प्राप्त कर लेंगे।'

कुछ ही समय बाद, हयग्रीव जोर से हिनहिना रहा था और असुर शांत हो चुका था।

54
भृगु द्वारा त्रिदेव की परीक्षा



एक बार सभी ऋषि ब्रह्मांड के मौलिक प्रश्नों पर विचार करने के लिए एकत्रित हुए। सप्तऋषियों ने श्रेष्ठ वस्तुओं की एक सूची बनाई। सबसे महान वेद कौन-सा था? सबसे कुलीन राजा कौन था? सबसे योग्य पुण्य कौन-सा था और सबसे बुरा पाप क्या था? उनमें जोरदार बहस चल रही थी कि तभी उन्हें एक आवाज़ सुनाई दी।

'और देवता?'

ये ऋषि भृगु थे।

'सबसे महान देवता कौन हैं? ब्रह्मा, विष्णु या शिव?'

सभा में हो रहा कोलाहल सहसा शांत हो गया।

सबसे महान देवता?

क्या यह प्रश्न वैध था? क्या देवताओं की एक-दूसरे से तुलना करना उचित था? क्या भृगु का यह प्रश्न ईश-निंदा माना जाएगा?

सप्तऋषियों ने एक सुर में कहा, 'मूर्ति, अपने शिल्पकार का मूल्यांकन नहीं कर सकती! देवता आंकलन आकलन से परे हैं।'

'सचमुच?' भृगु ने पूछा। 'त्रिदेव भी तो इसी प्रकृति के अंतर्गत कार्य करते हैं। सभी लोग उन्हें पूजते हैं तो क्या यह तय नहीं होना चाहिए कि तीनों में कौन सबसे अधिक पूजनीय है?'

'किंतु ब्रह्मा, विष्णु और शिव के बीच फैसला कैसे हो सकता है? सृष्टिकर्ता, पालनहार और विनाशक? एक परब्रह्म के तीन पक्ष?'

'क्यों नहीं हो सकता? सभी मनुष्यों का जन्म एक ही दिव्य बीज से हुआ है, फिर भी हम निरंतर उनका आंकलन करते हैं। चारों वेद, ब्रह्मदेव से उत्पन्न हुए हैं किंतु हम उनका भी

मूल्यांकन करते हैं। यदि परब्रह्म ने तीन अलग-अलग रूपों में प्रकट होना चुना है तो निश्चित रूप से उनका भी मूल्यांकन किया जा सकता है।'

सभा में कोलाहल होने लगा तो वृद्ध ऋषि फिर से बोले।

'चूँकि महर्षि भृगु ने यह प्रश्न उठाया है तो उन्हें ही इसका उत्तर खोजना चाहिए। वे त्रिदेव की परीक्षा लें और हमें बताएँ कि तीनों में सबसे महान कौन है।'

महर्षि परीक्षा लेने निकल पड़े। वे पहले ब्रह्मलोक पहुँचे और वहाँ जानबूझकर उन्होंने ब्रह्मा का अभिवादन नहीं किया। उन्हें न प्रणाम किया और न ही कोई स्तुति गाई। यह देखकर ब्रह्मा भड़क गए और उन्होंने भृगु को शाप देने की धमकी दी। तो भृगु हँस पड़े।

'महादेव द्वारा आपकी निंदा करना ठीक ही था। अन्य देवताओं की भांति आपकी कभी पूजा नहीं होगी।'

इसके बाद भृगु कैलाश पहुँचे किंतु उन्हें प्रवेश नहीं करने दिया गया। शिव के गण उनका मार्ग रोक कर खड़े हो गए और बहाने बनाकर उन्हें लौटने के लिए कहने लगे। भृगु का क्रोध बढ़ता देख नंदी आगे आए और उन्होंने महर्षि को वास्तविक कारण बताया कि उस समय शिव और पार्वती रति-क्रीड़ा में लीन थे। ऋषि ने जाते समय उन्हें भी शाप दे दिया।

'महादेव की पूजा अब उनके वास्तविक रूप से अधिक लिंग रूप में की जाएगी।'

ब्रह्मांड की यात्रा करते हुए, भृगु अंत में विष्णु के पास पहुँचे जिन्होंने भृगु की पत्नी का सिर काट दिया था। संयोग से, विष्णु उस समय योग निद्रा में लीन थे। महर्षि ने उन्हें जगाने की कोशिश की किंतु वे नहीं हिले। भृगु को क्रोध आ गया और उन्होंने भगवान विष्णु की छाती पर लात मार दी।

'ब्रह्मांड पीड़ा से जाग रहा है, ऐसे में आप सो कैसे सकते हैं?'

यह देखकर लक्ष्मी चौंक उठीं। शेषनाग फुफकारने लगे। परंतु विष्णु उठे और भृगु का पैर को सहलाने लगे।

'मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। मेरे वक्ष से आपके पैर में चोट तो नहीं लगी?'

'क्या?'

'मैंने पूछा क्या मेरे वक्ष ने आपको चोट पहुँचाई है।'

'नहीं, नारायण।'

'आपने अपने स्पर्श से मेरा अभिषेक किया है, ऋषिवर,' विष्णु बोले। 'आप परम सत्य कहते हैं। जिसका काम रक्षा करना हो, उसे अधिक सोना नहीं चाहिए। आपने मेरी आँखें खोल दीं, इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। आपका पदचिह्न अब सदा मेरे वक्ष पर श्रीवत्स के नाम से अंकित रहेगा।'

भृगु चुपचाप खड़े रहे। उनका चेहरा आँसुओं से भीग गया था। उनका हृदय स्तुति कर

रहा था और पृथ्वी पर विराजमान ऋषियों की सभा ने भृगु द्वारा कहे हर शब्द को सुना।

'मैंने नहीं, नारायण अपितु आपने मेरी आँखें खोल दी हैं। हम सबकी आँखें। मैंने आपको एक बार शाप दिया था किंतु आज मैं आपको आशीर्वाद देता हूँ कि त्रिदेव में आप ही सबसे महान हैं।'

विष्णु ने सिर हिलाया।

'मैं सबसे महान नहीं हूँ। मैं, ब्रह्मदेव और महादेव तीनों एक समान हैं। हम ब्रह्मांड के तीन पहलू हैं। भक्त, किसी एक पहलू को देखता है और उसे सर्वोच्च घोषित कर देता है। दुर्भाग्य से, इस कारण हम में विभाजन उत्पन्न हो जाता है तथा लाभ कम और क्षति अधिक होती है।'

'परंतु ऋषिवर को शायद यह दिखाई नहीं देता,' लक्ष्मी ने क्रोध में भरकर कहा। 'इन्होंने एक बार दैत्यों को शरण दी थी और अब यह देवताओं की श्रेणी तय करने निकले हैं।'

भृगु घबरा गए। देवी के नेत्र क्रोध से लाल हो रहे थे।

'आपने श्रीहरि को लात मारने का साहस कैसे किया? और आपकी इतनी हिम्मत कैसे हुई कि आप ब्रह्मा, विष्णु और शिव का आंकलन करने लगे? आपने अपराध किया है और अब समूचा ब्राह्मण वर्ण इसका मूल्य चुकाएगा। अब से मैं किसी ब्राह्मण के घर नहीं जाऊँगी और वे सदैव दरिद्र रहेंगे।'

55

सुद्युम्न बना स्त्री



राजा सुद्युम्न अपने पिता वैवस्वत मनु के उपदेशों का पालन करते हुए शासन करता था। एक बार, वह अपने घोड़े पर अकेले सवारी करते हुए मेरु पर्वत के नीचे स्थित एक जंगल से गुजरा। उसने वह स्थान पहले कभी नहीं देखा था। सूर्यास्त के बाद भी वहाँ सब उजास में डूबा था। वह जंगल में जितना भीतर गया, वह उतना ही आश्चर्यजनक होता गया। आकाश लाल दिखाई दे रहा था और नदियाँ युवतियों की भांति गुनगुना रही थीं। पेड़ों पर फल और फूलों में पराग कण नहीं थे। हिरनियाँ दौड़ रही थीं और शूकरियाँ सो रही थीं। मोरनियाँ नृत्य कर रहीं थीं तथा बाघिनें दहाड़ रही थीं।

सुद्युम्न ने अपनी गति धीमी कर ली।

उसका शरीर काँप रहा था। वह ऐसे धड़कने लगा मानो तारक-धूल से भर रहा हो। उसकी शिराओं में अजीब-सी कीमिया दौड़ने लगी जो उसके माँस के आकार को ढाल रही थी और रक्त में घुल रही थी। क्या इसीलिए अचानक उसके चेहरे पर कुछ फड़फड़ा रहा था? सुद्युम्न उसे जितना दूर धकेलता, वह उतना ही उसकी आँखों में चुभ रहा था। सुद्युम्न रुक गया। वह चीज अब उसके सिर से गुच्छों के रूप में लटक रही थी। उसने कातरता से उसे छू कर देखा। भय से। और फिर गुस्से से। सुद्युम्न की अंगुलियाँ उसे जकड़ रही थीं। उसे नोंच रही थीं। सुद्युम्न अविश्वास से टकटकी लगाए उन गुच्छों को चीर रहा था।

केश। लंबे केश, उसकी कमर से नीचे तक फैले हुए थे।

सुद्युम्न ने घोड़े की लगाम इतनी जोर से खींची कि वह सिर के बल जमीन पर गिर पड़ा। वह जैसे ही उठा, उसके हाथ ने उसकी छाती का स्पर्श किया। वह भीतर तक जैसे स्तंभित हो गया।

स्तन...

मेरे स्तन हैं...

सुद्युम्न के शरीर पर पसीना आ रहा था। उसका गला सूखने लगा। उसने मुट्ठियाँ भींच लीं। वह स्वयं को छूना नहीं चाह रहा था। उसके हाथ उठे और वह अपने वस्त्र फाड़ने लगा। एक के बाद एक। उसे एक जलधारा दिखाई दी। वह पानी का सोता जैसे कोई संकेत कर रहा था। मानो उसे पता था कि क्या हो रहा है। जैसे वह जलधारा चाहती थी कि सुद्युम्न स्वयं को देखे। उसके पैर काँपने लगे फिर वह आगे बढ़ा। एक-एक कदम करके सुद्युम्न किनारे तक पहुँच गया।

स्त्री...

राजा सुद्युम्न अपना प्रतिबिंब देख रहा था।

मैं स्त्री में बदल रहा हूँ...

'सचमुच, सुद्युम्न। ऐसा ही है।'

सुद्युम्न को पीछे से आवाज़ सुनाई पड़ी। वह मुड़ा और गिर पड़ा।

'महादेव!'

चाँद। सर्प। त्रिशूल। भस्म।

'यह कैसा जादू है, प्रभु?'

'यह जंगल है।'

'जंगल?'

'मैं और पार्वती यहाँ प्रायः प्रेमालाप के लिए आते हैं। एक बार हमें कुछ साधु मिल गए थे। तब यह सुनिश्चित करने के लिए कि जब भी पार्वती निर्वस्त्र हों तो कोई पुरुष उन पर दृष्टि न डाले, मैंने यहाँ जादू कर दिया। तब से कोई भी पुरुष इस उपवन में कदम रखता है तो वह स्त्री बन जाता है। फिर चाहे वह मनुष्य हो या पशु, देव हो या दानव। तुम भी अब स्त्री बन गए हो, सुद्युम्न। इस वन में अन्य सभी प्राणियों की भांति स्त्रैण!'

राजा ने अपने घोड़े को देखा, जो अब घोड़ी में बदल चुका था। उस जगह का जादू देखकर सुद्युम्न भय से भर उठा। उसने शिव के पैर पकड़ लिए।

'किंतु महादेव, मैं सम्राट हूँ। प्रजा को मेरी आवश्यकता है। मैं इस वन में प्रवेश करने से पहले यहाँ के नियम से अनभिज्ञ था। मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे इससे मुक्त कर दीजिए।'

'यह संभव नहीं है। मेरे जादू से कोई बच नहीं सकता किंतु मैं तुम्हारे लिए इसे थोड़ा संशोधित कर दूँगा। तुम स्थायी रूप से स्त्री न बनकर, हर एक महीने के बाद स्त्री का रूप धारण करोगे।'

'हर एक महीने के बाद?'

‘हाँ। एक महीना तुम पुरुष रहोगे और अगले महीने स्त्री हो जाओगे। इस प्रकार, अब से तुम उभयलिंगी हो। दोनों लिंग धारण करने वाले। अर्द्धनारीश्वर का अद्वितीय प्रतीक।’

‘किंतु मैं सूर्य का पौत्र हूँ,’ सुद्युम्न ने विरोध किया। ‘जिस तरह सूर्य आकाश में स्थिर रहता उसी तरह हम भी स्थिरता को महत्त्व देते हैं।’

‘परंतु अब से तुम इसी अवस्था में रहोगे। स्त्री के रूप में तुम अपने पुरुष जीवन को भूल जाओगे और जब पुरुष बनोगे तो तुम्हें अपना स्त्री-रूप याद नहीं रहेगा। एक अवस्था तुम अपने दूसरे स्वरूप को भूले रहोगे। पुरुष के रूप में तुम सुद्युम्न रहोगे किंतु स्त्री बनकर तुम्हारा नाम इला होगा।

‘इला?’

इला।

‘किंतु उसका क्या...’

उसके गले से आवाज़ नहीं निकली। कारण यह था कि शिव अंतर्धान हो चुके और साथ ही उसका पुरुष-स्वर भी गायब हो गया था। पौरुष का अंतिम अंश।

अब सुद्युम्न नहीं...

उद्युम्न...

द्युम्न...

युम्न...

म्न...

न...

अ...

ला...

इला...



वह अब जंगल से बाहर जा रही थी। यह सोचती हुई कि वह कौन है। वह अकेली क्यों है। कहाँ से आई थी और कहाँ जा रही थी। उसे आश्चर्य हो रहा था कि उसके आसपास सभी प्राणी उसके बारे में क्या बातें कर रहे थे। गोधूलि-बेला बीत चुकी थी। तभी उसने एक प्राणी को देखा। एक तेजस्वी प्राणी।

'तुम कौन हो?' उसने इला से पूछा।

'इला।'

'तुम यहाँ क्या कर रही हो?'

'मुझे पता नहीं है। मुझे कुछ याद नहीं। क्या मैं पहले कोई और थी? अथवा मैं अब कोई और हूँ?'

'तुम्हारा मतलब है कि तुम अवसीमिय जीव हो? यह भी और वह भी?' वह हँसने लगा।

'मैं उस अवस्था को जानता हूँ।'

'क्या सचमुच? कैसे?'

'मेरे पिताजी इसी तरह बदलते रहते हैं। वे भी घटते-बढ़ते हैं।'

'चंद्रमा?'

'उनका आकार बदलता रहता है। तुमने कहा कि तुम यह और वह दोनों हो, जबकि मैं पुरुष हूँ और न ही स्त्री। शायद हम एक-दूसरे के पूरक बन सकते हैं।'

'तुम्हारा क्या नाम है?'

'बुध।'

इला ने हाथ आगे बढ़ाया। 'क्या तुम मेरे साथ रहोगे?'

बुध ने इला को अपने पास खींच लिया। 'सदैव।'

ब्रह्मांड देख रहा था कि चंद्रमा और सूर्य एक हो गए थे।

56
उर्वशी का पुरुरवा से छल



बुध और इला ने पुरुरवा को जन्म दिया और उसी के साथ चंद्र वंश का आरंभ हो गया। पुरुरवा का प्रताप ऐसा था कि उसने जल्द ही अनेक अश्वमेध यज्ञ कर लिए। दुर्भाग्य से, बहुत अधिक वैभव, संकट को आमंत्रित करता है। ऐसे में, तीन शक्तियों ने राजा पुरुरवा की परीक्षा लेने का निश्चय किया। वे न देवता थे और न ही असुर अपितु उच्चतम अमूर्त भाव थे। मानव जीवन के तीन लक्ष्य!

अर्थ। काम। धर्म। समृद्धि। कामुकता। नैतिकता।

वे यह जानने को उत्सुक थे कि पुरुरवा उनमें से किसे सबसे अधिक महत्त्व देता है। उन्होंने ऋषियों का रूप धारण कर लिया और पुरुरवा के दरबार में पहुँच गए। राजा ने उन्हें शाही भोजन परोसा और अनेक उपहार भेंट किए। किंतु अवचेतन मन प्राय: वह भाँप लेता है जो चेतन मन नहीं जान पाता। पुरुरवा ने दान की वस्तुएँ तीनों में समान रूप से विभाजित की थीं किंतु उसका पक्ष, धर्म के प्रति थोड़ा अधिक उदार था क्योंकि पुरुरवा, धर्म को अधिक महत्त्व देता था। धर्म को दान में सबसे अधिक वस्तुएँ मिलीं तो शेष दो ने पुरुरवा को शाप दे दिया।

'तुम अपना धन खो बैठोगे,' अर्थ चिल्लाया।

'और तुम एक अप्सरा पर मोहित हो जाओगे,' काम ने गरज कर कहा। पुरुरवा उनके चरणों में गिर गया किंतु धर्म ने उसका हाथ पकड़ लिया। 'आप धर्म के मार्ग से कभी नहीं भटकेंगे।'

कुछ दिनों के बाद, पुरुरवा एक जंगल से गुजर रहा था कि उसने एक तेज चीख सुनी। वह रुक गया। उसने देखा केशी नाम का असुर, एक अप्सरा का अपहरण कर रहा था। राजा ने असुर को परास्त करके अप्सरा की रक्षा कर ली।

‘आपका क्या नाम है?’

‘उर्वशी। मैं जल में रहने वाली अप्सरा हूँ।’

पुरुरवा स्तब्ध रह गया। कामदेव का शाप उसके कानों में गूँज रहा था। अत्यंत मनोरम रूपसी उसने सामने खड़ी थी। उसका मस्तिष्क उसे दृष्टि हटा लेने का आग्रह कर रहा था। वह पाश की तरह उसे पीछे खींच रहा था किंतु राजा जानता था कि वह पाश बहुत दुर्बल था। पुरुरवा का हृदय अप्सरा के सुनहरे केशों में उलझ चुका था। उस सुंदर चेहरे को देखकर वह उन्मत्त हुआ जाता था। उसके भीतर की आवाज चिल्ला कर उसे सचेत कर रही थी कि वह अपने विनाश के वशीभूत हो रहा था किंतु पुरुरवा इसे शाप का प्रभाव मानकर अप्सरा से प्रेम करने का इच्छुक हो चुका था।

यह समाचार जब इंद्र तक पहुँचा गया कि पुरुरवा ने अप्सरा की रक्षा की तो इंद्र ने पुरुरवा को उत्सव मनाने के लिए आमंत्रित किया। अप्सराओं के नृत्य के साथ आकाश में संगीत बजने लगा। रंभा, मेनका और उर्वशी गीत और धुनों पर थिरक रही थीं। उनके पैरों की चाल देखते ही बनती थी और अंगुलियाँ हवा में कल्पित दृश्य गढ़ रही थीं। उनके शरीर में इतनी तारतम्यता थी कि लगता था मानो वे तीन अलग-अलग नहीं, अपितु एक ही स्त्री थीं। नृत्य अपने चरम पर था कि अचानक उर्वशी की कदम ताल टूट गई। वह पुरुरवा को एकटक देख रही थी और इसी कारण ताल में चूक हो गई। इंद्र की आवाज़ गूँजी।

‘मैं तुम्हें अपने लोक से निर्वासित करता हूँ। तुम्हें पृथ्वी पर एक सौ वर्ष तक रहना होगा।’

उर्वशी, निर्वासित होने से व्यथित थी किंतु उसने पुरुरवा के विवाह का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वह अप्सरा जानती थी कि मनुष्य के साथ बंधकर रहना उसके लिए संभव नहीं था और पृथ्वी पर उसके अस्थायी आवास के बाद जब भी इंद्रलोक के द्वार पुन: खुलेंगे तो उसे लौटना होगा। वह नहीं चाहती थी कि समय आने पर पुरुरवा उसे रोके, इसलिए उसने राजा के सामने तीन शर्तें रखीं।

‘मैं अपने बिस्तर के साथ दो भेड़ बाँधूंगी और आपको ध्यान रखना होगा कि वे चोरी न हो जाएँ। दूसरी शर्त यह कि सहवास के अलावा आप मेरे सामने कभी नग्न अवस्था में नहीं आएँगे। और तीसरी, मुझे भोजन हमेशा मक्खन के साथ परोसना होगा। जिस दिन भी ये शर्तें टूट जाएँगी, मैं स्वर्ग वापस चली जाऊँगी।’

दोनों का आनंदमय जीवन आरंभ हो गया किंतु जल्द ही गंधर्वों को उर्वशी की याद सताने लगी। जैसे ही सौ वर्ष पूरे हुए, वे उर्वशी को वापस पाने के लिए षड्यन्त्र रचने लगे। उन्हें उर्वशी की शर्तों का पता लगा तो विश्वावसु के नेतृत्व में गंधर्व, एक रात पुरुरवा के महल में घुसे और उन्होंने राजा के बिस्तर से बँधी भेड़ चुरा लीं। यह देखकर उर्वशी मुस्कुराई। उसे जिस क्षण की प्रतीक्षा थी, वह आ चुका था। पृथ्वी के साथ उसका बंधन ढीला होने वाला

था। उस नाटक का अंतिम क्षण।

'मेरी भेड़! मेरी भेड़!'

उर्वशी की चीख से पुरुरवा की नींद टूट गई। राजा चोरों पर झपटा किंतु दुर्भाग्य से उस समय उसके तन पर एक भी वस्त्र नहीं था। धूर्त गंधर्वों की माया से उसी क्षण बिजली चमकी जिसके प्रकाश में अप्सरा ने अपने पति को नग्न अवस्था में देख लिया। चोरों ने भागते समय महल में रखे मक्खन के सभी पात्र भी गिराकर तोड़ डाले।

अगले दिन, उर्वशी इंद्रलोक लौट गई। परंतु जब पुरुरवा को संतान की इच्छा हुई तो उर्वशी फिर लौटकर आई थी और उसने अनेक पुत्रों को जन्म दिया था।

57
सत्यवती को मिला धोखा



ऋषि के शब्दों को वह आत्मसात नहीं कर पाया था।

मैं आपकी बेटी से विवाह करना चाहता हूँ...

राजा गाधि सोच में पड़ गया कि वह ऋषि को क्या उत्तर दे। उसकी बेटी, सत्यवती इतनी सुंदर थी कि उसका प्रेम प्राप्त करने के लिए शासक अपने मुकुट, योद्धा अपनी तलवारें और कवि अपनी कलम तक छोड़ने को विवश हो जाते थे। किंतु वह बेचारा ऋषि भटकता हुआ राजा गाधि के पास आ पहुँचा और सत्यवती का हाथ माँगने लगा। गाधि की इच्छा हुई कि ऋषि को महल से बाहर निकाल दे क्योंकि वह स्वयं चंद्रवंशी सम्राट था और इस कारण वह सत्यवती का विवाह ऋषि के साथ नहीं अपितु किसी शासक के साथ करना चाहता था जो उसका शक्तिशाली सहयोगी भी बन सके।

'हम क्षत्रिय हैं,' राजा ने उत्तर दिया। 'और आप ब्राह्मण हैं।'

'हाँ। मेरा नाम ऋचीक है। मैं ऋषि च्यवन का पुत्र और महर्षि भृगु का वंशज हूँ। मैं सत्यवती से प्रेम करता हूँ और उसे अपनी पत्नी बनाना चाहता हूँ। क्या हमें आपका आशीर्वाद मिल सकता है?'

गाधि मुस्कुराया। उसने ऋषि को कुपित किए बिना उसकी माँग को अस्वीकार करने का तरीका सोच लिया था।

'ऋषिवर, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। किंतु मैंने प्रण किया है कि मैं अपनी पुत्री का विवाह उसी व्यक्ति से करूँगा जो मुझे एक हजार अश्व उपहार में देगा।'

'मैं यह कर सकता हूँ।'

'एक हजार अश्व?'

'हाँ, बिलकुल।'

‘तेज दौड़ने वाले।’

‘बिलकुल।

‘सफेद।’

‘हाँ, यदि आपको इससे प्रसन्नता होगी।’

‘किंतु उनके कान काले होने चाहिए।’

‘जैसी आपकी इच्छा।’

राजा गाधि फिर मुस्कुराया। उसे विश्वास था कि ब्रह्मांड में घोड़ों की ऐसी कोई नस्ल मौजूद नहीं थी। परंतु ऋचीक का मन प्रेम से भरा था इसलिए उन्होंने वरुण देव को प्रसन्न करने के लिए तपस्या शुरू कर दी। तपस्या से प्रसन्न होकर जल देवता का हृदय पिघल गया। उन्होंने ऋचीक को घोड़े प्रदान कर दिए और इस तरह सत्यवती का विवाह ऋचीक से हो गया। राजकुमारी अपने पति के साथ सुख से रहने लगी। विवाह के कुछ दिन बाद, ऋचीक ने एक यज्ञ की तैयारी शुरू कर दी। वह एक गुप्त यज्ञ था।

‘यह यज्ञ किसलिए है?’ सत्यवती जानने को उत्सुक थी।

‘पुत्र के लिए। अतुलनीय पुत्र। इस अनुष्ठान के बाद मैं तुम्हें एक पात्र में चावल दूँगा। उसे खा लेने से तुम्हारे गर्भ में पुत्र का बीजारोपण हो जाएगा।’

राजकुमारी प्रसन्न हुई। यह सोचकर उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा कि कोई यज्ञ इतना चमत्कारी भी हो सकता है। अचानक उसके दिल में एक विचार कौंधा।

‘क्या आप मेरी माँ के लिए भी एक पात्र में चावल दे सकते हैं?’

‘तुम्हारी माँ के लिए?’

‘हाँ। मैं अपने माता-पिता की इकलौती संतान हूँ और मुझे पता है कि मेरे बिना वे अकेले हो गए हैं। उनका एक पुत्र हो जाए तो वह उनके वंश को जीवित रखेगा और साथ ही राज्य को उत्तराधिकारी भी मिल जाएगा।’

यह सुझाव ऋचीक को अच्छा लगा। एक ही निवेदन से सत्यवती ने अपनी पुत्री और राजकुमारी होने की दोनों भूमिकाओं को निभा दिया था। उसने न केवल अपने माता-पिता को अपितु अपनी प्रजा को भी सुरक्षित कर लिया था। किंतु गाधि के शब्द ऋचीक के कानों में गूँजे तो उसने अपने मन का संदेह व्यक्त किया।

‘क्या तुम्हारी माता जो महारानी हैं, तपस्वी का प्रसाद स्वीकार करेंगी? क्या तुम्हारे क्षत्रिय पिता, तुम्हारे ब्राह्मण पति के पराक्रम को स्वीकार करेंगे?’

सत्यवती ने ऋचीक को आश्वासन दिया कि उसके माता-पिता को कोई आपत्ति नहीं होगी। तब ऋचीक ने यज्ञ के अंत में चावल से भरे दो पात्र अपनी पत्नी के सामने रख दिए।

‘यह मिट्टी का पात्र तुम्हारा है,’ ऋचीक ने निर्देश दिया। ‘धातु-निर्मित पात्र महारानी के

लिए है। मैं निकट के एक गाँव कुछ कार्य से जा रहा हूँ और संध्या तक लौट आऊँगा।'

सत्यवती ने तुरंत अपनी माँ से मिलकर ऋषि द्वारा तैयार किए चावल के पात्रों का रहस्य प्रकट कर दिया। वह अपनी माँ को प्रसाद देने के लिए साथ इतनी उत्सुक थी कि उसने महारानी की आँखों की चमक पर ध्यान नहीं दिया।

'पुत्री, मुझे लगता है कि हमें अपने पात्रों की अदला-बदली कर लेनी चाहिए।'

'अदला-बदली? क्यों माँ?'

'तुमने बताया कि ऋचीक ने यह यज्ञ पुत्र-प्राप्ति के लिए किया था। स्वाभाविक रूप से, तुम्हारे चावल, मेरे चावल से बेहतर होंगे। तुम एक असाधारण पुत्र को जन्म तो दोगी किंतु वह अपने पिता की तरह ब्राह्मण बनेगा। उसके विलक्षण गुण किसी के काम नहीं आएँगे क्योंकि वह बड़ा होकर ऋषि बन जाएगा। मेरा पुत्र बड़ा होकर राजा ही बनेगा। क्या उसे अधिक श्रेष्ठ नहीं होना चाहिए?'

'किंतु ब्राह्मण में भी असाधारण गुण होने चाहिए।'

'ब्राह्मण, केवल अपने परिवार का भरण-पोषण करता है जबकि राजा के कंधों पर पूरे राज्य का भाग्य टिका होता है। किसकी जिम्मेदारी अधिक बड़ी है?'

इस प्रकार रानी तर्क करती और अपनी पुत्री पर दबाव डालती रही। जब तक ऋचीक लौटकर आए, तब तक पात्रों की अदला-बदली हो चुकी थी तथा उनमें भरे चावल उनकी खा लिए गए थे। यह देखकर ऋषि गुस्से से तिलमिला उठे।

'यह तुमने क्या किया, सत्यवती?'

'मेरी माँ ने सही तो कहा था। शासक को विलक्षण होना ही चाहिए।'

'मैंने इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर चावल अभिमंत्रित किए थे। तुम्हारी माता को देने वाला पात्र धातु का बना था क्योंकि उसमें रखे चावल क्षत्रिय के लिए थे ताकि वह, रजस् गुण से युक्त एक वीर राजा को जन्म दे सके। तुम्हारा पात्र मिट्टी का था क्योंकि वह एक ब्राह्मण और प्रबुद्ध आत्मा को जन्म देने के उद्देश्य से सत् गुण से भरा गया था। किंतु तुमने पात्रों की अदला-बदली कर दी जिसका परिणाम भी अब उल्टा ही होगा।'

सत्यवती का दिल बैठ गया। उसने क्षमा याचना की और अपने पति से कोई उपाय करने की विनती की परंतु ऋचीक ने सिर हिला दिया।

'तुम्हारी माँ का पुत्र शासन तो करेगा किंतु अंततः ऋषि बन जाएगा। इसे बदला नहीं जा सकता। मैं अपनी संतान के संदर्भ में केवल इतना कर सकता हूँ कि इसका प्रभाव एक पीढ़ी के बाद होगा। इसलिए हमारा पुत्र तो मेरी इच्छानुरूप ब्राह्मण ही होगा किंतु हमारे पुत्र का पुत्र विकट योद्धा बनेगा।'

ऋचीक ने ऊपर देखते हुए कहा, 'राजा के घर में ब्राह्मण और ऋषि के घर में क्षत्रिय पैदा

होगा। देवता, यह कैसी योजना बना रहे हैं?'

समय आने पर रानी ने कौशिक को जन्म दिया जबकि सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि का जन्म हुआ। ब्रह्मांड अब यह प्रतीक्षा कर रहा था कि वह योद्धा कौन होगा!

58

विश्वामित्र का वसिष्ठ पर आक्रमण



कौशिक जल्द ही एक योग्य राजा बन गया। शत्रु उससे डरते थे और प्रजा उसका आदर करती थी। किंतु उसके माता-पिता भयभीत थे। उसके संदर्भ में ऋचीक की भविष्यवाणी अब भी उनके दिल में खंजर की तरह दबी हुई थी।

वह शासन तो करेगा किंतु अंततः ऋषि बन जाएगा...

कौशिक को शिकार का बहुत शौक था। वह प्राय: अपने सैनिकों के साथ जंगलों में घूमता था। एक शाम वह अपने थके-मांदे सैन्य-दल के साथ मुनि वसिष्ठ के आश्रम में पहुँच गया। राजा को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि सीमित संसाधनों के बावजूद वसिष्ठ ने उनका भव्य स्वागत-सत्कार किया। उन्हें पीने को ऐसा पेय दिया जो राजा ने पहले कभी नहीं चखा था और ऐसा भोजन परोसा जो शाही रसोई के भोजन से भी श्रेष्ठ था। अंत में, ऋषि ने राजा को वस्त्र और धन भी भेंट किया। कौशिक अपनी जिज्ञासा रोक नहीं पाया।

'ऋषिवर, मैंने ऐसे उपहार आज से पहले नहीं देखे। आपके पास यहाँ ऐसा कौन-सा खज़ाना है जिसे देखकर बड़े -बड़े शासक भी लज्जित हो जाते हैं?'

वसिष्ठ ने मुस्कुरा कर संकेत किया। 'मेरा खजाना वहाँ है।'

कौशिक ने पलटकर देखा। वहाँ एक पशु खड़ा था। श्वेत वर्ण। गुलाबी थन। सौम्य आँखें और सुडौल सींग।

'गाय?'

'यह कोई साधारण गाय नहीं है। आपके सामने कामधेनु खड़ी हैं।'

राजा की आँखें फैल गईं।

कामधेनु...

गौ माता...

प्रत्येक मनोकामना पूर्ण करने वाली दिव्य गाय...

राजा स्तब्ध खड़ा देख रहा था। उसके चेहरे पर लालच और ईर्ष्या झलक रही थी। गाय के पास पहुँचकर कौशिक ने उसे कातर भाव से स्पर्श किया। राजा का दिल धड़क रहा था। उसके मन में बार-बार यही बात उठ रही थी।

यह मुझे चाहिए...

कौशिक ने एक बार फिर वसिष्ठ को संबोधित किया किंतु इस बार उसका स्वर बदला हुआ था।

'आप ब्राह्मण हैं और आपकी आवश्यकताएँ बहुत सीमित हैं। यह चमत्कारी पशु आपके किस काम का? इसे मुझे दे दीजिए। मैं इसकी सहायता से अपना और अपनी प्रजा का भरण-पोषण करूँगा।'

ऋषि ने सिर हिला दिया। 'मैं इसे भौतिक लाभ के लिए नहीं अपितु आध्यात्मिक लाभ के लिए अपने पास रखता हूँ। कामधेनु, देवताओं तथा मृतकों की आत्माओं का पवित्र उद्देश्य पूर्ण करती है। यह हमारे संस्कारों और रीति-रिवाजों के लिए महत्त्वपूर्ण है।'

'आप मुझे मना कर रहे हैं? मैं यहाँ का राजा हूँ।'

'ऐसा इसलिए क्योंकि मैं उन श्रेष्ठ शक्तियों के प्रति उत्तरदायी हूँ जिन्होंने आपको राजा बनाया है।'

दुर्भाग्य से, कौशिक ने वसिष्ठ की बात को अनसुना कर दिया। उसके भीतर का शिकारी जाग चुका था और वह शिकार के बिना लौटना नहीं चाहता था। उसने वसिष्ठ को अनमोल सिक्के और रत्न देने का प्रलोभन दिया किंतु ऋषि ने मना कर दिया। राजा ने एक हजार गाय देने का प्रस्ताव किया किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। उसने घोड़ों और हाथियों को भी सूची में जोड़ दिया किंतु वसिष्ठ ने सब कुछ अस्वीकार कर दिया। क्रोध में भरे कौशिक ने अपने सैनिकों को कामधेनु को पकड़ लेने का आदेश दिया। वे जैसे ही आगे बढ़े, गाय का रूप बदलने लगा। उसकी आँखें अंगार बन गईं। सींग और खुर बड़े हो गए। दूध से भरे उसके थनों में जैसे खून उतर आया था। राजा भयभीत खड़ा यह दृश्य देख रहा था कि तभी कामधेनु के रोम-रोम से योद्धा प्रकट होने लगे जिन्होंने राजा के सैनिकों को मार डाला।

कौशिक खुद को बचाने के लिए वहाँ से भागा और जंगल में एक तालाब के किनारे पर गिर पड़ा। पानी में उसे शाही तलवार का बिम्ब दिखाई दिया जो धीमे स्वर में बोल रहा था।

यह वो शक्ति है जिसने ब्रह्मांड के जादू के आगे घुटने टेक दिए...

उसके गले में पड़े मोती उससे कह रहे थे।

यह वो संपत्ति है जिसने वसिष्ठ के चिथड़ों के आगे घुटने टेक दिए...

जल में उसका अपना चेहरा फुसफुसा रहा था।

यह वो राजा है जिसने एक तपस्वी के पराक्रम के आगे घुटने टेक दिए...

कौशिक ने सब कुछ उतार फेंका। उसने हथेली को काटते हुए प्रण किया। 'मैं, कौशिक, अपने राज्य का त्याग करके ऋषि बनने जा रहा हूँ। मैं अब से क्षत्रिय नहीं, अपितु ब्राह्मण हूँ। मैं वसिष्ठ से श्रेष्ठ बनने का प्रयास करूँगा। उस व्यक्ति से श्रेष्ठ बनने का, जिसने आज मुझे परास्त किया है।'

उसने ध्यान करने के लिए आँखें बंद कर लीं। उसकी कटी हथेली में खून जम गया था। कौशिक ने आँखें खोलीं तो एक हजार वर्ष बीत चुके थे। खून, पानी में बदल चुका था। वह अब कौशिक नहीं था। ऋचीक की बात सच हो गई थी।

राजा कौशिक, ऋषि विश्वामित्र बन चुका था।

तपस्या से प्राप्त हुई आध्यात्मिक शक्ति का उपयोग करके वसिष्ठ से प्रतिशोध लेने ऋषि विश्वामित्र, तुरंत सरस्वती नदी के तट पर पहुँचे जहाँ वसिष्ठ का आश्रम था। नदी के दूसरी ओर ऋषि की तरफ देखते हुए, विश्वामित्र ने नदी को आदेश दिया, 'वसिष्ठ को मेरे पास लेकर आओ ताकि मैं उससे प्रतिशोध ले सकूं। अपनी धारा का उपयोग करके उसे मेरे पास लाओ।'

परंतु सरस्वती ने ऐसा करने से मना कर दिया तो विश्वामित्र ने नदी को डराना शुरू कर दिया। उनके क्रोध से भयभीत नदी, वसिष्ठ के सामने रोने लगी और उसने वसिष्ठ को सारी बात सुना दी। वसिष्ठ मुस्कुरा दिए।

'ऐसा प्रतीत होता है कि वे, विश्वामित्र से अधिक कौशिक बनकर ही रहना चाहते हैं,' उन्होंने कहा। 'मैं तुम्हारी धारा के साथ चलूँगा। मुझे विश्वामित्र के पास ले चलो।'

विश्वामित्र ने जैसे ही वसिष्ठ को अपनी ओर आते देखा वे उन्हें मारने के लिए अस्त्र तलाश करने लगे। सरस्वती को डर लग रहा था। उस पर यह भयानक अहसास हावी हो गया कि वह एक ब्राह्मण की हत्या में सहायक बनने वाली थी। सरस्वती तेजी से मुड़ी और वसिष्ठ को फिर से सुरक्षित स्थान पर ले गई। कामधेनु गाय की तरह, नदी ने भी विश्वामित्र की योजना को विफल कर दिया। तब विश्वामित्र ने सरस्वती शाप दिया।

'तुम्हारी धारा अब केवल दैत्यों और दानवों का पोषण करेगी।'

विश्वामित्र के ऐसा कहते ही सरस्वती लाल हो गई। उसका जल में रक्त के बुलबुले उठने लगे जिसके चलते वह इंसानों और पशुओं के उपयोग हेतु तथा संस्कार एवं कर्मकांड के लिए अयोग्य हो गई। नदी के जल में महामारी फैल गई तो लोगों ने उसके तट पर रहना छोड़ दिया। नदी के तट पर लगे पेड़ मर गए और मछलियाँ सतह पर तैरने लगीं। केवल दैत्य, उस कीचड़ को पीकर और उसमें स्नान करके फलते-फूलते थे। इस प्रकार, एक वर्ष तक नदी बहिष्कृत रही। वह ब्रह्मांड के चेहरे पर घाव के समान था जिससे खून रिसना बंद नहीं होता

था। अंत में, वसिष्ठ ने सरस्वती के स्रोत तक यात्रा की और उसे फिर से शुद्ध किया। रक्त बहना बंद हो गया और उसमें से एक नई धारा का जन्म हुआ।

अरुण, जिसका वर्ण लाल था।

59
त्रिशंकु आकाश से गिरा



सूर्यवंशी परिवार के वृक्ष के एक स्वास्थ्यप्रद फल का नाम त्रयरुणी था। वह अयोध्या का शासक बनकर लगातार प्रयास करता रहा ताकि उसकी प्रजा भी उसका अनुसरण करे। दुर्भाग्य से, उसका पुत्र सत्यव्रत, अपने नाम को अपमानित करता था क्योंकि वह न सत्य बोलता था और न उसे धार्मिकता का अर्थ पता था। त्रयरुणी ने वसिष्ठ को अपना राजपुरोहित नियुक्त किया। उधर ऋषि देख रहे थे कि सत्यव्रत के दोष बढ़ते जा रहे थे। उसे खरपतवार की भांति उखाड़ फेंकने का समय आ गया था।

'आप चाहते हैं कि मैं राजकुमार को निर्वासित कर दूँ?' त्रयरुणी ने गहन स्वर में कहा। 'विधिपूर्वक वही तो मेरा उत्तराधिकारी है?'

'मैं आपकी पीड़ा समझता हूँ,' वसिष्ठ ने उसे शांत करते हुए कहा। 'किंतु कोई अंग सड़ जाए तो उसे काट देना चाहिए। सभी लक्षण इस ओर संकेत कर रहे हैं कि सत्यव्रत, अत्यंत लापरवाह राजा सिद्ध होगा।'

'किंतु वह मेरा पुत्र है। वही मेरी मृत्यु के बाद मुझे नरक में जाने से बचाएगा।'

'अपनी प्रजा को पीड़ित होते देखने से अच्छा है कि आप स्वयं नरक में जाएँ। महाराज, आप दोनों में किस विकल्प को चुनेंगे?'

त्रयरुणी ने बात मान ली और फिर सत्यव्रत अयोध्या के बाहर चांडालों के साथ रहने लगा। चांडाल, इनसानी शवों का निपटान करने वाला सर्वथा निम्न सामाजिक प्राणी माना जाता था। वह जलती चिताओं के पास सोता था। मृतकों को मोक्ष प्राप्त करते देखता था। एक दिन अचानक राज्य में कोहराम मच गया। पता लगा कि अपने पुत्र के शोक में राजा की मृत्यु हो गई। राजा के बिना, राज्य अशुभ हो गया था। धरती बंजर हो गई और राज्य में अकाल पड़ गया। बारह वर्ष का दुर्भिक्ष। सत्यव्रत मौन रहकर सब देखता रहा। कोई चीज मानो उसे अंदर से कचोट रही थी। अपने राज्य की भूमि और प्रजा को नष्ट करने के लिए

उसकी निंदा हो रही थी। आत्म-घृणा से भरा सत्यव्रत, एक दिन बाजार से गुजरा तो उसे किसी की चीख सुनाई पड़ी।

'भोजन के बदले मेरा पुत्र! मेरे पुत्र को ले जाओ, बदले में कुछ खाने को दे दो!'

एक महिला ने भोजन के बदले अपने पुत्र के गले में रस्सी बाँध रखी थी। राजकुमार ने ऐसा दृश्य पहले कभी नहीं देखा था। उसने सोचा क्या प्रेम, इतनी सहजता से भूख के सामने हार जाता है। क्या पेट, दिल पर हावी हो सकता है?

'तुम अपने ही पुत्र को कैसे बेच सकती हो?' सत्यव्रत ने उसके हाथ से रस्सी खींच ली।

'उसी तरह, जैसे आपके पिता ने आपको निर्वासित कर दिया था,' उसने जवाब दिया। 'हम इनसानों के पास प्रायः चुनने का विकल्प नहीं होता। मेरे पति बाहर गए हैं और मेरे कई पुत्र हैं जिनका मुझे पालन-पोषण करना है। मेरा आकलन करने से पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए। क्या आप हमारी भूख का ख्याल रखेंगे?'

सत्यव्रत ने अपने हाथ से फंदा तोड़ दिया। 'हाँ, रखूँगा।'

सत्यव्रत ने वचन तो दे दिया पर उस शुष्क भूमि पर उसे भोजन कहाँ मिलता? पृथ्वी की पीठ पर पपड़ी के सिवा कुछ नहीं बचा था। अचानक सत्यव्रत को याद आया कि वसिष्ठ के पास बड़ी संख्या में गाएँ हैं। चूँकि वसिष्ठ ने सत्यव्रत को राज्य से निर्वासित करवाया था इसलिए उसका मत था कि अयोध्या के दुखों के लिए आंशिक रूप से वसिष्ठ भी जिम्मेदार थे। सत्यव्रत ने वसिष्ठ के खलिहान पर धावा बोलकर वहाँ से एक गाय चुरा ली। कुछ ही देर में उसकी कुल्हाड़ी गाय की गर्दन पर थी। कुल्हाड़ी की धातु पूछ रही थी कि क्या उसे ऐसे प्राणी का सिर काटना चाहिए जिसकी पूजा सारा ब्रह्मांड करता है।

कुल्हाड़ी ने वार कर दिया।

राजकुमार ने थोड़ा माँस स्वयं खाया और बचा हुआ स्त्री के परिवार के लिए बाँध दिया। वह ज्यों ही उसके द्वार पर पहुँचा, उसने वसिष्ठ को आते देखा।

सत्यव्रत हँस पड़ा। 'ऋषिवर, मेरे निकट आइए। देखिए, मेरी श्वास से गाय के माँस की गंध आ रही है। आप निश्चय ही मुझे शाप देने आए हैं।'

'हाँ, मैं इसीलिए आया हूँ।'

'तो आगे बढ़िए। मुझे कोई पछतावा नहीं है क्योंकि शरीर का पोषण करने के उपरांत ही आत्मा का पोषण संभव है। मैंने प्रकृति के नियम का पालन किया है। किसी को जीना है तो किसी को मरना पड़ेगा। मैंने बहुत-से लोगों को बचाने के लिए एक प्राणी को मारा है परंतु आपकी दृष्टि में मैंने पाप किया है।'

'हाँ, सत्यव्रत तुमने पाप किया है,' ऋषि ने पुष्टि की। 'तुम शास्त्र को उलट रहे हो और तुम्हारी आत्मा पर तीन अपराधों का भार है।'

‘तीन?’

‘तुमने गाय चुराई और उसे मार डाला। तुमने उसका माँस खाया। और यह अधर्मी कृत्य करके तुमने अपने पिता और पूर्वजों को कुपित किया है।’

राजकुमार चुप खड़ा रहा। वसिष्ठ ने तीन अंगुलियाँ आगे कीं।

‘तीन पाप, सत्यव्रत। इसलिए अब से तुम त्रिशंकु कहलाओगे। और तुम्हें विश्राम करने के लिए तीनों लोकों में कहीं जगह नहीं मिलेगी।’

ऋषि के जाने के बाद त्रिशंकु के हाथों में गाय का माँस देखकर स्त्री सिहर उठी। तभी उसका पति आ गया और उसने डरे हुए स्वर में सब वृत्तांत कह सुनाया। किंतु वह व्यक्ति आश्चर्य से राजकुमार को देखता रहा।

‘तुमने मेरे परिवार को जीवित रखने के लिए स्वयं को संकट में डाला। तुम्हारी यह मंशा तुम्हें यश दिलाने के लिए पर्याप्त है। तुम्हें किसने शाप दिया है?’

‘ऋषि वसिष्ठ ने।’

‘वसिष्ठ?’ उस व्यक्ति ने भौहें चढ़ा लीं। उसने गुस्से से भरकर वह नाम लिया था। उसने त्रिशंकु के सिर को स्पर्श किया।

‘मैं वसिष्ठ के शाप को काट नहीं कर सकता किंतु तुम्हें वरदान अवश्य दे सकता हूँ। तुम मुझसे कुछ भी माँग लो। कुछ भी।’

‘मैं बूढ़ा होने पर स्वर्ग जाना चाहता हूँ। और मुझे अपने नश्वर शरीर के साथ स्वर्ग जाना है।’

‘ऐसा क्यों?’

‘मैंने चांडालों के साथ रहकर देखा है कि मृत्यु के बाद मानव शरीर का क्या होता है। मुझे अपने लिए यह स्वीकार्य नहीं है इसलिए मैं अपने शरीर को साथ लेकर मृत्यु के पार जाना चाहता हूँ।’

व्यक्ति ने सिर हिलाया। ‘जैसा तुम चाहोगे, वैसा ही होगा।’

राजकुमार ने हाथ जोड़ लिए। ‘हे पावन पुरुष, आपका नाम क्या है?’

‘विश्वामित्र।’

अनेक वर्ष बाद, त्रिशंकु का पुत्र हरिश्चंद्र, अयोध्या का राजा बना। तब त्रिशंकु ने ऋषि विश्वामित्र से वरदान पूरा करने का अनुरोध किया। विश्वामित्र ने यज्ञ शुरू कर दिया और जल्द ही त्रिशंकु अपने भौतिक शरीर के साथ स्वर्ग की ओर प्रस्थान करने लगा। वह बादलों को चीर कर सूर्य और चंद्र से भी ऊँचा उठ गया था। देवता घबरा गए। उनके लोक की दीवारें इससे पहले कभी इतनी झिरझिरी नहीं हुई थीं। किसी मनुष्य ने सशरीर स्वर्ग लोक में कभी प्रवेश नहीं किया था। दोनों पुरुष, लौकिक नियम का उल्लंघन कर रहे थे। देवराज इंद्र,

रोष में भरकर चिल्लाए।

'यह कैसी अराजकता है? केवल धार्मिक आत्मा ही स्वर्ग में प्रवेश कर करता है, नश्वर शरीर को ऐसा करने की अनुमति नहीं है। और निश्चित रूप से त्रिशंकु जैसे व्यक्ति को तो कदापि नहीं, जिसने तीन बार पाप किया हो। यदि मनुष्य ऐसा करने लगेंगे तो हम राक्षसों को स्वर्ग लोक पर आक्रमण करने से कैसे रोकेंगे? आप ऋषि हैं और इस नाते आपको ब्रह्मांड के नियमों का उल्लंघन नहीं अपितु उनका पालन करना चाहिए।'

विश्वामित्र हँसने लगे। 'और आप देवतागण सबको इन उच्चतम लोकों से दूर रखते हैं।'

तभी देवराज ने इशारा किया। 'वहाँ देखो। ब्रह्मांड के उच्चतम शिखर पर बालक ध्रुव, तारा बनकर टिमटिमा रहा है। उसे स्वयं श्रीहरि ने वह स्थान प्रदान किया था। यदि आप योग्य हैं तो कोई आपको उच्च स्थान से दूर नहीं रख सकता, किंतु आप जो कर रहे हैं, वह सर्वथा अनुचित है। आप स्वयं को वसिष्ठ से श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं। आप तुरंत रुक जाइए अन्यथा त्रिशंकु, आकाश से उसी तरह नीचे गिरेगा जिस तरह उसके पितामह सूर्य एक बार नीचे गिरे थे।'

किंतु विश्वामित्र ने यज्ञ जारी रखा। उस यज्ञ की अद्भुत शक्ति के आनंद में डूबे विश्वामित्र, मानो शेष सब बातों से अनभिज्ञ थे। त्रिशंकु अब स्वर्ग लोक के द्वार के निकट पहुँच चुका था। देवता, दहलीज पर इकट्ठे होकर त्रिशंकु को वापस पीछे धकेलने लगे। मानवीय इच्छा, घुसपैठ की चेष्टा कर रही थी और दैवीय इच्छा उसका विरोध कर रही थी। त्रिशंकु के साथ धक्का-मुक्की होने लगी। स्वर्ग के द्वार को पार करने की कोशिश में त्रिशंकु इधर से उधर उछल रहा था। समूचा ब्रह्मांड वह दृश्य देख रहा था जो पहले किसी ने नहीं देखा था। एक पुरुष, स्वर्ग में छिद्र करने का संकल्प लेकर आगे बढ़ रहा था। किंतु देवता भी प्रबल थे। उन्होंने विश्वामित्र के हर मंत्र को विफल कर दिया। फिर सबने मिलकर अंतिम धक्का लगाया और त्रिशंकु वापस पृथ्वी की ओर गिरने लगा।

'ऋषिवर, मुझे बचाइए!' वह चिल्लाया।

वह तेजी से नीचे गिर रहा था।

'मुझे बचाइए!'

त्रिशंकु पुन: गुरुत्वाकर्षण के शिकंजे में फँस गया।

'कुछ कीजिए!'

मानो उसके पंख पिघल रहे थे।

'मेरी सहायता कीजिए!'

अचानक, वह बीच में रुक गया। धरती और आकाश के मुहाने पर। विश्वामित्र ने एक शक्तिशाली मंत्र का उच्चारण करके त्रिशंकु को उसी जगह पर रोक दिया। देवता अब भी यही कह रहे थे कि कोई प्रकृति के नियमों के साथ खिलवाड़ नहीं कर सकता और विश्वामित्र का भी यही कहना था कि वे केवल अपना वचन पूरा कर रहे थे। आखिर इंद्र ने जब विश्वामित्र को रोक दिया तो उन्होंने त्रिशंकु के लिए एक समानांतर स्वर्ग लोक का निर्माण करना आरंभ कर दिया। फिर उनके बीच एक समझौता हुआ।

'त्रिशंकु जहाँ है, वहीं रहेगा,' देवराज ने अनुमति देते हुए कहा। 'किंतु वह उल्टा लटका रहेगा।'

और इस तरह त्रिशंकु लटका रह गया। स्वर्ग और पृथ्वी के बीच अधर में!

60
हरिश्चंद्र का वरुण से छल



राजा हरिश्चंद्र का नाम अब पूरे ब्रह्मांड में गूँज रहा था। त्रिशंकु के पुत्र की प्रशंसा, उसके कुल या आकर्षण के लिए नहीं हो रही थी। उसकी प्रशंसा, पराक्रम और धन के लिए भी नहीं हो रही थी। ब्रह्मांड को हरिश्चंद्र इसलिए पसंद था क्योंकि वह अपने कहे हर शब्द का सम्मान करता था।

हरिश्चंद्र ने घोषणा की, 'सबसे शुद्ध कृत्य यह है कि व्यक्ति अपने प्राण त्याग दे किंतु अपने वचन से कभी पीछे न हटे।'

परंतु राजा हरिश्चंद्र दुखी रहता था। उसका विवाह तारामती नाम की एक सुंदर कन्या से हुआ था किंतु उनका कोई पुत्र नहीं था। उनके उपदेशों को ग्रहण करने वाला अथवा राजसिंहासन का उत्तराधिकारी कोई नहीं था। इसलिए, एक दिन जब नारद वहाँ आए तो हरिश्चंद्र की आँखों से अश्रुधारा बह निकली।

'ऐसा कहते हैं कि पिता अपने पुत्र के रूप में पुनर्नवा हो जाता है, किंतु मेरे परिवार के वृक्ष पर कोई फल नहीं लगता। क्या इस सूर्यवंश पर सदा के लिए ग्रहण लग जाएगा?'

'महाराज, आपको संभवतः इस वृक्ष को सींचने की आवश्यकता है। आप वरुणदेव से प्रार्थना कीजिए।'

हरिश्चंद्र ने वरुण मंत्र का जाप आरंभ कर दिया। सोते-जागते वह मंत्र जपता रहता था।

आइए हम जल के प्रतिबिम्ब का ध्यान करें...

हे नीले समुद्र के देवता...

एक दिन ज्वार आया और वरुण देव प्रकट हुए।

'मुझे पता है कि तुम इसलिए दुखी हो क्योंकि तुम्हारा कोई पुत्र नहीं है,' उन्होंने कहा। 'यदि तुम मेरी एक शर्त स्वीकार कर लो तो तुम्हें जल्द ही पुत्र प्राप्त हो जाएगा।'

‘कुछ भी माँगिए। आप जो चाहें।’

‘पुत्र का जन्म होते ही तुम्हें मेरे नाम पर उसकी बलि चढ़ानी होगी।’

‘बलि...’ हरिश्चन्द्र का गला भर आया। ‘बलि चढ़ाना? मैं समझा नहीं।’

‘यही मेरे माँग है।’

‘किंतु आपने जो दिया है, उसे आप छीनना क्यों चाहते हैं?’

‘तुम्हें शर्त स्वीकार है या नहीं?’

राजा ने वरुणदेव को आश्चर्य से देखा। नारद ने कहा था कि वरुणदेव का जल, हरिश्चंद्र की आशाओं का पोषण करेगा परंतु इसके बजाय वह राजा की उम्मीदों को बहा ले गया था। क्षण-भर के लिए भी पिता बनने की संभावना ने हरिश्चंद्र को आनंद से भर दिया। उसने सोचा कि वह एक पल का आनंद उसके जीवन-भर का सहारा बन जाएगा इसलिए हरिश्चंद्र ने हामी भर दी।

‘मुझे पता है कि तुम अपने वचन का मान रखोगे,’ वरुण देव ने मुस्कुराते हुए कहा और फिर अंतर्धान हो गए।

कालांतर में तारामती ने एक पुत्र को जन्म दिया। राजा ने जैसे ही बालक को बाँहों में लिया, उसे लगा जैसे वह उस बालक के साथ किसी अदृश्य सूत्र के बँध गया था। वह शिशु हरिश्चन्द्र से कह रहा था कि वे दोनों अब सदा के लिए बँध चुके हैं और यदि किसी ने वह डोरी काटी तो वह मर जाएगा।

किंतु मेरा वचन...

हरिश्चन्द्र ने अपने पुत्र को सुला दिया।

किंतु मेरा पुत्र...

वह बालक का पालना झूला रहा था।

मेरा पुत्र...

पालने की गति तेज हो रही थी।

मेरा पुत्र...

‘तुम्हारा पुत्र,’ उसने पीछे से वरुण की आवाज़ सुनी। ‘उसकी बलि देने का समय आ गया है।’

राजा धीरे से मुड़ा। एक विचार ने अब उसका हाथ रोक लिया था।

‘क्या शास्त्र यह नहीं कहते कि नवजात शिशु, दस दिन तक अशुद्ध होता है? क्या आप चाहते हैं कि मैं इसी समय उसकी बलि देकर यज्ञ को अपवित्र कर दूँ?’

जल के देवता मान गए। दस दिन बाद, वह फिर से वापस आए।

‘मैंने सुना है कि तुमने अपने पुत्र का नाम रोहित रखा है। अब उसकी बलि देने का समय

आ गया है।'

'किंतु रोहित के अभी तक दाँत भी नहीं निकले!' हरिश्चंद्र ने शिशु का जबड़ा खोलकर दिखाया। 'किसी जीवित प्राणी को देवताओं को तभी अर्पित किया जा सकता है जब उसके मुँह में दाँत हों। कृपया कुछ समय और रुक जाइए।'

वरुण देव चले गए। राजकुमार रोहित छह वर्ष का हुआ तो वे फिर लौट आए।

'किंतु ये तो दूध के दाँत हैं,' राजा ने तर्क दिया। 'उसके पक्के दाँत आने दीजिए।'

वरुण देव कुछ वर्ष बाद फिर वापस आए किंतु हरिश्चंद्र तब भी टालमटोल करता रहा।

'आप एक क्षत्रिय पुत्र को माँग रहे हैं। रोहित जब तक युद्ध-कौशल नहीं सीख लेता, वह अपूर्ण रहेगा। क्या आप अपूर्ण भेंट से प्रसन्न होंगे? उसे युद्ध कौशल का अध्ययन कर लेने दीजिए।'

कई वर्ष बाद जब वरुणदेव फिर लौटे, तो उन्हें राजकुमार रोहित नहीं दिखा। रोहित को जल देवता की मंशा का पता लग चुका था इसलिए वह जंगल में भाग गया। वह महीनों तक घूमता रहा। फिर रोहित को ऋषि अजिगर्त मिले, जो अपनी पत्नी और तीन पुत्रों के साथ वन में रहते थे। उसने जब देखा कि ऋषि परिवार के भूखों मरने की स्थिति हो चुकी थी तो राजकुमार के मन में अचानक एक विचार आया। एक कुटिल विचार।

रोहित ने ऋषि से कहा, 'मुझे बलि के लिए एक लड़का चाहिए। क्या आप अपना एक पुत्र मुझे बेचेंगे?'

राजकुमार प्रतीक्षा करता रहा। उसे लगा कि अजिगर्त इस जघन्य प्रस्ताव के लिए उसे शाप देंगे। परंतु ऋषि मौन खड़े रहे। वे रोहित की बातों पर विचार करने लगे। उन्होंने अपने परिवार से बातचीत की। रोहित ने गहरी श्वास छोड़ी।

उन्हें लग रहा है कि मैं उनके प्राण बचा रहा हूँ...

काश, उन्हें पता होता कि मैं अपने प्राणों की रक्षा कर रहा हूँ...

रोहित देख रहा था कि जीवित रहने की इच्छा मनुष्य से क्या-क्या करवाती है। उसी इच्छा के चलते रोहित ने अपने माता-पिता तक का त्याग कर दिया था। उसी इच्छा के कारण यह ऋषि परिवार विचार कर रहा था कि उन तीन पुत्रों में से किसके बिना उनका काम चल सकता है।

'मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र शुन:पुच्छ को नहीं बेचूँगा,' अजिगर्त ने कहा।

फिर ऋषि पत्नी बोली, 'मैं अपने सबसे छोटे पुत्र शुन:लंगुल को नहीं बेचूँगी।'

वे सब चुप हो गए। फैसला हो चुका था। अनकहा। अविचल।

'फिर तो मैं मँझला पुत्र ही शेष रह गया।'

'तुम्हारा नाम क्या है?' रोहित ने लड़के से पूछा।

‘शुन:क्षेप।’

जल्द ही, अयोध्या के लोगों ने देखा कि राजकुमार घर लौट आया था। सब उसे देखने के लिए एकत्रित हुए। उसके ठीक पीछे अजिगर्त और शुन:क्षेप चल रहे थे। जैसे ही रोहित अपने पिता की ओर बढ़ा, वरुणदेव ने उसका मार्ग रोक दिया।

‘बहुत हुआ! मैं तुम्हें लेने आया हूँ।’

‘हे देव! मेरे पास एक विकल्प है। यह बालक मेरी जगह लेने को तैयार है।’

‘मैं इसे स्वीकार नहीं करूँगा।’

‘वह ब्राह्मण हो, तो भी नहीं?’

सब लोग स्तब्ध रह गए। जल देवता के चेहरे पर लहरें उठ रही थीं।

‘ब्राह्मण?’

‘शुन:क्षेप।’ राजकुमार ने इशारा किया। ‘ऋषि अजिगर्त का पुत्र।’

वरुण देव मान गए। चार पुरोहितों को आमंत्रित किया गया और बलि की रस्म आरंभ हो गई। शुन:क्षेप का सिर कातने के उपरांत उसे सँभालकर रखने के लिए पानी का पात्र भी मँगवाया गया था। परंतु जब बलि का समय हुआ तो याजकों ने शुन:क्षेप को बलि-स्तंभ से बाँधने से मना कर दिया।

‘यह ब्राह्मण-पुत्र है। हमें पाप लगेगा और हमारे हाथ सड़ कर गिर जाएँगे,’ उन्होंने एक स्वर में कहा।

‘मैं यह कार्य करूँगा।’

यह अजिगर्त की आवाज़ थी। सभा चकित थी किंतु ऋषि अजिगर्त, राजकुमार को देख रहे थे।

‘यदि आप मुझे अपने वचन से दोगुना अधिक धन दें तो मैं यह काम कर दूँगा।’

रोहित ने हामी भर दी और पिता ने अपने पुत्र को स्तंभ से बाँध दिया। किंतु तलवार कौन चलाएगा? जो लोग बालक को बाँधने से तक डर रहे थे, वे उसका रक्त कैसे बहाते? ऋषि अजिगर्त फिर आगे आए।

‘धन की राशि को तीन गुना कर दो। मैं अपने पुत्र का सिर काट दूँगा।’

राजकुमार ने सिर हिलाया। हरिश्चंद्र काँप उठा।

‘ऋषिवर, क्या आपसे यह हो पाएगा?’

‘महाराज, जैसे आप अपने पुत्र को बचा रहे हैं, उसी तरह मैं भी अपने शेष पुत्रों को बचाने का प्रयास कर रहा हूँ।’

जैसे ही अजिगर्त की अंगुलियों ने तलवार की मूठ को पकड़ा, लोग डर के मारे इधर-उधर देखने लगे। एक ब्राह्मण, दूसरे ब्राह्मण को मारने जा रहा था। एक पिता, अपने पुत्र की बलि

देने वाला था। ऐसी राक्षसी घटना क्यों हो रही थी और इसका प्रभाव क्या होगा? भीड़ ने आँखें बंद कर लीं। लोगों को डर था कि इस घोर कृत्य को यदि उन्होंने देख भी लिया तो उन्हें दंड में नरक जाना पड़ सकता है। शुन:क्षेप तलवार उठते देख रहा था। तलवार की छाया उसके चेहरे पर मँडराने लगी। उसने सूर्य से मौन विनती की।

तत सवितुर वृणिमाहे वयं देवस्य भोजनम्...

सहसा, तलवार टूट गई। शुन:क्षेप के बंधन खुल गए। सूर्य के प्रकाश ने जल-पात्र को झुलसा दिया था। उसी समय आकाशवाणी हुई।

'धिक्कार है, हरिश्चन्द्र! देखो तुमने क्या किया है। तुमने अपने पुत्र की बलि देने से मना कर दिया और अब किसी अन्य पिता को अपने पुत्र को मारना पड़ रहा है। अपने वचन का मान न रखकर तुमने शून्य की स्थिति उत्पन्न कर दी है जिसे अब ब्रह्मांड भर रहा है। वह तुम्हारे द्वारा बनाई दरार को बंद कर रहा है। वह अजिगर्त नहीं है, जो इस बालक का सिर काट रहा है। वह रोहित भी नहीं है। वह तुम हो! इसके खून की गंध तुम्हारे हाथों से आएगी।'

राजा घुटनों के बल गिर पड़ा। वह जोर-जोर से रोने लगा। वरुण देव आगे बढ़े।

'किसी को मारने की आवश्यकता नहीं है। मैं अपनी माँग वापस लेता हूँ। किसी की बलि नहीं दी जाएगी।'

चार याजकों में से एक उठकर शुन:क्षेप के पास गया और उसने अपना हाथ बालक के सिर पर हाथ रखा।

'तुम अनमोल हो। तुम्हें ऐसे पिता की आवश्यकता है जो तुम्हारा मूल्य समझ सके। मैं तुम्हें अपने पुत्र के रूप में अपनाता हूँ।'

वे जैसे ही यज्ञ-वेदी की सीढ़ियाँ उतरे, हरिश्चंद्र चिल्लाया, 'मुझे क्षमा कर दो, पुत्र। मैं अपने ही सिद्धांत का पालन करने में विफल रहा। सूर्यदेव मुझे धिक्कार रहे हैं क्योंकि मैंने सूर्यवंश को लज्जित किया है। मेरे अंदर का पिता, मेरे भीतर के शासक पर हावी हो गया था किंतु ऐसा फिर कभी नहीं होगा।'

पुरोहित मुड़ा।

'फिर कभी नहीं?'

'कभी नहीं। आज से मेरा हर संकल्प मुझे प्राणों से अधिक प्रिय होगा। हर वस्तु से प्रिय। मैं उसे पूरा करने के लिए कोई भी मूल्य चुकाऊँगा।'

'कोई भी मूल्य?'

'हाँ, कोई भी मूल्य।'

'देखेंगे,' पुजारी ने टिप्पणी की। 'हम देखेंगे।'

शुन:क्षेप आगे बढ़ा और उसने नए पिता को देखा।

‘हे परम पावन, आपका नाम क्या है?’
‘विश्वामित्र।’

61
हरिश्चंद्र की परीक्षा



मनुष्य के साहस को मापने में ब्रह्मांड को बहुत आनंद आता है।

अन्यथा हरिश्चंद्र क्यों एक दिन शिकार पर जाता और क्यों उसे किसी स्त्री की करुण पुकार सुनाई पड़ती? क्यों वह उस आवाज़ की दिशा में बढ़ता? क्यों उसका चेहरा, उस आवाज़ को सुनकर तनावग्रस्त होता? राजा को यह पता ही नहीं था कि विघ्नराज नाम की एक दुष्ट आत्मा, एक ऋषि को परेशान करने के लिए स्त्रैण आवाज़ें निकाल रही थी। उस दुष्टात्मा ने हरिश्चन्द्र को पास आते देखा तो वह छटपटाने लगी।

मैं अब दोनों से खेल करूँगी...

विघ्नराज, राजा हरिश्चंद्र के शरीर में प्रवेश कर गया और ध्यानस्थ ऋषि को अपशब्द कहने लगा। ऋषि ने आँखें खोलीं तो देखा कि हरिश्चंद्र खड़ा उस पर चिल्ला रहा था। ऋषि तपस्या में लीन थे किंतु उसमें विघ्न पड़ गया था। अचानक, हरिश्चंद्र का बदन ऐंठने लगा। विघ्नराज उसके शरीर से बाहर आ गया था। राजा ने खुद पर नियंत्रण पा लिया। फिर वह भयभीत होकर ऋषि को देखने लगा।

विश्वामित्र...

हरिश्चन्द्र के होश उड़ गए। उसने ऋषि से कई बार कहा कि एक दुष्ट आत्मा ने उसके शरीर पर नियंत्रण कर लिया था। वह ऋषि को समझाता रहा कि वह स्वयं नहीं, अपितु आत्मा दुष्ट है जिसने ऋषि की शांति को भंग किया। राजा ने झुककर विश्वामित्र से कई बार क्षमा याचना की परंतु विश्वामित्र पर उसके किसी शब्द का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अंत में राजा ने हाथ जोड़ लिए।

'मैं एक बार अपने पुत्र को बचाने के लिए किसी और के जीवन का बलिदान करने को तैयार हो गया था। शायद इसीलिए मैं आज किसी और के कृत्य का दोषी हो गया हूँ। मैंने

ब्रह्मांड के सामने घुटने टेक दिए हैं। हे श्रद्धेय, मैं इस कर्म से मुक्त होने के लिए क्या करूँ? आप जो कहेंगे, मैं करूँगा।'

'करोगे?' ऋषि ने उपहास किया। 'वरुणदेव शायद इस बात से सहमत न हों।'

हरिश्चंद्र ऋषि के चरणों में गिर पड़ा। 'मैं अब पहले जैसा नहीं रहा। सूर्यदेव साक्षी हैं। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आप जो माँगेंगे, मैं आपको प्रदान करूँगा। मैं वचन देता हूँ। आप क्या चाहते हैं?'

'तुम्हारा सिंहासन।'

'आज से यह आपका हुआ।'

'तुम्हारा धन।'

'आपका हुआ।'

'तुम्हारी अयोध्या।'

'आपकी हुई।'

अगले दिन सुबह जैसे ही राहु के कारण सूर्य को ग्रहण लगा, लोग राजा को विदा होते देखने के लिए एकत्रित हो गए।

'अब आप लोगों पर मेरा शासन नहीं रहा। मेरा मुकुट, अब ऋषि विश्वामित्र के चरणों में है। मैं, मेरी पत्नी तारामती और बेटा रोहित अब आप लोगों की तरह आम इनसान हैं। चूँकि यह भूमि अब हमारी नहीं है इसलिए ऋषिवर ने हमें इसे छोड़ने को कहा है। प्रार्थना करिए और हमें आशीर्वाद दीजिए कि हम शेष जीवन अपने व्रत का पालन करते हुए व्यतीत कर सकें।'

हरिश्चंद्र ने अपना पहला कदम उठाया किंतु फिर वह रुक गया। उसके तलवे के नीचे दो हाथ मुड़े हुए दिखाई दे रहे थे। नीचे एक बूढ़ा आदमी लेटा न जाने की याचना कर रहा था। राजा ने देखा कि प्रजा के लोग एक-एक करके जमीन पर लेट गए। पुरुष, महिलाएँ और बच्चे विनती कर रहे थे कि वह उन्हें छोड़कर न जाए। हरिश्चंद्र रोने लगा किंतु विश्वामित्र हँस रहे थे।

'वाह! दर्शकों को भावुक करने के लिए आँसू से बेहतर कुछ नहीं होता। अयोध्या छोड़ने का तुम्हारा कोई इरादा नहीं लगता। तुम अपनी प्रजा के सामने भावनाओं का मंचन कर रहे हो ताकि ये लोग तुम्हें रोक लें। राज्य को त्यागने का क्या लाभ जब तुम्हारा हृदय अब भी इसके प्रति आसक्त है?'

'नहीं, श्रद्धेय,' राजा ने विरोध किया। 'मैं केवल...'

'तुम पाखंडी हो! हमेशा से थे। तुम अपनी प्रजा को मेरे विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उकसा रहे हो। तुम चाहते हो कि ये लोग मुझे मार डालें ताकि तुम अपना सिंहासन पुन: प्राप्त कर लो। मैं तुम्हें शाप देता हूँ।'

ऋषि ने जैसे ही लाठी उठाई, भीड़ डर के मारे काँपने लगी। हरिश्चन्द्र ने पत्नी और पुत्र का हाथ थाम लिया।

'मैं सूर्यवंशी हूँ और मैंने आपको वचन दिया है। अयोध्या और सब लोग अब आपके हैं। हम अपना जीवन किसी अन्य जगह पर नए सिरे से शुरू करेंगे।'

वे अभी दस कदम भी नहीं बढ़े थे कि विश्वामित्र ने फिर कुछ कहा।

'ठहरो! तुमने अभी तक भुगतान नहीं किया है।'

'मैं समझा नहीं।'

'आह! फिर दिखावा कर रहे हो। तुमने अपना साम्राज्य मुझे देकर परोपकार का कार्य किया है। मैंने तुम्हारा दान स्वीकार करके तुम्हें पुण्य अर्जित करने का अधिकारी बनाया है। इसके लिए तुम्हें मुझे दक्षिणा देनी होगी।'

हरिश्चंद्र ने अपने दोनों हाथ फैला दिए। 'किंतु मेरे पास देने के लिए कुछ नहीं बचा।'

'मुझे दक्षिणा चाहिए अन्यथा मैं तुम्हारा दान स्वीकार नहीं कर सकता।'

अयोध्या देख रही थी कि उनके राजा का सिर लज्जा से झुक गया था। उनकी रानी रो रही थी। हरिश्चंद्र बोले।

'कृपया मुझे कुछ दिन का समय दीजिए।'

'एक महीना। तीस दिन पूरा होने पर दक्षिणा देनी होगी अन्यथा तुम्हारे हाथों सूर्यवंश कलंकित हो जाएगा।'

सहसा आकाश में पाँच बार बिजली चमकी जिसके बाद विश्वेदेव प्रकट हुए। पाँच दिशाओं के रक्षक। वे ऋषि विश्वामित्र की निंदा करने लगे।

'धिक्कार है तुम पर, विश्वामित्र! क्या यह पर्याप्त नहीं कि तुमने इस महान राजा से इसका सब कुछ छीन लिया? अब और कुछ माँगने की क्या आवश्यकता है? तुम उसे कुल का कलंक कैसे कह सकते हो जबकि तुम स्वयं ऋषि समुदाय को बदनाम कर रहे हो? हरिश्चंद्र अब पहले जैसा नहीं है, जिसने वरुणदेव को धोखा दिया था किंतु तुम अब भी वही चोर हो जिसने कामधेनु को चुराने की कोशिश की थी।'

सब लोग स्तब्ध थे। यह सुनकर ऋषि ने विश्वदेवों को घूरा और उन्हें शाप दे दिया। 'तुम पाँचों अपनी दिव्यता त्याग कर पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में जन्म लोगे और तुम्हारे भीतर हर प्रकार दुर्बलता मौजूद होगी जो किसी भी नश्वर प्राणी में होती है।'

दिशाओं के रक्षक अंतर्धान हो गए और राजपरिवार भी गायब हो गया। तीनों, कई दिनों तक दक्षिण की यात्रा करते हुए काशी पहुँचे।

'यह पवित्र भूमि है,' राजा ने तारामती से कहा। 'महादेव, ब्रह्मा का कपाल हाथ में लेकर यहाँ आए थे और काशी ने उन्हें मुक्त किया था। सूर्यदेव ने आकाश से गिरकर यहीं शरण ली

थी और काशी ने उन्हें भी शुद्ध किया था। यह भूमि हमें भी ऋण से मुक्त करेगी।'

दंपत्ति ने हर द्वार पर दस्तक दी किंतु उन्हें कोई काम नहीं मिला जिससे वे ऋषि को भुगतान करने के लिए या अपना पेट भरने अथवा नए वस्त्र खरीदने के लिए धन जुटा पाते। एक मास का समय समाप्त होते ही रात को विश्वामित्र ने स्वप्न में दर्शन दिए।

'तुम्हारा समय कल सूर्यास्त होते ही समाप्त हो जाएगा। मेरी दक्षिणा तैयार रखना।'

अगले दिन सुबह, तारामती ने हरिश्चंद्र का हाथ पकड़ लिया और उसे काशी से घसीट ले गई। फिर एक हवेली के सामने रुककर उसने इशारा किया।

'यह घर एक वृद्ध का है। उसे दासी की आवश्यकता है।'

राजा ने हाथ खींच लिया। 'नहीं, तारा।'

'आप मुझे इस पुरुष को बेच दीजिए।'

'नहीं।'

'फिर आप दक्षिणा कैसे देंगे?'

'तुम्हें मवेशियों की तरह बेचकर तो नहीं!'

'मैं इसके लिए तैयार हूँ।'

'किंतु मैं तैयार नहीं हूँ। मैं तुमसे अलग होकर कैसे रहूँगा?'

'आपको रहना होगा। इस ऋण ने आज भी हमें अपने अतीत से बाँध रखा है। हमें सब कुछ नए सिरे से आरंभ करना चाहिए। आप मुझे बेच दीजिए अन्यथा मैं आत्मा-हत्या कर लूँगी।'

'तारा!' हरिश्चंद्र नीचे गिर पड़ा। 'तारा!'

'सूरज डूबने को है, महाराज। समय पूरा होने वाला है।'

जल्द ही, लेन-देन की प्रक्रिया पूरी हो गई। पत्नी के बदले धन लेकर हरिश्चन्द्र चुपचाप खड़ा रहा। रानी ने जब उसे बताया कि रोहित उसके साथ ही रहेगा तो भी राजा मौन रहा। विश्वामित्र को घाट पर मिलकर जब हरिश्चंद्र ने सारा धन ऋषि के हाथ पर रख दिया, तब भी वह शांत रहा।

'यह तो आधा ही है,' ऋषि ने कहा।

'आधा?'

'दक्षिणा, सदा दान के अनुपात में होनी चाहिए। तुमने जो भुगतान किया है, वह उस राशि का आधा भाग है।'

'ऋषिवर, मेरे पास इतना ही है।'

'तुम्हें यह कैसे मिला?'

'पत्नी से। मैंने अपनी पत्नी को बेच दिया।'

विश्वामित्र ने मुस्कुराते हुए कहा, 'तो तुम खुद को बेच कर मुझे शेष आधा धन भी दे सकते हो।'

राजा ने सिर हिलाया। 'मैं यह भी कर लूँगा। किंतु स्वयं को किसे बेचूँ?

'उसे।'

ऋषि ने एक आदमी की ओर इशारा किया। उसकी त्वचा काली और गहरी मूँछें थीं। उसकी कमर पर मैला-सा वस्त्र लिपटा था और शरीर से दुर्गन्ध आ रही थी।

'उसे एक दास की आवश्यकता है,' ऋषि ने कहा।

'वह कौन है?'

'चांडाल।'

हरिश्चंद्र को लगा ऋषि के शब्दों ने जैसे उसके शरीर को भेद दिया था।

चांडाल...

इनसानी शवों को जलाने वाला...

राजा की इंद्रियाँ उस चांडाल की त्वचा से आ रही दुर्गंध को पहचान गई थीं।

मृतकों की दुर्गंध...

राजा सहम गया। 'मैं उसका दास नहीं बन सकता। मेरे वंश में मेरी निंदा होगी। मेरा पुत्र अस्पृश्य हो जाएगा। इससे बेहतर है कि मैं आपका दास बन जाऊँ।'

'मेरा दास बनोगे?' विश्वामित्र ने पूछा।

'इसी क्षण से।'

'मुझे स्वीकार है। अब से मैं तुम्हारा स्वामी हूँ तो यह मेरी आज्ञा है। मैं चाहता हूँ कि तुम स्वयं को इस चांडाल को बेच दो और शेष दक्षिणा मुझे दे दो।'

'आदरणीय...'

'तुम अस्वीकार करने का अधिकार खो चुके हो। तुम्हारे पिता त्रिशंकु भी चांडालों के साथ रहे थे और तुम भी अब इस चांडाल के साथ काम करोगे।'

क्षत्रिय राजा, ब्राह्मण और चांडाल के बीच खड़ा था। फिर उसने अपनी अंगुलियाँ उठाकर अपने मस्तक से सूर्य का चिह्न रगड़ कर मिटा दिया।

'जो आज्ञा, स्वामी।'

हरिश्चंद्र अब काशी के श्मशान घाट पर दास बनकर रहने लगा। वह एक निश्चित शुल्क लेकर शव को जलाने का काम करता था। कुत्तों और गीदड़ों को दूर रखने के लिए अपने साथ कुल्हाड़ी भी रखता था। उसने देखा कि जाति कोई भी हो, सबका शरीर अंतत: राख में बदल जाता है। उसने देखा कि वह मार्ग में से निकलता तो लोग अपना चेहरा ढक लेते थे।

चाँद भी यही कर रहा था।

वह बादल के पीछे छिप चुका था। रात का अंधेरा गहरा हो चला था। काफी देर से एक लाश जल रही थी और आग की लपटें लगभग बुझ चुकी थीं। राजा, अस्थियाँ उठाने के लिए नीचे झुका।

'मेरा पुत्र।'

तभी उसने एक स्त्री की आवाज़ सुनी।

'मेरा पुत्र।'

'कौन?' हरिश्चन्द्र मुड़ा।

'मैं अपने पुत्र का अंतिम संस्कार करने आई हूँ,' स्त्री सिसकने लगी।

'क्या आपके पास शुल्क है?'

'शुल्क?'

'काशी में शुल्क देने के बाद ही शव का दाह-संस्कार किया जा सकता है। उस शुल्क का एक तिहाई भाग राजा को, एक तिहाई मेरे स्वामी चांडाल को और एक तिहाई मुझे मिलता है। यहाँ लोगों ने मोक्ष पर भी मूल्य लगा दिया है।'

'किंतु मेरे पास पैसे नहीं हैं।'

'फिर मैं कुछ नहीं कर सकता।'

हरिश्चंद्र ने देखा कि स्त्री की छाया आगे बढ़ रही थी। उसने मृतक का शव हरिश्चंद्र के पैरों में रख दिया।

'मेरा पुत्र जीवित नहीं रहा। मैं इसके शव का क्या करूँ?'

'मेरी संवेदना आपके साथ है किंतु मैं विवश हूँ।' हरिश्चंद्र ने शव को उठाया। 'इसे वापस ले जाओ।'

तभी बादलों के बीच में से चाँद निकल आया और काशी फिर से प्रकाशित हो उठी।

'रोहित! मेरे रोहित!' हरिश्चंद्र की दृष्टि स्त्री पर पड़ी। 'तारा!'

अपने मृत पुत्र के भार से उसके हाथ काँप रहे थे। उसके होंठ रोहित के ठंडे चेहरे को ऐसे सहला रहे थे मानो उसमें प्राण फूँक देंगे।

'राजन, हमारे रोहित की मृत्यु हो गई,' तारा विलाप करने लगी।

'मृत्यु?'

'इसे साँप ने काट लिया।'

'मेरे रोहित को?'

'आप अपने पिता का अंतिम संस्कार नहीं कर सके क्योंकि वह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच अधर में लटके हुए हैं, किंतु आप अपने पुत्र का अंतिम संस्कार तो कर सकते हैं।'

‘नहीं, तारा।’

‘नहीं?’

‘मैं यह नहीं कर सकता।’

‘क्यों नहीं?’

‘जब तक तुम शुल्क नहीं दोगी, मैं ऐसा नहीं कर सकता।’

‘किंतु मैंने आपसे कहा कि मेरे पास कुछ नहीं है,’ वह चिल्लाई।

‘मुझे शुल्क चाहिए।’

‘क्या आप भी विश्वामित्र की तरह हो गए हैं? क्या आपके लिए शुल्क के अतिरिक्त किसी चीज का अर्थ नहीं है? आप अपने ही पुत्र का संस्कार करने से कैसे मना कर सकते हैं?’

‘मैं अपने स्वामी को धोखा कैसे दे सकता हूँ? मैंने उन्हें वचन दिया है।’

‘आपका वचन!’ तारा नाग की तरह फुफकारते हुए बोली। ‘देखिए, आपका वचन हमें कहाँ से कहाँ ले आया है। मुझे परवाह नहीं कि मेरे बाद मेरा शरीर सड़ेगा अथवा नहीं। भले ही कौवे मेरा माँस नोंच लें और कुत्ते मेरी आँतों को खा जाएँ, किंतु मेरे पुत्र के साथ यह सब नहीं होगा। आप रोहित के लिए तो अपना वचन तोड़ सकते हैं।’

‘मैं एक बार यह कर चुका हूँ।’ हरिश्चंद्र की आँखों से आँसू बह निकले। ‘उसकी कीमत मैं अब तक चुका रहा हूँ। मेरी बात को समझो, तारा। मैं क्षमा चाहता हूँ। तुम चाहे मुझे गाली दो, मुझ पर थूको और फिर कभी मेरी ओर मत देखना। परंतु मुझे फिर से दुर्बल मत बनाओ, तारा। इसे ले जाओ। काशी देख रही है। देवता देख रहे हैं। शव देख रहे हैं। मैं इनकी उपस्थिति में यह पाप कैसे कर सकता हूँ? मैं पुन: अपने कुल को लज्जित कैसे कर सकता हूँ?’

हरिश्चंद्र की आँखों में आँसू थे किंतु तारा की आँखें क्रोध से धधक रही थीं। ‘महाराज, आपका वंश समाप्त हो चुका है। रोहित मर चुका है। अब मैं भी जीवित नहीं रहूँगी।’

रानी ने हरिश्चंद्र की कमर में बँधी कुल्हाड़ी पकड़ ली। वह अपनी गर्दन पर वार करने ही वाली थी कि किसी ने उसका नाम पुकारा।

‘तारामती!’

वह रुक गई।

‘तारामती!’

वह पीछे मुड़ी।

‘तारामती!’

उसने देखा विश्वामित्र पुकार रहे थे। वे उसके पति और चांडाल के निकट खड़े थे। तारा और हरिश्चंद्र का पुत्र रोहित दौड़ता हुआ आ रहा था।

‘मेरा पुत्र!’

उसने जैसे ही रोहित को पकड़ा, विश्वामित्र ने हरिश्चंद्र को गले लगा लिया।

‘आप सचमुच विलक्षण हैं। मुझे विश्वास था कि मैं आपको मात दे दूँगा, किंतु मैं गलत था। ध्रुव की भाँति आप भी धर्म के मार्ग पर अटल रहे। आप मेरी हर परीक्षा में सफल और पहले से भी महान बनकर उभरे हैं। आपकी और अधिक परीक्षा लेना पाप होगा। मैं आपको वह सब वापस लौटाता हूँ जो मैंने आपसे लिया था। आप फिर से अयोध्या के राजा बन चुके हैं।’

‘ऐसा राजा, जो अब परित्यक्त है,’ राजा ने चांडाल की ओर देखते हुए कहा।

किंतु चांडाल हँस रहा था। उसके शरीर से निकल रही आभा ने उसे ढक लिया। अगले ही पल, प्रकाश का आवरण छँट गया और यमदेव प्रकट हो गए। उन्होंने अपने अँगूठे से हरिश्चंद्र के माथे को स्पर्श किया तो उस पर सूर्य का चिह्न फिर से अंकित हो गया।

‘आप सूर्यवंशी हैं और आपका नाम, सत्य एवं निष्ठा का प्रतीक कहलाएगा।’

भोर हो चुकी थी। राजा ने विश्वामित्र की ओर देखा।

‘हे परम पूज्य, यदि मैं कुछ माँगू तो क्या आप देंगे?’

‘कहो।’

‘पाँच विश्वेदेवों को दिया शाप वापस ले लीजिए।’

‘मैं शाप वापस नहीं ले सकता,’ ऋषि ने उत्तर दिया। ‘किंतु उसकी अवधि कम कर दूँगा। मनुष्य के रूप में जन्म लेने के बाद वे कुछ ही समय पृथ्वी पर रहेंगे और फिर उन्हें मुक्ति मिल जाएगी।’

उन पाँच विश्वदेवों ने द्वापर युग में उपपांडव बन कर जन्म लिया। वे द्रौपदी के पाँच पुत्र थे जिन्हें महाभारत युद्ध के अंत में अश्वत्थामा ने मार डाला था।

62
सगर ने पुत्रों को खोया



हरिश्चन्द्र की छह पीढ़ियों के बाद, सूर्यवंश के सिंहासन पर सुबाहु नामक राजा बैठा। उसका विवाह यादवी से हुआ और उसने सूर्यवंशी राजाओं द्वारा उकेरे गए दीप्तिमान मार्ग पर चलकर शासन आरंभ किया। यह दुख की बात है कि रात्रि के आगे सूर्य को भी झुकना पड़ता है। जल्द ही, सुबाहु की प्रतिष्ठा क्षीण हो गई। वह अपने कुल के गुणों को कायम रखने में असमर्थ रहा और धीरे-धीरे उसके बाद उसका शासन भी समाप्त हो गया। प्रजा ने विद्रोह कर दिया। शत्रु एकत्रित हो गए। राजा सब हार गया और अपनी पत्नी यादवी के साथ भाग गया। वह जंगल में एक पेड़ के नीचे आराम कर रहा था। तभी उसने दो पक्षियों को बातचीत करते सुना।

'चलो, हमें यहाँ से उड़ जाना चाहिए।'

'क्यों?'

'इस पापी सुबाहु की छाया भी तुम पर नहीं पड़नी चाहिए।'

अपराध बोध ने राजा सुबाहु के हृदय को भीतर से ऐसा झकझोरा कि उसके प्राण ही निकल गए। यादवी ने पेड़ की टहनियों को तोड़कर ढेर लगाया और पति के शव के साथ चिता पर चढ़कर आग लगा दी।

'ऐसा मत करो!'

एक तपस्वी उसकी ओर दौड़ा चला आ रहा था। उसका चेहरा उन्माद से भरा और बाँहें आगे की ओर फैली थीं।

'मुझसे दूर रहो,' रानी ने चेतावनी दी।

'ऐसा मत करो।'

'आप कौन हैं?'

‘और्व। मैं जानता हूँ कि तुम यादवी हो। यह मत करो।’

‘मेरा पति जीवित नहीं रहा। मेरी भूमि अब मेरी नहीं है। मुझे और किसलिए जीना चाहिए?’

‘क्योंकि तुम्हारे भीतर एक नवजीवन पल रहा है।’

धधकती अग्नि के बीच बैठी रानी स्तब्ध रह गई। आग की लपटें सुबाहु के शरीर का भक्षण करने लगी थीं। यादवी ने अपने पति का हाथ छुड़ाकर अपने पेट को स्पर्श किया।

‘जीवन?’

‘हाँ। तुम्हारे पेट में बच्चा है।’

‘आप झूठ बोल रहे हैं।’

‘मैं झूठ नहीं बोलता। मुझे तुम्हारे भीतर सूर्यवंश की किरण जगमगाती दिखाई दे रही है।’

आग अब यादवी की ओर बढ़ रही थी। उसके सजीव माँस पर नजर गढ़ाए हुए। रसदार भ्रूण की ओर।

‘राजकुमार की सोचिए।’

यादवी की जाँघें जलने लगीं।

‘आपका एकमात्र उत्तराधिकारी।’

अग्नि उसके पेट की त्वचा जला रही थी।

‘पुत्र, अपनी माँ का अंतिम संस्कार करता है। आप अपने पुत्र का अंतिम संस्कार क्यों कर रही हैं?’

यादवी उछल पड़ी। और्व ने उसे सँभाल लिया। वह रोने लगी।

‘भले ही मैं गर्भवती हूँ किंतु यदि यह भी बड़ा होकर दूसरा सुबाहु बना तो क्या होगा? यदि इतिहास इसे संसार में लाने के लिए मेरी निंदा करेगा तो क्या होगा?’

‘इतिहास आपकी प्रशंसा करेगा,’ ऋषि ने आश्वासन दिया। ‘कुलीनता प्राय: एक पीढ़ी के बाद प्रकट होती है। मैं देख सकता हूँ कि आपके पुत्र में हर वह गुण होगा जो उसके पिता में नहीं था।’

अपने आश्रम में पहुँचकर, और्व ने अपनी पत्नी को गर्भवती रानी की देखभाल करने को कहा। दुर्भाग्य से, और्व की पत्नी को यह संदेह हो गया कि ऋषि ने उसके साथ विश्वासघात किया था और यादवी के गर्भ में उनका पुत्र था। क्रोध में अंधी ऋषि-पत्नी ने चुपके से रानी के भोजन में नियमित रूप से गर नामक विष की एक-एक बूँद डालनी शुरू कर दी। वह भ्रूण के नष्ट होने की प्रतीक्षा करने लगी किंतु नौ माह के बाद यादवी ने देवदूत के समान एक पुत्र को जन्म दिया। और्व ने चुपचाप अपनी पत्नी की ओर देखा और फिर शिशु का नामकरण कर दिया।

‘मैं देख सकता हूँ कि तुम गर के साथ पैदा हुए हो। इसलिए मैं तुम्हारा नाम सगर रखता हूँ।’

विष का प्रभाव न शिशु के तन पर हुआ और न ही उसके मस्तिष्क पर। ऋषि की देख-रेख में, सगर अब अपने वंश के राजाओं की तरह बना। वीर और गुणी। अकादमिक रूप से संपन्न और व्यावहारिक। सूर्य साक्षी था कि समय के साथ राजकुमार ने अपने शत्रुओं को पराजित किया और वह विजयी होकर अयोध्या लौट आया। सूर्यवंश के सिंहासन पर बैठकर सगर ने दो विवाह किए। उसकी पत्नियों के नाम थे, केशिनी और सुमति। ऋषि मुस्कुराए।

‘तुम्हारी दोनों पत्नियों के पुत्र होंगे। एक पत्नी का केवल एक पुत्र होगा और दूसरी के साठ हजार पुत्र होंगे। तुम्हें जो चाहिए, चुन लो।’

केशिनी ने एक पुत्र चुना और सुमति ने साठ हज़ार। शीघ्र ही अयोध्या में आनंद छा गया क्योंकि नगर शिशुओं के रुदन से गूँजने लगा। दुर्भाग्य से, केशिनी का पुत्र असमंजस, बड़ा होकर असभ्य बना और उसे राज्य से निर्वासित करना पड़ गया। असमंजस के पुत्र अंशुमान ने जब अपने पिता का स्थान लिया तो फिर सगर ने अश्वमेध यज्ञ आयोजित करने का निश्चय किया।

‘हमारा शाही अश्व भूलोक में स्वतंत्र रूप से घूमेगा,’ सगर ने कहा। ‘वह जिस राज्य में प्रवेश करेगा, उसे या तो हमारी संप्रभुता स्वीकार करनी होगी अन्यथा हमसे युद्ध करना पड़ेगा। घोड़े की रक्षा के लिए उसके पीछे चलने को कौन तैयार है?’

‘हम तैयार हैं,’ सुमति के साठ हजार पुत्रों ने एक स्वर में कहा। अंशुमान ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

‘पितामह, मैं यहाँ आपके साथ रहकर यज्ञ की तैयारी में सहायता करूँगा।’

नियत समय पर, सगर के सभी पुत्र घोड़े के साथ चले दिए और राजा, अंशुमान के साथ यज्ञ करने बैठ गया। वह पुत्रों के लौटने की प्रतीक्षा करने लगा। बाद में अश्व की बलि दी जानी थी। वे इस बात से अनभिज्ञ थे कि स्वर्ग में इंद्र थर-थर काँप रहे थे।

अश्वमेध यज्ञ...

पुरानी स्मृतियाँ देवराज के मन को व्याकुल कर रही थीं।

पृथु की तरह... बलि की तरह...

वही डर फिर इंद्र को बेचैन कर रहा था।

क्या सगर भी चक्रवर्ती सम्राट बन जाएगा?

इंद्र देखते रहे। उन्होंने प्रतीक्षा की। राजकुमार घोड़े को लेकर समुद्र के किनारे पहुँच चुके थे और विश्राम कर रहे थे। वे सब सो गए तब इंद्र ने चुपचाप अश्व का अपहरण कर लिया।

‘चलो,’ वह उसे वहाँ दूर ले गए। ‘तुम्हारे लिए मैंने कुछ सोचा है।’

सगर के पुत्र उठे तो घबराहट में इधर-उधर देखने लगे। उन्होंने समुद्र में गोता लगाया। जमीन खोद डाली। पंच तत्त्वों से पूछा। अश्वमेध के घोड़े का खो जाना अशुभ लक्षण था। उनका यज्ञ विफल हो जाता और वंश पर कलंक लगता। सगर के पुत्र उन्मत्त होकर भटकते हुए पाताल लोक पहुँच गए। उनमें से एक खुशी से चिल्लाया।

‘वो रहा!’

उन्हें अश्व मिल गया था। वह एक आश्रम जैसे स्थान में बँधा खड़ा था। वे जैसे ही उसके निकट आए, किसी ने कहा।

‘यह ऋषि कपिल का आश्रम है।’

राजकुमारों का हर्ष, आक्रोश में बदल गया। इस बात से अनभिज्ञ कि इंद्र ने जानबूझकर घोड़े को वहाँ बाँधा था, राजकुमारों को विश्वास हो गया कि कपिल मुनि ने घोड़ा चुराया था। उन्होंने अंदर घुसकर आश्रम में तोड़-फोड़ कर दी। छत को गिरा दिया और पौधों को रौंद डाला। ऋषि के भोजन पर मूत्र-विसर्जन किया और गर्भगृह पर गोबर मल दिया। आश्रम के चारों ओर बनी दीवारें ढह गईं। तभी उन्होंने कपिल मुनि को पद्मासन में बैठे देखा। वहाँ के कोलाहल ने मुनि का ध्यान भंग कर दिया था। सगर के पुत्रों ने मुनि को अपशब्द कहे और उन पर चप्पलें फेंकीं।

ऋषि ने आँखें बंद कर लीं।

और फिर एक क्षण बाद उन्हें खोला।

कुछ दिन के बाद, अंशुमान ने कक्ष में प्रवेश किया तो राजा सगर ने आशा से उसकी ओर देखा। राजकुमार जब बहुत समय तक घोड़ा लेकर लौटे नहीं तो राजा ने अंशुमान को उनकी तलाश में भेजा था। अंशुमान लौट आया था। वह सगर के सामने मुट्ठी बाँधे खड़ा था। उसकी अँगुलियाँ काली और चेहरा सफेद दिख रहा था।

‘मेरे पुत्रों का क्या हुआ?’ सगर ने पूछा।

अंशुमान ने मुट्ठी खोलकर राख दिखाई तो सभा स्तब्ध रह गई।

‘वे सब भस्म हो गए।’

‘क्या?’

‘वे सब भस्म हो गए। सभी साठ हजार पुत्र!’

‘भस्म हो गए?’

‘ऋषि कपिल ने उनकी ओर क्रोध से देखा तो उनके नेत्रों से निकली अग्नि-शिखा ने सबको भस्म कर दिया।’

सभा आश्चर्य से सुन रही थी। राजा की जिह्वा में कंपन होने लगा।

‘किंतु क्यों? उन्होंने किया क्या?’

अंशुमान ने सारी घटना सुना दी जिसे सुनकर सगर का स्वर लड़खड़ाने लगा। ‘ऐसी हिंसक मृत्यु के चलते मृतकों की आत्मा को कभी मुक्ति नहीं मिल सकती। मेरे पुत्रों की आत्मा पीड़ित होंगी।’

‘वे सचमुच पीड़ित हैं, पितामह। वे शांति की भीख माँग रहे हैं। मुक्ति की याचना कर रहे हैं। मैं वहाँ खड़ा था। मेरे कानों से रक्त बहने लगा क्योंकि मैंने उन साठ हजार लोगों को पीड़ा से कराहते सुना।’

यह सुनकर रानियाँ बेहोश हो गईं। राजा ने राख पर दृष्टि डाली। यह विडंबना थी जहाँ एक ऋषि ने उसे जलने से बचाया था, वहीं दूसरे ने उसके पुत्रों को जीवित ही भस्म कर दिया था।

‘अब क्या होगा, अंशुमान? उन्हें मुक्ति कैसे मिलेगी?’

‘मैंने ऋषि कपिल से विनती की तो उन्होंने मुझे उपाय बताया। गंगा!’

‘गंगा?’

‘देवनदी जो स्वर्ग में प्रवाहित होती है। ऋषि ने कहा है कि गंगा जल के स्पर्श से ही उन आत्माओं को दोषमुक्त किया जा सकता है।’

सगर ने यज्ञ की ज्वाला को बुझा दिया। फिर वह डगमगाते कदमों से खिड़की की ओर बढ़ा और आकाश को देखने लगा।

‘हम गंगा को नीचे कैसे लाएँगे?’

63
गंगा को धरती पर लाए भगीरथ



सगर ने प्रयास किया।

सगर के पौत्र अंशुमान ने प्रयास किया।

अंशुमान के पुत्र दिलीप ने प्रयास किया।

सूर्यवंशियों की तीन पीढ़ियों ने उस नाम का जाप करते हुए अपने प्राण त्याग दिए। सूर्यवंश के तीन राजा उस जलधारा का आह्वान करते हुए परलोक सिधार गए। अमृत की स्तुति करते-करते उनका मुख सूख गया। उस एक शब्द की वेदी पर उन तीनों के शरीर विदीर्ण हो गए।

गंगा।

अब दिलीप का पुत्र भगीरथ इस कार्य को करने का प्रयास कर रहा था। वह एक हजार साल से ध्यान में लीन था। उसका शरीर स्थिर था किंतु मन निरंतर गतिमान था। हर धड़कन के साथ वह ऐसे मन्त्रोच्चारण कर रहा था मानो उसने जाप रोका तो उसकी हृदयगति भी रुक जाएगी। अपने पूर्वजों की भांति उसे भी यह नहीं पता था कि यह उपक्रम सफल होगा अथवा नहीं, कि गंगा नदी नीचे उतरने की कृपा करेगी अथवा नहीं। परंतु वह इसे इसलिए कर रहा था क्योंकि वह किया जाना आवश्यक था। यही उसके जन्म का एकमात्र उद्देश्य था। यही उसके कुल की एकमात्र खोज थी।

सहसा भगीरथ काँपने लगा। पानी की कुछ बूँदें उसकी त्वचा पर गिरी थीं। क्या वह आ गई थी?

गंगा?

'आँखें खोलो, भगीरथ।'

भगीरथ ने आँखें खोलकर देखा। ब्रह्मा उसके मुख पर छींटे मार रहे थे।

‘तुम्हारे राजवंश के धैर्य ने हमें जीत लिया है। तुम्हारे पूर्वजों ने हार नहीं मानी और उनके प्रयास का समापन अब तुम्हारे साथ हो रहा है। जो होना चाहिए था, उसके होने का समय आ गया है।’

भगीरथ को आवाज़ सुनाई दी जैसे अचानक कोई जलधारा उसके निकट लहरा रही थी। गंगा उतर रही थी। शुद्ध। पवित्र। अनछुई। श्वेत से भी अधिक धवल। परोपकार का ऐसा प्रवाह, जिसे पृथ्वी ने जकड़ लिया और फिर कभी जाने नहीं दिया।

‘गंगा,’ ब्रह्मा ने उसे संबोधित किया। ‘सरस्वती का वचन अब सत्य होने वाला है। तुम भूलोक पर उतरोगी। तुम्हें केवल सगर के पुत्रों को ही नहीं अपितु पाप करने वाले प्रत्येक नश्वर प्राणी को मुक्ति देनी है। वहाँ भीड़ होगी और वे तुम्हारे तट पर आते रहेंगे। तुम्हारे गर्भ में स्वयं को डुबाएँगे और तुम्हारा जल उन्हें आत्मसात कर लेगा। इस प्रकार तुम्हारे द्वारा पोषण पाकर वे नए सिरे से जन्म लेंगे और स्वच्छ होकर पुनर्स्थापित हो जाएँगे। हर पाप से मुक्त। वे अपने मृतक संबंधियों को भी तुम्हारे पास लाएँगे। तुम्हें उनका भी उद्धार करना है।’

‘परंतु मैं शुद्ध हूँ,’ नदी ने कहा। ‘मैं इतने लोगों को शुद्ध करूँगी तो क्या मेरा जल दूषित नहीं हो जाएगा? क्या उनके पाप आत्मसात कर लेने पर वे मेरे भीतर इकट्ठा नहीं हो जाएँगे और मुझे पापी नहीं बना देंगे?’

‘नहीं, गंगा। तुम विष्णुपदी हो। विष्णु के चरणों से पवित्र हुई हो। तुम निकृष्टतम प्राणी को स्पर्श करने पर भी शुद्ध बनी रहोगी। उनकी गंदगी को पीकर भी तुम पवित्र ही रहोगी।’

‘माँ, वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं,’ भगीरथ ने गंगा के चरणों में गिरकर कहा। ‘साठ हजार। वे चीख रहे हैं, अब भी जल रहे हैं। उनमें लगी अग्नि बुझने को तैयार नहीं है। आपका जल ही उनका दु:ख दूर कर सकता है।’

‘मैं यह नहीं कर सकती।’

ब्रह्मा ने गंगा को देखा। ‘यह तुम्हारा कार्य है, गंगा। तुम मना नहीं कर सकतीं? तुम्हारा अवतरण भूलोक की शिराओं में नवजीवन का संचार करेगा।’

‘वह भूलोक को धूल में मिला देगा।’

‘क्या मतलब?’

‘जब मैं स्वर्ग से नीचे उतरूँगी, तो मेरा प्रवाह बहुत तेज होगा। इतनी ऊँचाई से गिरने पर विनाश हो सकता है। मेरी जलधारा भूलोक पर गिरेगी तो उसे नष्ट कर देगी। पृथ्वी मध्य से विभाजित हो जाएगी।’

ब्रह्मा और भगीरथ मौन खड़े रहे। उनका हृदय उस भयावह दृश्य की कल्पना कर रहा था। वे सोचने लगे कि क्या गंगा पृथ्वी पर उतरने से बचने के लिए जानबूझकर ऐसी तस्वीर प्रस्तुत कर रही थी। किंतु गंगा फिर बोली।

‘इसका एक ही उपाय है। महादेव।’

‘महादेव?’

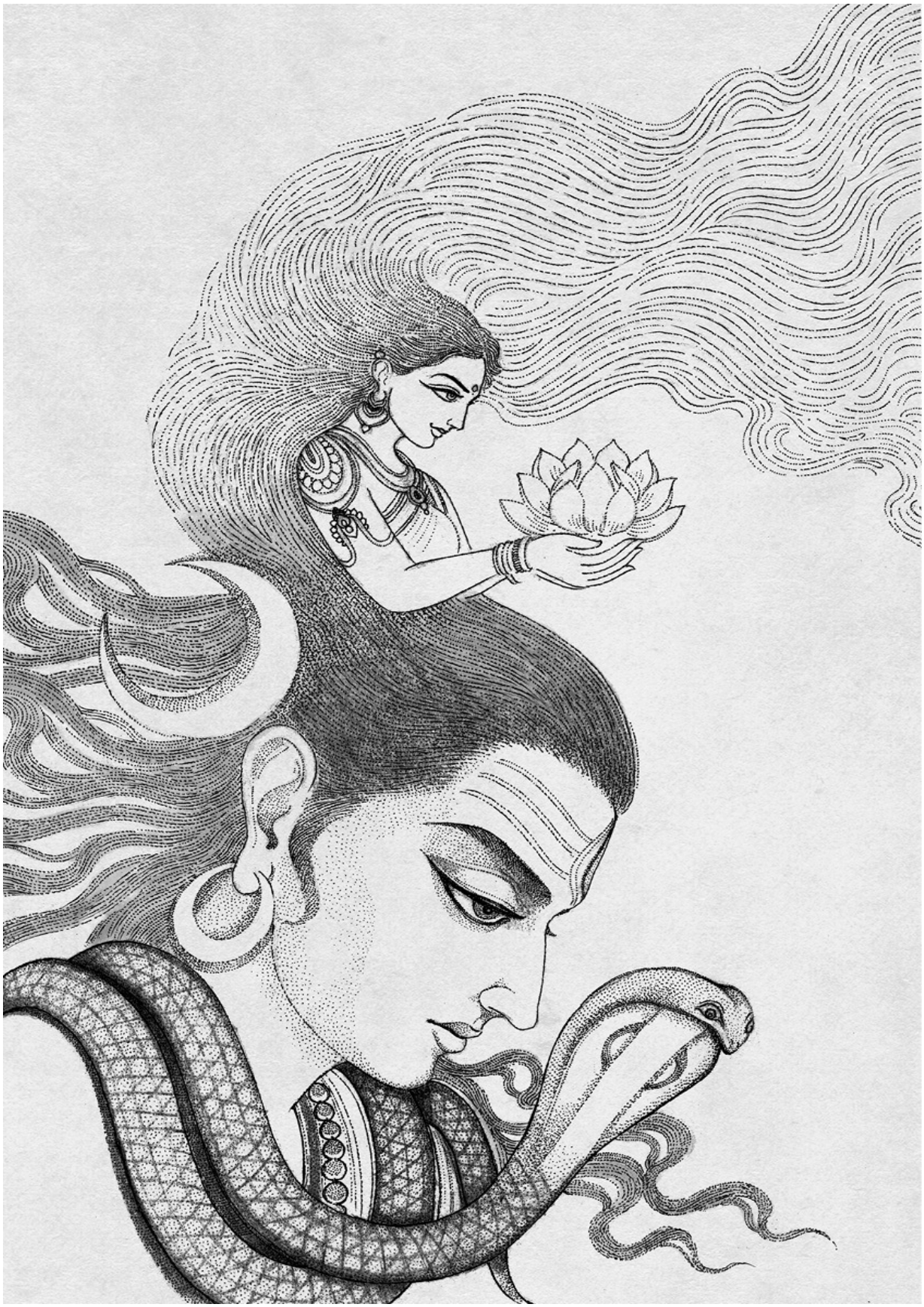
‘वही मेरा प्रवाह सँभाल सकते हैं और मेरे जल की उग्रता को थाम सकते हैं। यदि वे मान जाएँ, तो मैं उनके शीश पर उतरूँगी और फिर भूलोक पर अवतरित हो जाऊँगी।’

ब्रह्मा के निर्देश पर भगीरथ शिव को प्रसन्न करने में जुट गया। शिव अंततः प्रकट हुए और राजा की याचना सुनकर मुस्कुराए।

‘मैंने सागर के अंदर से निकलने वाले विष को पी लिया था तो मैं ऊपर से गिरने वाले अमृत को अवश्य ही ग्रहण कर सकता हूँ।’

पृथ्वी ने देखा कि शिव कैलाश के किनारे पर खड़े हैं। उन्होंने अपने उलझे केश की गांठ खोल दी। उनकी जटाएँ विशाल पात्र की तरह खुलकर बिखर गईं। आकाश गड़गड़ा रहा था। वह ऐसे काँप रहा था मानो कामोन्माद के निकट हो। सहसा जल-प्रवाह फट पड़ा। आकाश से फुहार बनकर गंगा निर्ममता से नीचे कूद पड़ी। तरल वज्रपात जैसी श्वेत फेन की लहर। गंगा जैसे-जैसे निकट आ रही थी, उसका त्वरण सौ गुना बढ़ गया। वह निकट आ गई। और करीब। और पास। तेजी से बहती। गति पकड़ती हुई। विशाल जलाशय स्वयं को रिक्त कर रहा था। गंगा, भगवान शिव के शीश तक पहुँच गई। ब्रह्मांड काँप उठा। यह गंगा का ही प्रभाव था। वह प्रलय की तरह पर्वत से टकराकर विशाल लहर की तरह ऊँची उठ रही थी। फिर वह असंख्य बूँदों में बिखर गई जिससे अनेक सहायक नदियाँ उपजीं। वह छलकी तो उसने स्वयं को शिव की जटाओं में जकड़ा हुआ पाया मानो वह चारों से परास्त कर दी गई थी। ऊपर से जितना जल बरस रहा था, उतना ही नीचे इकट्ठा होता जा रहा था। जल्द ही, गंगा का बहाव रुक गया। वह अब स्वर्ग में नहीं थी। वह पूरी तरह शिव की जटाओं की भूलभुलैया में कैद हो चुकी थी।

ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न। विष्णु द्वारा आनंदित। शिव द्वारा पालित।



जिस पुरुष के पिता को गर्भ में ही विष पिलाया गया था, उसी ने गंगा को विवश कर दिया। जिस देवता ने ब्रह्मांड के लिए विष-पान किया था, उसी ने गंगा को अपने भीतर रोक लिया। जो नदी अब मनुष्यों की आत्माओं का विष चूसने वाली थी, उसने शिव को एक नया नाम दिया।

'मैं आपको प्रणाम करती हूँ, गंगाधर! आपसे प्रार्थना है कि आप मुझे मुक्त कर दें ताकि मैं अपना उद्देश्य पूर्ण कर सकूँ।'

गंगा ने भगीरथ के पूर्वजों को मुक्ति दिलाई तो भगीरथ भावुक हो उठा। फिर गंगा ने उसे बताया कि अब से वह भागीरथी कहलाएगी, तो भगीरथ की आँखों से पुन: आँसू आ गए।

64
सरस्वती और विष्णु का युद्ध



‘मुझे बताइए, प्रभु।’

ब्रह्मा सोच रहे थे कि उन्हें उत्तर देना चाहिए अथवा नहीं।

‘आप मौन रहकर मेरे साथ परिहास कर रहे हैं, प्रभु। उत्तर दीजिए।’

किंतु ब्रह्मा के चारों में से किसी भी मुख से आवाज़ नहीं निकली।

‘क्या आप दुविधा में हैं, स्वामी? आपने इस ब्रह्मांड की रचना की है तो निश्चित रूप से आप एक सरल प्रश्न का उत्तर तो दे सकते हैं।’

परंतु विधाता केवल मुस्कुरा दिए। उन्हें उम्मीद थी कि उनकी मुस्कान, शब्दों की आवश्यकता को पूरा कर देगी। सरस्वती ने सिर हिलाया।

‘मैं आपसे फिर पूछती हूँ। हम तीनों देवियों में से कौन सबसे अधिक प्रतापी है? मैं, लक्ष्मी या पार्वती?’

‘हम तुलना क्यों करें, सरस्वती?’ अंत में ब्रह्मा ने कहा। ‘भृगु ने भी त्रिदेव का आकलन करने का प्रयास किया था किंतु उसका अंत अच्छा नहीं हुआ।’

‘आपको डर है कि इसका अंत आपके लिए अच्छा नहीं होगा?’

‘मैं केवल इतना कह रहा हूँ कि आप तीनों, शक्ति के विभिन्न आयाम हैं। प्रकृति की जननी। सृष्टि को ज्ञान की आवश्यकता है, जिसके करण आप मेरी पत्नी हैं। संरक्षण के लिए साधन की आवश्यकता है, इसलिए लक्ष्मी, श्रीहरि की पत्नी हैं। और विनाश के लिए शक्ति चाहिए जो पार्वती के रूप में महादेव की पत्नी हैं। आप तीनों पवित्र नारियाँ हैं, जिनके कारण हमें दिव्यता प्राप्त हुई है। आप ब्रह्मांड का मातृ घटक हैं जो जीवन को पोषण देता है। यहाँ किसी तरह की प्रतिस्पर्द्धा नहीं है।’

‘फिर भी मैं आपकी जीभ की नोंक पर रुका हुआ उत्तर सूंघ सकती हूँ,’ सरस्वती ने

करीब आकर कहा।

'आप गलत कह रही हैं,' ब्रह्मा पीछे हट गए।

'मैंने जैसे ही प्रश्न किया आपने मन में एक नाम आ चुका था।'

'मैंने कुछ नहीं सोचा।'

'मुझे अपनी पसंद बताइए, प्रभु।'

'रुक जाओ, सरस्वती।'

'बस करो।'

'मुझे बताइए।'

'किंतु ...'

'मुझे बताइए।'

'अगर मुझे चुनना ही पड़े, तो वे लक्ष्मी हैं।'

सरस्वती चुप हो गईं। अगले दिन, वह किसी को नहीं मिली। ब्रह्मा ने ऊपर-नीचे सब जगह खोजा किंतु कुछ पता नहीं लगा। देवी ने देवता को त्याग दिया था। कई दिनों के बाद, सभी देवता भूलोक पर प्रकट हुए। ब्रह्मा एक यज्ञ कर रहे थे और देवतागण उस यज्ञ में भाग लेने के लिए सम्मिलित हुए थे। यज्ञ-वेदी का निर्माण सप्तकोणीय तारे के रूप में किया गया था, जिसके प्रत्येक कोण पर एक-एक सप्तऋषि विराजमान थे। गंगा-तट से जल और इंद्र के उद्यान से पुष्प लाए गए थे। अग्निदेव, वेदी को प्रज्ज्वलित कर रहे थे और वायुदेव, अग्नि की लपटों का पोषण कर रहे थे। विष्णु, अपना शंख और शिव, डमरू बजा रहे थे। नारद ने मंत्र जपना शुरू ही किया था कि वे स्तंभित हो गए।

तभी एक वीणा का स्वर गूँजने लगा जिसमें अन्य सारी आवाज़ें दब गईं। सरस्वती इस तरह प्रकट हुईं जैसा किसी ने पहले नहीं देखा था। वह वीणा के तारों को ऐसे खींच रही थीं मानो किसी पशु की आँत को खींच रही हों। वीणा, पीड़ा से कराह और गुस्से से गुर्रा रही थी। सरस्वती की अँगुलियों से खून बह रहा था। उनकी आँखें दहक रही थीं। वीणा के स्पंदन से तीनों लोक काँपने लगे। उन्होंने अपने वाद्य को अस्त्र में बदल दिया था। संगीत, अपशकुन की तरह सुनाई पड़ रहा था। सहसा ब्रह्मांड ऐंठने लगा मानो किसी ने उसकी रीढ़ तोड़ दी हो। सरस्वती की वीणा का एक तार टूट गया था।

'मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ। रुक जाओ, सरस्वती,' ब्रह्मा ने निवेदन किया। 'मेरी बात सुनो।'

'मैं आपकी बात सुनूँ और आप मुझे अपमानित करते रहें? पहले निजी तौर पर और फिर सार्वजनिक रूप से? मैं देख रही हूँ कि यहाँ श्री हरि, लक्ष्मी के साथ विराजमान हैं, महादेव के साथ पार्वती हैं, इंद्र तथा इन्द्राणी भी साथ आए हैं। स्वाहा के साथ अग्नि हैं। किंतु आपके

साथ कोई नहीं है। आप अपनी पत्नी को स्वीकार नहीं करना चाहते।'

'मैंने तुम्हें हर जगह खोजा किंतु तुम नहीं मिलीं। मुझे उम्मीद थी कि तुम आज अवश्य लौट आओगी और तुम सचमुच आ गई हो। मेरे साथ रहो। मेरा हाथ पकड़ो ताकि हम यज्ञ शुरू कर सकें।'

'मैं इस यज्ञ को नष्ट करने आई हूँ,' सरस्वती ने गुस्से से कहा।

सारे देवता घबरा गए। ब्रह्मा ने भौंहें चढ़ा लीं। 'नष्ट करने?'

'हाँ। मैं सती नहीं हूँ जो यज्ञ की आग में कूद गई थीं क्योंकि उन्हें आमंत्रित नहीं किया गया था। मैं सरस्वती हूँ, मैं इस यज्ञ को नष्ट कर दूँगी।'

ब्रह्मा ने उत्तर दिया, 'हम ब्रह्मांड की भलाई के लिए यज्ञ कर रहे हैं। मैं जानता हूँ कि तुम भी यही चाहती थीं। मेरे प्रति तुम्हारे मन में जो क्रोध है, उसका दुष्प्रभाव दूसरों के प्रति व्याप्त करुणा पर मत होने दो।'

'आपने मेरी अपेक्षा इन्हें चुना था,' सरस्वती ने लक्ष्मी की ओर इशारा करके कहा। 'ज्ञान की अपेक्षा धन को। रचनात्मकता की अपेक्षा समृद्धि को। आध्यात्मिकता की अपेक्षा भौतिकता को। मैं यह देखना चाहती हूँ कि क्या ये सब मिलकर आपके यज्ञ की रक्षा कर सकते हैं।'

'मैं जब तक उपस्थित हूँ, इनकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी,' एक स्वर गूँजा।

देवता देखने लगे। सरस्वती ने भी देखा। यह विष्णु की आवाज़ थी।

'आपने वीणा में अव्यवस्था को स्थान दिया जिससे आपके राग अशुद्ध हो गए। इसने सृष्टि के माधुर्य को दूषित किया है। आपके भीतर मौजूद ज्ञान के सागर को मैला कर दिया है। आप कल्याणकारी यज्ञ को संकट में डालने जा रही हैं और मैं आपको इसकी अनुमति नहीं दूँगा। इस यज्ञ को ध्वस्त करने से पूर्व आपको मुझे नष्ट करना होगा।'

देवी सरस्वती ज्वालामुखी की तरह भड़क उठीं। उनके वस्त्र काले पड़ गए थे। उनका कमल भी काला हो रहा था। हंस काला होने लगा था। वह अपना ही रूप उलट रही थीं। सरस्वती और विष्णु एक-दूसरे के सामने आए तो ब्रह्मांड उनसे प्रार्थना करने लगा। देवता ने देवी को, पुरुष ने प्रकृति को चुनौती दी थी। ब्रह्मांड के दो भाग परस्पर युद्ध करने जा रहे थे। सरस्वती ने तुरंत माया-शक्ति को एक विशाल नारकीय अग्नि के रूप में प्रकट कर दिया, किंतु विष्णु ने उसे तत्काल बुझा दिया। फिर सरस्वती ने कापालिका शक्ति प्रकट की किंतु विष्णु ने उसे भी विफल कर दिया। इसके बाद देवी ने कई भयानक शक्तियों का आह्वान करते हुए कालिका शक्ति को उत्पन्न किया परंतु विष्णु के सामने वह शक्ति भी विफल हो गई। देवी क्रोध से जल रही थीं। उनकी आँखें खून की तरह लाल थीं। उनके केश खुले थे। हंस चिल्ला रहा था। कमल मुरझा चुका था। सबके देखते-देखते सरस्वती का रूप बदलने

लगा। वह तरल हो रही थीं तथा उनका हिम-प्रतिमा जैसा शरीर पिघल रहा था। उसने एक विशाल भँवर का रूप धारण कर लिया जिसने धरती में एक विशाल कुंड बना दिया और देवी उसे जल से लबालब भर रही थीं।

'यह क्या कर रही हैं?' पार्वती ने पूछा।

'नदी में परिवर्तित हो रही हैं,' ब्रह्मा ने उत्तर दिया। 'वह यज्ञ को नष्ट नहीं पाई इसलिए अब इसे डुबाना चाहती हैं।'

वहाँ अब देवी नहीं थीं। केवल एक जलधारा थी जो क्रूरतापूर्वक यज्ञ-वेदी की ओर बढ़ रही थी। भूलोक की त्वचा को छील रही थी। पत्थरों को धूल में मिला रही थी। उसने क्रुद्ध रूप धारण कर लिया था मानो पृथ्वी की शिराओं में रक्त धधक रहा हो। उस धारा का प्रवाह इतना प्रचंड था कि लगा जैसे वह यज्ञ को रसातल में ले जाएगी। विष्णु उसकी ओर बढ़ने लगे।

'क्या श्री हरि उसे शांत कर पाएँगे?' लक्ष्मी ने पूछा।

शिव ने सिर हिलाया। 'जैसे मैंने गंगा को शांत किया था। जैसे काली को शांत किया था।'

विष्णु नदी के मार्ग में लेट गए। उन्होंने अनंत शयन की मुद्रा धारण कर ली किंतु उन्हें नींद नहीं आई। वे देख रहे थे। वे जल-प्रवाह को तेज होता देख रहे थे। सरस्वती अपने तरल रूप में रोष के साथ आगे बढ़ रही थी। वह और करीब आ गई। उसने बाढ़ का रूप धारण कर लिया था। वह और निकट आ चुकी थी। उसने लहर की तरह गरजना शुरू कर दिया। वह तटों के ऊपर से छलकने लगी। वह पहले से भी निकट थी। उसने धरती को जैसे चीर दिया था। और करीब। यह दृश्य देखकर लक्ष्मी घबरा गईं। देवता झेंप गए। विष्णु से ज़रा-सी दूरी पर आकर नदी सहसा मुड़ गई और दाहिनी ओर बहने लगी। उसके प्रवाह से धरती में गड्ढा हो गया जिससे होते हुए वह पाताल लोक में चली गई। वह ब्रह्मांड की आँतों में लुप्त हो गई। देवताओं ने राहत की साँस ली। सब आश्चर्य से देख रहे थे। सरस्वती स्वयं को रिक्त कर रही थीं। देवी ने भगवान विष्णु के समक्ष समर्पण कर दिया था।

'देवता ने फिर से देवी पर नियंत्रण पा ही लिया,' पार्वती ने शिव की ओर देखकर कहा।



शिव ने देवी पार्वती को पुष्प अर्पित किया और बोले, ‘देवी ने भी महिषासुर पर अंकुश लगाया था। देवी ने रक्तबीज को भी नियंत्रित किया था। एक देवता ने भी दूसरे देवता को नियंत्रित किया था जब मैंने शरभ के रूप में नृसिंह को शांत किया था। और श्रीहरि ने मेरे रुद्र तांडव को शांत किया था। यह देवता या देवी की बात नहीं है, बल्कि यह संसार के लिए संकट बने विष का प्रतिकार करने की बात है। और विष का लिंग नहीं होता!’

65

परशुराम अवतार



कौन-सा?

ऋषि जमदग्नि अपने पुत्रों को देख रहे थे। वे पाँच हृष्ट-पुष्ट बालक उनके आश्रम में परिश्रमरत थे। वे जमदग्नि के लिए संसार की किसी भी अन्य वस्तु से अधिक मूल्यवान थे। फिर भी वही कष्ट उन्हें बार-बार सता रहा था।

इनमें से कौन-सा?

जमदग्नि को अपनी माँ सत्यवती की बात याद आ रही थी जो उन्होंने बहुत पहले कही थी कि कैसे उन्होंने गलत पात्र वाला चावल खा लिया था और पिता ऋचीक ने बाद में इस विषय में क्या भविष्यवाणी की थी।

मैं केवल इतना कर सकता हूँ कि इसका प्रभाव एक पीढ़ी के बाद होगा... इसलिए हमारा पुत्र मेरी इच्छानुरूप ब्राह्मण होगा....

जमदग्नि बड़े होकर महान ऋषि बने। उनका आश्रम ज्ञान प्राप्त करने वाले और जीवन को जानने के इच्छुक अनेक लोगों के लिए अभ्यारण्य बन गया था। परंतु ऋचीक ने एक और भविष्यवाणी भी की थी।

उनका पुत्र एक विकट योद्धा बनेगा...

और इसलिए जमदग्नि अपने पुत्रों को देखते हुए सोच रहे थे कि उन पाँच में से किसकी नियति में योद्धा बनना लिखा था। किसके रक्त में ब्राह्मण से अधिक क्षत्रिय तत्त्व था। किसकी आँखों में धर्मनिष्ठा से अधिक लगन थी।

कौन-सा वाला? कौन-सा?

जमदग्नि सोच रहे थे कि क्या शरीर भीतर छिपी आत्मा को धोखा दे सकता है।

इनमें से कौन-सा?

इसी बीच पास की एक नदी पर उनकी पत्नी रेणुका जल का पात्र भर रही थीं। वह न केवल अपने परिवार के प्रति समर्पित थी अपितु जमदग्नि के प्रति भी पूरी तरह निष्ठावान थीं। उनकी पवित्रता इतनी प्रबल थी कि वे जिस पात्र में पानी लाती थीं, वह कच्ची मिट्टी का बना होता था जो केवल रेणुका की पवित्रता की शक्ति से अटूट रहता था। उस दिन वह जैसे ही नदी तट की ओर मुड़ी, दो गंधर्व आकाश मार्ग से जा रहे थे। उनके शरीर सुडौल और मुस्कान मनमोहक थी। एक क्षण के लिए रेणुका की नज़र उनसे मिल गई और उनके भीतर सिहरन-सी हुई। कुछ परिवर्तन-सा हुआ। कुछ ऐसा जो उन्हें पहले कभी महसूस नहीं हुआ था।

चटाक!

रेणुका का पात्र चकनाचूर हो गया। जिस काम-भाव ने रेणुका को दुर्बल कर दिया था उसी भाव के कारण पात्र की मिट्टी भी कमजोर हो गई। उनकी अंगुलियाँ घड़े को फिर से आकार देने का प्रयास करने लगीं किंतु वह उनका प्रयास व्यर्थ गया। पात्र टूटकर नदी में विलीन हो गया। रेणुका समझ गईं।

उन्हें पता चल गया है...

वह सारा दिन नदी के पास बैठी रहीं। जब शाम को घर लौटीं तो जमदग्नि उनका मार्ग रोककर खड़े हो गए।

'रेणुका, तुम्हारे कपड़े मिट्टी से सने हैं।'

'हाँ।'

'मुझे प्यास लगी थी।'

'शायद, मुझे भी।'

ऋषि ने अपने पाँचों पुत्रों को बुलाया। 'तुम्हारी माँ ने अपनी पवित्रता खो दी है। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि इसका सिर काट दो। इसमें कदापि हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए।'

'पिताजी!'

'एक ही वार में!'

चार पुत्र तो घुटनों के बल बैठ गए। 'यदि उन्होंने पाप किया है, तो आप हमसे पाप करने के लिए क्यों कह रहे हैं? हम उस स्त्री को कैसे मार सकते हैं जिसने हमें जीवन दिया है और--'

सहसा वे पीछे हट गए। रेणुका का सिर नीचे लुढ़क चुका था। उनके प्राण निकल रहे थे और उनका धड़ जमीन पर रेंग रहा था। जमदग्नि के सबसे छोटे पुत्र के हाथ में रेणुका के रक्त से लथपथ कुल्हाड़ा यानी परशु था।

'राम,' वे सब चिल्लाए। 'यह तुमने क्या कर डाला?'

‘मैंने पिताजी की आज्ञा का पालन किया है।’

जमदग्नि ने चारों को देखा। उनकी आँखें लाल हो गईं। चारों पुत्र मूर्तियों में बदल गए। उनका भय पत्थर में बदल चुका था। जमदग्नि ने मुड़कर राम के हाथ से कुल्हाड़ी छीन ली।

‘तो वह तुम हो—ब्रह्मक्षत्रिय, जिसका जन्म टल गया था और जो मेरे पिता के नुस्खे के कारण अब पैदा हुआ है। केवल तुम ही बिना पश्चाताप के माँ का सिर काट सकते थे। इस भीषण संहार के बावजूद केवल तुम इतने शांत खड़े रह सकते हो। मुझे तुमसे घृणा हो रही है। तुमसे डर भी लग रहा है। तुम्हारी कुल्हाड़ी ने रक्त का स्वाद चख लिया है। अब ये और रक्त की माँग करेगी और तुम रक्त से इसका पोषण करते रहोगे। इसे फेंक देना चाहिए। मुझे इसी से तुम्हारे टुकड़े कर देने चाहिए। परंतु तुमने मुझसे बिना कोई प्रश्न किए मेरी आज्ञा का पालन किया है। पिता के प्रति ऐसा सम्मान अनुकरणीय है। तुम्हारे दूसरे भाई इसमें विफल रहे और उसके लिए मैंने उन्हें दंड दे दिया है। किंतु मैं तुम्हारे साथ क्या करूँ? मैं तुम्हें दो वरदान देता हूँ। कुछ भी माँगो।’

राम ने हाथ जोड़ लिए। ‘मेरी माँ को पुन: जीवित कर दीजिए। और मेरे भाइयों को पत्थर से दोबारा मनुष्य बना दीजिए।’

ऋषि जमदग्नि एक क्षण के लिए चकित रह गए। उन्होंने अपने परिवार को पुनर्जीवित कर दिया और वह परशु फिर से अपने पुत्र के हाथ में दे दिया।

‘मेरा तुमसे डरना गलत था, राम। तुम्हारा शरीर क्रूर है किंतु आत्मा नहीं। तुम्हारे परशु के पास विवेक है। यह बहुत से लोगों का वध तो करेगा लेकिन केवल उनका, जो धर्म के लिए संकट बनेंगे। यह महाकाली की भांति रक्त पिएगा किंतु केवल दुष्टों का। यह तुम्हारा चक्र है। तुम्हारा वज्र। यह तुमसे जुड़ गया है और इसलिए मैं इसका नाम तुम्हारे नाम के साथ जोड़ रहा हूँ। राम, मैं तुम्हें एक नया नाम देता हूँ।’

और इस तरह राम बन गए परशुराम! विष्णु का एक और अवतार।

परशुराम, महेन्द्र पर्वत पर रहते थे। उस समय कार्तवीर्य अर्जुन नामक एक हैहय राजा अपने दल-बल के साथ जमदग्नि के आश्रम में पहुँचा। एक नज़र में देखने पर वह साधारण व्यक्ति लगता था किंतु वास्तव में वह सुदर्शन का मानव अवतार था। कुछ समय पहले, सुदर्शन चक्र को अपनी शक्ति पर इतना गर्व हो गया कि वह स्वयं को विष्णु के समान पूज्य मानने लगा। तब उसका घमंड दूर करने के लिए विष्णु ने उसे कार्तवीर्य अर्जुन के रूप में पृथ्वी पर जन्म लेने को कहा। चक्र के जिस तरह अनेक अरे होते हैं, उसी तरह कार्तवीर्य अर्जुन की एक हजार भुजाएँ थीं जिसके कारण उसका एक नाम सहस्त्रार्जुन भी था। जमदग्नि के परिवार ने राजा के लिए भोजन की व्यवस्था की। राजा ने देखा कि ऋषि के पास एक दिव्य गाय है जो उनकी हर आवश्यकता को पूरा करती है। ईर्ष्या के वशीभूत होकर

कार्तवीर्य ने जमदग्नि से गाय की माँग की।

'मेरे बाणों को अग्निदेव की शक्ति प्राप्त है,' कार्तवीर्य ने गुस्से से कहा। 'प्रत्येक बाण की नोंक पर अग्नि की लपट विद्यमान है जो आपकी कुटिया को चिता में बदल सकती है।'

'महाराज, चिता की ओर तो हम सभी अग्रसर हैं,' जमदग्नि ने प्रतिवाद किया। 'नदी को समुद्र से डरने की क्या आवश्यकता है?'

कार्तवीर्य ने अपनी सेना को हमले का आदेश दे दिया। राजा के सैनिक लोग कुत्तों के झुंड की तरह उन्हीं लोगों को मारने लगे जिन्होंने उन्हें भोजन परोसा था। ऋषि असहाय खड़े रहे। इसी बीच कार्तवीर्य ने जमदग्नि की गाय को पकड़ लिया। कुछ समय बाद, कुपित परशुराम ने कार्तवीर्य के किले को तहस-नहस कर दिया। उन्होंने कार्तवीर्य की भुजाओं को एक-एक करके काट डाला और फिर अपना परशु, राजा की गर्दन पर रख दिया।

'तुम्हारा समय हो गया, सुदर्शन,' परशुराम ने कहा। 'तुम्हारा सिर अब उसी तरह कटेगा जैसे तुम दूसरों का सिर काटते हो।'

विष्णु के परशु ने विष्णु के चक्र को काट दिया और परशुराम, गाय लेकर वापस लौट आए। दुर्भाग्य से, रक्तपात समाप्त नहीं हुआ था। परशुराम की अनुपस्थिति में, एक दिन कार्तवीर्य के पुत्रों ने फिर से आश्रम पर हमला बोला और जमदग्नि समेत सभी को मार डाला। उन्होंने जमदग्नि पर इक्कीस वार करके उनकी हत्या की थी। परशुराम ने फिर से प्रतिशोध लिया और कार्तवीर्य के सभी वंशजों को मौत के घाट उतार दिया। शवों के ढेर के सामने खड़े होकर राम ने अपने परशु को माथे से लगाया।

'मैं यह शपथ लेता हूँ कि हर वह क्षत्रिय जो दूसरों पर अत्याचार करेगा, मेरे परशु का भोजन बन जाएगा।'

अपने प्रण के अनुसार, परशुराम ने ऐसा नरसंहार आरंभ किया जो भूलोक पर इससे पहले कभी नहीं हुआ था। उनका परशु विनाश का साधन बन गया और परशुराम ने पृथ्वी को इक्कीस बार अधर्मी राजाओं से मुक्त करवाया। जमदग्नि के शरीर पर भी इक्कीस ही वार हुए थे। इस नरसंहार के समाप्त होने तक परशु ने इतना खून बहा दिया था कि रक्त के पाँच सरोवर बन गए। उस विशाल क्षेत्र का रंग लाल हो गया और उसे नाम मिला, स्यमंतपंचक, यानी पाँच लाल सरोवरों वाली भूमि। द्वापर युग में उसी स्थान पर जब एक और नरसंहार हुआ तो उस सरोवर का रंग और भी गहरा लाल हो गया। उस नरसंहार का कारण एक घृणित दृश्य था जिसमें एक स्त्री की शुचिता पर प्रश्न उठाया गया था।

वह नरसंहार था, महाभारत युद्ध।

66
गौतम ने प्रकट की नदी



ऋषि गौतम नीचे भूमि को और ऊपर आकाश को देख रहे थे।

दोनों भाग सूख चुके थे। न बादल दिख रहे थे, न नदियाँ बह रही थीं। चारों ओर केवल सूखा था जो महामारी की तरह फैलता जा रहा था। वह देवी काली की जिह्वा के समान जल की एक-एक को बूँद चूस चुका था। गौतम ने चारों ओर जीवन को धूल में बदलते देखा तो उन्होंने वरुण का आह्वान किया।

‘भूलोक नष्ट हो रहा है। आपने हमारा साथ क्यों छोड़ दिया?’

‘मैं असहाय हूँ,’ जल देवता ने आह भरते हुए कहा। ‘इंद्र, वर्षा के देवता हैं। यदि उन्होंने अपना अनुग्रह रोक रखा है तो मैं इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता।’

‘क्या मिट्टी हमें वो नहीं दे सकती, जो आकाश नहीं दे पा रहा?’

वरुण ने सिर हिलाया। जल्द ही, ब्रह्मगिरि में स्थित गौतम के आश्रम पर एक झील प्रकट हो गई जिसमें जल की अंतहीन आपूर्ति उपलब्ध थी। सैकड़ों लोग उसके तट पर आकर जी-भर कर पानी पीते थे। जल्द ही वह स्थान, एक बस्ती में बदल गया। गौतम और उनकी पत्नी अहल्या ने सबके लिए वहाँ व्यवस्था कर दी थी। एक जलाशय ने असंख्य लोगों के जीवन, असंख्य घरों को एक साथ बाँध दिया था। इस प्रकार चौबीस वर्ष बीत गए किंतु सूखा समाप्त नहीं हुआ। सरोवर के किनारे खड़े होकर गौतम मुनि मुस्कुरा रहे थे।

‘सभी को यहाँ संतुष्ट देखकर अत्यंत हर्ष होता है।’

‘सचमुच,’ अहल्या ने सहमति व्यक्त की। ‘आशा है कि इनमें से कोई यह स्थान छोड़कर नहीं जाएगा। हम सब यहाँ मिलकर रह सकते हैं।’

‘हम अवश्य रहेंगे। सभ्यताएँ, हमेशा नदियों के किनारे ही पनपती हैं और यहाँ भी ऐसा ही होगा। एक बार ये...’

सहसा वह रुक गए। आकाश से बूँदें बरस रही थीं। नीला आकाश, काला होने लगा था। बादल उमड़ रहे थे। बिजली की चमक और गड़गड़ाहट ने बादलों को चीर दिया। मूसलाधार वर्षा आरंभ हो गई और सूखे को अपने साथ बहा ले गई। गौतम ने इतने लोगों को आश्रय देकर जो यश अर्जित किया था उसे देखकर इंद्र को ईर्ष्या हो हुई और इसी कारण उन्होंने अचानक मूसलाधार वर्षा कर दी थी। लोगों को अब सरोवर की आवश्यकता नहीं थी इसलिए वहाँ रहने वाले परिवार उस स्थान को छोड़ कर जाने लगे। गौतम और अहल्या, बूढ़े पक्षियों के जोड़े की भांति अपने घोंसले को एक-एक करके खाली होता देख रहे थे। अब वे अकेले रह गए थे। उन्होंने अपने निर्जन हो चुके उद्यान को देखा।

क्या यह दृष्टि भ्रम था?

'आपने उन्हें रोका क्यों नहीं?' अहल्या ने पूछा।

'यह प्रकृति का नियम है,' उन्होंने जवाब दिया। 'जो आया है, उसे एक दिन जाना ही है। हमारा यह सोचना गलत था कि हम उन्हें रोक लेंगे।'

वहाँ केवल तपस्वियों का एक दल शेष रह गया था। उन्हें डर था कि वे भी उस स्थान को छोड़ कर गए तो गौतम उन्हें शाप दे देंगे।

उनमें से एक ने धीरे-से कहा, 'गौतम मुनि सबके चले जाने से निश्चित ही नाराज होंगे। अब यहाँ केवल हम बचे हैं। उनका सारा कोप हम पर बरस जाएगा।'

'हम क्या करें?' दूसरों ने पूछा।

'मैंने कुछ सोचा है। मुझे विश्वास है कि यह युक्ति काम कर जाएगी।'

अगले दिन, गौतम ने देखा कि उनके खेत में एक दुर्बल गाय चर रही थी। उसने गौतम का सारा जौ खा लिया था। गौतम उस गाय पर चिल्लाए तो अन्य तपस्वी भी साथ हो लिए।

'यह ऐसे नहीं हिलेगी,' उन्होंने कहा। 'आपको इसे बाहर भगाना होगा।'

ऋषि गाय के पास गए और उन्होंने घास का एक तिनका चुभा दिया।

'हटो!'

वह गाय जमीन गिरी और मर गई। इससे पहले कि गौतम कुछ समझ पाते, सभी तपस्वी उस निर्जीव पशु के चारों ओर जमा हो गए।

'यह आपने क्या किया?'

'आपने गाय को मार दिया!'

'यह ब्राह्मणों के लिए अपमान की बात है!'

'आप ऐसा कैसे कर सकते हैं?'

गौतम हैरान-परेशान खड़े थे। वे इस बात से अनभिज्ञ थे कि यह तपस्वियों द्वारा रची गई चाल थी। गौतम ने अपना बचाव करने की बहुत कोशिश की। 'मैंने तो इसे छुआ तक नहीं।

यह कैसी निरर्थक बात है!'

किंतु तपस्वी सिर हिलाते रहे।

'यह पाप है। आपने खुद को और अपने कुल को कलंकित किया है। यह स्थान एक मृत गाय के बोझ से दूषित हो चुका। हम अब यहाँ नहीं रह सकते अन्यथा हमारा भी बहिष्कार कर दिया जाएगा।'

गौतम ने हामी भरते हुए कहा, 'यह सच है। आप जब चाहें, यहाँ से जा सकते हैं। किंतु मुझे बताइए कि इसका प्रायश्चित कैसे करूँ?'

'शिव से प्रार्थना कीजिए,' तपस्वियों ने आग्रह किया और वहाँ से चले गए।

गौतम ने एक शिवलिंग पर ध्यान लगाकर तपस्या आरंभ कर दी। जल्द ही भगवान शिव प्रकट हुए।

'महादेव, आप आदरणीय नंदी की सवारी करते हैं,' उन्होंने अपनी आँखें नीची करते हुए कहा। 'मेरे हाथों एक गाय की हत्या हो गई है। क्या आप मुझे क्षमा करेंगे?'

शिव मुस्कुराए और उन्होंने अपने सिर से एक बाल तोड़कर ऋषि को दिया। 'यह लो, गौतम।'

'यह केश तो गीला है।'

'हाँ। गंगा के बचे हुए जल से गीला है। इसे गाय के निकट रख दो; सब ठीक हो जाएगा।'

'किंतु मेरे द्वारा किया गया पाप, महादेव?'

'सब ठीक हो जाएगा।'

गौतम ऋषि ने जैसे ही वह बाल, गाय के निकट रखा, उसमें से जल की एक धारा निकल पड़ी। कुछ ही देर में, जल की अनेक धाराएँ उत्पन्न हो गईं और वहाँ एक जलाशय बन गया। जल की धारा ने जैसे ही गाय को स्पर्श किया, वह फिर से जीवित हो उठी।

'तुम जीवित हो गईं!' गौतम ने पशु को गले लगाते हुए कहा।

'मैं आपकी दृष्टि का भ्रम हूँ,' गाय ने कहा।

जलाशय फैलता गया। इस बीच गाय ने गौतम मुनि को बताया कैसे तपस्वियों ने उन्हें धोखा दिया था। तब उसी धारा के जल को हथेलियों में भरकर ऋषि ने तपस्वियों को शाप दिया। 'वे तपस्वी ठग और झूठे बनकर फिर से जन्म लेंगे और कलियुग के आरंभ की घोषणा करेंगे।'

इसके बाद वह नदी, उत्तर दिशा में बहने वाली गंगा के विपरीत, दक्षिण दिशा की ओर बहने लगी। गौतम से उत्पन्न होने के कारण वह गौतमी गंगा कहलाई। फिर उसे एक और सुंदर उपनाम मिला।

गोदावरी।

वह जो जल की दात्री है।

67
विष्णु ने मुर को चकमा दिया



दनु के वंश में मुर नाम का एक दानव हुआ। अन्य दैत्यों की तरह, वह भी ब्रह्मा से वरदान पाने का प्रयास कर रहा था। वह ब्रह्मा से यह वरदान चाहता था कि वह जिसे हाथ से स्पर्श करे, उसकी मृत्यु हो जाए।

'तुम राक्षस, सारी व्यवस्था को उलटना क्यों चाहते हो?' ब्रह्मा ने प्रश्न किया। 'स्पर्श एक सुंदर एहसास है। यह उत्तेजित करता है, इससे आराम मिलता है। यहाँ तक कि इसकी मदद से सुना और देखा भी जा सकता है। यह तन के प्रति प्रेम का भाव जागृत कराता है। इसे विनाश का साधन क्यों बनाया जाए?'

'क्योंकि मैं सर्वशक्तिशाली से भी अधिक शक्तिशाली होना चाहता हूं। आपसे प्रार्थना है कि आप मुझे यह शक्ति प्रदान कर दीजिए।'

'कैसा रहे यदि मैं तुम्हें यह वरदान दे दूं कि तुम जिस वस्तु को छूओगे वह सोना बन जाएगी? ठोस सोना। एक बार सोचकर देखो। कैसी अद्भुत क्षमता! पृथ्वीवासी इसके लिए कोई मुहावरा भी बना सकते हैं। वे इस काम में अत्यंत दक्ष हैं। संभव है कि वे इस शक्ति को "मुर स्पर्श" कहने लगें।'

'लेकिन इससे मैं तो भूखा मर जाऊंगा,' दानव ने उत्तर दिया। 'यहाँ तक कि मेरा भोजन तक सोने में बदल जाएगा। पीने का पानी और मदिरा भी।'

ब्रह्मा मुस्कुराए। 'मैंने जितना सोचा था, तुम उससे कहीं अधिक बुद्धिमान हो। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो!'

वरदान पाकर हर्षित मुर विनाशकारी स्पर्श-यात्रा पर निकल पड़ा। उसके हाथ जिसे स्पर्श करते, उसी के प्राण हर लेते थे। मनुष्य और पशु। देव और दैत्य। वह एक के बाद एक सबको नष्ट करता गया। इस तरह मृत्यु के चिह्न पीछे छोड़ता हुआ मुरा, राजा रघु के महल

के द्वार पर पहुंच गया।

दानव ने मुस्कुराते हुए कहा, 'मैंने सुना है कि तुम्हें द्वंद्व का बहुत शौक है। मेरे साथ दो-दो हाथ करोगे?'

रघु, मुर को मिले वरदान से अनजान नहीं था। मुर के मारक स्पर्श की कहानियाँ अब तक ब्रह्माण्ड के हर कोने तक पहुँच चुकी थीं। राजा रघु को तुरंत एक उपाय सूझ गया।

'मैं तो साधारण-सा नश्वर प्राणी हूं। मुझे परास्त करके तुम्हें क्या मिलेगा? जाओ और यमराज से युद्ध करो।'

'यमराज से क्यों?'

'मृत्यु से कोई नहीं जीत सकता। इसलिए तुम मृत्यु पर विजय पाने के बारे में सोचो। वह कैसी शानदार उपलब्धि होगी! तुम्हारा नाम की महिमा अनंत काल तक रहेगी।'

दानव को यह सुझाव बहुत पसंद आया। जैसे ही यह समाचार फैला कि मुरा, नरक की ओर बढ़ रहा है, यम अपने भैंसे पर सवार होकर वैकुंठ की ओर भाग लिए।

'मैं क्या करूँ?' उसने विष्णु के सामने काँपते हुए पूछा।

'कुछ नहीं। उसे मेरे पास भेज दो।'

कुछ ही देर में मुर ने मृत्यु के देवता को चुनौती दे डाली परंतु यमराज के पास उसका उत्तर पहले से तैयार था।

'मैं तुम्हारे साथ तभी द्वंद्व कर सकता हूँ यदि मेरे स्वामी मुझे इसकी अनुमति देंगे।'

'स्वामी? तुम्हारा भी कोई स्वामी है?'

'अवश्य है। श्री हरि, मेरे स्वामी हैं।'

'तो मैं पहले उसी से निपटूंगा और फिर तुम्हारे पास आऊँगा।'

यम ने मुस्कुराते हुए कहा, 'मैं प्रतीक्षा करूँगा।'

जल्द ही, दानव मुर विष्णु के सामने पहुँच गया और उसने विष्णु को लड़ने के लिए ललकारा।

'चलो, इस द्वंद्व को जल्दी समाप्त करते हैं,' मुर ने कहा। 'तुम्हारा दास यमलोक में मेरी प्रतीक्षा कर रहा है।'

'अवश्य,' विष्णु बोले। 'लेकिन तुम इतने भयभीत क्यों हो, मुरा?'

'मैं? भयभीत? बिलकुल नहीं।'

'लेकिन तुम्हारा हृदय,' भगवान ने संकेत करते हुए कहा।

'मेरा हृदय?'

'वह इतनी तेज धड़क रहा है कि मैं उसे यहां तक सुन सकता हूं।'

'लेकिन मुझे तो कुछ नहीं सुनाई दे रहा।'

‘असंभव। वह डर से बुरी तरह धड़क रहा है। तुम निश्चित ही बहुत डरपोक हो।’

‘मैं डरपोक नहीं हूँ। मुझे कुछ नहीं सुनाई नहीं दे रहा।’

‘इसका अर्थ यह कि तुम्हें इस आवाज़ की आदत हो गई है। ऐसा तब होता है जब कोई एक ही आवाज को लगातार सुनता है। इसका मतलब है कि तुम्हारा हृदय हर समय इसी तरह धड़कता रहता है। यह हमेशा ही भयभीत रहता है। क्यों, मुरा? तुम्हें सदा भयभीत क्यों रहते हो?’

‘मैं भयभीत नहीं हूँ!’

‘लेकिन तुम्हारा हृदय...’

‘हृदय? क्या हृदय?’

मुर ने गुस्से से अपना हाथ अपनी छाती पर रख लिया। विष्णु हँस रहे थे। तीनों लोक हँस रहे थे। मुर मर चुका था। वह जैसे ही ही नीचे गिरा, ब्रह्मा प्रकट हुए और उन्होंने विष्णु को प्रणाम किया।

‘आपने फिर से कर दिखाया, श्री हरि। आपने एक और संकट को निष्क्रिय कर दिया। आपको एक और नाम मिल गया है। आज से आप मुरारी के नाम से भी पूजे जाएँगे। वह, जिसने मुर का संहार किया।’

‘स्पर्श!’ विष्णु मुस्कुराए। ‘यह कितना सुंदर एहसास है!’

68

नारद का नया चेहरा



‘मैंने उन्हें विफल कर दिया! उन सबको असफल कर दिया!’

नारद की हरकतों, उनके चेहरे के विकार और अतिशयोक्तिपूर्ण क्रियाओं को देखकर शिव हँस रहे थे। देवर्षि ने कैलाश पहुँचने के बाद से अपने बारे में बोलना बंद नहीं किया था। नारद, शिव को बता रहे थे कैसे उन्होंने पर्वत की तलहटी में ध्यान करना शुरू किया था। कैसे इंद्र ने घबराकर उनकी तपस्या को भंग करने के लिए अप्सराओं को भेजा और फिर कैसे नारद हर प्रलोभन से ऊपर उठ गए थे।

‘मुझे प्रलोभन देना, सूर्य को बुझा देने से भी कठिन है,’ नारद ने ललकारते हुए कहा। ‘मुझे अपने सम्मान में एक स्तुति की रचना करनी चाहिए कि कैसे मैंने स्वयं देवराज को नीचा दिखाया है।’

शिव देखते रहे और नारद लगातार आत्म-प्रशंसा करते गए। शिव, नारद को यह बताना चाहते थे कि दरअसल, यह उनका प्रभाव था जिसके चलते नारद ने इंद्र के प्रयासों को विफल कर दिया था। और यह कैलाश में व्याप्त योग शक्तियाँ थीं जिन्होंने देवर्षि को वासना की ज्वाला में जलने से बचा लिया था। किंतु शिव ने नारद को भ्रम का स्वाद लेने दिया।

‘यह बड़ी अच्छी कहानी है,’ शिव ने कहा। ‘किंतु मेरा सुझाव है कि आप इसे किसी और को न बताएँ।’

परंतु नारद, अपना हर्ष पूरे संसार में फैलाने के इच्छुक हो रहे थे। वे जल्द ही ब्रह्मा के सामने पहुँचे और उन्होंने शिव से कहा हर शब्द ब्रह्मा के सामने दोहरा दिया। ब्रह्मा ने भी नारद की उत्तेजना को देखकर वही सुझाव दिया।

‘यह अविश्वसनीय है, किंतु आप इस बात को स्वयं तक सीमित रखें।’

दुर्भाग्य से, अपनी उपलब्धि पर चकित देवर्षि नारद को विश्वास हो गया कि शिव और

ब्रह्मा दोनों उनसे ईर्ष्या करने लगे हैं। उन्होंने अब विष्णु के सामने अपनी उपलब्धियों का वर्णन किया और अपनी विजय को और अधिक विलक्षण बनाने के लिए उसमें कुछ नए विवरण जोड़ दिए। विष्णु ने भी प्रशंसा की और नारद का उत्साह बढ़ाया। जैसे ही नारद वहाँ से गए, भगवान मुस्कुरा दिए।

'अहम् ब्रह्मास्मि?'

वैकुंठ से बाहर निकले तो नारद एक अत्यंत आकर्षक नगर में पहुँच गए। वह नगर बादलों पर तैर रहा था और इंद्रधनुष से आच्छादित था। एक शक्तिशाली सेना, उस नगर के स्वर्ण महल की रखवाली कर रही थी। नगर के लोग अपने राजा की पुत्री के स्वयंवर का उत्सव मना रहे थे। उत्सव के बीच से गुजरते हुए, देवर्षि ने राज दरबार में प्रवेश किया। वहाँ युवकों की अनगिनत पंक्तियाँ सजी थीं। सभी विवाह की इच्छा लिए वहाँ आए थे। संगीतकार वाद्य बजा रहे थे और नर्तक झूम रहे थे। परिचारक फूल बरसा रहे थे और राजा सबको उपहार दे रहा था। परंतु नारद आस-पास की हर चीज से मानो अनजान थे। उन्हें एक सुंदर चेहरे के अलावा कुछ नहीं दिख रहा था। उस कन्या का चेहरा।

मुझे इससे प्रेम हो गया है...

एक क्षण में नारद वैकुंठ वापस पहुँचे और विष्णु के चरणों में लेट गए।

'राजकुमारी?' विष्णु ने पूछा। 'आप उस राजकुमारी से विवाह करना चाहते हैं?'

'हाँ, मुझे और कुछ नहीं चाहिए।'

'तो जाइए। उसका स्वयंवर है और आप उसमें भाग लेने के अधिकारी हैं।'

'मुझे अधिकारी नहीं, अपराजेय बनना है। और यह कार्य केवल आप कर सकते हैं।'

'यह कैसे होगा, मुझे बताओ।'

'मुझे अपने समान मनोरम रूप प्रदान कर दीजिए। आपके जैसे अंग। आपके जैसा शरीर। मुझे हरि बना दीजिए।'

विष्णु ने अपनी नीली अँगुली उठाई और देवर्षि को स्पर्श कर दिया। 'तथास्तु!'

नारद पुन: महल में पहुँचे और स्वयंवर में भाग लेने आए लोगों के बीच बैठ गए। राजकुमारी वरमाला हाथ में लिए नारद वाली पंक्ति के पास ही चल रही थी। वह ऊपर देखती और फिर दृष्टि नीचे कर लेती। वह एक-एक करके सबको देखती हुई आगे बढ़ती गई। उसकी धीमी चाल, हृदय में उठ रहे तूफान की गति को झुठला रही थी। नारद सीधे होकर बैठ गए। उनकी पायल बज रही थी। कन्या निकट आ रही थी।

निकट। और निकट। और निकट।

उसकी सुगंध नारद को गुदगुदाने लगी। वह अब ठीक नारद के सामने खड़ी उनके चेहरे को देख रही थी। वह बिना अपने स्थान से हिले देर तक नारद को देखती रही। वह देवर्षि

को ऐसे देख रही थी जैसे उसने वैसा रूप पहले कभी नहीं देखा था। देवर्षि ठीक से श्वास नहीं ले पा रहे थे। समय मानो रुक गया था। राजकुमारी की अँगुलियाँ कस गईं। छाती फूल गई। होंठ तिरछे हो गए। वह मुस्कुरा रही थी। वह नारद को देखकर जिस तरह मुस्कुराई, उसने वैसी मुस्कान वहाँ और किसी को देखकर नहीं बिखेरी थी। नारद उछल पड़े।

उसे जो देख रही है, वह उसे अवश्य पसंद आया है...

वह मुस्कुरा रही है...

मुस्कुरा रही है...

हँस रही है...

हँस रही है?

हँस रही है???

राजकुमारी इतनी जोर से हँस रही थी कि नारद को लगा कि उसके अंदर विस्फोट हो जाएगा। किंतु वह अकेली नहीं थी। पूरा दरबार हँस रहा था। सब अजीब-से उल्लास में भरे झूम रहे थे। नारद की ओर इशारा करते हुए। वे तरह-तरह के चेहरे बना रहे थे। दरबार में कोलाहल बढ़ता जा रहा था। राजकुमारी हँसते-हँसते जमीन पर लोटने लगी। उसका शरीर काँप रहा था और फिर आँखों से पानी आने लगा। वह इतना झूमी कि उसके हाथ से वरमाला भी छूट गई। देवर्षि ने निकट जाकर माला को उठा लिया। राजकुमारी कुछ बुदबुदा रही थी। उसकी हँसी के बीच से दो शब्द बाहर निकलने के लिए संघर्ष कर रहे थे।

'आपका चेहरा ...'

मेरा चेहरा?

नारद घूमे और उन्होंने अपने पीछे रखे जल-पात्र में अपना चेहरा देखा।

मेरा चेहरा...

दिव्यता से परे।

मेरा चेहरा ...

प्रभावशाली व्यक्तित्व किंतु बंदर का चेहरा।

'नारायण!'

अचानक उनके चारों ओर सब कुछ विलीन होने लगा। राजकुमारी। राजा। विवाह के इच्छुक लोग। दरबार। पूरा नगर शून्य में लुप्त हो रहा था। नारद के सामने केवल विष्णु खड़े थे।

'माया।' देवर्षि ने वरमाला को तोड़ डाला। 'आपने फिर माया रची!'

'काफी समय हो गया, नारद। ब्रह्मदेव ने जब से अपना पाँचवां सिर गँवाया तब से माया से आपका सामना नहीं हुआ था। संभवत: इसीलिये आप उसके बारे में भूल ही गए हैं।'

‘किंतु मुझे सचमुच उससे प्रेम हो गया था। क्या प्रेम का कोई अर्थ नहीं है?’

‘प्रेम का महत्त्व है किंतु आसक्ति बुरी है। प्रेम निस्वार्थ है लेकिन आसक्ति स्वार्थपरक है। प्रेम मुक्त करता है परंतु आसक्ति बाँधती है।’

‘क्यों, नारायण? आपने मुझे इतना अपमानित क्यों किया?’

‘क्योंकि आपको अहंकार हो गया था कि आप माया से परे हैं। वे महादेव थे, जिन्होंने इंद्र की चाल को निष्फल किया था किंतु आप इसे समझ नहीं पाए। आपने मान लिया कि आप इच्छाओं से परे हैं। इसलिए मुझे आपको याद दिलाना पड़ा कि आप भी मार्ग से भटक सकते हैं। भ्रम के व्यूह के वशीभूत हो सकते हैं। और माया के शिकार हो सकते हैं जिसे जीतने का आपको भ्रम हो गया था।’

‘किंतु बंदर?’

‘निस्संदेह! आप हरि की तरह दिखना चाहते थे और इस शब्द का एक और अर्थ बंदर होता है। बंदर भी नकल करता है। उसका अपना कुछ नहीं होता; वह केवल दूसरों की नकल करता है। इसी तरह, इस संसार के लोग स्वयं कुछ नहीं करते। आप काँच के टुकड़ों की तरह केवल हमें प्रतिबिंबित करते हैं। हमारे विचारों, हमारे कार्यों, हमारी इच्छाओं को व्यक्त करते हैं। आप कठपुतली की भांति ब्रह्मांड के इस रंगमंच से उसी तरह बँधे हैं, जिस तरह ब्रह्मदेव, महादेव और मैं, परब्रह्म से बँधे हैं।’

नारद हाथ जोड़कर खड़े हो गए।

‘मैंने भूल की है। मैं स्वीकार करता हूँ कि हमारी वास्तविकता को आप नियंत्रित करते हैं, किंतु आपकी माया का रूप थोड़ा कम क्रूर हो सकता था। आपने मेरी भावनाओं का अपमान किया है इसलिए मैं आपको शाप दूँगा। भृगु ने आपको शाप दिया कि आप मनुष्य रूप में जन्म लेंगे और वृंदा ने आपको शाप दिया कि भगवान राम के अवतार में आपको अपनी पत्नी से अलग होना पड़ेगा। आपने मुझे बंदर का चेहरा दिया इसलिए अब मैं आपको शाप देता हूँ कि अपनी पत्नी से अलग होने के बाद आप उनसे तब तक नहीं मिल पाएँगे जब तक कोई बंदर आपकी सहायता नहीं करेगा।’

विष्णु हँस पड़े। ‘नारद, आप अब भी नहीं समझे। मुझे यह शाप आपने नहीं दिया। और न भृगु या वृंदा ने मुझे कोई शाप दिया है। आप तो कहीं हैं ही नहीं। न कोई अन्य स्त्री या पुरुष है। यहाँ केवल मैं हूँ। यह सब मैंने किया है।’

विष्णु गायब हो गए। देवर्षि ने उनकी आवाज़ सुनी।

‘मैं ही स्वयं को शाप देता हूँ।’

69
निमि ने खोई अपनी देह



इस युग में सबसे बुद्धिमान लोगों में से एक, राजा निमि थे। उन्होंने एक यज्ञ आरंभ किया जो एक हजार वर्ष तक चलना था। निमि ने वसिष्ठ से वह यज्ञ आयोजित करने का अनुरोध किया किंतु ऋषि पहले से ही इंद्र के पराशक्ति यज्ञ में व्यस्त थे। उन्होंने राजा निमि से कहा कि वे पाँच सौ साल के बाद ही आ पाएँगे।

दुर्भाग्य से, जिह्वा सबके साथ खिलवाड़ करती है। अलग-अलग मस्तिष्क, एक ही शब्द का भिन्न-भिन्न तरीके से अर्थ निकालते हैं। निमि ने सोचा कि ऋषि वसिष्ठ ने उनके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया है जबकि वसिष्ठ ने सोचा कि राजा निमि उनकी प्रतीक्षा करेंगे।

इसी तरह पाँच सौ साल बीत गए।

वसिष्ठ, निमि के यज्ञ में पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वह यज्ञ, ऋषि गौतम की देख-रेख में चल रहा था। वसिष्ठ को दुविधा और अपमान दोनों का अनुभव हुआ और अंत में उन्हें गुस्सा आ गया। उन्होंने राजा निमि को शाप दे दिया।

'तुम्हारे पास अपना शरीर नहीं रहेगा।'

उनके शब्दों का तुरंत प्रभाव हुआ और निमि की आत्मा, उनके शरीर से बाहर निकल गई। सभा में उपस्थित लोग डर गए और वसिष्ठ से विनती करने लगे। प्रजा रो रही थी, मंत्री आग्रह कर रहे थे। राजा निमि के अलावा सब लोग हाथ जोड़कर खड़े थे। इस तरह अन्यायपूर्ण दंड पाकर निमि को भी क्रोध आ गया और उसने भी पलटकर ऋषि वसिष्ठ को शाप दे डाला।

'जैसे मैंने अपना शरीर खोया है, वैसे आप भी अपना शरीर खो देंगे।'

वसिष्ठ जैसे ही बाहर निकले तो गौतम ने निमि की आत्मा से कहा, 'अब आप यज्ञ कैसे पूरा करेंगे?'

‘मैं अपने सूक्ष्म रूप में ही इस यज्ञ को पूर्ण करूँगा।’

मंत्रोच्चारण फिर से शुरू हो गया। यज्ञ की अग्नि पुन: जल उठी। हवन शुरू हो गया और उसका पुण्य भी अर्जित हो गया। जैसे ही यज्ञ समाप्त हुआ, देवतागण प्रकट हो गए और उन्होंने राजा निमि को उनके निर्जीव स्वरूप में फिर से मिला देने का प्रस्ताव रखा।

‘वसिष्ठ जल्द ही अपना शरीर पुन: प्राप्त कर लेंगे और हम आपके लिए भी यही कामना करते हैं।’

किंतु निमि ने मना कर दिया।

‘त्रिशंकु की तरह इस शारीरिक देह के प्रति मेरी कोई आसक्ति नहीं है। मुझे हाड़-माँस के इस कारागृह से मुक्त रहने दीजिए। मुझे आशीर्वाद दीजिए कि अब से मेरी आत्मा, समस्त प्राणियों की पलकों में निवास करे। मेरे लिए यही वरदान पर्याप्त होगा।’

देवता मुस्कुराए।

‘जैसी आपकी इच्छा। पलकों के बंद होने और खुलने के बीच के अंतराल को अब से निमेष कहा जाएगा।’

सभा निमि की जय-जयकार करने लगी। परंतु अब एक और विपदा आ पड़ी। शरीर के बिना निमि के लिए राज्य करना संभव नहीं था। उनका कोई पुत्र भी नहीं था और राजा का न होना, राज्य के लिए अशुभ माना जाता था। सभा में इसे लेकर बहस शुरू हो गई तब ऋषियों ने राजा वेन के संदर्भ में सप्तऋषियों द्वारा स्थापित उदाहरण को याद किया। राजा वेन की जब मृत्यु हुई थी तो उसका भी उत्तराधिकारी नहीं था। तब वेन के शरीर के मंथन द्वारा उसके उत्तराधिकारी पृथु का जन्म हुआ। वही प्रक्रिया निमि के लिए भी दोहराई गई और वह सफल रही।

निमि से एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

चूँकि उस बालक की उत्पत्ति ऐसे व्यक्ति से हुई थी जिसकी देह नहीं थी, इसलिए उस बालक का नाम विदेह रखा गया। चूँकि वह निमि के शरीर को मँथने से पैदा हुआ था इसलिए उसका एक नाम मिथि भी पड़ गया। चूँकि वह अपने पिता से उत्पन्न हुआ था इसलिए उसे जनक भी कहा जाने लगा। कालान्तर में, इसी राजा को असाधारण तरीके से एक पुत्री प्राप्त हुई जिसे वैदेही, मैथिली और जानकी नाम मिले।

किंतु संसार, उस कन्या को सीता के रूप में याद करता है।

70
लौहजंघ और सप्तऋषि



सात ...

वह सामने उभर आए इंद्रधनुष के रंग नहीं गिन कर रहा था। वह नीचे तालाब में कमलों के समूह भी नहीं गीन रहा था। ऊपर उड़ने वाले गिद्धों के झुंड भी नहीं। वह उन पुरूषों की गिनती कर रहा था जो उसकी ओर आ रहे थे। धवल श्वेत वस्त्र धरण किए सात पुरुष, ऐसे जैसे आकाश से सात तारे गिरे हों। उनकी संख्या देखकर वह खुश था। जितने अधिक यात्री, उतनी अधिक लूट! उसकी दराँती के लिए और रक्त!

वे अब उससे आधे रास्ते की दूरी पर थे।

वह उन पर दृष्टि रखते हुए दबे कदमों से आगे बढ़ रहा था। उसने पेड़ के पीछे से छिपकर उन्हें देखा। उन सातों में कुछ विलक्षण बात थी। वे ऐसे लोग थे जिनसे भटक जाने पर दिशा-निर्देश माँगा जा सकता था। ऐसे लोग, जिनसे भटक जाने पर कुछ भी माँगा जा सकता था।

उनकी चाल धीमी हो गई। वे अब उसकी पहुँच में आ चुके थे।

‘रुको!’ वह उनके मार्ग में कूदकर चिल्लाया। ‘यदि अपनी जान बचाना चाहते हो, तो जैसा कहता हूँ, वैसा करो।’

किंतु उसके शब्दों का सातों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उनकी आँखों में किसी तरह का भय नहीं था। वे शांत थे।

‘अपना कीमती सामान मुझे सौंप दो अन्यथा तुम सबको मार डालूँगा।’

पहला व्यक्ति मुस्कुराया। ‘तुम्हारी दराँती पर सूखे रक्त की पर्त कुछ और ही कहानी कहती है। यह मुझे बता रही है कि हमारे पास जो कुछ है, हम भले ही वह तुम्हें दे दें, फिर भी तुम हमें मार डालोगे।’

वह दाँत दिखाते हुए बोला, 'हाँ, मार डालूँगा।'

'क्या तुम लौहजंघ हो? वही डाकू, जो दुर्भिक्ष के बाद से राहगीरों को लूटता और मारता आ रहा है?' दूसरे व्यक्ति ने पूछा।

'हाँ, मैं वही हूँ।'

'तुम पशुओं की तरह शिकार क्यों करते हो?'

'शिकार करना, शिकार हो जाने से बेहतर होता है। तुम्हारे पास जो है, वह मुझे दे दो तो शायद मैं तुम्हारी मृत्यु को थोड़ा कम पीड़ादायक कर दूँ।'

'किंतु पीड़ा अच्छी होती है,' तीसरे ने उत्तर दिया। 'उसके बाद जीर्णोद्धार संभव है और वह नवीनीकरण में मदद करता है।'

चौथे ने सिर हिलाया। 'जहाँ तक कीमती सामान का प्रश्न है, तो हमारे पास सबसे मूल्यवान वस्तु तो हमारा ज्ञान है। लेकिन तुम इसे लूट नहीं सकते। यदि चाहो तो इसे आत्मसात् अवश्य कर सकते हो।'

लौहजंघ ने दराँती घुमाकर उस व्यक्ति के गले पर रख दी। 'चूँकि तुम्हारे पास मुझे देने के लिए कुछ नहीं है तो लगता है मुझे तुम लोगों के सिर काटने पड़ेंगे।'

'हमारे पास तुम्हारे लिए एक प्रश्न भी है,' पाँचवें व्यक्ति ने कहा। 'हमें उसका उत्तर दे दो, फिर तुम हमारे प्राण ले सकते हो'

'पूछो।'

'हमें लगता है कि तुम अपने परिवार के पालन-पोषण के लिए लोगों को लूटते और उन्हें मारते हो,' छठा व्यक्ति बोला।

'हाँ, मैं उन्हीं के लिए यह काम करता हूँ,' उसने जवाब दिया। 'और वे इसके लिए मेरे आभारी हैं। वे जानते हैं कि मैं क्या काम करता हूँ और मैं जो घर ले जाता उसे वे सहर्ष स्वीकार करते हैं।'

'क्या वे भी तुम्हारे इन पापों के फल को भी सहर्ष स्वीकार करेंगे?'

'फल?'

'मरने के बाद नरक तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। क्या तुम्हारा परिवार तुम्हारे साथ नरक में जलने को तैयार होगा? क्या वे इन जघन्य पापों के मूल्य को साझा करेंगे जो तुम्हें अपने अगले जन्म में चुकाना है? चूँकि तुम यह कार्य उनके लिए करते हो तो जो दंड तुम्हें मिलेगा, क्या वे भी उसे साझा करेंगे?'

लौहजंघ मौन खड़ा रहा। वह प्रश्न उसके हृदय को कचोटने लगा। वह इसका समाधान पाने के लिए मन में गहरा उतरा किंतु उसे कोई उत्तर नहीं मिला। उसने अपनी दराँती नीचे कर ली। तब सातवें व्यक्ति ने सिर हिलाया।

‘तुम अपने प्रियजनों से पूछकर हमें क्यों नहीं बताते? हम यहीं तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे।’

डाकू ने ठहाका लगाया। ‘यह तुम्हारी चाल है। धूर्तता भरी चाल। तुम मुझे भ्रमित करना चाहते हो और यहाँ दूर भेजना चाहते हो ताकि तुम बच कर भाग जाओ।’

‘हम कभी नहीं भागते,’ सातों ने एक स्वर में कहा। ‘हमें खोजना तो हम तुम्हें यहीं मिलेंगे।’

लौहजंघ मुड़ा और चला गया। ऋषियों ने उसके संदेह दूर कर दिए थे और उसे एक विचित्र विश्वास से भर दिया था।

घर पहुँचकर डाकू ने अपने परिवार वालों से प्रश्न किया।

‘तुम्हारे कर्मों का मूल्य हम क्यों चुकाएँ?’ उसके माता-पिता ने उत्तर दिया।

‘तुम्हारे कर्मों का मूल्य हम क्यों चुकाएँ?’ उसके बच्चों ने वही उत्तर दिया।

‘तुम्हारे कर्मों का मूल्य मैं क्यों चुकाऊँ?’ उसकी पत्नी ने कहा। ‘तुम्हारी दराँती भी तुम्हारे भाग्य की भागीदार नहीं बनेगी क्योंकि जिस हाथ से तुमने इसका उपयोग किया, वह हाथ तुम्हारा था।’

लौहजंघ आश्चर्यचकित रह गया। फिर वह वापस लौटा। उसकी अँगुलियों ने दराँती को कस रखा था। वे दँराती के फल को तोड़ देना चाहता था। उसने सातों व्यक्तियों के सामने पहुँचकर हाथ फैला दिए।

‘मैंने उनके लिए इतना खून बहाया किंतु आज मेरे खून ने ही मुझे अस्वीकार कर दिया है। क्या मेरे लिए कोई आशा शेष है?’

उन्होंने उत्तर दिया, ‘आशा सदैव रहती है क्योंकि उसका निवास छोटी-छोटी बातों में होता है। छोटे-छोटे कार्यों में। छोटे शब्दों में। जैसे राम। हम तुम्हें यह दिव्य मंत्र देते हैं। राम। राम का नाम जपो तो तुम्हारी आत्मा एक दिन शुद्ध हो जाएगी।’

लौहजंघ ने बहुत कोशिश की किंतु वह सफल नहीं हुआ।

‘मेरी जिह्वा, पापी की जिह्वा है,’ उसने दुखी होकर कहा। ‘यह इस शब्द का भार नहीं उठा सकती।’

‘तुम राम शब्द का उच्चारण नहीं कर सकते किंतु इसे उलट कर जरूर बोल सकते हो।’

‘पीछे की ओर से?’

‘मरा। राम का उल्टा। मरा, मृत्यु का प्रतीक है। तुम ‘मरा’ अवश्य कह सकते हो क्योंकि तुमने इतने लोगों को मारा है।’

डाकू ने बोलकर देखा तो यह शब्द उसके मुँह से सहजता से निकल गया।

‘तुम लगातार ‘मरा’ शब्द जपते रहो और अंत में राम जपने लगोगे। यह शब्द इतना पवित्र है कि इसका उल्टा उच्चारण करने पर भी तुम दोषमुक्त हो जाओगे। तुम्हारे अपने नाम का

अर्थ है लोहे की जांघ वाला। अब संसार को दिखा दो कि तुम्हारी इच्छा शक्ति भी लौह के समान है।'

लौहजंघ ने हाथ जोड़कर कहा, 'आप लोग कौन हैं?'

'हम सप्तऋषि हैं।'

वह डाकू चौदह वर्ष तक अनवरत नाम जपता रहा। इस बीच उसके शरीर को सात बाँबियों ने ढक दिया मानो वे तत्त्व, लौहाजंघ का पोषण कर रहे थे। सप्तऋषि फिर से पहुँचे तो उन्होंने बाँबी को तोड़ा। भीतर से लौहजंघ ऐसे निकल आया, जैसे गर्भ से नवजात शिशु बाहर आता है।

'तुम अब लौहजंघ नहीं रहे,' सप्तऋषियों ने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा। 'तुमने वल्मीक के भीतर अपने असल स्वरूप को पाया है। अब तुम वाल्मीकि कहलाओगे और तुम भगवान राम के जीवन पर महाकाव्य लिखोगे।'

71
रावण का लंका पर अधिकार



ब्रह्मा के पौत्र, ऋषि विश्रवा की दो पत्नियाँ थीं। पहली पत्नी का नाम इलविदा था। उसने कुबेर नामक एक यक्ष को जन्म दिया। दूसरी पत्नी कैकसी, राक्षसी थी जिसने चार असुरों को जन्म दिया। उनमें विभीषण और शूर्पणखा छोटे थे। रावण और कुंभकर्ण बड़े थे।

कुबेर बड़ा हुआ तो उसने सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की उपासना की और उन्हें प्रसन्न करने में सफल हो गया।

'तुम्हारी क्या इच्छा है?' ब्रह्मा ने पूछा।

'स्वर्ण। मुझे असीम स्वर्ण चाहिए।'

'स्वर्ण क्यों?'

'मैं ऋषि से उत्पन्न अवश्य हुआ हूँ, किंतु मैं राजा बनना चाहता हूँ। स्वर्ण से निर्मित नगरी का राजा।'

'इस जैसी एकमात्र जगह लंका है।'

'लंका?'

'वह ठोस स्वर्ण से बनी है। समुद्र में उसका बिम्ब जगमगाता है तो लगता है मानो अग्नि, जल से उपहास कर रही है। द्वीप पर बसी उस नगरी को विश्वकर्मा ने माली और सुमाली नामक राक्षसों के लिए बनाया था।'

'सुमाली? माता कैकसी के पिता?'

'हाँ। किंतु श्रीहरि ने माली का वध कर डाला और सुमाली को वहाँ से भगा दिया। लंका को अब एक नए राजा की आवश्यकता है और मैं तुम्हें लंका का शासक घोषित करता हूँ।'

विश्रवा और इलाविदा आनंदित थे किंतु कैकसी का राक्षसी खून खौल रहा था।

'यह तुम लोगों के लिए लज्जा का विषय है!' वह अपने बेटों पर बरस पड़ी। 'देखो, कुबेर ने

ब्रह्मा से क्या प्राप्त कर लिया। एक यक्ष, लंकेश्वर बन गया है। ब्रह्मांड की सबसे समृद्ध नगरी का स्वामी, जो कभी मेरे पिता की हुआ करती थी। तुम असुर जाति पर कलंक हो।'

'किंतु वह हमारा भाई है,' विभीषण ने प्रत्युत्तर में कहा। 'क्या हमें उसकी खुशी में प्रसन्न नहीं होना चाहिए?'

'भाई नहीं, वह तुम्हारा सौतेला भाई है! इसका अर्थ यह है कि वह तुम्हें केवल आधे मन से प्रेम करता है। और अब वह राजा बन गया है तो वह केवल अपने माता-पिता को ही लंका ले जाएगा और हमें यहीं छोड़ देगा। रावण, क्या तुम ऐसा होने दोगे?'

'कभी नहीं!'

'तो लंका पर फिर से अपना शासन स्थापित करो जैसे मेरे पिता उसके स्वामी थे। असुरों की तरह युद्ध करो। अपनी श्वास से आग बरसाओ। गंधक की वर्षा करो। नाखूनों को तेज करो और साहस को धार लगाओ।'

विभीषण काँप उठा। 'एक माँ इस तरह कैसे कह सकती है? आपने हमें दूध पिलाया है या लहू?'

विभीषण ने युद्ध करने से मना कर दिया किंतु रावण और कुंभकर्ण ने कुबेर के द्वीप पर आक्रमण कर दिया। स्वर्ग के लोभी दोनों राक्षस भाई, लंका प्राप्त करने को लालायित थे। दुर्भाग्य से, कुबेर आक्रमण के लिए तैयार नहीं था। उसके मन में अपने भाई-बहनों के प्रति अपार स्नेह था और इस आघात से कुबेर को बहुत पीड़ा हुई। समुद्र रक्तिम होने लगा तो कुबेर ने आत्मसमर्पण कर दिया। लंका छोड़ते हुए कुबेर ने पुष्पक विमान में अपने भाइयों को सवार देखा। उन्होंने यक्ष-ध्वज गिराकर असुर-पताका फहरा दी थी। कुबेर ने फिर ब्रह्मा से प्रार्थना की।

'मैंने वह सब खो दिया है, जो मैंने श्रमपूर्वक अर्जित किया था। क्या मैं लंका के योग्य नहीं हूँ?'

'तुम योग्य हो। उससे भी अधिक पाने के योग्य हो। किंतु असुरों की यह जीत पूर्वनिर्धारित थी क्योंकि रावण दरअसल जय का अवतार है और कुंभकर्ण, विजय का। ये दोनों वैकुंठ लोक के प्रहरी हैं जिन्होंने श्रीहरि के हाथों मोक्ष प्राप्त करने के लिए दूसरी बार जन्म लिया है। अत: मैंने रावण को आशीर्वाद दिया है कि वह युद्ध में तुम पर विजय प्राप्त करेगा। जल्द ही, लंका की स्वर्णिम आभा, रावण को अंधा बना देगी। वह पाप में लिप्त हो जाएगा और एक दिन उसकी लंका जल जाएगी।'

'किंतु रावण बहुत बुद्धिमान है।'

ब्रह्मा हँस पड़े। 'इसलिए कि उसके दस सिर हैं? मेरे पास चार सिर हैं किंतु ये सच्चे ज्ञान के प्रतीक हैं। रावण के मामले में, इसका अर्थ केवल इतना है कि उसका अहंकार दस गुना

हो गया है। वह हर उस वस्तु को छीनना चाहता है जो उसके पास नहीं है। अंत में रावण को इसका मूल्य चुकाना पड़ेगा। रावण ने तुम्हारा धन हड़प लिया है, लेकिन उसकी मृत्यु ऐसे व्यक्ति के हाथों होगी जो समस्त धन-वैभव का परित्याग कर चुका होगा।'

रावण के सौतेले भाई कुबेर की आँखें भर आईं। ब्रह्मा ने उसके मस्तक को स्पर्श किया।

'कुबेर, तुम्हारे हृदय में अपने शत्रुओं के लिए भी करुणा का भाव है और यही गुण तुम्हें महान बनाता है। तुमने अनंत स्वर्ण की कामना की थी और अब मैं तुम्हें उसका देवता घोषित करता हूँ। धन का देवता। लंका, रावण के पास रहने दो। तुम समस्त भौतिक प्रचुरता के स्वामी कहलाओगे। दान और समृद्धि के स्वामी। तुम दूसरों को धन प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते रहोगे।'

'और मैं उन्हें यह भी याद दिलाता रहूँगा कि धन कितनी तीव्रता से अपना स्थान बदलता है,' कुबेर ने कहा और फिर उसने झुक कर परमपिता ब्रह्मा को प्रणाम किया।

72

देवताओं का रावण से छल



कैलाश पर जमी बर्फ पिघलने लगी। ऊपर एक विशाल चिता धधक रही थी। रावण ने जैसे ब्रह्मांड के मध्य छेद करके एक सुरंग खोद दी थी जिसमें से नरक की ज्वाला ऊपर की ओर उठ रही थी। दैत्यराज रावण ने अपनी चंद्रहास तलवार उठा ली। वह अर्द्धचंद्राकार दिव्य तलवार थी जो शिव ने रावण को तांडव-स्त्रोत के गायन से प्रसन्न होकर उसे प्रदान की थी।

रावण ने अपना एक सिर काटकर जलती चिता में फेंक दिया।

लपटें ज़ोर से भड़क उठीं। फिर रावण ने एक और सिर काट दिया। फिर तीसरा, फिर एक और, फिर से एक। उसके नौ सिर आग में जल चुके थे। उसका रक्त, चंद्रहास पर जम गया था। कैलाश पर जले माँस की गंध आ रही थी। रावण ने जैसे ही तलवार की धार को अंतिम सिर पर रखा, उसे वह आवाज़ सुनाई पड़ी जिसे सुनने के लिए वह व्याकुल था।

'बहुत हुआ!'

भगवान शिव उसके सामने खड़े थे।

'तुम्हें क्या चाहिए?'

'आप, प्रभु! मैं चाहता हूँ कि आप मेरे साथ चलकर लंका में रहें।'

'पर्वत से सागर तक?' शिव मुस्कुराए। 'यहाँ की हिम से सीधा वहाँ का नमक? तुमने पहले भी एक बार यह प्रयास किया था।'

'हाँ। मैंने आपको साथ ले जाने के लिए पूरा कैलाश उठा लिया था।'

'क्योंकि तुमने यह समझा कि मेरा निवास कैलाश भी तुम्हारी लंका है जिस पर तुम कब्जा कर लोगे। किंतु फिर हुआ क्या?'

'आपने अपने पैर के अँगूठे से कैलाश को दबा दिया था और मुझे लगभग कुचल कर मार डाला था।'

‘रावण, तुम उस दिन असफल हो गए थे और आज फिर असफल हो जाओगे।’

‘परंतु आज मैं आपको साथ ले जाने की बात नहीं कर रहा,’ असुर ने हाथ जोड़कर कहा। ‘मुझे केवल आपका प्रतीक चाहिए।’

‘कैसा प्रतीक?’

‘कैलाश पर एक शिवलिंग स्थापित है। कृपया मुझे उसे लंका में समुद्र के किनारे स्थापित करने की अनुमति दे दीजिए। वहाँ सागर की लहरें सदा उसका अभिषेक करती रहेंगी।’

शिव चुपचाप खड़े रावण के शब्दों पर विचार कर रहे थे। फिर उन्होंने अपना त्रिशूल उठा लिया।

‘मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करता हूँ और तुम्हारे नौ सिर भी लौटाता हूँ।’

रावण अभिभूत हो गया। उसने विशाल शिवलिंग को हाथों में उठाया और उसे लेकर कैलाश से नीचे उतरने लगा। तभी उसे शिव की आवाज़ सुनाई दी।

‘केवल एक शर्त है।’

दैत्यराज मुड़कर देखने लगा।

‘लंका पहुँचने तक शिवलिंग को नीचे मत रखना। इसे अपने हाथों में उठाकर लंका तक जाओ। यदि तुम्हारे वहाँ पहुँचने से पहले शिवलिंग ने धरती का स्पर्श किया तो यह उसी स्थान पर स्थापित हो जाएगा और फिर तुम इसे उठा नहीं पाओगे।’

रावण मान गया। उसे अपनी क्षमता पर पूरा भरोसा था। वह बड़े-बड़े डग भरता हुआ दक्षिण की ओर चल पड़ा। शिवलिंग के भार का प्रभाव होने लगा किंतु रावण की गति धीमी नहीं हुई। रावण ने आधी दूरी ही तय की थी कि स्वर्ग में देवतागण उत्सुकता वश एकत्रित हो गए।

‘ऐसा लगता है कि रावण सफल हो जाएगा,’ वायुदेव ने कहा।

‘आपको पता है न कि यदि रावण ने शिवलिंग को लंका में स्थापित कर दिया तो क्या होगा?’ इंद्र ने कहा। ‘वह द्वीप अजेय हो जाएगा। ब्रह्मांड की कोई शक्ति फिर उस समुद्र-तट को क्षति नहीं पहुँचा सकेगी। संभवत: रावण की यही मंशा है। संभव है कि इसे विशुद्ध निष्ठा कहते हैं। कुछ भी हो, किंतु वह असुर अत्यंत शक्तिशाली हो जाएगा।’

यम ने मुट्ठियाँ भींचते हुए कहा, ‘हमें किसी भी तरह रावण से शिवलिंग नीचे रखवाना होगा। किंतु कैसे?’

‘उसे थका दिया जाए तो कैसा रहेगा?’ चंद्र ने प्रस्ताव रखा। ‘लेकिन अभी तक उसकी त्वचा पर ज़रा भी पसीना नहीं है।’

‘जल तो अन्य हिस्सों से भी निकल सकता है,’ अग्नि ने मुस्कुराते हुए कहा। ‘वरुण को

पता होगा।'

'मुझे?'

'क्या तुम जल के स्वामी नहीं हो?'

'अवश्य हूँ।'

'और क्या शरीर के निचले हिस्सों में पानी नहीं होता? गंदा पानी, जो बलपूर्वक बाहर निकलना चाहता है।'

'बिलकुल होता है!'

'पेट में बादल इकट्ठा होते हैं तो माँस तब तक गड़गड़ाता रहता है, जब तक शरीर से पानी की हर गर्म बूँद बाहर नहीं निकल जाती?'

देवता हँसने लगे। वरुण को अग्नि की बात समझ में आ गई थी। 'बहुत बढ़िया! देखते हैं वह उसे कब तक रोक सकता है।'

जल देवता ने अँगुलियाँ घुमाईं और तुरंत रावण को लघु शंका की इच्छा होने लगी। उसने चाल तेज कर दी। उसे उम्मीद थी कि उसकी बेचैनी कम हो जाएगी किंतु वह इच्छा तेज होती गई। रावण जितना तेज चला, उसकी शिराओं में जल का प्रवाह उतना ही बढ़ता गया। फिर वह उसके यौनांग में इकट्ठा होने लगा। रावण ने गति दुगुनी कर दी। फिर धीमी कर ली। फिर वह थोड़ा रुका और सावधानी से आगे बढ़ने लगा। अब उसे आभास होने लगा था कि वह दौड़ में परास्त हो रहा था। प्रवाह तेज़ी से धक्का मार रहा था। रावण को विचार आया कि वह चलते-चलते भी लघु शंका कर सकता है किंतु उसने यह विचार तुरंत त्याग दिया। इससे न केवल उसका अपना शरीर गंदा होता अपितु इसे अशौच माना जाता और उस समय रावण के हाथ में पवित्र शिवलिंग था। रावण के सारे विकल्प समाप्त हो गए। उसके भीतर जल की उफनती नदी छलक जाने को आतुर हो रही थी।

मुझे रुकना पड़ेगा...

मार्ग में सब बह जाएगा।

किंतु शिवलिंग?

उसकी श्वास फूलने लगी। तभी उसने वीणा की आवाज़ सुनी। कोई वीणा बजाता और चिड़िया की भांति गाता हुआ उसकी ओर आ रहा था। ।

नारद?

भगवा चोला। उलझे केश।

यह तो नारद हैं...

राक्षसराज नारद की ओर लपका।

'हे मधुर गायक! हे सुरीले गायक! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, कृपया रुकिए।'

‘लंकापति?’

‘मेरी विनती है, मेरी बात सुनिए। मुझे आपकी सहायता की आवश्यकता है।’

रावण खीजते हुए आगे बढ़ा और उसने संक्षेप में नारद को सारी बात कह सुनाई जिसे सुनकर नारद के चेहरे पर मुस्कान छा गई।

‘मुझसे क्या सहायता चाहते हो?’

‘मैं फटने को हूँ। मेरे वापस आने तक कृपया इस शिवलिंग को पकड़ लीजिए और ध्यान रहे कि यह धरती का स्पर्श न कर पाए।’

‘तुम्हें लगता है कि मैं इसे उठा पाऊँगा?’

‘आप इसे उठा सकते हैं, देवर्षि!’

‘माँस और रक्त का बना शरीर दुर्बल होता है, लंकापति। इतना दुर्बल कि वह देवत्व के भार को सँभाल नहीं सकता। उसमें कमियाँ होती हैं और वह शुद्ध और निर्मल वस्तु के सामने अधिक देर टिक नहीं सकता।’

‘मुझे विश्वास है कि आप शक्तिशाली हैं।’

रावण ने अपना भार नारद को सौंपा और पेड़ों के पीछे चला गया। वह जैसे ही दृष्टि से ओझल हुआ, देवर्षि स्वर्ग की ओर देखकर मुस्कुराए। देवता भी उन्हें देखकर मुस्कुरा दिए। ‘जल्दी करो! जल्दी करो!’

‘कोई जल्दी नहीं है,’ वरुणदेव ने आश्वासन दिया। ‘मैंने ऐसा प्रबंध किया है कि रावण को लघु शंका से निवृत्त होने में अभी समय लगेगा।’

नारद ने अपना मस्तक शिवलिंग से स्पर्श किया और उसे धीरे-से उसे नीचे रख दिया। उन्हें ऊपर से सामूहिक निश्वास सुनाई पड़ गया था।

‘बच गए!’

‘मुश्किल से बचे। लो, रावण आ गया!’

73
सीता के चार शाप



नदी, विष्णु को रोते हुए देख रही थी।

विष्णु ने राम के रूप में अवतार लिया था। राम, अयोध्या के युवराज थे। सूर्यवंशी। शेषनाग ने लक्ष्मण के रूप में और लक्ष्मी ने सीता के रूप में अवतार लिया था। परंतु कुबेर की सौतेली माँ कैकसी की तरह, राम की सौतेली माँ कैकेयी ने षड्यंत्र रचा और राम को चौदह वर्ष के लिए राज्य से निर्वासित करवा दिया। सीता और लक्ष्मण ने राम का साथ दिया। तीनों को वनवासी के रूप में रहते काफी समय हो चुका था। किसी भी तरह की कठिनाई में उनकी आँख से आँसू नहीं निकले किंतु उस दिन वे टूट गए। अयोध्या से समाचार आया था कि उनके पिता का निधन हो गया।

राजा दशरथ की मृत्यु हो गई थी।

दोनों पुत्र, फल्गु के तट पर विलाप कर रहे थे। वह नदी, हर शाम सूर्य को लाल रंग के पोखर में पिघलते हुए देखती थी किंतु उस दिन सूर्य के वंशज द्रवित हो रहे थे। उनकी आँखों के आँसू, नदी को आप्लावित कर रहे थे। उसे खारा कर देने की धमकी दे रहे थे। सीता की वाणी ने सहसा अश्रु-प्रवाह को रोक दिया।

'रघुनंदन, आप सबसे बड़े हैं। आपको नदी के किनारे ही अंतिम संस्कार कर देना चाहिए।'

भाइयों ने स्वयं को संभाला और आवश्यक सामग्री जुटाने के लिए निकल पड़े। कई घंटे बीत गए किंतु वे लौटकर नहीं आए। सीता की आँखें सूर्य के अनुवृत्त को देख रही थीं। सूर्य, आकाश में चढ़ता जा रहा था। दोपहर निकट आ गई थी और सूर्य के चरम पर पहुँचने से पहले अनुष्ठान पूरा किया जाना था। सीता उठ गईं।

मेरे पास जो सामग्री है, उससे मुझे यह कार्य स्वयं करना होगा...

सीता ने फल्गु में स्नान किया और गाय का दूध निकाला। फिर उन्होंने केतकी का फूल और बरगद के पेड़ से एक पत्ता तोड़ा। फिर हवन किया और मिट्टी का दीपक जलाया। जैसे ही सीता ने प्रसाद अर्पित किया, उन्हें आकाशवाणी सुनाई दी।

'तुम्हें आशीर्वाद, सीता। मुझे यह स्वीकार है।'

'पिताजी?'

'हाँ, सीता। मैं दशरथ हूँ। तुमने संस्कार पूर्ण कर दिया है।'

'क्या सचमुच?'

'हाँ। मैं संतुष्ट हुआ।'

'परंतु आपके दोनों पुत्र यहाँ उपस्थित नहीं हैं। वे विश्वास नहीं करेंगे कि मैंने अनुष्ठान पूर्ण कर दिया है।'

'वे कर लेंगे। तुम्हारे पास पाँच साक्षी हैं।'

'साक्षी?'

'एक फल्गु नदी, क्योंकि तुमने उसमें स्नान किया था। दूसरी अग्नि, क्योंकि तुमने दीपक जलाया था। इसके अलावा गाय, बरगद और केतकी का फूल। ये सब गवाही देंगे।'

सीता की आशंका जल्द ही सत्य में बदल गई। राम और लक्ष्मण लौटकर आए तो उन्होंने सीता का दावा स्वीकार नहीं किया। दोनों भाइयों के लिए विश्वास करना कठिन था कि इतने कम साधनों में संस्कार संपन्न हो गया। तब सीता ने पाँच साक्षी बुलाए और राम ने उनसे एक-एक करके पूछताछ की।

'मुझे बताओ, हे पूज्य फल्गु। क्या मेरी पत्नी ने अनुष्ठान पूरा किया है?'

'नहीं, उन्होंने नहीं किया।'

'मुझे बताओ, हे पवित्र गाय। क्या मेरी पत्नी ने अनुष्ठान पूरा किया है?'

'नहीं, उन्होंने नहीं किया।'

'मुझे बताओ, हे पावन अग्नि। क्या मेरी पत्नी ने अनुष्ठान पूरा किया है?'

'नहीं, उन्होंने नहीं किया।'

'बताओ, हे सुगंधित केतकी। क्या मेरी पत्नी ने अनुष्ठान पूरा किया है?'

'नहीं, उन्होंने नहीं किया।'

पाँच में से चार ने सीता के दावे को अस्वीकार कर दिया। अब बरगद का पेड़ शेष था।

'बताओ, हे आदरणीय बरगद। क्या मेरी पत्नी ने अनुष्ठान पूरा किया है?'

'हाँ, उन्होंने अनुष्ठान पूर्ण किया है।'

'पूर्ण किया?'

'बिलकुल। आपके पिता संतुष्ट थे।'

सीता अपने पति के चेहरे में जैसे कुछ खोज रही थीं।

'स्वामी, क्या आपको मुझ पर विश्वास नहीं है?'

राम चुप खड़े रहे।

'आपको विश्वास नहीं?'

'मुझे तो विश्वास है किंतु शायद दूसरों को न हो।'

राम बैठ गए और उन्होंने स्वयं वह संस्कार फिर से शुरू किया। तभी दशरथ की आवाज़ फिर गूंजी।

'तुम फिर से मेरा आह्वान क्यों रहे हो? सीता यह अनुष्ठान कर चुकी है।'

'किंतु सीता के साक्षी कहते हैं कि उन्होंने अनुष्ठान नहीं किया।'

'राम, तुम किस पर विश्वास करोगे? दूसरों पर या अपनी पत्नी पर?'

राम चुप हो गए। उन्होंने देखा कि सीता की आँखों में भी यही प्रश्न था।

दूसरों पर या अपनी पत्नी पर?

दोनों भाइयों ने सीता से क्षमा माँगी। सीता ने उन्हें क्षमा कर दिया किंतु चारों साक्षियों को शाप दिया।

'तुम बिलकुल नहीं बदले, केतकी। तुम अब भी झूठे हो। पहले तुमने ब्रह्मदेव के लिए झूठ बोला था। आज तुम्हें सत्य बचा सकता था किंतु तुम फिर असफल हो गए। मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि महादेव के आदेशानुसार, तुम पूजा के योग्य नहीं रहोगे। फल्गु, मैं तुम्हें भी शाप देती हूँ कि तुम अब पृथ्वी पर प्रवाहित नहीं हो सकोगी और लज्जा से चेहरा छिपाकर पाताल लोक में चली जाओगी। अग्निदेव, मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि अब से तुम्हें जो कुछ अर्पित किया जाएगा, तुम्हें उसका सेवन करना होगा। केवल शुद्ध सामग्री नहीं अपितु अशुद्ध भी! तुम्हारे पास अब चुनने का विकल्प नहीं होगा। और चूँकि गाय ने भी झूठ बोला इसलिए मैं इसे शाप देता हूँ कि अब से गाय का मुख अशुद्ध माना जाएगा। हे बरगद, केवल तुमने सत्य बोला है। इसलिए मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि तुम्हारे पत्ते कभी नहीं झड़ेंगे और तुम सदा हरे-भरे रहोगे।'

उस रात सीता ने अपने पति से पूछा।

'रघुनंदन, मुझे डर लग रहा है। आपने उन चारों पर भरोसा किया किंतु मुझ पर नहीं। कल, यदि संसार फिर से मेरा अनुचित अपमान करेगा तो क्या आप मुझ में अपनी आस्था का त्याग कर देंगे? क्या आप मेरे साथ खड़े रहेंगे? क्या आप मुझ पर विश्वास नहीं करेंगे?'

'मैं तो करूँगा, किंतु संभव है कि दूसरे लोग न करें,' यह कह कर राम ने आँखें बंद कर लीं।

74
माया सीता



कुटिया के अंदर खिड़की में से दो आँखें बाहर देख रही थीं।

वे आँखें, रेखा के इस तरफ खड़ी स्त्री और उस तरफ खड़े पुरुष को ताक रही थीं। रेखा को पृथ्वी पर एक बाण नोंक से बनाया गया था। उसमें से अग्नि की अदृश्य दीवार उठती थी जो दूसरी तरफ खड़े पुरुष को रेखा लाँघने नहीं दे रही थी। स्त्री, पुरुष को भिक्षा स्वीकार करने की विनती कर रही थी किंतु पुरुष, स्त्री से रेखा को पार करके बाहर आने का आग्रह कर रहा था। कुटिया के भीतर से दो आँखें यह दृश्य देख रही थीं। प्रतीक्षा कर रही थीं। सोच रही थीं।

वह रेखा को पार करेगी? या नहीं करेगी?

उन आँखों ने स्त्री को आगे बढ़ते देखा। उसके पैर उठे और रेखा को पार करके दूसरी तरफ चले गए। उसने रेखा को लांघ लिया था। वह उस पुरुष के सामने खड़ी थी। पुरुष का रूप बदल रहा था। वह तपस्वी, असुर में बदल रहा था। फिर उसने स्त्री को पकड़ लिया और घसीटने लगा। वह चिल्ला रही थी। उसके नाखून, असुर के चेहरे को नोंच रहे थे। स्त्री ने दाँत उसकी बाँह पर गढ़ा दिए। उसके पैर वापस रेखा की ओर लौटना चाहते थे। वह एक बार फिर रेखा की शरण लेने को व्याकुल थी किंतु सब व्यर्थ गया। रेखा ने उसे त्याग दिया था।

‘सीता।’

खिड़की पर टिकी दो आँखों ने मुड़कर पीछे खड़े देवता को देखा।

‘वह चली गई, अग्निदेव। रावण ने उसका अपहरण कर लिया।’

‘मुझे पता है, सीता।’

‘आपको लगता है कि वह हमारा छल देख नहीं सकेगा?’

‘हाँ, वह नहीं देख पाएगा। उसे पहले ही इतना सब दिखाई नहीं दे रहा। रावण कभी नहीं जान पाएगा कि वह किसे लंका ले गया है।’

‘उसे यह एहसास नहीं होगा कि वह, मैं नहीं हूँ? सीता नहीं, अपितु माया सीता है? मेरी प्रतिकृति, जिसे आपने बनाया है?’

‘हाँ। वह छद्म रूप में यहाँ आया था और छद्म रूप ही साथ लेकर गया है। संसार यही समझेगा कि रावण ने आपका अपहरण किया। कुछ लोग आपके लिए आँसू बहाएँगे तो कुछ आपकी निंदा करेंगे। वे आपके बारे में कहानियाँ लिखेंगे और गीत गाएँगे। किंतु सत्य सिर्फ आपको पता है। आपको और देवताओं को।’

सीता ने अपनी छाया को देखा। ‘किसी अन्य युग में संज्ञा ने छाया की रचना की थी। इस युग में सीता को माया की आवश्यकता पड़ी है। संज्ञा के पति सूर्य थे। मेरे पति सूर्यवंशी हैं। संज्ञा ने अपने पति को छोड़ दिया था और अब मुझे भी अपने पति से दूर रहना होगा।’

‘हाँ,’ अग्नि ने हामी भरी। ‘युग बदलते रहते हैं किंतु घटनाएँ एक-सी रहती हैं।’

‘मैं सोच रही हूँ कि अगर मैं वहाँ खड़ी होती तो क्या करती।’ सीता ने फिर से बाहर की ओर देखते हुए कहा। ‘मैंने रावण की बात मानी होती या फिर सीमारेखा का पालन किया होता? संसार अब यही कहेगा कि सीता रावण के चंगुल में इसलिए फँसी क्योंकि उसने नियम का उल्लंघन किया था। किंतु क्या उसने इस नियम का पालन नहीं किया कि अतिथि ईश्वर के समान होता है? क्या उसने एक धर्म को निभाने के लिए दूसरे धर्म का उल्लंघन नहीं किया? क्या उसने अपने द्वार पर खड़े संन्यासी का सम्मान करने के लिए उस रेखा को पार नहीं किया था? क्या उसने नियम का मान रखने के लिए रेखा का अपमान नहीं किया? क्या उस रेखा का उल्लंघन न करना अपराध नहीं माना जाता? आप किस आचार और नियम को श्रेष्ठ कहेंगे? उसे रावण और लक्ष्मण में से किसका कहा मानना चाहिए था?’

अग्निदेव शांत थे। सीता अग्नि-वृत्त की ओर बढ़ीं जिसमें से माया सीता उत्पन्न हुई थी।

‘अब क्या किया जाए?’

‘सीता, जब तक रावण का वध नहीं हो जाता, तब तक आपको इन लपटों में छिपकर रहना होगा। राम जैसे ही माया सीता को मुक्त करेंगे, उसे अग्नि से गुजरना पड़ेगा।’



‘ऐसा क्यों?’

‘यह सिद्ध करने के लिए कि वह पवित्र है।’

सीता हँस पड़ीं ‘सती ने अग्नि में इसलिए प्रवेश किया था क्योंकि सबने उनके पति को अयोग्य घोषित कर दिया था। परंतु सीता को यह सिद्ध करने के लिए अग्नि में प्रवेश करना पड़ेगा कि वह स्वयं योग्य है। मेरे पितामह निमि ने अपना शरीर त्याग दिया था। मेरे पिता जनक, ऐसे पुरुष से उत्पन्न हुए जिसने अपना शरीर त्याग दिया था। परंतु सीता का अस्तित्व उसके शरीर से है। उसे अग्नि की लपटों से इसलिए गुजरना होगा क्योंकि किसी पर-पुरुष ने उसका अपहरण कर लिया था। इसलिए कि राम उस पर विश्वास करते हैं किंतु दूसरे लोग उस पर भरोसा नहीं करते।’

‘अग्निपरीक्षा ही एकमात्र तरीका है जिससे हम इस स्थिति को फिर से बदल पाएँगे,’ अग्नि ने समझाया। ‘माया सीता अग्नि में प्रवेश करेगी और आप उसमें से बाहर निकलेंगी।’

कई माह के उपरांत, यह विनिमय सम्पन्न हुआ। रावण मर चुका था। कुंभकर्ण भी मर चुका था। भूलोक पर जय और विजय का दूसरा जन्म समाप्त हो गया था। अग्नि में प्रवेश करते समय माया सीता ने देखा कि राम ने सीता को गले से लगा लिया था।

‘मुझे आशा है कि वे उस पर फिर कभी अविश्वास नहीं करेंगे। मैंने जिस अपमान का सामना किया है, वह अत्यंत जघन्य है। सार्वजनिक रूप से अपनी पवित्रता सिद्ध करने से अधिक अपमानजनक कुछ नहीं हो सकता जबकि तुम्हारा पति असहाय खड़ा तुम्हें देख रहा हो। इससे अधिक लज्जा की कोई बात नहीं हो सकती।’

‘हो सकती है,’ अग्नि ने आँखें नीची करते हुए कहा। ‘इससे भी अधिक लज्जाजनक बात। इतनी लज्जाजनक कि उसके जैसा कुछ और हो ही नहीं सकता।’

‘मैं समझी नहीं।’

‘आप समझ जाएँगी, जब द्वापर युग में आप फिर से अवतार लेंगी। आप माया-सभा की साम्राज्ञी होंगी। एक बार फिर अग्नि से आपका जन्म होगा और आप याज्ञसेनी कहलाएँगी किंतु संसार आपको द्रौपदी के नाम से याद करेगा।’

‘लेकिन इसमें लज्जा की बात क्या है?’ माया सीता, अग्नि के भीतर खड़ी काँप रही थी।

‘आप देखेंगी। हम सब देखेंगे।’

75
राम और शूद्र



‘राजा राम! राजा राम!’

एक बूढ़ा ब्राह्मण अपने पुत्र को गोद में लिए लड़खड़ाता हुआ सिंहासन की ओर बढ़ रहा था।

‘राजा राम, आपने मेरे पुत्र को मार डाला।’

अयोध्या का दरबार स्तब्ध रह गया। ऐसा लग रहा था जैसे लोगों का शोर उसे निगल जाएगा। क्रोध। दुविधा। भय। घबराहट। यह पहला अवसर नहीं था जब किसी ब्राह्मण ने क्षत्रिय पर आरोप लगाया था। किंतु राम? वे सूर्यवंशी राम, जिन्होंने अपने पिता का वचन निभाने के लिए की चौदह वर्ष का वनवास काटा था? वे राम, जिन्होंने अब अपने लोगों के लिए सीता को वनवास दे दिया था?

हत्यारा?

राम ने ब्राह्मण को प्रणाम किया तो ऋषि वसिष्ठ की त्यौरियाँ चढ़ गईं।

‘क्या आपको अपने शब्दों में अशुद्धता का पुट सुनाई दे रहा है?’

‘क्या आपको मेरे शब्दों में नृशंसता का पुट सुनाई दे रहा है? अयोध्या के राजा ने मेरे पुत्र की हत्या की है। मेरे एकमात्र पुत्र की हत्या।’

रमा, ब्राह्मण के वृद्ध चेहरे को देख रहे थे। ‘आपकी आँखें! हे ब्राह्मण, आपकी आँखों में कितना खालीपन है। आपकी पीड़ा ने आपको भाव विहीन कर दिया है। परंतु मैं आपके पुत्र से पहले कभी नहीं मिला। क्या आपको विश्वास है कि मैं ही आपके पुत्र की मृत्यु का कारण हूँ?’

‘निस्संदेह! मेरा पुत्र बिलकुल स्वस्थ था परंतु आज सुबह वह अचानक गिरा और उसकी मृत्यु हो गई।’

‘गिर पड़ा?’ राम ने कहा। ‘तो आप मुझे दोष क्यों दे रहे हैं?’

‘मुझे देखिए और मेरे पुत्र को देखिए। वह युवावस्था में ही मर गया जबकि मैं अब तक जीवित हूँ। यह विसंगति क्यों? प्रकृति के नियमों में यह उलटफेर क्यों हुआ है कि युवक की मृत्यु गई और एक वृद्ध जीवित है? इस तरह का अत्याचार तभी होता है जब राजा से कोई भूल हो जाती है। आपने स्वयं कोई पाप किया है अथवा आप राज्य में किसी अन्य व्यक्ति को पाप करने से रोकने में असमर्थ रहे हैं। आप सम्राट हैं और आपकी सक्रियता और निष्क्रियता दोनों का प्रजा पर प्रभाव पड़ता है। हमारे आसपास की हर वस्तु प्रभावित होती है। इसलिए मैं आपको दोष दे रहा हूँ।’

‘ये सत्य कह रहे हैं,’ वसिष्ठ ने सहमति व्यक्त की। ‘ऐसी घटना का कारण शासक ही होता है। परंतु राम निंदा से परे हैं। यह किसी अन्य व्यक्ति के कर्म का प्रभाव है।’

‘पता लगाओ,’ राजा ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी। ‘पता लगाओ किस कारण से इस बालक की मृत्यु हुई है।’

गुप्तचर भेजे गए। पूछताछ हुई। राजा के अनुचर हर दिशा में दौड़ पड़े और जल्द ही उनमें से एक भय से काँपता हुआ लौट आया।

‘महाराज, इसका कारण शंबूक है।’

‘शंबूक?’

‘एक शूद्र। वह वेदों का जाप कर रहा है।’

सब चकित रह गए। लोग इसे समझ नहीं पा रहे थे क्योंकि इससे पहले ये दो शब्द एक साथ कभी नहीं कहे गए थे क्योंकि दोनों शब्द एक-दूसरे से दूर रहते थे।

शूद्र वेदों का जाप कर रहा है...

लोगों की शिराएँ मानो ठंडी पड़ने लगीं।

शूद्र वेदों का जाप कर रहा है...

इस घटना की भयावहता उन्हें समझ में आ रही थी।

शूद्र वेदों का जाप कर रहा है...

एक मंत्री ने गुस्से से कहा, ‘यह पाप हमारे राज्य के बीच पनप रहा है। इसी पाप ने उस निर्दोष बालक के प्राण लिए हैं।’

‘त्रेता युग में शूद्रों को तपस्या करने का अधिकार नहीं है,’ वसिष्ठ ने सहमति व्यक्त की। ‘केवल कलियुग में ही वे इस काम को कर सकते हैं। शंबूक ने नियम का उल्लंघन किया है। उसे रोका जाना चाहिए अन्यथा और लोगों के भी प्राण जा सकते हैं।’

‘अपवित्र कार्य!’ शेष लोग दाँत पीस रहे थे। ‘एक शूद्र के कृत्य के चलते ब्राह्मण की मृत्यु हुई है। अब न जाने और कौन-से अपशकुन हमें कष्ट देंगे?’

‘मृत्यु! मृत्यु! मृत्यु!’ दरबार में केवल यही शब्द गूँज रहे थे। ‘उस शूद्र को मृत्युदंड मिलना चाहिए!’

राम अयोध्या का फैसला सुन रहे थे।

मृत्यु... मृत्यु... मृत्यु...

राम उठकर बाहर गए। वे शंबूक के पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि शंबूक, एक पेड़ से उल्टा लटक कर वेदों का पाठ और तपस्या कर रहा था।

राम के कानों में अयोध्या का स्वर गूँज रहा था।

मृत्यु... मृत्यु... मृत्यु...

शूद्र ने दूसरा मंत्र पढ़ना शुरू कर दिया था। तभी राम बोल पड़े।

‘ठहरो!’

राम के मुकुट की चकाचौंध देखकर शंबूक ने पलकें झपकाईं।

‘सूर्य वंशज, आपकी जय हो!’

‘तुम निश्चित रूप से यह जानते होगे कि इस युग में शूद्रों को तपस्या करने का अधिकार नहीं है।’

‘मैं जानता हूँ, फिर भी मैंने नियम की उपेक्षा की है। मैं स्वर्ग पर विजय प्राप्त करना चाहता हूँ और यही एकमात्र तरीका है जिससे मैं अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकता हूँ।’

राम शंबूक के निकट पहुँच गए। अयोध्या का स्वर तेज होता जा रहा था।

मृत्यु... मृत्यु... मृत्यु...

‘शंबूक, यह विकल्प तुमने चुना किंतु इसका मूल्य किसी और को चुकाना पड़ा है।’

‘वह ब्राह्मण-पुत्र? आपके दास ने मुझे बताया। महाराज, क्या आप सचमुच यह मानते हैं कि मैं उसकी मृत्यु का कारण हूँ? क्या दो लोगों का भाग्य इस सीमा तक जुड़ा हो सकता है?’

‘तुम्हारे इस कृत्य से मेरी प्रजा के लोग डरे हुए हैं और इससे मेरे राज्य को क्षति हो सकती है। राजा होने के नाते, नियमों को लागू करना मेरा दायित्व है। एक की सनक, अनेक के कल्याण से ऊपर नहीं हो सकती।’

‘क्या इसीलिए आपने अपनी पत्नी को राज्य से निर्वासित किया था?’

‘मैंने वही किया जो राजा से अपेक्षित था,’ राम ने उत्तर दिया। ‘तुम मेरे कार्यों पर प्रश्न उठा सकते हो परंतु मैं अपने सिंहासन, अपनी प्रजा और जन-कल्याण से बँधा हूँ और यही मेरा एकमात्र धर्म है। धर्म, मूल्य माँगता है। मैं शासन नहीं करता, केवल सेवा करता हूँ। मैं खुद से भी ज्यादा अयोध्या का हूँ। तुम संतुलन को बिगाड़ रहे हो। व्यवस्था को उलट रहे हो, जैसे तुम स्वयं उलटे लटके हो। तुम उस पदानुक्रम को चुनौती दे रहे हो, जो पत्थर पर

लकीर की तरह अंकित है।'

'परंतु क्या पत्थर स्थायी होता है? क्या आपने स्वयं पत्थर को स्त्री में नहीं बदल दिया था? आप निश्चित रूप से नियमों को भी तोड़ सकते हैं।'

'सूर्यवंशी नियमों को तोड़ते नहीं अपितु उनकी रक्षा करते हैं। सूर्यदेव भी बादलों की इच्छा का पालन करते हैं, जो बादल उन्हें ढक लेते हैं। वे चंद्रमा की इच्छा का भी पालन करते हैं, जव वह हर रात उनकी जगह लेता है। तुम अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सामाजिक नियमों का उल्लंघन कर रहे हो और मैं तुम्हें इसकी अनुमति नहीं दे सकता।'

'परंतु राजा त्रिशंकु भी तो आपके वंश के थे और उन्होंने भी नियम तोड़ने का साहस किया था। मेरी तरह, उन्होंने भी देवलोक जाने का प्रयास किया था।'

'इसीलिए वे अधर में लटक रहे हैं। शंबूक, मेरी बात मान लो क्योंकि उनकी तरह तुम भी अपराध कर रहे हो। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम तपस्या को तुरंत रोक दो। इसके बदले में, तुम्हें इसका मूल्य दे दिया जाएगा।'

'महाराज, आप मुझे प्रलोभन नहीं दे सकते। आप केवल मुझे मार सकते हैं क्योंकि आपकी दृष्टि में एक शूद्र ने नियम तोड़ने का साहस किया है।'

अयोध्या चीख रही थी।

मृत्यु... मृत्यु... मृत्यु...

'शंबूक, तुम भूल रहे हो कि मैंने रावण को भी मारा था जो आधा ब्राह्मण था,' राम ने कहा। 'क्या तुम देख नहीं सकते कि तुम असुर बन गए हो क्योंकि तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा दूसरों के लिए संकट पैदा कर रही है? तुम एक ऐसा उदाहरण स्थापित कर रहे हो जिससे भविष्य में अराजकता फैल सकती है?'

'मैं दूसरों की परवाह क्यों करूँ जब उन्होंने मेरी परवाह नहीं की?'

अयोध्या का स्वर अब राम के कानों को जला रहा था।

मृत्यु... मृत्यु... मृत्यु...

'तुम नहीं मानोगे?'

'मैंने केवल एक विकल्प चुना है।'

अयोध्या, अब राम पर हावी हो चुकी थी।

मृत्यु...

राजा राम ने अपनी तलवार निकाली और शंबूक का सिर काट डाला।

76
अगस्त्य ने पर्वत को दिया चकमा



एक बार नारद पृथ्वी पर विचरण करते हुए विंध्याचल पर्वत की घाटी से गुजर रहे थे। पर्वत ने चमेली की पंखुड़ियाँ बिखेर कर देवर्षि का स्वागत किया।

‘देवर्षि, आपने मुझ पर जमे शैवाल पर चरण रख कर मुझे सम्मानित किया है। सूर्य और चंद्र की तरह, आप संसार की भलाई के लिए सदा भ्रमण करते रहते हैं।’

‘हाँ। सदा चलायमान। सदा निराश्रय। मेरी नियति मुझे कहीं ठहरने नहीं देती।’

‘मुझे आपसे ईर्ष्या होती है क्योंकि मेरे पास वह विशेषाधिकार नहीं है। मैं एक ही स्थान पर जड़ जमाए खड़ा हूँ और मैंने यहाँ से परे दुनिया का कोई हिस्सा नहीं देखा। मैंने संसार के चमत्कारों में से कुछ भी नहीं देखा। मैं प्रतिदिन उसी क्षितिज को देखता रहता हूँ और मुझे हर रात एक-से स्वप्न आते हैं।’

‘किंतु यह सुनने से बड़ा शांतिप्रद लगता है। तुम्हें शिकायत किस बात की है?’

‘क्योंकि मैंने और कुछ नहीं देखा।’

‘मेरे पास देखने के लिए कुछ और नहीं है।’

विंध्याचल ने विनती की, ‘आपसे प्रार्थना है कि मुझे ज्ञान दीजिए। मुझे अपनी यात्राओं के बारे में बताइए। आपने क्या-क्या देखा है? आप अभी कहाँ से आ रहे हैं?’

‘मैं सुमेरु पर्वत से आया हूँ। वह ब्रह्मांड का स्तंभ है।’

‘सुमेरु। मैंने उसका नाम सुना है। क्या वह उतना शानदार भी है जितना सुनने में लगता है?’

‘उससे भी अधिक,’ नारद ने मुस्कुराते हुए कहा। ‘सुमेरु जैसी भव्यता किसी अन्य पर्वत में नहीं है। वहाँ ऐसे रंग और सुगंध वाले फूल हैं कि इंद्र का उद्यान भी ईर्ष्या से जल उठता है। वहाँ के फलों से ऐसा अमृत टपकता है जिसका स्वाद देवताओं ने तक नहीं चखा। वहाँ

सूरज की प्रखरता महसूस नहीं होती और चंद्रमा, अपनी दूध-सी भरपूर चाँदनी छिड़कता है।'

'और वह कितना ऊँचा है? मेरे जितना ऊँचा?'

'तुमसे भी ऊँचा। बहुत ऊँचा। वह निश्चित रूप से सभी पर्वतों में सबसे ऊँचा है।'

नारद चले गए किंतु विंध्याचल को उस रात एक पल के लिए भी नींद नहीं आई। वह देवर्षि की बातों पर विचार करता रहा। प्रश्न करता रहा। घृणा करता रहा। वह देवर्षि की बातों को मानने को तैयार नहीं था। किंतु उन्हें दोहराता भी रहा। वह उन बातों के अंतहीन पाश में फँस गया था। क्या सचमुच सुमेरु अद्वितीय था? क्या उसके शिखर इतने ऊँचे थे? क्या तीनों लोक सुमेरु की प्रशंसा करते थे जबकि वह स्वयं अकेला और परित्यक्त पड़ा था? यह सब सोचकर विंध्याचल सिहर उठा।

इस स्थिति को बदलना होगा...

कुछ घंटों के बाद, जैसे ही सूर्यदेव जागे और पृथ्वी का चक्कर लगाने के लिए निकले, उनका रथ अचानक रुक गया। उसके पहिए आगे नहीं बढ़ रहे थे। भगवान सूर्य ने उनींदी आँखों को साफ किया और एकटक देखने लगे। उनके घोड़े हिनहिना रहे और पत्थर की विशाल दीवार पर लात मार रहे थे, जो सहसा रातों-रात उभर आई थी। सूर्य ने सोचा, क्या ब्रह्मा ने कोई नया ग्रह बनाकर लटका दिया है? या कोई क्षुद्र ग्रह पट्टी? फिर सहसा उन्हें बात समझ में आई।

विंध्याचल ने स्वयं को आकाश जितना ऊँचा उठा लिया था।

'यह तुमने क्या किया?' सूर्य देव चिल्लाए। 'तुमने मेरा मार्ग रोक दिया है।'

'मुझे पता है किंतु मैं असहाय हूँ,' पर्वत हँसी दबाकर बोला। 'ब्रह्मांड के प्रत्येक प्राणी को ऊपर उठने का अधिकार है। अपनी स्थिति सुधारने का अधिकार। मैंने भी वही किया है।'

'तुम्हें अपनी आकांक्षा पूरा करने का अधिकार अवश्य है किंतु दूसरों को कष्ट देकर नहीं! तुम्हारे शिखर प्रकृति के नियम में बाधा डाल रहे हैं। मुझे निर्धारित मार्ग पर चलने से रोक रहे हैं। तुम्हारी इच्छा-पूर्ति के लिए भूलोक कष्ट क्यों उठाए?'

'इच्छा नहीं, महत्त्वाकांक्षा। किसी ने मुझे बताया कि सुमेरु मुझसे श्रेष्ठ है। किंतु अब नहीं! अब मैं सबसे ऊँचा हूँ। पर्वतों में सर्वोच्च!'

'मूर्ख! तुम्हारा शरीर बड़ा हो गया है किंतु तुम्हारा दिमाग अब भी छोटा ही है। तुम महान तभी बन सकते हो जब तुम्हारा दिल उदार हो। सुमेरु की प्रतिष्ठा उसकी ऊँचाई के कारण नहीं अपितु विनम्रता के कारण है। उसकी शुद्धात्मा के कारण है, जो उस पाषाण के भीतर श्वास लेती है। परंतु तुम दानव की तरह व्यवहार कर रहे हो जो केवल अपने बारे में सोचता है। जिस अहंकार ने तुम्हें ऊँचा उठाया है, उसी के चलते कभी मुझे नीचे गिरना पड़ा था।

ऐसा करके तुम सर्वोच्च नहीं बनोगे अपितु यह अहंकार तुम्हारे अच्छे गुण भी तुमसे छीन लेगा।'

सूर्य की चेतावनी के बावजूद पर्वत अपने स्थान से नहीं हिला। सूर्य का मार्ग बाधित होने से संसार-भर में अव्यवस्था फैल गई। अनंत कालीन दिन और कभी न खत्म होने वाली रात के मध्य समय जैसे रुक गया था। पृथ्वी का आधा हिस्सा, गर्मी से पिघलने लगा था जबकि शेष आधा भाग, बर्फ में बदल रहा था। अत्यधिक प्रकाश ने धरती के आधे भाग को अंधा कर दिया तो घनघोर अंधकार ने दूसरे भाग को निष्क्रिय बना दिया। आधी दुनिया का पानी भाप बन गया और शेष आधे भाग में पानी जमने लगा था। जीवन समाप्त होने लगा तो देवता विष्णु के पास पहुँचे।

'विंध्याचल को अपने ऊँचे शिखर का बहुत अहंकार हो गया है,' विष्णु ने कहा। 'वह देख नहीं रहा कि सूर्य चाहे तो उसके शरीर में छेद कर सकता है किंतु वह उस पर दया दिखा रहा है।'

'ऐसा न करने में ही बुद्धिमानी है,' देवताओं ने सहमति व्यक्त की। 'विंध्याचल केवल मनुष्यों को ही नहीं अपितु अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों को भी आश्रय देता है। उस पर अनेक मंदिर और मूल्यवान संसाधन भी मौजूद हैं। उसे नष्ट करना अनुचित होगा। उसे अपनी ऊँचाई कम करनी होगी। इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।'

विष्णु ने सलाह दी, 'जिसे नष्ट नहीं किया जा सकता, उसे चकमा अवश्य दिया जा सकता है। आप महर्षि अगस्त्य के पास जाइए।'

'अगस्त्य?'

'छोटे मस्तिष्क भी कई बार विशालता को विफल कर देते हैं। अगस्त्य की मेधा इस बाधा को अवश्य दूर कर देगी।'

देवताओं के कहने पर ऋषि अगस्त्य ने तुरंत विंध्याचल की ओर प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचकर उससे बोले।

'हे पर्वत, मैं आपको प्रणाम करता हूँ! आप इतने ऊँचे उठ गए हैं कि लगता है आपने स्वर्ग को धारण कर लिया है। बादल आपका अभिषेक करते हैं और तारे आपके सिर का ताज हैं। आप सचमुच ब्रह्मांड में सबसे ऊँचे हो गए हैं।'

पर्वत प्रसन्न हो उठा। 'ऋषि अगस्त्य, आप दयालु हैं। मुझसे सत्य कहकर आपने मेरा मान बढ़ाया है। मैं आपका यह ऋण कैसे चुका सकता हूँ?'

'मैं दक्षिण की यात्रा पर निकला हूँ। मेरे लिए वृद्धावस्था में आपकी इस ऊँचाई को पार करना बहुत कठिन है। क्या आप अपनी ऊँचाई को मेरी सुविधा के लिए थोड़ा कम कर सकते हैं? और आपको इसे तब तक कम रखना होगा जब तक मैं लौटकर नहीं आ जाता।

मैं शीघ्र ही वापस आऊँगा और फिर अपना कद बढ़ा सकते हैं।'

देवताओं ने देखा विंध्याचल की ऊँचाई घट रही थी। उसके शिखर नीचे आ रहे थे और वे शिखर अनभिज्ञ थे कि दरअसल, अगस्त्य ने अपने विवेक से उन्हें झुका दिया था। पर्वत जैसे ही छोटा हुआ, सूर्य सरपट दौड़ पड़ा। उसके पहिए घूमे और भूलोक फिर से प्रकाशित हो उठा। जीवन ने आँखें खोलीं और समय चल पड़ा।

पर्वत ने अगस्त्य से कहा, 'लौटकर जल्दी आइएगा।'

'अवश्य। मेरे लिए प्रतीक्षा करना। मैं वापस आऊँगा।'

ऋषि अगस्त्य फिर कभी नहीं लौटे। वे दक्षिण में रहने लगे और उन्होंने वहीं आश्रम स्थापित कर लिया।

विंध्याचल प्रतीक्षा करता रहा।

नारद अब भी भ्रमण कर रहे हैं। सुमेरु अब भी विनम्र है। सूर्य अब भी सबका पोषण कर रहा है।

और विंध्याचल को अब भी अगस्त्य की प्रतीक्षा है!

77
दधीचि का अस्थि-दान



गुरुर ब्रह्मा... गुरुर विष्णु... गुरुर देवो महेश्वरा...

ये मंत्र इंद्र को परेशान कर रहा था। मंत्र कहता है कि गुरु, देवताओं के समान देवतुल्य होता है। यहाँ तक कि शिक्षक भी त्रिदेव के समान है। ज्ञान का रचयिता। ज्ञान का रक्षक। अज्ञान का नाश करने वाला। सर्वोच्च स्नेह और समर्पण के योग्य। परंतु इंद्र ने दोनों की उपेक्षा कर दी। देवताओं के गुरु बृहस्पति ने एक दिन इंद्र के महल में प्रवेश किया तो देवराज ने उनका अभिवादन नहीं किया। इंद्र अपनी अप्सराओं के साथ जल-क्रीड़ा में इतना मग्न थे कि उन्होंने गुरु की उपेक्षा कर दी। बृहस्पति चले गए और उन्हें फिर किसी ने नहीं देखा। सूर्य ने उन्हें दिन में खोजा और चंद्रमा, रात-भर खोजता रहा। इंद्र ने ब्रह्मांड के सभी छोर खंगाल डाले किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। देवगुरु ने देवताओं का साथ छोड़ दिया था और वे सब घबराए हुए थे। देवराज अब ब्रह्मा के सामने लज्जित खड़े थे।

‘आप कभी सीखेंगे या नहीं?’ ब्रह्मा ने नाराज स्वर में कहा। ‘अथवा आपको लगता है कि स्वर्ग का शासक होने के नाते आप कुछ भी करके बच सकते हैं?’

‘पहले बृहस्पति को खोजते हैं। आप मुझे बाद में डाँट लीजिए।’

‘देवगुरु कहीं नहीं मिल रहे। हमें उनका विकल्प खोजना पड़ेगा।’

‘कोई विशेष व्यक्ति?’

‘विश्वरूप।’

‘ऋषि त्वष्टा का तीन सिर वाला पुत्र?’

‘हाँ। उन्होंने वैष्णवी विद्या सहित अनेक कलाओं में महारथ हासिल की है। उन्हें नए गुरु के रूप में नियुक्त कर लीजिए।’

‘क्या वे हमारे लिए ठीक रहेंगे?’ इंद्र ने पूछा।

‘यदि आप उनके साथ ठीक रहेंगे,’ ब्रह्मा ने चुटकी ली।

विश्वरूप सहमत हो गए और उन्होंने देवताओं को अनेक बार विजय दिलाई। इस तरह वे देवताओं के लिए एक सक्षम गुरु सिद्ध हुए। दुर्भाग्य से, एक छोटे-से तथ्य पर किसी का ध्यान नहीं गया। विश्वरूप के पिता ऋषि थे किंतु उनकी माता दैत्य थीं। असुर रक्त का अंश होने के कारण विश्वरूप की आधी निष्ठा असुरों के प्रति भी थी। इंद्र को पता लग गया कि उनका गुरु, शत्रु के साथ समझौता कर चुका है। उन्हें महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ देता है। यहाँ तक कि विश्वरूप ने असुरों को वैष्णवी विद्या का ज्ञान भी दे दिया। देवराज को क्रोध आ गया। बृहस्पति के प्रति अपराध-बोध और विश्वरूप पर आया क्रोध मिलकर देवराज इंद्र पर हावी हो गए।

इंद्र ने वज्र से तीन वार किए और गुरु विश्वरूप के तीनों सिर काट डाले। उनमें से एक काला तीतर बन गया, दूसरा चकोर और तीसरे ने गौरैया का रूप ले लिया।

त्वष्टा अपने पुत्र के शव के पास पहुँचे। उन्होंने पैर के अंगूठे से जमीन पर चोट करके अग्नि उत्पन्न कर दी। फिर विश्वरूप के कटे सिरों को इकट्ठा किया और एक विकट यज्ञ आरंभ कर दिया। उन्होंने विश्वरूप के कटे सिरों की जैसे ही आहुति दी, आकाश में अंधेरा छा गया। यज्ञ से ऊँची-ऊँची लपटें उठने लगीं। उन लपटों के चटकने की आवाज़ तेज होती गई मानो उन्हें प्रसव पीड़ा हो रही थी। उनके यौनांग काँप रहे थे और त्वष्टा द्वारा उत्पन्न हुई चीज को बाहर धकेल रहे थे। एक राक्षस, जो दिखने में बहुत भयानक था। वह जले हुए पहाड़ के समान ऊँचा था।

‘वृत्रासुर,’ ऋषि त्वष्टा ने चिल्लाकर कहा। ‘देवताओं ने मेरे पुत्र का वध किया है। इंद्र ने वज्र से तीन वार करके उसके तीनों सिर काटे थे।’

‘और फिर भी आपकी आँखों में आँसू नहीं हैं?’

‘एक भी नहीं! अब जाओ। जिस तरह मेरे आँसू सूख गए हैं, उसी तरह तुम ब्रह्मांड के समस्त जल को सुखा डालो। सृष्टि को मुरझाने दो और उसे नष्ट कर दो।’

वृत्रासुर पाँचवें तत्त्व, जल पर टूटा तो शेष चारों तत्त्व घबरा उठे। वृत्रासुर ने ब्रह्मांड का समस्त जल चूस कर उसे अपने शरीर में कैद कर लिया। इंद्र द्वारा की गई वर्षा की प्रत्येक बूँद को वृत्रासुर ने अपने अंदर रोक लिया था। देवराज ने आक्रमण किया किंतु उसका वज्र भी वृत्रासुर का बाल बाँका नहीं कर पाया। लोगों का गला सूखने लगा तो सभी देवता इकट्ठे हो गए।

‘जल!’ इंद्र ने त्रिदेव के समक्ष हाथ जोड़ कर कहा। ‘हमें जल को मुक्त करना होगा अन्यथा सब नष्ट हो जाएगा।’

ब्रह्मा ने श्वास छोड़ी। ‘यह असंभव है। आपने बहुत पहले एक ऋषि को नाराज किया था

जिसके बाद समुद्र का मंथन करना पड़ा। अब आपने एक और ऋषि को रुष्ट कर दिया है जिसके कारण सभी महासागर बंधक बना लिए गए हैं। यहाँ तक कि आपका शक्तिशाली वज्र भी डर कर पीछे हट गया।'

'फिर तो हमें वज्र से भी अधिक शक्तिशाली कोई अस्त्र चाहिए,' विष्णु ने शिव की ओर देखते हुए कहा।

'मेरे वज्र से भी अधिक शक्तिशाली?' देवराज चकित थे।

शिव ने हामी भरी। उनके मुख से एक नाम निकाला।

'दधीचि।'

दधीचि का नाम सबके कानों में ऐसे पड़ा जैसे तालाब में कंकड़ पड़ता है। उससे उत्पन्न तरंगों ने बहुत पुरानी और सुप्त पड़ी स्मृतियों को जगा दिया। दधीचि और क्षुव। वह युद्ध। वह पुनर्जीवन। वह वरदान और वह शाप।

'निस्संदेह,' ब्रह्मा के चारों मुख एक साथ बोल पड़े। 'क्षुव को परास्त करने के लिए महादेव ने दधीचि की अस्थियों को आपके वज्र से भी अधिक शक्तिशाली बना दिया था।'

विष्णु ने भी हामी भरी। 'अस्थिदान! हमें दधीचि की अस्थियाँ चाहिए तब विश्वकर्मा उनसे एक अस्त्र बनाएँगे। दधीचि के शरीर की अग्नि से अब जल को प्राप्त किया जा सकता है।'

देवता तुरंत दधीचि के आश्रम पहुँचे। ऋषि ने उनकी बात सुनी तो उनकी आँखों से आँसू छलक पड़े। परम आनंद के आँसू।

'यह समझना कितना सरल है! कितना स्पष्ट!'

'क्या, ऋषिवर?' उन्होंने पूछा।

'मैं सोच रहा था कि इतने युग बीत गए किंतु मेरी मृत्यु क्यों नहीं हुई। अब मुझे इसका कारण समझ में आया। ब्रह्मांड ने मुझे इस कार्य के लिए जीवित रखा था। मेरी मृत्यु दूसरों को जीवन देगी।'

इंद्र ने दधीचि के चरण स्पर्श किए। 'ब्रह्मांड आपके बलिदान को कभी नहीं भूलेगा। भूल मेरी थी किंतु उसका मूल्य आप अस्थि-दान करके चुका रहे हैं।'

'मैं कुछ दान करने वाला कौन होता हूँ, देवराज? मैं तो केवल वही लौटा रहा हूँ जो मुझे दिया गया था। यह ब्रह्मांड और कुछ नहीं अपितु ऊर्जा का आदान-प्रदान है। हम कुछ उधार लेते हैं और फिर हमें उसे लौटना होता है।'

दधीचि पालथी मारकर बैठ गए। उन्होंने जैसे ही आँखें मूँदीं, उनका शरीर जलने लगा। उन्होंने अपनी मानसिक ऊर्जा ने अग्नि को प्रकट किया था। ऋषि की आत्मा, उनके शरीर का भक्षण कर रही थी। उनकी अस्थियाँ बच गईं और शेष सभी अंग पिघलने लगे। उनकी आँखें चमक रही थीं। देवताओं ने अंतिम बार लपटों के बीच दधीचि का प्रसन्न स्वर सुना।

‘कितना सरल... कितना स्पष्ट...’

उनकी भस्म चमक रही थी मानो वह कोई जादू था। इंद्र ने दधीचि की रीढ़ का एक टुकड़ा उठाया।

वज्र के समान...

इंद्र की अँगुलियाँ ब्रह्मा के वचन की जाँच कर रही थीं।

वज्र से भी अधिक शक्तिशाली...

उन अस्थियों से बना अस्त्र, शीघ्र ही वृत्रासुर का पेट फाड़ कर भीतर चला गया। वृत्रासुर के उदर में भरा पानी बाहर निकल आया। जलधारा के फूटते ही जीवन फिर से खिल उठा। असुर मर चुका था। ब्रह्मांड फिर से हरा-भरा हो गया। बृहस्पति भी लौट आए और स्वर्ग लोक में उत्सव मनाया गया। परंतु इंद्र को किसी ने नहीं देखा। देवताओं और दानवों ने इंद्र को सब जगह खोजा। उनकी पत्नी इंद्राणी और हाथी ऐरावत ने भी इंद्र को ढूँढ़ा। यहाँ तक कि नक्षत्रों ने भी सब ओर देखा किंतु इंद्र का कहीं कुछ पता नहीं लगा।

इंद्र गायब हो गए थे।

78
नहुष बना देवराज



‘मैंने इंद्र को ढूँढ़ लिया,’ ब्रह्मा ने एक दिन घोषणा की।

देवता जय-जयकार करने लगे। वे इंद्र को ब्रह्मांड के हर शिखर और गह्वर में खोज चुके थे। उन्होंने पंच तत्त्वों और दसों दिशाओं की भी पड़ताल कर ली थी। जब भी कोई राक्षस मरता था तो देवराज के नेतृत्व में उत्सव होता था। वही सबसे अधिक पीते और सबसे ज्यादा हँसते थे। परंतु वृत्रासुर को पराजित करने के बावजूद इंद्र कहीं दिखाई नहीं दे रहे थे।

‘इंद्र कहाँ है, परम पिता?’ सूर्य ने पूछा।

‘इंद्र वनवास में हैं। उन्होंने जो किया है, उसका दुख उनकी आत्मा को खा रहा है। इसलिए इंद्र तपस्या कर रहे हैं।’

‘तपस्या?’ वरुण की भौहें तन गईं। ‘उन्होंने एक राक्षस का वध किया है जो समूचे ब्रह्मांड के लिए संकट बन गया था। इसके लिए वह स्वयं को कष्ट क्यों दे रहे हैं?’

‘वृत्रासुर के लिए नहीं। दधीचि की मृत्यु के लिए।’

‘किंतु दधीचि ने अपनी नियति का अनुसरण किया है,’ अग्निदेव ने तर्क दिया।

‘इंद्र इसके लिए स्वयं को दोषी मान रहे हैं। वे इस बात से व्यथित हैं कि दधीचि ने निःस्वार्थ भाव से अपना सर्वस्व त्याग दिया जबकि इंद्र अपने लोक के प्रति आसक्त रहते हैं। इंद्र ने मुझे बताया कि ऋषि दधीचि के अवशेष का धुआँ उनके फेफड़ों में भर गया है और उनके लिए श्वास लेना भी कठिन हो चुका है। संभवत: ऐसा पहली बार हुआ है जब देवराज अपराध-बोध से ग्रस्त हैं। उन्हें विश्वरूप के सिर काटने का भी गहरा सदमा पहुँचा है।’

‘विश्वरूप ने हमें धोखा दिया था। हमारे गुरु होने के बावजूद, वे असुरों की सहायता कर रहे थे।’

‘विश्वरूप, ब्राह्मण थे। वेदों में चेतावनी दी गई है कि ब्राह्मण की हत्या सबसे गंभीर पापों में

से एक है और इंद्र यह जानते हैं। उन्हें याद है कैसे महादेव को काशी में जाकर स्वयं का शुद्धिकरण करना पड़ा था क्योंकि उन्होंने मेरा एक सिर काट दिया था, जो ब्रह्महत्या के बराबर माना गया है। इंद्र ने मुझे अपना वज्र दिखाया और रोते हुए कहा कि उसमें से अब भी विश्वरूप के रक्त की गंध आती है। इंद्र अपनी ही दृष्टि में गिर गए हैं।'

'हम बात करेंगे तो वे अवश्य मान जाएँगे...'

'नहीं,' ब्रह्मा ने स्पष्ट स्वर में कहा। 'इंद्र की शासन करने की इच्छा समाप्त हो गई है। किसी और को उनकी जगह नियुक्त करना होगा।'

ब्रह्मा एक-एक करके सब देवताओं को ध्यान से देखने लगे। देवता समझ गए थे कि ब्रह्मा क्या सोच रहे हैं। वे सब बहाना बनाने लगे।

'मुझे प्रतिदिन पृथ्वी की पूरी परिधि को पार करना होता है,' सूर्य ने धीरे-से कहा। 'मेरे पास स्वर्ग लोक के विषयों पर सोचने के लिए समय नहीं है।'

चंद्रमा ने याद दिलाया, 'मैं पूरी रात जागता हूँ और दिनभर सोता हूँ। मैं यह कार्य नहीं कर सकता।'

यम ने सिर हिलाते हुए कहा, 'प्रत्येक प्राणी की मृत्यु का हिसाब रखना थकाने वाला काम है। मैं खुद पर काम का और बोझ कैसे डाल सकता हूँ?'

'और हम तो पंचतत्त्व हैं,' वायु, अग्नि और वरुण ने एक स्वर में कहा। 'यदि हम शासन के कार्य में लग जाएँगे तो ब्रह्मांड को कौन धारण करेगा?'

अन्य देवताओं ने भी विभिन्न प्रकार की लाचारी व्यक्त कर दी। इंद्र का आसन बहुत उच्च था और उनमें से कोई भी उसे संभालने को तैयार नहीं हुआ।

फिर ब्रह्मा, गुरु बृहस्पति की ओर मुड़े।

'अब क्या करें?'

'जब स्वर्ग से कोई उत्तर नहीं मिलता तो हमें पृथ्वी की ओर देखना चाहिए।'

'मनुष्य? अमर देवताओं पर शासन करने के लिए नश्वर प्राणी?'

'चूँकि देवतागण खुद को इस काम के अयोग्य मानते हैं तो हमें किसी मनुष्य को ही चुनना पड़ेगा।'

'ऐसा लगता है आपने पहले ही किसी को चुन लिया है।'

गुरु ने हामी भरी। 'नहुष।'

बृहस्पति ने जैसे यह नाम लिया सब चंद्र की ओर देखने लगे। वह व्याकुल खड़ा था। उसके चेहरे पर खुशी और उलझन के मिश्रित भाव उभर आए।

'नहुष? मेरा नहुष?'

'हाँ। चंद्रवंशी राजा। इला और बुध की संतान और पुरुरवा का पौत्र।'

‘क्या वह इस योग्य है?’

‘नहुष ने सौ अश्वमेध यज्ञ पूरे कर लिए हैं। विवेक उसके मस्तिष्क को निर्देशित करता है और उसके हृदय में न्याय का वास है। उसके अधीन रहकर भूलोक समृद्ध हो रहा है तो इंद्रलोक भी अवश्य होगा।’

चांद की किरणों की श्वेत छटा में अचानक थोड़ी वृद्धि हो गई। नहुष का नाम देवताओं के बीच उत्साह का मंत्र बन गया था।

नहुष... हाँ... नहुष...

जल्द ही, चंद्र के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मंडल सम्राट नहुष के दरबार में पहुँचा। नहुष ने जब सुना कि देवता उसे क्या भेंट करने वाले हैं तो वह काँप उठा और अपने पितामह के चरणों में गिर पड़ा।

‘हर शाम मैं चंद्र-नमस्कार करने के लिए छत पर जाता हूँ और आपकी वंदना करता हूँ। आप रात्रि-नभ के स्वामी हैं। मेरे कुल के जनक हैं। मैं आपके ऊपर, आप सबके ऊपर शासन कैसे कर सकता हूँ?’

परंतु चंद्र ने नहुष का हाथ थाम कर उसके डर को शांत कर दिया। उसने नहुष से कहा कि नश्वरता नहीं, अपितु नैतिकता मायने रखती है। त्रिदेव ने नहुष को ताज पहनाया जिसे देखकर संसार आनन्दित हो उठा।

‘नहुष की जय! देवराज नहुष की जय!’

नहुष, जल्द ही इंद्र का आदर्श प्रतिस्थापन सिद्ध हुआ। उसने स्वर्ग की रक्षा की और असुरों पर विजय प्राप्त की। देवता प्रसन्न और ऋषि संतुष्ट थे। दुर्भाग्य से, जिस तरह चंद्र बढ़ने के बाद क्षीण होता है, नहुष के साथ भी वही हुआ। उसका विवेक क्षीण होने लगा। सद्गुण घटने लगे। उसका हृदय अभिमान से भर गया और उसके मन में किसी के लिए श्रद्धा न रही। न चंद्र के लिए और न अन्य देवताओं के लिए। ब्रह्मा, विष्णु और शिव के लिए भी नहीं! उसने अपने वंश को इंद्रलोक का एकमात्र स्वामी घोषित कर दिया और यहाँ तक कह दिया कि उसका पुत्र ययाति ही अगला देवराज होगा। क्षीण होते-होते आखिर अंधकार ने नहुष को ग्रस लिया। फिर एक दिन उसने उद्यान में इंद्राणी को देखा। इंद्र की पत्नी।

‘तुम मेरी हो और तुम्हें मेरे साथ संभोग करना होगा,’ नहुष ने इंद्राणी से कहा।

‘मेरी निष्ठा केवल मेरे देवराज के प्रति है,’ इंद्राणी ने उत्तर दिया। ‘मैं किसी और से प्रेम नहीं कर सकती।’

‘अब मैं देवराज हूँ। उसका सिंहासन मेरा है और उसका बिस्तर भी।’

‘किसी और की पत्नी, वस्तु नहीं होती जिसका स्वामी बदला जा सकता है। तुम देवराज का स्थान प्राप्त कर सकते हो किंतु मेरा हृदय नहीं। मुझसे दूर रहो, अन्यथा तुम्हारा अंत भी

रावण जैसा होगा।'

तिरस्कृत होने के बावजूद नहुष कोशिश करता रहा और यहाँ तक कि उसने रात के समय इंद्राणी के शयन-कक्ष में घुसने की भी कोशिश की। स्वयं को संकट में पाकर इंद्राणी एक दिन बृहस्पति के पास गई।

'आपने हमें फूल देने का वचन देकर, उसके स्थान पर शूल बो दिया है,' यह कहकर वह रोने लगी। 'क्या आप यहाँ बैठकर मेरा रक्त बहता देखेंगे?'

'यह सिंहासन का प्रभाव है, महारानी। संभवत: यह अपने ऊपर बैठने वालों का विवेक हर लेता है।'

गुरु बृहस्पति, नहुष को देख रहे थे। उन्होंने देखा कि नहुष ने जो प्राप्त किया, वह उसे कैसे विषाक्त कर रहा था। किस प्रकार उसके अंदर की मानवता, दैवीय अधिकार के बोझ के नीचे दब चुकी थी। उससे छुटकारा पाने का समय आ गया था। बृहस्पति ने इंद्राणी की आँखें पोंछीं और उसके कान में धीरे-से कुछ कहा।

इंद्राणी का चेहरा खिल उठा। 'क्या यह युक्ति काम करेगी?'

बृहस्पति मुस्कुराए। उसी दिन शाम को एक दूत नहुष के महल में पहुँचा और उसने नहुष को प्रणाम किया।

'इंद्राणी का संदेश?' राजा खुश हो गया। 'उन्होंने क्या कहा।'

'महारानी को अपने व्यवहार पर खेद है। वह आपसे क्षमा माँगना चाहती हैं और आशा करती हैं कि आप उन्हें स्वीकार करेंगे।'

'निस्संदेह!'

'वे गुरु बृहस्पति के निवास पर हैं और उन्होंने आपसे वहाँ जाकर उन्हें लाने का अनुरोध किया है।'

'अविलंब!' नहुष ने दूत का हाथ पकड़ लिया। 'चलो, चलते हैं।'

'महाराज, ऐसे नहीं। आपको कुछ तैयारी करनी होगी।'

'कैसी तैयारी?'

'महारानी का एक और छोटा-सा अनुरोध है। वे चाहती हैं कि आप भव्य ढंग से पहुँचें। ऐसी भव्यता, जो केवल देवराज को शोभा देती है।'

'मैं विभूषित उच्चैश्रवा पर बैठकर आऊँगा।'

'उससे भी श्रेष्ठ।'

'तो ऐरावत।'

'और भव्य।'

अब नहुष की भौहें तन गईं। 'इंद्राणी क्या चाहती हैं?'

‘महारानी चाहती हैं कि आप स्वर्ण पालकी में बैठकर आएँ जिसे आठ बुद्धिमान ऋषि उठाकर चलें।’

‘महारानी की इच्छा पूर्ण की जाएगी।’

जल्द ही, सोने के ढेर लग गए और उससे आठ भुजाओं वाली एक पालकी बनाई गई। चमकते स्वर्ण से निर्मित पालकी रेशमी आवरण में लिपटी हुई थी। नियत दिन पर, नहुष ने उस पालकी में प्रवेश किया और ऋषियों ने उसे उठा लिया। आठ ऋषि, अष्टकोणीय पालकी की एक-एक भुजा को उठाए चल रहे थे। पालकी आकाश में स्वर्णिम तारे की तरह चलने लगी और उसके हिलने से राजा को नींद आ गई। वह सपना देखने लगा। उसने देखा कि वह इंद्राणी के साथ संभोग कर रहा है। उसके होंठ चाट रहा है, वक्ष को सहला और नाभि को चूम रहा है। उन दोनों के हाथ-पैरों की अंगुलियाँ परस्पर गुँथी थीं और वह इंद्राणी के साथ समागम करने जा रहा था। गहरा और अंदर। तेज और तेज। उनके नाखून एक-दूसरे को गोद रहे थे। उनकी जीभ परस्पर बंधकर गांठ बन गई थीं। अंदर और गहरा। तेज और तेज। उनके शरीर पिघलकर पसीने के तालाब में बदल गए थे। गहरा और भीतर। तेज और तेज। नहुष के यौनांग में धड़कन तेज होने लगी। उसके भीतर नदी-सी उमड़ रही थी। वह मधुर स्राव की ओर बढ़ रहा था। गहरा और अंदर। तेज और तेज। वह इंद्राणी के भीतर उस स्राव को उँड़ेलने वाला था कि अचानक पालकी एक ओर झुक गई और नहुष जाग गया।

‘मूर्खों!’ नहुष चिल्लाया। ‘क्या तुम चलना भी भूल गए हो?’

‘यह अगस्त्य के कारण हुआ है,’ एक ऋषि ने कहा। ‘इनका कद छोटा है, इसलिए हमारा संतुलन बिगड़ जाता है। इसी कारण हमारी गति धीमी हो रही है।’

रक्त के तेज प्रवाह ने राजा को क्रोध दिला दिया। उसने अपना एक पैर बाहर निकाला और जोर से अगस्त्य को लात मारी।

‘तेज चलो! और तेज! अन्यथा मैं चाबुक से मार-मार कर तुम्हारे प्राण ले लूँगा!’

बृहस्पति की युक्ति काम कर गई थी। राजा ने जो किया उसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। मनुष्य होकर खच्चर की तरह पालकी में जोते जाने से अगस्त्य पहले से परेशान थे। उन्होंने नहुष को शाप दे दिया।

‘नहुष, तुम अब देवराज पद के योग्य नहीं रहे। अब तुम स्वर्ग में रहने अथवा मानव रूप के भी योग्य नहीं हो। मैं तुम्हें स्वर्ग से नीचे गिर जाने शाप देता हूँ। तुम त्रिशंकु की तरह नीचे गिरोगे किंतु तुम्हें अधर में शरण नहीं मिलेगी। तुम धरती पर गिरकर सदा के लिए के अजगर बन जाओगे।’

शाप का प्रभाव तत्काल हुआ। नहुष, पालकी से फिसला और भूलोक की ओर गिरने

लगा। वह जैसे ही नीचे गिरा, उसके अंग सिकुड़ गए और सिर फट गया। त्वचा पर शल्क उभर आए और दाँत नुकीले हो गए। नहुष जैसे ही सरीसृप बनकर पृथ्वी पर गिरा, स्वर्ग लोक में संगीत गूँज उठा। देवराज इंद्र लौट आए थे। वे मानसरोवर झील के अंदर कमल-नाल में छिपकर बैठे थे। इंद्राणी ने उन्हें खोज निकाला और सिंहासन पर फिर से बैठने के लिए मना लिया। इंद्र, देवराज बन गए और ब्रह्मांड, नहुष को भूल गया। केवल अगस्त्य को नहुष याद रहा। कुछ दिन बाद, अगस्त्य की भेंट नहुष रूपी अजगर से पूर्णिमा की रात हुई जब वह आँसू बहा रहा था। ऋषि अगस्त्य का मन पसीज गया और उन्होंने अपने शाप को हल्का कर दिया।

'अब से कुछ वर्ष बाद, तुम एक ऐसे व्यक्ति से मिलोगे जो तुम्हें सिखाएगा कि शासक होने का सही अर्थ क्या होता है। उस दिन तुम अपना मनुष्य रूप पुन: प्राप्त कर लोगे।'

'मैं उसे कैसे पहचानूँगा?' सर्प ने पूछा। 'उसका नाम क्या होगा?'

'युधिष्ठिर।'

79

कच ने रहस्य चुराया



बृहस्पति के कहने पर स्वर्ग लोक में दैवीय परिषद् का आयोजन हुआ। इस आयोजन को काफी समय हो गया था और उस दिन बृहस्पति के चेहरे पर गंभीरता झलक रही थी। सब देवता सुन रहे थे। बृहस्पति का लंबा एकालाप, एक शब्द में सिमट गया।

मृतसंजीवनी...

'तो आपका यह प्रस्ताव है कि हमें असुरों से मृतकों को पुनर्जीवित करने के रहस्य को चुरा लेना चाहिए?' इंद्र ने पूछा।

'हाँ।'

'किंतु क्यों? मृतसंजीवनी से उन्हें क्या लाभ हुआ है? हिरण्याक्ष। हिरण्यकशिपु। तारक। रक्तबीज। महिषासुर। वृत्रासुर। ये सभी राक्षस एक के बाद एक मारे गए।'

देवगुरु ने उन्हें समझाया, 'मृतसंजीवनी का संबंध केवल असुरों को पुनर्जीवित करने से नहीं है। इसके होने से यह डर जीवित रहता है कि उनके पास वह अद्भुत शक्ति है। यह खतरा हमेशा हमारे मन में जीवित रहता है। यह उच्चतम मनोवैज्ञानिक हथियार है और इसे निष्प्रभावी करना आवश्यक है। एक बार राक्षसों को पता चल गया कि हमने मृतसंजीवनी विद्या चुरा ली है तो उनके दिमाग पर इसका असर होगा और आने वाले समय में युद्ध कम हो जाएँगे।'

देवराज ने हामी भरी। 'किंतु यह रहस्य केवल शुक्राचार्य जानते हैं। हम इसे कैसे चुराएँगे?'

'मैंने कुछ सोचा है। और इसके लिए किसी का नाम भी मेरे ध्यान में है।'

कुछ दिन बाद एक युवक, शुक्राचार्य के आश्रम पहुँचा। उसने उनका शिष्य बनने का अनुरोध किया। गुरु ने उसकी कलाई पर धागा बाँधा और मस्तक पर एक चिह्न अंकित कर

दिया। फिर उसे राक्षसों का संस्कार-प्रसाद खिलाया। परंतु शुक्राचार्य इस बात से अनभिज्ञ थे कि वह युवक कोई और नहीं अपितु स्वयं बृहस्पति का पुत्र था और उनसे विद्या चुराने आया था। तभी युवक ने देखा कि दो सुंदर आँखें उसे निहार रही थीं।

वह मुस्कुराकर बोला, 'मैं कच हूँ। उनका नया शिष्य।'

युवती ने आँखें नीची करते हुए कहा, 'मैं देवयानी हूँ। उनकी पुत्री।'

जल्द ही, युवती ने युवक का नाम अपने हृदय पर उकेर लिया। कच, रोज सुबह देवयानी की खिड़की के पास भजन गाकर उसे जगाता था। शाम को वह उसके लिए पास के जंगल से फूल भी लाता था। और हर रात, बृहस्पति चुपके से कच के कक्ष में आते और वही सवाल पूछते।

'कच, क्या वह तुम्हें विद्या मिली?'

'अभी नहीं, पिताजी। परंतु गुरु की पुत्री को मुझसे प्रगाढ़ प्रेम हो गया है।'

जल्द ही, कच को विश्वास हो गया कि देवयानी पूरी तरह से उसके वश में आ चुकी थी। योजना बनाने का समय आ गया था किंतु उसे कोई युक्ति नहीं सूझ रही थी। स्थिति को एक जबरदस्त मोड़ देने की आवश्यकता थी क्योंकि तभी शुक्राचार्य द्वारा रहस्य प्रकट किए जाने की संभावना बन सकती थी। संध्या के समय दीपक जलाते हुए कच ने असुरों को मदिरा तैयार करते देखा। मदिरा जब बन रही थी, उस बीच असुरों ने एक हिरण को जलाकर उसकी सारी राख अपने गुरु के पेय में मिला दी। शुक्राचार्य को मदिरा पीते देख कच के मस्तिष्क में एक विचार आया। वह विचार इतना भयावह था कि उसे सोचकर ही कच नीचे पर गिर पड़ा। उसका शरीर ऐंठ रहा था और दिल तेजी से धड़क रहा था। उसकी इंद्रियाँ प्रश्न कर रही थीं कि क्या वह इतना खतरनाक कदम उठा सकेगा। उसके मन ने तुरंत वह विचार छोड़ देने की याचना की। परंतु कच जानता था कि वही एक चाल थी। एकमात्र चाल, जो काम कर सकती थी। असुरों को बृहस्पति से घृणा थी और शुक्राचार्य को मदिरा बहुत पसंद थी। कच ने सिर हिलाया।

क्योंकि देवयानी मुझसे उतना ही प्रेम करती है जितना वह अपने पिता से करती है...

ज्यादा नहीं...

कम नहीं...

उतना ही...

कच का दिमाग दौड़ रहा था। योजना को तीन चरणों में पूरा किया जाना था। पहले दो चरण, कच के नियंत्रण में थे किंतु तीसरा चरण, पूरी तरह से देवयानी के हाथ में था। पहले तो कच ने देवयानी को विश्वास में लेने का फैसला किया, फिर उसने फैसला बदल दिया। देवयानी की निष्ठा से अधिक उसकी अज्ञानता उपयोगी थी। कच को लगा कि देवयानी का

प्रेम सब सँभाल लेगा। वह खड़ा हो गया। राक्षसी तांडव में सम्मिलित होने का समय हो गया था। सूचना के आदान-प्रदान का समय।

एक रहस्य के बदले दूसरा...

मदिरा बह रही थी और माँस भुन रहा था। कोई नृत्य कर रहा था तो कोई मैथुन में मग्न था। कच ने मदिरा का एक पात्र उठाया और नशे में होने का ढोंग करते हुए उसने धीरे-से एक दैत्य से कहा।

'एक रहस्य बताऊँ?'

'हाँ, बताओ।'

'मैं गुरु बृहस्पति का पुत्र हूँ। देवताओं के गुरु का पुत्र।'

यह सुनकर दैत्य की जैसे श्वास ही रुक गई। मदिरा उसकी नाक से बुदबुदा कर बाहर निकल आई। वह गुस्से से भड़क उठा। उसने मुड़कर यही बात दूसरे असुर के कानों में कह दी। दूसरे ने तीसरे को पकड़ लिया। फिर चौथे को। पाँचवाँ। छठा। कच देख रहा था कि उसका बताया रहस्य, एक असुर से दूसरे असुर तक पहुँच रहा और सबके क्रोध को भड़का रहा था। अंत में, धधकती लाल आँखों और धुएँ से भरी साँसों का एक जत्था कच की ओर बढ़ने लगा। उनके हाथ जैसे ही कच के गले तक पहुँचे, गुरु शुक्राचार्य ने गरज कर कहा, 'रुको!'

'इसमें शत्रु का रक्त है,' वे सब गुर्राए। 'हम इसका अंग-अंग काट देंगे।'

'तुम ऐसा कुछ नहीं करोगे।'

'किंतु इसने हमें धोखा दिया है, अपनी पहचान छिपाई है। कौन जाने इसने अपने भीतर और क्या रहस्य छिपा रखा है? आप हमें क्यों रोक रहे हैं?'

'क्योंकि यह मेरे आश्रम में और मेरी देख-रेख में है। मैंने इसे शिष्य बनाते समय इसकी सुरक्षा का अनकहा समझौता भी किया था। मैंने जो धागा इसकी कलाई पर बाँधा है, वह मुझे इसकी रक्षा करने पर बाध्य कर रहा है। शिष्य बनना, एक नया जन्म लेने जैसा है। उसे भी अब अपने जैसा समझकर स्वीकार करो।'

असुर तितर-बितर हो गए किंतु देवयानी, कच के कक्ष में गई और उससे झगड़ने लगी। उसके रोम-रोम से पीड़ा और रोष छलक रहा था। कच को पहले से अनुमान था कि ऐसा होगा इसलिए वह देवयानी को शांत करने और उसका मनोरंजन करने की कोशिश करने लगा। देवयानी खिलखिलाकर बाहर भाग गई। कच का तन शांत हो गया और उसके मन को संतोष मिला। वह लेटा तो उसे पता था कि उस रात उसे नींद नहीं आएगी।

दूसरे चरण का समय...

भोर होते ही कच ने शुक्राचार्य के घोड़ों को चराने ले जाने का आग्रह किया। घने वन में

प्रवेश करके वह रुक गया और वहीं खड़ा रहा। वह प्रतीक्षा कर रहा था। उसे आशा थी कि वह जिनकी प्रतीक्षा कर रहा था वे उसके पीछे आ रहे थे। वह सोच रहा था क्या सब कुछ उसकी बनाई योजना के अनुसार होगा। उसने असुरों का गुस्सा देखा था और वह अब उनके गुस्से को क्रियान्वित होता देखना चाहता था। सूर्य आकाश में चढ़ने लगा। घोड़ों का झुंड सोने लगा था किंतु कच की आँखें खुली थीं। वह प्रतीक्षारत था। फिर उसने एक टहनी के टूटने की आवाज़ सुनी।

वे आ रहे हैं...

कच ने तुरंत टहनियों और घास-फूस का ढेर लगाना शुरू कर दिया। उसने जैसे ही ढेर में आग लगाई, कदमों की आहट तेज हो गई।

वे निकट हैं...

आग की लपटें भड़कने लगी थीं। वे उसे चारों ओर से घेर रहे थे।

वे पहुँच गए...

कच ने उनके चेहरों को नहीं देखा। वह केवल उनके निकट आते पैरों को देख रहा था। उनके नाखून, कच के माँस के भूखे थे। उनकी तलवारें उसके रक्त की प्यासी थीं। कच के आसपास जैसे-जैसे घेरा कसता गया, उसने सूर्य को ढक लिया। कच अब सांस नहीं ले पा रहा था। उसका शरीर काँप रहा था लेकिन आत्मा प्रसन्न थी। उसने जो कुछ रचा था, वह सब उसी तरह हो रहा था। सारे तत्त्व इस बात से अनजान थे कि यह सब कच का ही रचा हुआ था और वे अपनी-अपनी भूमिका निभा रहे थे। ब्रह्मांड, कच की इच्छा के आगे झुक गया था मानो वह भगवान हो। वह मरने को था किंतु फिर भी मरने वाला नहीं था मानो वही भगवान हो!

मर कर भी मत मरो...

जैसे ही रात हुई, देवयानी लड़खड़ाते हुए वन में पहुँची। उसके हाथ में जले हुए वस्त्र का टुकड़ा था। पिता के सामने खड़ी देवयानी ने वह टुकड़ा कस कर पकड़ लिया।

'कच का वस्त्र?' शुक्राचार्य ने कहा। 'यह तुम क्या कह रही हो?'

'आपके असुरों ने उसे मार डाला। उसे काटकर जला दिया।'

'मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने का उन्होंने साहस कैसे किया? मैं उन्हें नहीं छोड़ूँगा। मैं...'

शुक्राचार्य रुक गए। देवयानी कुछ बड़बड़ा रही थी। उसके आँसू बह रहे थे और फिर भी वह हँस रही थी।

'आप? आप उन्हें नहीं छोड़ेंगे, पिताजी? आप, जिन्होंने मेरे कच को निगल लिया?'

गुरु शुक्राचार्य ठिठके। उनकी बेटी के चार शब्दों ने उन्हें स्तब्ध कर दिया था।

निगल लिया...

मेरे कच को...

देवयानी ने अपने पिता के पास जाकर उनके होठों से एक काला कण छुड़ाया।

'हाँ। मैं उससे प्रेम करती हूँ। परंतु दुष्ट असुरों ने उसकी राख आपकी मदिरा में मिला दी और आप उसे पी गए।'

शुक्राचार्य ने भय से अपनी आँखें बंद कर लीं। फिर वह थोड़ी देर बाद बोले।

'मैं घोषणा करता हूँ कि अब से कोई ब्राह्मण यदि मदिरा का सेवन करेगा तो उसे दुख भोगना पड़ेगा। यह सबसे जघन्य पाप माना जाएगा। नशे की स्थिति में सद्गुण और विवेक दोनों उसका साथ छोड़ देंगे। फिर जब उसकी मूर्च्छा समाप्त होगी तो उसके पास पश्चाताप के सिवा कुछ शेष नहीं बचेगा। अब मैं क्या करूँ, देवयानी? मैं कच को सुरक्षित रखने में असफल रहा।'

'आप जानते हैं कि आपको क्या करना चाहिए।'

'मृतसंजीवनी?'

'इसी क्षण।'

'अगर इससे तुम्हें प्रसन्नता होती है, तो ठीक है,' शुक्राचार्य ने खोखले स्वर में सहमति व्यक्त की। 'किंतु वह मेरे अंदर है। यदि मैं उसे जीवित करता हूँ तो उसे मेरे शरीर को फाड़कर बाहर आना होगा।'

'आपके शरीर को फाड़ कर?'

'जिस तरह तितली, अपना खोल फोड़कर बाहर निकलती है, उस तरह कच भी अब मेरे शरीर को फाड़ कर ही बाहर निकल सकता है। और मैं इसके लिए तैयार हूँ।'

देवयानी घबरा गई। अपनी क्षति के भुलावे में उसे एहसास ही नहीं हुआ कि वह क्या माँग रही है। कच का जीवन अब एक अन्य जीवन की माँग कर रहा था।

उसके पिता का जीवन...

'मैं तैयार हूँ, देवयानी।'

शुक्राचार्य के चेहरे की शांति, उसे कच की मृत्यु से अधिक डरा रही थी। वह उनके पैरों में गिर पड़ी।

'कभी नहीं! ऐसा मत कहिए, पिताजी। आपके बिना मेरा अस्तित्व नहीं है। आप मेरे स्रोत हैं। मैंने जीवन आपसे शुरू किया था किंतु मैं उसे कच के साथ समाप्त करना चाहती हूँ। मैं आप दोनों को जीवित देखना चाहती हूँ क्योंकि मैं आप दोनों को समान रूप से प्रेम करती हूँ। किसी को अधिक नहीं। किसी को कम नहीं।'

'अब यह संभव नहीं है। तुम्हें किसी एक को चुनना होगा।'

'यह मैं कैसे कर सकती हूँ?'

‘वह या मैं?’

देवयानी उठी। उसकी आँखों में अचानक चमक आ गई। उसने धीरे-से कहा।

‘वह या आप नहीं, पिताजी। मैं आप दोनों को पा सकती हूँ।’

‘यह कैसे संभव है?’

‘आप मुझे मृतसंजीवनी का ज्ञान दीजिए। कच जब आपके भीतर से निकलेगा तो मैं आपको भी उसी मंत्र से जीवित कर दूँगी।’

शुक्राचार्य को लगा जैसे उनका हृदय ठंडी, बर्फीली अँगुलियों की जकड़ में था। उन्होंने वह रहस्य एक हजार वर्ष की कठोर तपस्या से अर्जित किया था और अब तक उसे अपने भीतर छिपा कर रखा था। किंतु अब उनकी पुत्री उनसे वह रहस्य उजागर करने को कह रही थी। और वह प्रश्न भी पूछ रहा थी।

‘क्या आपको मुझ पर विश्वास नहीं है, पिताजी?’

शुक्राचार्य ने देवयानी को चुनने को कहा था। अब वह उन्हें चुनने को कह रही थी।

उसे यह रहस्य बताया जाए या नहीं...

गुरु ने हामी भर दी। ‘मैं तुम्हें मंत्र लिख कर देता हूँ। किंतु इसका उपयोग तुम स्वयं ही करना। और उपयोग हो जाने के बाद इसे तुरंत नष्ट कर देना।’

‘मैं ऐसा ही करूँगी।’

‘इसे पूरी तरह से नष्ट कर देना।’

‘जी, पिताजी।’

‘देवयानी, हम बहुत-सी बातें साझा करते हैं और अब हम मृतसंजीवनी भी साझा करेंगे। यह किसी और के हाथ में नहीं पड़नी चाहिए। मुझे वचन दो।’

‘मैं वचन देती हूँ।’

शुक्राचार्य ने आँखें बंद कर लीं। वे मंत्र पढ़ने लगे। उनका दाहिना हाथ कुछ हरकत कर रहा था। मुँह से अजीब-से शब्द निकल रहे थे। वे रहस्यमयी वाक्यांश थे। ऐसा प्रतीत होता था कि उनका हाथ नलिका बन गया था और उसके माध्यम से कोई रहस्य प्रचंडता के साथ प्रवाहित हो रहा था। देवयानी के पढ़ने के लिए एक-एक करके पंक्तियाँ जमती जा रही थीं। शुक्राचार्य रुक गए। देवयानी, मृतसंजीवनी को देख रही थी।

असुरों का गौरव...

शिव का वरदान...

शुक्राचार्य का पेट काँपने लगा। वह ज़ोर से काँप रहा था। फिर उनका वक्ष हिलने लगा। फिर चेहरा। फिर हाथ और जाँघ। उनके अंग ऐसे स्पंदित हो रहे थे मानो उनके भीतर तूफ़ान उमड़ रहा हो। अचानक देवयानी के गाल पर रक्त के छींटे आ पड़े। वह पीछे हट गई।

मंत्र ने राख में प्राण फूँक दिए थे। गुरु की बाईं आँख से कच की अँगुली निकल रही थी और उसका नाखून, गुरु के नेत्रगोलक को भेद कर बाहर आ रहा था। फिर गुरु की नाभि से कच के पैर का एक अंगूठा निकला। इधर-उधर से और भी अंग उभरने लगे। शुक्राचार्य लहूलुहान हो गए थे। तभी उनकी खोपड़ी को तोड़कर कच का चेहरा बाहर आ गया। उसका धड़, गुरु की पसलियों में से अपना मार्ग बना रहा था। कच के हाथ शुक्राचार्य की रीढ़ और उसके पैर, उनकी जाँघों को ध्वस्त करके निकल रहे थे। देवयानी, अपने वृद्ध पिता को बिखरता हुआ देख रही थी और युवा कच, ऐसे बाहर आ रहा था जैसे जैसे गर्भ से शिशु निकलता है। माँस और हड्डियों के ढेर पर नग्न खड़ा कच, गुरु के शरीर के अवशिष्ट तरल से पूरी तरह भीगा हुआ था।

'कच!'

देवयानी ने कच को कसकर जकड़ लिया। उसने कच को पहले कभी इस तरह मुस्कुराते नहीं देखा था। उसकी आँखों में ऐसी चमक पहले कभी नहीं दिखाई पड़ी थी। देवयानी, इस बात से अनजान थी कि उसने जिस कार्य को अभी समाप्त किया था, उसे कच ने ही शुरू किया था।

'अब मुझे अपने पिता को जीवित करना है।'

'यह कार्य मुझे करने दो,' कच ने अपना हाथ आगे बढ़ाया।

देवयानी ने मंत्र को छिपाने की कोशिश की और पीछे हट गई। 'नहीं, मैं यह स्वयं करूँगी। यह मेरे पिता का रहस्य है। मैं इसे किसी और को नहीं बता सकती।'

'किसी और को?' कच ने मुँह बिचकाते हुए कहा। 'मैं 'कोई और' हूँ?'

'मैंने उन्हें वचन दिया था कि केवल मैं...'

वह देवयानी के करीब आ गया। 'मैं तुम हूँ। तुम मैं हो।'

कच की आवाज़ देवयानी को मदहोश कर रही थी।

'मेरे गुरु ने मुझे जीवित किया है। मैं भी उनके लिए यह करना चाहता हूँ।'

कच की दृष्टि देवयानी को भेद रही थीं। देवयानी की पकड़ ढीली पड़ने लगी और मंत्र नीचे गिर गया। कच ने तुरंत उसे उठा लिया।

मृतसंजीवनी...

वह मंत्र अब कच के हाथों में था। उसकी हथेलियों में झनझनाहट होने लगी। वह शुक्राचार्य के अवशेषों पर मंत्र पढ़ने लगा। उसका मस्तिष्क मंत्र को आत्मसात् कर रहा था। प्रत्येक शब्द। प्रत्येक पंक्ति। प्रत्येक शब्दांश। वह सब उसके भीतर अंकित होता जा रहा था। कच ने जब तक मंत्र पढ़कर समाप्त किया, तब तक मृतसंजीवनी उसके ज्ञान का हिस्सा बन चुकी थी।

‘पिताजी!’

गुरु सामने खड़े थे। उन्होंने जैसे ही देवयानी की ओर कदम बढ़ाया, वे रुक गए। वे कच के हाथ को घूर रहे थे। उनकी दृष्टि कच के हाथ में आए मंत्र पर थी। उन्होंने ऊपर देखा और उन्हें कच की आँखों में आई झिलमिलाहट दिखाई दे गई।

इसने मृतसंजीवनी सीख ली...

यह मृतसंजीवनी लेने आया था...

वे अपनी पुत्री की ओर मुड़े। उनके चेहरे पर रोष नहीं था। केवल पीड़ा थी। तीव्र दुख। देवयानी व्याकुल नेत्रों से उनकी ओर देख रही थी। अगले ही पल शुक्राचार्य मूर्छित होकर गिर पड़े। युवक मुड़कर जा रहा था।

‘कच!’ वह उसके पीछे दौड़ी। ‘मैंने पिताजी को हम दोनों के बारे में बता दिया है। तुम उनसे बात करो ताकि हमारा विवाह हो जाए।’

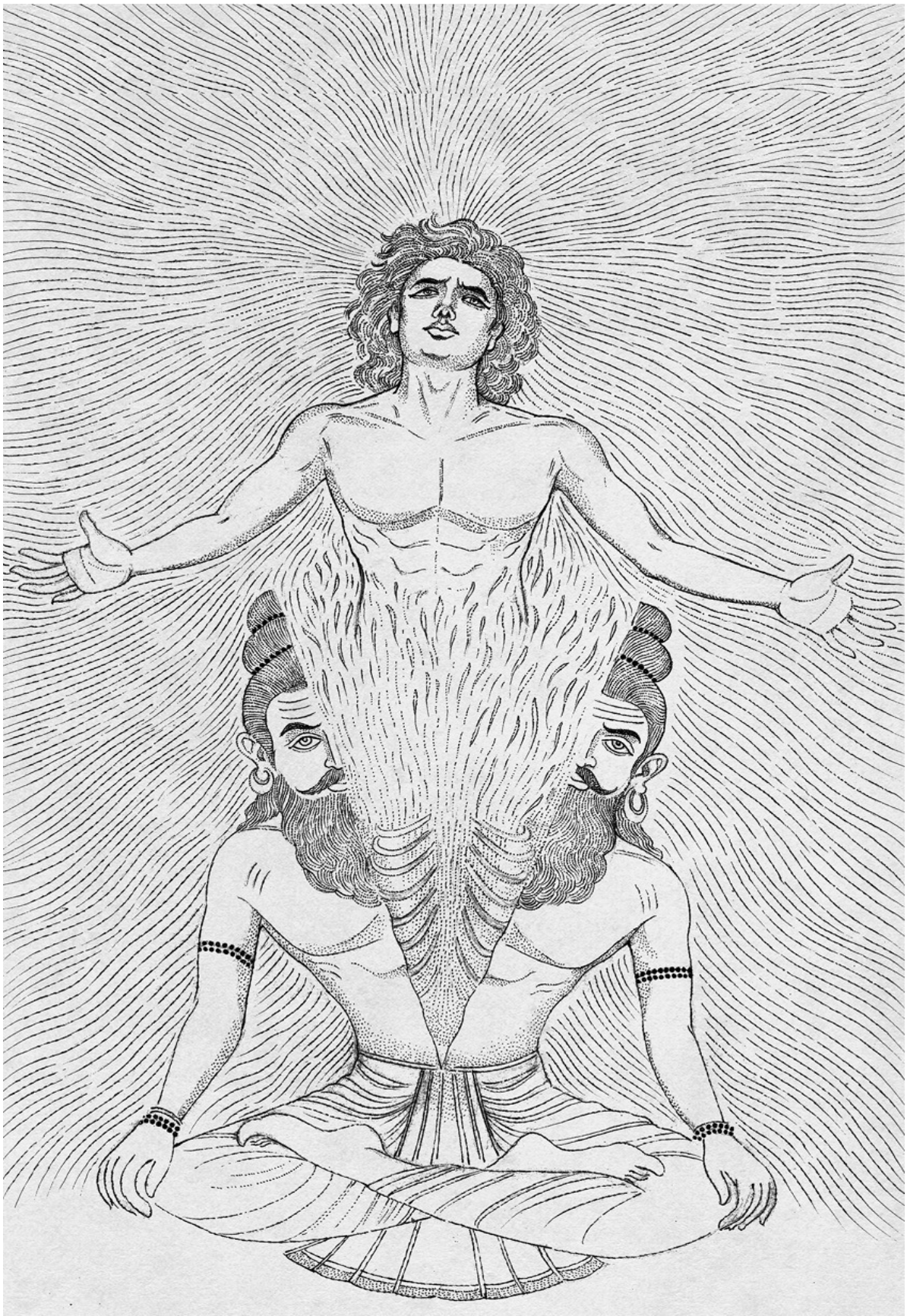
कच की भँवें तन गईं। ‘तुम अब भी नहीं समझीं?’

और तब। तब उसने वह देखा, जो उसने पिता के चेहरे पर देखा था। वह जो, उसके पिता ने कच के चेहरे पर देखा था। वह बात उसके मुँह से निकल गई।

‘मृतसंजीवनी?’

‘मेरे पिता बृहस्पति ने मुझे यहाँ जो लेने भेजा था, वह मुझे मिल चुका है।’

देवयानी ने अपने चेहरे पर लगे शुक्राचार्य के रक्त को छुआ और आश्चर्य से अपनी अँगुलियों को देखने लगी।



‘तुमने मुझसे मेरे ही पिता के साथ विश्वासघात करवाया ताकि तुम अपने पिता की इच्छा पूरी कर सको? तुम इतने कपटी हो?’

‘यदि मैं कपटी होता, तो ब्रह्मांड मुझे ऐसा करने नहीं देता।’

देवयानी की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। उसने पूछा, ‘तुम मंत्र लेने आए थे किंतु तुम्हें मैं भी तो मिल गई। क्या तुम्हें प्रेम नहीं मिला?’

‘मुझे केवल एक दोस्त मिला है। एक अच्छा दोस्त। मैंने तुम्हें और कोई वचन नहीं दिया था, देवयानी।’

‘किंतु तुमने कहा कि तुम मैं हो और मैं तुम हूँ?’

‘हाँ। मेरा पुनर्जन्म शुक्राचार्य से हुआ है। इस नाते मैं भी तुम्हारी तरह अब उन्हीं की संतान हूँ। क्या तुम्हें यह दिखाई नहीं देता? उनके शरीर से उत्पन्न होने के बाद अब मैं उनका पुत्र हूँ। और तुम मेरी बहन हो। मैं इस पवित्र बंधन को दूषित कैसे कर सकता हूँ?’

यह कहकर कच ने जैसे ही एक कदम आगे बढ़ाया, उसे देवयानी के कटु शब्द सुनाई पड़े।

‘कच, मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि तुम इस रहस्य का, जो तुमने हमसे चुराया है, कभी उपयोग नहीं कर पाओगे।’

कच रुक गया। फिर वह मुड़ा और गुस्से से बोला।

‘यदि ऐसा है तो मैं इस विद्या को दूसरों को दे दूँगा और यह उनके माध्यम से फलित होगी। मैं भी तुम्हें शाप देता हूँ, देवयानी। तुम जिस प्रेम को खोज रही हो, वह तुम्हें कभी नहीं मिलेगा।’

80
देवयानी और शर्मिष्ठा



राक्षसों ने वृषपर्वा को अपना नया राजा चुन लिया था। शुक्राचार्य ने एक भव्य समारोह में उसका राज्याभिषेक भी कर दिया। जल्द ही, राजा की पुत्री शर्मिष्ठा और गुरु की पुत्री देवयानी में मित्रता हो गई। उनकी मैत्री इतनी प्रगाढ़ थी कि लोगों को लगता था कि वे पिछले जन्म में बहनें थीं। वे एक-दूसरे के साथ अपने सुख-दुख साझा करती थीं। धीरे-धीरे देवयानी के मन पर हुआ कच के विश्वासघात का घाव भरने लगा। दुर्भाग्य से, दैवीय शक्तियों को शांति पसंद नहीं आती। इंद्र को फिर एक चालाकी सूझी। एक दिन दोनों कन्याएँ तालाब पर स्नान करने गई थीं। तभी इंद्र ने हवा के झोंके का रूप धारण कर लिया और किनारे पर पड़े दोनों कन्याओं के वस्त्र आपस में बदल दिए। परिणामस्वरूप, स्नान के बाद देवयानी और शर्मिष्ठा ने भूल से एक-दूसरे की पोशाक पहन ली।

'तुम इसे पहन कर बुरी नहीं लग रहीं,' शर्मिष्ठा ने देवयानी को चिढ़ाते हुए कहा। 'तुम्हें कोई भी आसानी से राजकुमारी समझ लेगा।'

'मुझे शुक्राचार्य की पुत्री बनकर ही रहना पसंद है,' देवयानी बुरा मान गई । 'राजा शक्तिशाली हो सकते हैं किंतु ऋषियों के पास विवेक होता है।'

'क्या तुम यह कहना चाहती हो कि मेरे पिता तुम्हारे पिता से निम्न हैं? तुम यह कैसे भूल गईं कि तुम्हारा आश्रम मेरे पिता के कारण चलता है? उनके द्वारा चुपचाप दिए दान पर?'

'राजा एहसान नहीं करते। मेरे पिता असुराचार्य हैं। तुम्हारे वंश के गुरु। और स्वयं देवता कहते हैं कि शिक्षक, सबसे ऊपर होता है।'

उनकी आवाजें तेज हो गईं और गुस्सा भी। उनके मन में अपने-अपने पिता के लिए प्रेम अचानक परस्पर स्नेह पर हावी हो गया। उनकी जातियाँ उनके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण हो गईं और वे एक-दूसरे को तुच्छ बताने लगीं। गुस्सा इतना बढ़ गया कि दोनों मारपीट पर उतर आईं। वे नाखूनों से एक-दूसरे को नोंचने लगीं और उनके दाँत किटकिटा रहे थे। वे

बाल खींचने और एक-दूसरे को धक्का देने लगीं। तभी असुर राजकुमारी को मौका मिल गया और उसने देवयानी को धक्का देकर कुएँ में गिरा दिया। कुएँ में गिरते ही शर्मिष्ठा चिल्लाती हुए वहाँ से चली गई, 'मर दुष्ट, मर जा!'

परंतु देवयानी का भाग्य उसकी सहेली से अधिक दयालु था। कुछ ही क्षण बाद, एक प्यासा युवक पानी पीने के लिए कुएँ के पास आकर रुका। उसने कुएँ में झांका तो उसे देवयानी की आवाज़ सुनाई दी। उसकी चीखें कुएँ की बेलनाकार दीवारों के अंदर गूँज रही थीं। युवक ने उसे कुएँ से बाहर निकाल लिया। तब उसने अपने रक्षक को धन्यवाद दिया।

'हे दयालु पुरुष, आपका नाम क्या है?'

'राजा ययाति।'

'ययाति? नहुष का पुत्र जिसने कभी स्वर्ग पर शासन किया था?'

'हाँ। उसी नहुष का पुत्र जो अब पृथ्वी पर रेंगता फिरता है।'

वे दोनों कुछ और नहीं बोले। केवल एक-दूसरे की आँखों में देखते रहे। जल्द ही, शुक्राचार्य को समाचार मिला कि उनकी बेटी और चंद्रवंशी राजा ययाति एक-दूसरे से विवाह करने के इच्छुक हैं। गुरु ने उनका विवाह कर दिया और ब्राह्मण स्त्री को पत्नी बनाने के संबंध में राजा के संदेह को भी दूर कर दिया। किंतु जब देवयानी ने शुक्राचार्य को बताया कि वह कुएँ में कैसे गिरी थी, तो शुक्राचार्य का उत्साह गुस्से में बदल गया।

'शर्मिष्ठा को बुलाओ!' वे चिल्लाए। 'उसके पिता को भी बुलाओ।'

राजकुमारी शर्मिष्ठा के कृत्य को सुनकर राजा वृषपर्वा, शुक्राचार्य के चरणों में गिर पड़ा। वह डर से काँप रहा था। उसने दया की याचना की। उसने गुरु और देवयानी को सारा धन अर्पित कर दिया किंतु सब व्यर्थ रहा। कुछ कहने का समय बीत चुका था। यह दंड देने का समय था।

'कहिए!' असुर राजा वृषपर्वा ने चंद्रवंशी रानी देवयानी के सामने सिर झुका कर कहा। 'आप जो भी आज्ञा देंगी, मेरी पुत्री उसका पालन करेगी।'

देवयानी ने अपनी सहेली की ओर देखा। 'अब तुम्हें नीचे गिराने की बारी मेरी है किंतु इसके लिए कुएँ की आवश्यकता नहीं है। अब मैं रानी हूँ और तुम सामान्य नागरिक। तुम मेरे साथ मेरे महल में दासी बनकर रहोगी।'

शर्मिष्ठा मुस्कुराई।

'तुम मेरी बात सुन रही हो? तुम्हें मेरी दासी बनकर रहना है।'

फिर भी शर्मिष्ठा मुस्कुरा रही थी। देवयानी ने उसके आभूषण छीन कर उसे पुराने वस्त्र दिए तो भी शर्मिष्ठा मुस्कुराती रही। वह जब चंद्रवंशी राज्य में दासी बनकर पहुँची, तब भी शर्मिष्ठा के चेहरे पर मुस्कान थी। रानी देवयानी उसे प्रतिदिन अपशब्द कहती किंतु शर्मिष्ठा

मुस्कुराती रहती थी। हर रात जब नगर सो जाता तो भी वह मुस्कुराती थी। देवयानी को आश्चर्य होने लगा।

शर्मिष्ठा मुस्कुराती क्यों है?

शीघ्र ही देवयानी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। ययाति ने सबको दिखाने के लिए अपने बच्चों को गोद में उठाया तो राजधानी खुशी से झूम उठी। पाँच साल बीत गए। उनके विद्यारंभ संस्कार का समय हो चुका था। यानी शिक्षा का औपचारिक आरंभ। पुजारी उनके मस्तक को अभिषिक्त कर रहे थे और भीड़ फूल बरसा रही थी। उसी समय रानी ने शर्मिष्ठा को अपनी ओर आते देखा। उसकी गति तेज थी। चेहरा उग्र था। शाही वेदी पर चढ़कर उसने अपना दुख व्यक्त कर दिया।

'क्या तुम उनका अभिषेक नहीं करोगी?'

लोग घबरा गए। देवयानी उछल पड़ी।

'बच्चे?'

'वे मेरे हैं।'

'तीन बच्चे?'

'वे मेरे पुत्र हैं।'

रानी देवयानी ने उस पर वार किया। 'तू वेश्या है! इस वेदी को अपवित्र करने की तेरी हिम्मत कैसे हुई? तू किसी की पत्नी ही नहीं हैं तो तेरे बच्चे कैसे हो गए? क्या यह पर्याप्त नहीं था कि तूने पाप किया जो अब तू उसका सार्वजनिक प्रदर्शन भी करने आ गई? मैं तुझे पत्थरों से मरवाऊँगी। इस अवैध कचरे को घोड़ों के नीचे रौंद डालो और...'

'अवैध वो होता है जिसे अपने पिता का नाम नहीं पता होता,' शर्मिष्ठा ने देवयानी की बात काट दी। 'मुझे पता है कि मेरे पुत्रों का पिता कौन है।'

'दिखाओ मुझे,' देवयानी ने भीड़ की ओर देखते हुए कहा।

'वहाँ नहीं,' शर्मिष्ठा हँसते हुए बोली। 'वह तुम्हारे पीछे खड़ा है। संसार मेरी निन्दा कर रहा है और वह पीछे चुप खड़ा है।'

रानी ने पलट कर देखा। सभा स्तब्ध रह गई।

ययाति...

'चंद्र वंश की संतान,' शर्मिष्ठा ने घोषणा करते हुए कहा। 'जिसने तुम्हें कुएँ से बाहर निकाला, उसने मेरा भी हाथ थामा। तुम्हारा पति, मेरा भी पति है। हमारे बच्चों का पिता एक ही है। तुम जब मेरे बच्चों को अपशब्द बोलती हो तो तुम अपने पुत्रों को ही गाली देती हो। राजसी रक्त का अपमान करती हो।'

देवयानी बर्फ की तरह जम गई। उसके मुख से निकले शब्दों ने ययाति को झुलसा दिया।

‘क्या यह सच बोल रही है? क्या आपने इससे विवाह किया और इन बच्चों को जन्म दिया है?’

‘हाँ, यह सच है।’

शर्मिष्ठा ने आगे बढ़कर राजा का हाथ पकड़ लिया। ‘मैंने ही राजा ययाति से कहा था कि मैं तुम्हारी दासी हूँ तो इस नाते राजा का भी मुझ पर पूरा अधिकार है। तब से इन्होंने हर दिन और रात मुझसे प्रेम किया है।’

शर्मिष्ठा के होंठ तिरछे थे। खुशी से। आनंदातिरेक से। तिरस्कार से। रानी देवयानी को अब समझ में आया।

वह मुस्कराती है...

इसलिए मुस्कुराती है...

तो यह षड्यंत्र रच रही थी...

देवयानी कुछ नहीं बोली। अब एक और आवाज़ उसके कानों में गूँज रही थी।

कच की आवाज़।

तुम जिस प्रेम को खोज रही हो, वह तुम्हें कभी नहीं मिलेगा...

कोई चीज़ उसका दम घोंट रही थी।

जिस प्रेम को खोज रही हो, वह कभी नहीं मिलेगा...

हर तरफ से उसके रास्ते बंद हो रहे थे। उसने अपने पति को घूर कर देखा।

पहले कच...

अब आप ...

रानी अपने पिता के आश्रम में लौट गई। ययाति भी पीछे दौड़ता हुआ आया किंतु वहाँ उसका सामना शुक्राचार्य के कोप से हुआ।

‘क्या तुमने मेरी बेटी को कुएँ से इसलिए बचाया था कि तुम उसे दुःख में डुबा दो?’

‘कदापि नहीं, आचार्य।’

‘उस स्त्री ने मेरी पुत्री को मरने के लिए छोड़ दिया था और तुम उसी के साथ परिवार बसा रहे हो?’

‘मैं उससे प्रेम करता हूँ। मैं शर्मिष्ठा से उतना ही प्रेम करता हूँ जितना देवयानी से।’

‘प्रेम नहीं,’ गुरु ने गुस्से से कहा। ‘यह वासना है। तुम चंद्रवंशी सदा से कामुक हो। तुम्हारे पितामह चंद्र सत्ताईस पत्नियाँ पाकर भी संतुष्ट नहीं थे तो उन्होंने तारा के साथ व्यभिचार किया। पुरुरवा, उर्वशी के प्रेम में पड़ गए और तुम्हारे पिता नहुष, इंद्राणी पर मोहित हो गए थे। तुम्हारे वंश का प्रभाव तुम्हारे शरीर में है। तुम सब देह के दास हो इसलिए मैं तुम्हारी देह को शाप दूँगा। तुम्हें वैसा ही शाप मिलेगा जैसा तुम्हारे पिता को मिला था जिसके बाद वह

अजगर बनकर छटपटाते रहे; ठीक वैसा ही शाप जैसा दक्ष ने चन्द्रमा को अपनी पुत्रियों को सताने के लिए दिया था।'

फिर शुक्राचार्य ने घास का एक तिनका जलाया।

'राजा ययाति, मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि तुम्हारा यौवन तत्काल चला जाएगा जिसके कारण तुम भ्रष्ट हुए हो। तुम्हारा शरीर इसी समय बूढ़ा हो जाए!'

81
ययाति की माँग



राजा दर्पण में देख रहा था।

उसे वही दिख रहा था जिसे पिछले कई सालों से सब देख रहे थे। सफेद बाल। मुरझाया चेहरा। पीली आँखें। उसका शरीर दुर्बल हो गया था। प्रतिबिंब पूरी तरह रूपांतरित हो चुका था। पीछे खड़े शुक्राचार्य भी उसे देख रहे थे। उनके चेहरे पर निंदा का वही भाव था जो बहुत पहले दिखता था।

तुम सब देह के दास हो... मैं शाप देता हूँ...

ययाति ने आईने को चकनाचूर कर दिया। 'एक योगी, भोगी होने का अर्थ क्या समझेगा?'

दर्पण भी टूटकर, ययाति के शरीर की तरह बेकार हो गया। अब उसमें शक्ति नहीं थी। पहले-सा पौरुष नहीं था। ययाति को उसकी देह अब वो नहीं दे सकती थी जिसकी उसे अब भी लालसा थी।

परम सुख...

तभी देवयानी अंदर आई। उसकी सुंदरता के कारण ययाति की कमजोरी बढ़ी हुई दिख रही थी। उसका यौवन ययाति को उसके क्षय की याद दिलाता था। देवयानी को देखकर ययाति की कामना नहीं अपितु गुस्सा बढ़ गया।

'क्या तुम फिर उपहास करने आई हो?' वह धीरे-से बोला।

'आज नहीं। आज, मैं समाचार लाई हूँ। एक शुभ समाचार है। संभवत: आपकी स्थिति बदल सकती है।'

ययाति हँस पड़ा। 'अब मुझ पर दया कर रही हो? तुम मुझे यहाँ स्वस्थ करने आई हो? मुझे क्षमा करने? मुझे कुछ नहीं चाहिए क्योंकि मैं वही हूँ, जो मैं हूँ। मुझे देह का सुख पसंद है और यदि संभव हुआ तो मैं फिर उसका आनंद लूँगा। तुम चाहो तो मुझसे प्रेम करो अथवा

मुझे छोड़ दो।'

देवयानी ने सिर हिलाया। 'मैं ऐसा कुछ भी नहीं करूँगी। मैं केवल इस जीवन से निर्वाह करूँगी जो मैंने आपके साथ शुरू किया था। इस नियति को सहन करूँगी जिसके गह्वर में कच ने मुझे धकेला है। मैं स्वयं से बहुत लड़ चुकी हूँ; अब और नहीं लड़ूँगी। यदि मैंने इस जन्म को पार कर लिया तो संभव है कि मुझे अगले जन्म में प्रेम मिल जाए। मैंने आपके बारे में पिताजी से बात की है।'

'उन्होंने ही तो मुझे शाप दिया था। अब वे क्या कर सकते हैं?'

'मैंने उनसे कहा कि उनके दिए शाप ने केवल आपके जीवन का ही नहीं अपितु मेरे जीवन का आनंद भी चूस लिया है। मेरी बातों का उन पर असर हुआ और वे आपकी सहायता करने को तैयार हो गए हैं।'

'अब मेरी कोई मदद नहीं कर सकता,' राजा ने कहा। 'मैं शव में बदल चुका हूँ।'

'आप भूल रहे हैं कि मेरे पिता मृतकों को भी जीवित कर सकते हैं,' देवयानी ने मूर्ति पर अपनी अँगुलियाँ फेरते हुए कहा।

'क्या मतलब?'

'उन्होंने मुझसे कहा है कि उस शाप को वापस तो नहीं लिया जा सकता किंतु एक मार्ग है।'

ययाति ने देवयानी को कमर से पकड़ लिया। उसके नाखून देवयानी की त्वचा में गढ़ गए।

'फिर वही पशुत्व!' देवयानी ने कहा। 'पहले से भी अधिक भूखा!'

'तुम्हारे पिता ने क्या कहा?'

देवयानी ने ययाति को निकट खींचा और उसके कान में कुछ कहा। राजा का शरीर काँपने लगा।

'अति उत्तम!'

'किंतु क्या वे मानेंगे?'

'बिलकुल! मैं पंच नंद हूँ। पाँच पुत्रों का पिता। वे निश्चित रूप से मेरी बात मानेंगे।'

ययाति ने तुरंत अपने पुत्रों को बुलाया। देवयानी ने यदु और तुर्वसु को जन्म दिया था तथा शर्मिष्ठा के पुत्रों के नाम थे द्रुह्यु, अनु और पुरु। पाँचों युवक अब ययाति के सामने खड़े थे।

'राजकुमारों, एक पिता अपने पुत्रों से बहुत कुछ चाहता है। वह चाहता है उसके पुत्र उससे प्रेम करें, उसका अनुकरण करें। सदाचार और वीरता से अपने पिता को प्रसन्न रखें। उसके वंश को आगे बढ़ाएँ और उसकी आत्मा को मुक्त करने में सहायक हों। परंतु आज मैं तुमसे वह माँगता हूँ जो पहले कभी किसी पिता ने नहीं माँगा।'

‘हमें बताइए, पिताजी।’

‘बताता हूँ और मैं जानता हूँ कि तुम मना नहीं करोगे।’

‘कभी नहीं।’

‘तुम सब जानते हो कि मेरा जीवन कितना कष्टमय है। मेरा तन शुक्राचार्य के शाप के चलते रोगग्रस्त हो गया। उनके शाप ने मुझे इतने वर्षों से भौतिक सुखों से दूर रखा है। इस कारण तुम्हारी दोनों माताएँ भी इस सुख से वंचित हैं। किंतु गुरुदेव को अब दया आ गई है। उन्होंने एक विकल्प दिया है जो तभी प्रभावी होगा जब तुम में से कोई एक उसके लिए सहमत होगा।’

‘हमें क्या करना होगा, पिताजी?’

राजा रुका और फिर बोला। ‘शुक्राचार्य ने कहा है कि मैं एक युवक के साथ अपनी अवस्था की अदला-बदली कर सकता हूँ। कोई मेरा बुढ़ापा ले सके तो मुझे उसका यौवन मिल सकता है।’

कक्ष में मौन छा गया। कोई कुछ नहीं बोला। पाँचों ने एक-दूसरे की ओर ऐसे देखा। उन्हें सही शब्दों की तलाश थी। ययाति ने प्रतीक्षा की। फिर उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र की ओर देखा।

‘मैं अत्यंत लालायित हूँ, यदु। क्या तुम मेरे लिए ऐसा करोगे?’

‘मैं नहीं कर सकता, पिताजी।’

‘यदु?’

‘मैंने देखा है कि बुढ़ापा देह को कैसे कष्ट देता है। मैं इतना जर्जर और दुर्बल क्यों हो जाऊँ?’

‘क्योंकि शास्त्र कहते हैं कि जो पुत्र, पिता की इच्छा पहले ही भाँप लेता है, वह स्वर्ण के समान है। जो कहने से कार्य को करता है, वह रजत के समान है। परंतु जो पुत्र, काम करने से स्पष्ट मना कर देता है, वह व्यर्थ है।’

‘मैं जीर्ण होने के बजाय व्यर्थ रहना पसंद करूँगा।’

‘किंतु मेरा ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते...’

‘बिलकुल! मुझे राजा बनना है। अगला चंद्रवंशी नरेश। मैं वृद्धावस्था कैसे स्वीकार कर सकता हूँ? यह कैसे संभव है कि मैं इसलिए वृद्ध हो जाऊँ ताकि आप युवा हो सकें?’

‘और आप फिर से युवा होकर क्या पाएँगे?’ द्रुह्यु ने चिढ़कर से कहा। ‘क्या आपका मन अब तक स्त्रियों से भरा नहीं है? आपको आत्मा के उत्थान की दिशा में अग्रसर होना चाहिए किंतु आप अब भी शरीर से बँधे हैं। आपकी कामुकता का यह स्तर देखकर मुझे लज्जा आती है।’

‘तुम भूल रहे हो कि तुम तीनों भाई, मेरी उसी कामुकता के कारण यहाँ खड़े हो,’ ययाति ने क्रोधित होकर कहा। ‘मैंने देवयानी से विवाह करने के बावजूद तुम्हारी माँ से प्रेम किया।’

‘और आप फिर उसी तरह का पाप करने को फिर से लालायित हैं, जैसे आपने हमारी माँ को धोखा देकर किया था,’ यदु ने उत्तर दिया। ‘हम में से कोई भी आपको अपना यौवन नहीं देगा।’

‘मैं तो नहीं,’ तुर्वसु ने कहा।

‘न ही मैं,’ द्रुह्यु ने कहा।

‘मैं भी नहीं,’ अनु ने कहा।

‘मैं तैयार हूँ।’

सबकी दृष्टि उस ओर गई। राजा की श्वास रुकने लगी।

‘पुरु!’

‘मुझे स्वीकार है।’

‘तुम? क्या सच में?’

सबसे छोटे पुत्र ने अपने पिता का काँपता हाथ थाम लिया। ‘यदि आपको प्रसन्नता होती है तो मैं इसके लिए तैयार हूँ।’

उसकी बात जैसे ही समाप्त हुई, शाप के प्रभाव ने शरीर बदलना शुरू कर दिया। वह एक से दूसरे शरीर में संक्रमण की तरह प्रवाहित हो रहा था। देवयानी देख रही थी कि तालाब के किनारे वस्त्रों की अदला-बदली से शुरू हुई बात किस तरह अवस्था के आदान-प्रदान तक जा पहुँची थी। पिता और पुत्र अब भी एक-दूसरे का हाथ पकड़े खड़े थे किंतु युवक, बूढ़ा हो गया था और बूढ़ा, युवक।

ययाति ने यदु की ओर देखा।

‘तुमने सिंहासन के प्रति लालसा के कारण अपने पिता की आज्ञा नहीं मानी। मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि न ही तुम स्वयं और न तुम्हारा वंश कभी शासन कर सकेगा।’

ययाति ने द्रुह्यु, तुर्वसु और अनु को भी शाप दिए और सबसे छोटे पुरु को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

‘पुरु, तुम्हारे इस कर्म ने मेरे और मेरी रानियों के दुष्कर्मों को संतुलित कर दिया है। भगवान राम की तरह तुमने भी पिता की इच्छा के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया। तुम राजा बनोगे और तुम्हारी संतान भी शासन करेगी। तुम्हारे वंश को संसार युगों तक याद रखेगा।’

एक हजार वर्ष तक अपने पुत्र के यौवन का आनंद लेने के बाद ययाति ने आखिरकार महसूस किया कि कामना की लपटें कभी नहीं बुझतीं, अपितु और भड़कती हैं। अंत में उसने राज्य का त्याग कर दिया और पुरु का यौवन उसे लौटा दिया। कालांतर में, यदु से

कृष्ण के वंशज यादव उत्पन्न हुए जो कभी राजा नहीं बन पाए। पुरु से पुरु वंश चला जो कुरु वंश के रूप में आगे बढ़ा। यहीं से कौरवों और पांडवों का उदय हुआ जिनके वंशजों ने कलियुग में शासन किया।

82
सत्यतप की परीक्षा



हिमालय की गोद में एक ऋषि रहते थे, जिन्होंने तपस्या करके अपार पुण्य अर्जित कर लिया था। वे आध्यात्मिक रूप से तो शक्तिशाली थे ही किंतु तपस्या ने उन्हें शारीरिक रूप से भी अत्यंत सशक्त कर दिया था। कड़ाके की ठंड में भी उनके शरीर का आभामंडल उन्हें गर्म रखता था। वह कई दिनों तक बिना भोजन के रह सकते थे। उन्हें अपनी प्राण शक्ति से पोषण प्राप्त होता था। किसी भी तरह की शारीरिक पीड़ा उनके आध्यात्मिक सामर्थ्य के सामने आते ही पिघल जाती थी।

उनका नाम सत्यतप था, अर्थात् वह, जो सत्य की शक्ति से दृढ़ हुआ हो।

एक दिन ऋषि, यज्ञ के लिए लकड़ी काट रहे थे कि भूल से उनकी एक अँगुली कट गई। आश्चर्य की बात यह थी कि उनकी अँगुली से रक्त के बजाय भस्म निकलने लगी। सत्यतप ने कटी हुई अँगुली को उसके स्थान पर रखा तो वह फिर से जुड़ गई। इस बीच वहाँ से दो गंधर्व गुजर रहे थे। उन्होंने यह चमत्कार देखा और तुरंत इंद्र को सूचित किया। यह सुनकर देवराज को उत्सुकता हुई और उन्होंने विष्णु से इस बारे में बात की।

'सत्यतप, एक प्रबुद्ध ऋषि हैं,' विष्णु ने बताया। 'पृथ्वी पर बहुत कम लोगों के पास उनके जैसा ज्ञान है।

'हमें उनकी परीक्षा लेनी चाहिए,' इंद्र ने प्रस्ताव रखा। 'देखते हैं वे सचमुच कितने बुद्धिमान हैं।'

इधर सत्यतप ने लकड़ी काटना शुरू किया ही था कि अचानक धरती हिलने लगी। उन्हें खुरों की आवाज़ निकट आती सुनाई दी। फिर सहसा रिरियाने की धीमी-सी आवाज़ आने लगी। ऋषि ने उस ओर दृष्टि की तो देखा कि एक शूकर उनकी तरफ आ रहा था। उसके शरीर में बाण लगा था और उसके घाव से खून बह रहा था। आँखें भरी हुई थीं। उसने तीन बार ऋषि की परिक्रमा की और फिर पहाड़ियों की ओर भाग गया। इससे पहले कि सत्यतप

कुछ कर पाते, वहाँ एक शिकारी आ गया। उसकी साँस फूल रही थी।

'वह शूकर किस ओर गया है?' शिकारी ने पूछा। 'मैंने उसे बाण मारा था किंतु वह भाग निकला। मुझे उसे पकड़ना है अन्यथा मेरा परिवार भूखा मर जाएगा।'

सत्यतप ने कुल्हाड़ी नीचे रखी और कटे हुए लकड़ी के हिस्सों को देखने लगे। दोनों टुकड़े आकार में एक-से थे। वे माप में भी बराबर थे।

यह अथवा वह?

यदि ऋषि सच बोलते, तो शूकर मारा जाता। और यदि वह झूठ बोलते तो शिकारी का परिवार मारा जाता।

यह अथवा वह?

वे दुविधा में फँसे थे।

बोलूँ?

न बोलूँ?

लकड़ी के दोनों टुकड़े उन्हें ताक रहे थे।

ये बताएँगे?

या नहीं बताएँगे?

ऋषि मुस्कुराए। 'मैं मौन हूँ। यही मेरा उत्तर है।'

शिकारी चिल्लाया। 'यह कोई उत्तर नहीं है। आपको अपने नाम की तरह सत्य बोलना चाहिए। यहाँ किसी का जीवन दाँव पर लगा है। आप उत्तर देने के लिए बाध्य हैं।'

'मैं बाध्य नहीं हूँ,' सत्यतप ने कहा। 'मनुष्य के शरीर में प्रत्येक अंग का कार्य निर्धारित है। सबका अपना-अपना धर्म है। हर अंग केवल अपना कार्य करने के लिए बाध्य हैं, किसी अन्य का नहीं।'

'जैसे?'

'मस्तिष्क केवल सोच सकता है। हृदय केवल महसूस कर सकता है।'

'सच है।'

'कान केवल सुन सकते हैं और त्वचा केवल महसूस कर सकती है।'

'सहमत हूँ।'

'इसी तरह आँखें सिर्फ देख सकती हैं, वे बोल नहीं सकतीं। जीभ बोल सकती है, किंतु वह देख नहीं सकती।'

'आप कहना क्या चाहते हैं?'

'मैं यह कहना चाहता हूँ कि मेरी आँखों ने देखा कि शूकर किस ओर गया है किंतु वे बोल नहीं सकतीं। और मेरी जीभ बता सकती है किंतु उसने देखा कुछ नहीं है। चूँकि मेरी दृष्टि

और जीभ ने अपना-अपना धर्म निभाया है इसलिए मैं और कुछ करने के लिए बाध्य नहीं हूँ। मेरा मौन ही मेरा उत्तर है।'

तभी ऋषि को हँसने की आवाज़ सुनाई दी। वे पीछे मुड़े तो देखा कि शूकर हँस रहा था। फिर उन्होंने मुड़कर दूसरी ओर देखा तो शिकारी भी हँस रहा था। ऋषि दोबारा मुड़े तो पाया कि शूकर, भगवान विष्णु में परिवर्तित हो गया और शिकारी के स्थान पर देवराज इंद्र खड़े थे। तब सत्यतप को सत्य का एहसास हुआ। वह घुटनों के बल गिर पड़े।

'क्या मेरे उत्तर से आप प्रसन्न हैं?'

इंद्र ने ऋषि को उठाकर गले से लगा लिया। 'हे ज्ञानी, हम आपसे प्रसन्न हैं। किंतु इस घटना से हमें क्या शिक्षा मिलती है?'

'इससे हमें दो शिक्षाएँ मिलती हैं, देवराज। एक, हमें इंद्रियों से सीखना चाहिए कि हमें अपनी स्थिति से संतुष्ट रहना चाहिए और दूसरों की स्थिति को प्राप्त करने का प्रयास नहीं करना चाहिए।'

'और दूसरी शिक्षा?'

'दूसरी यह कि अपनी सीमा में रहते हुए भी ज्ञान-सागर को मँथा जा सकता है।'

83
विश्वामित्र ने माँस स्वीकार किया



युग बदल रहा था। एक भयंकर सूखे ने पृथ्वी को अपनी चपेट में ले लिया और उसके समस्त संसाधन चूस लिए। नदियाँ, चट्टान बन गईं और समुद्र, नमक में बदल गए। फसलों ने अनाज नहीं दिया और वृक्षों पर फल नहीं लगे। लोग बहुत कम बोलते थे क्योंकि उनका गला सूख चुका था।

क्या भगवान इंद्र ने हमें फिर असहाय छोड़ दिया है?

विश्वामित्र के मन में बार-बार यह प्रश्न उठ रहा था। भूलोक की सूखी अस्थियों को देखकर वे सोच रहे थे किस कारण धरती बंजर हो गई। देश-भर में घूमते हुए, ऋषि अपने परिवार और अनुचरों के साथ, गौतमी गंगा के तट पर आ पहुँचे। वे कई दिनों से भूखे थे। विश्वामित्र ने अपने शिष्यों से भोजन ढूँढ़ने को कहा। उनके शिष्यों ने इधर-उधर देखा किंतु बंजर भूमि पर उन्हें कुछ नहीं मिला। अचानक उनकी नजर एक चीज़ पर पड़ी।

क्या हम यह कर सकते हैं?

क्या हमें यह करना चाहिए?

शिष्य उस वस्तु को और फिर एक-दूसरे को देखने लगे। वह विचार ही अपवित्र था। ऐसा किसी ने पहले सुना नहीं था। ऐसा करने से उन्हें स्वयं तथा उनके पिता एवं पुत्रों को सदा के लिए पाप लगता। इस एक पाप का प्रायश्चित करने के लिए उन्हें अनेक जन्म लेने पड़ेंगे। यह सोचकर उनकी आँखें डर से छलक रही थीं किंतु जीभ से लार भी टपक रही थी। उनके पेट से आवाज़े आ रही थीं मानो वह उनसे कह रहा हो कि शरीर की सेवा करने के उपरांत ही आत्मा की सेवा की जा सकती है। पृथ्वी के पास जो था, वह उन्हें देना चाहती थी। क्या उस संकेत को अस्वीकार कर देना चाहिए?

उन्होंने उस वस्तु को एक वस्त्र में लपेटा और वापस चले गए।

शिष्यों के आते ही विश्वामित्र का परिवार उठ खड़ा हुआ। शिष्यों ने गठरी नीचे रख दी। ऋषि की पत्नी ने उसे खोला तो वह डर के मारे पीछे हट गई।

मरा हुआ कुत्ता!

वह गिर पड़ी। उसने एक पशु के मृत शरीर को स्पर्श कर लिया था और पशु भी ऐसा जो प्राणियों में सबसे निम्न माना जाता था। एक गंदा जीव, जो सड़कों और मरघटों में घूमता है। ऋषि पत्नी, शिष्यों पर चिल्लाने लगी कि उन्होंने मिलकर उसे भी अपने पाप में शामिल कर लिया था।

'कैसा पाप?' विश्वामित्र ने पूछा।

वे सब मुड़कर ऋषि को देखने लगे। उन्होंने देखा कि ऋषि, शांत भाव से मृत पशु को देख रहे थे। उनकी आँखों में गुस्सा नहीं था। केवल निराशा थी।

'भूलोक ने हमारे पास अब कोई विकल्प नहीं छोड़ा। इस हताशा-भरे समय में हमें अग्नि की तरह बन जाना चाहिए जो किसी भी वस्तु का भक्षण कर लेती है। वह सबकुछ खा जाती है। तुम लोग यह माँस पकाओ। हम देवताओं को भोग चढ़ाएँगे और फिर इसका सेवन करेंगे।'

'देवताओं को कुत्ते का माँस चढ़ाएँगे?' विश्वामित्र की पत्नी ने अपने कान बंद लिए। 'आप ऐसा कुकृत्य कैसे कर सकते हैं? क्या आप शास्त्र भी भूल गए हैं?'

'संभवत: यह दुर्भिक्ष यही चाहता है कि हम एक नया शास्त्र तैयार करें जो कहता है कि ब्रह्मांड के सभी प्राणी बराबर हैं।'

जैसे ही विश्वामित्र, कुत्ते को उठाने के लिए आगे बढ़े, देवराज इंद्र घबरा गए। वह सब देख रहे थे। उन्हें महसूस हुआ कि ऋषि ने मन बना लिया था। वे न केवल उस मृत पशु का उपभोग करने जा रहे थे अपितु उसे आहुति के रूप में भी अर्पित करने वाले थे। तभी इंद्र ने बाज़ का रूप धारण किया और वे कुत्ते को उठा कर ले उड़े। क्रोधित विश्वामित्र ने देवराज को शाप देने के लिए अपना दाहिना हाथ उठाया ही था कि उन्होंने बाज़ को वापस आते देखा।

'आप स्वयं को अशुद्ध मत कीजिए, ऋषिवर। मैंने इस माँस को अमृत में बदल दिया है। आप इसे देवताओं को अर्पित करें और अपने परिवार और अनुयायियों को भी खिलाएँ।'

'अमृत?' ऋषि ने उपहास किया। 'हम मृत्यु से घिरे हैं और आप हमें अनंत जीवन प्रदान करना चाहते हैं? मुझे वही माँस वापस दे दीजिए।'

'आप शरीर को आत्मा पर कैसे हावी होने दे सकते हैं? त्रिशंकु की तरह अपराध मत कीजिए। क्या धर्म से बढ़कर भी कुछ हो सकता है?'

'मैं जो कर रहा हूँ, वह भी धर्म है। इसे आपद् धर्म कहते हैं। विनाशकारी समय में इसका

उपयोग किया जा सकता है। चूँकि इस समय और कुछ उपलब्ध नहीं है, इसलिए कुत्ते का माँस खाना भी निषेध नहीं है। जीवित रहकर ही धर्म का पालन करना संभव है। आप पूरे संसार को जल देने से मना कर रहे हैं; ऐसे में आपसे अमृत ग्रहण करना अधर्म होगा।'

उन्होंने इंद्र को ऊपर जाते देखा। बादल घिर आए थे। गड़गड़ाहट सुनाई देने लगी। फिर आकाश में बिजली चमकी और वर्षा ने भूलोक की शिराओं को पुन: जल से सींच दिया।

84

कृष्ण का जन्म



वसुदेव अपने हाथों को देख रहे थे।

उन्होंने अभी-अभी गर्भनाल काटी थी। उनके नवजात पुत्र के रोने की आवाज़ तेज होती जा रही थी और थकी हुई देवकी शिशु को शांत करते हुए कालकोठरी की मंद प्रकाश में बालक का चेहरा देखने की कोशिश कर रही थीं। वे बोलीं तो वसुदेव ने बहुत लंबे समय के बाद उनकी आवाज़ में खुशी महसूस की।

'इसका माथा आपके जैसा है।'

'मेरे जैसा? इसी जगह तो देवताओं ने हमारे भाग्य पर मुहर लगाई है, देवकी। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि हमारा ज्येष्ठ पुत्र केवल कुछ ही क्षण का मेहमान है।'

'आप अपनी ही निंदा कर रहे हैं?'

वसुदेव अब भी अपने हाथों को देख रहे थे। उन्होंने ऐसे उत्तर दिया मानो वे उन्हीं से बात कर रहे हों।

'तुम एक राजकुमारी हो, देवकी। तुमने यह सोचकर मुझसे विवाह किया था कि तुम रानी बनोगी परंतु तुम मथुरा के कारागार में दिन काट रही हो। हमारे बच्चे का जन्म, दाइयों के नहीं अपितु मेरे हाथ से हुआ है और तुम रेशमी बिस्तर पर नहीं बल्कि पत्थर के फर्श पर लेटी हो। यदु कुल को मिले शाप की आँच तुम तक भी पहुँच गई है। क्या तुम्हें पता है कि मेरा एक नाम अनकदुंदुभी है क्योंकि जब मेरा जन्म हुआ था तो हमारे महल में नगाड़े बजे थे? किंतु मेरे ज्येष्ठ पुत्र के आगमन पर मौन, पीड़ा और भय व्याप्त है।'

'इसका कारण आप नहीं हैं।'

'अगर तुमने मुझसे विवाह न किया होता तो तुम्हारे साथ यह सब नहीं होता,' वसुदेव ने मुड़कर देवकी के चेहरे की ओर हाथ बढ़ाया। 'देखो, देवकी। खून। खून की पर्त देखो। सुनो,

वे क्या कह रहे हैं। वे कह रहे हैं कि मेरा पुत्र आज ही मारा जाएगा क्योंकि मैं उसका पिता हूँ। मेरे हाथों में मेरे पुत्र का खून लगा है।'

'यह मेरे भाई के कर्म हैं। उसके कर्मों का फल। उस अँधेरे को अपने भीतर मत खोजिए क्योंकि वह उसके भीतर व्याप्त है। उस आदमी के अंदर, जो वास्तव में पशु है। यदि वह राजसिंहासन के लिए हमारे पिता को बंदी बना सकता है तो वह मुझ पर दया क्यों करेगा? अपनी बहन पर? समय निकट आ रहा है। प्रहरी उसे सूचित करने निकल पड़े हैं और वह जल्द ही यहाँ आ जाएगा। हमारे पुत्र को गोद में ले लीजिए। उसे अपने निकट रखिए क्योंकि आप उसे फिर कभी नहीं पकड़ सकेंगे।'

वसुदेव भय से पीछे हट गए। 'मैं यह कैसे करूँ? मैं इसकी आँखों में कैसे देखूँ? मैं इसकी मृत्यु की आहट सुन सकता हूँ तो इसके साथ संबंध कैसे स्थापित करूँ? अगर मैंने इसकी ओर देख भी लिया तो हम एक सूत्र से बँध जाएँगे और जब इसे मुझसे छीना जाएगा तो वह सूत्र मेरा माँस चीर देगा। आठ बार, देवकी! उन्हें हमसे आठ बार छीना जाएगा। मैं यह सब कैसे देखूँ?'

शिशु फिर कराहने लगा। देवकी ने उसका चेहरा वस्त्र की तह में छिपा लिया। तभी वसुदेव चिल्ला उठे।

'उसका चेहरा उघाड़ दो। उसे रोने दो। वह जो दख सकता है, उसे देखने दो। उसकी आवाज़ सुनाई पड़ने दो। वह ज्यादा देर नहीं रहेगा। उसे अपना अंश हमें दे लेने दो। इस कालकोठरी को दे लेने दो। इन दीवारों को इसकी आवाज़ सोख लेने दो ताकि वे एक दिन फिर किसी के लिए गूँज सकें।'

वसुदेव रोने लगे तो देवकी के भी आँसू निकल आए।

'मैं विनती करती हूँ कि अपने ज्येष्ठ पुत्र को नाम दीजिए,' देवकी ने याचना की। 'इसके जन्म के पवित्र अवसर पर यहाँ कोई पुजारी नहीं है और न ही इसकी जीभ पर रखने के लिए हमारे पास पर मक्खन है। फिर भी हमें इसका नाम रखना चाहिए। अगर हम इससे दोबारा किसी दूसरे जन्म में मिले और इसने पूछा कि हमने उसे बिना नाम के कैसे मर जाने दिया तो क्या होगा?'

'बहन, मृतक किसी का नाम नहीं पूछते!'

अंधेरे को चीरती एक आवाज़ सुनाई पड़ी। मशालों के प्रकाश में वह छाया आगे बढ़ रही थी। विशाल काया। ऐंठी हुई मूंछें। दहकती आँखें। चेहरे पर कठोरता।

कंस। मथुरा का राजा। वसुदेव खड़े हो गए। स्मृति फिर से ताजा हो गई। देवकी से विवाह के ठीक बाद, उसका प्रिय भाई कंस, उन्हें साथ घर ले जा रहा था कि तभी आकाशवाणी हुई।

‘सावधान, कंस! तुम्हारी बहन के विवाह के बाद पृथ्वी पर तुम्हारे दिन गिनती के शेष हैं। देवकी के भीतर तुम्हारे विनाश का बीज पलेगा। देवकी की आठवीं संतान, तुम्हारी मृत्यु का कारण बनेगी।’

कंस का स्नेह, क्षणभर में लुप्त हो गया। उसने देवकी का सिर काटने के लिए गुस्से में तलवार निकाली किंतु वसुदेव उसका मार्ग रोककर खड़े हो गए। वे कंस के पैरों में गिर पड़े और उन्होंने वचन दिया कि जब भी उनकी आठवीं संतान का जन्म होगा, तो वह स्वयं उसे कंस को सौंप देंगे। वे देवकी के साथ बंदीगृह में रहने के लिए भी तैयार हो गए।

कंस भी मान गया था। किंतु बाद में नारद ने उसे भ्रमित कर दिया। उन्होंने कंस को इंद्रधनुष दिखाते हुए पूछा, ‘महाराज, मुझे बताइए कि इनमें से कौन-सा रंग पहला है और कौन-सा आखिरी? इसे ऊपर से गिनना चाहिए या नीचे से? इसी तरह, आप यह कैसे सुनिश्चित करेंगे कि आठवां बच्चा कौन-सा होगा? यदि आप आरंभ से गिनते हैं तो यह आठवां है, किंतु यदि आप पीछे की गिनेंगे तो यह पहला है। देवताओं की विधि गूढ़ होती है इसलिए कोई भी बच्चा आठवां हो सकता है।’

डर से व्याकुल कंस ने फिर से अपनी बहन को मारना चाहा। तब वसुदेव ने एक भयानक व्रत लिया।

‘मैं अपने आठों बच्चों को तुम्हारे चरणों में रख दूँगा। तुम सबको मार डालना किंतु देवकी को छोड़ दो।’

कंस अब वासुदेव के ज्येष्ठ पुत्र को घूर रहा था। वह बालक ऐसे सो रहा था मानो ब्रह्मांड ने उसे सुलाया हो। मानो ब्रह्मांड यह चाहता हो कि वह अपनी मृत्यु के क्षण से अनजान रहे।

‘समय हो चुका, वसुदेव,’ राजा कंस जोर से गरजा। ‘मेरे भतीजे को यहाँ लाओ।’

वसुदेव ने देवकी की ओर देखा। देवकी का शरीर काँप रहा था किंतु उनकी अँगुलियों ने दृढ़ता से अपने पुत्र को जकड़ रखा था। कंस ने जैसे ही बच्चे को पकड़ा, देवकी उससे लिपट गई। फिर उन्होंने उसे छोड़ दिया। वसुदेव को कंस के कृत्य से कम और देवकी के चेहरे के भाव देखकर अधिक भय लग रहा था। उन्होंने अपने पुत्र की ओर न देखकर उसे कंस को सौंप दिया। कंस ने बच्चे को पैरों से पकड़कर उलटा लटका लिया। फिर कौतूहलवश से उसकी ओर देखा।

‘तुम्हारे माता-पिता तुम्हें इतना प्रेम क्यों करते हैं? मेरे माता-पिता ने तो मुझे जन्म के समय ही शाप दे दिया था। मेरी माँ ने मुझे शाप दिया क्योंकि द्रमिल नाम के एक गंधर्व ने छल से मेरी माँ के साथ व्यभिचार किया जिसके चलते मेरी माँ को क्रोध आ गया था। मेरे पिता द्रमिल ने मुझे इसलिए शाप दिया क्योंकि वह अपने ही कृत्य से घबरा उठा था। इस तरह मुझे माँ से केवल रोष और पिता से भय के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिला।’

कंस की आँख की कोर गीली हो गई। फिर उसने बालक को हवा में उठाया और उसका सिर पत्थर की शिला पर दे मारा। वसुदेव ने अपनी नज़र फेर ली किंतु देवकी सब देखती रहीं। अपने पुत्र को लहूलुहान देखकर उनके भीतर भी कुछ लहूलुहान हो गया। उसे मरता देखकर देवकी के अंदर भी कुछ मर गया था।

यह बार-बार होता रहा। देवकी, एक के बाद एक पुत्रों को जन्म देती रहीं और उनका भाई कंस सबको मारता गया। वसुदेव ने अपनी पत्नी से दूर रहने का निश्चय किया।

उन्होंने देवकी से अनुरोध किया, 'इस पीड़ा का बोझ हम पर पहाड़ की तरह बढ़ता जा रहा है। हम कंस को अब और पुत्र नहीं देंगे।'

परंतु देवकी वस्त्र उतार चुकी थीं। उन्होंने वसुदेव को अपने निकट खींच लिया।

'अब इसका संबंध हमसे नहीं बल्कि संसार को कंस से छुटकारा दिलाने से है। यदि नियति में लिखा है कि हमारा आठवाँ पुत्र यह कार्य करेगा तो हम बच्चे पैदा करते रहेंगे।'

देवकी अपने सभी मृत पुत्रों की गर्भनाल अपने पास जमा करती थीं। वह उनके साथ घंटों खेलती और उन्हें बार-बार गिनती थीं। फिर वे उन्हें बाँधती और खोलती थीं। उन्होंने अपने नवजात शिशुओं को दूध पिलाना भी बंद कर दिया। वसुदेव ने कारण पूछा तो देवकी ने केवल सिर हिला दिया।

'माँ के दूध से बड़ा कोई ऋण नहीं होता। जब मुझे पता है कि ये बालक उस ऋण को नहीं चुका सकेंगे तो मैं इनकी आत्माओं पर यह बोझ क्यों डालूँ?'

देवकी शांत रहने लगी थीं। बंदीगृह का पत्थर लाल हो चुका था। उसने देवकी के छह बच्चों का खून पी लिया था और अब देवकी के गर्भ में सातवीं संतान आ गई थी। देवकी का पेट पके फल की भांति फूल गया था किंतु एक दिन वह अचानक खाली हो गया। माता-पिता दोनों इस बात से अनजान थे कि योगमाया ने देवकी के भ्रूण को वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी के गर्भ में स्थानांतरित कर दिया था। रोहिणी, गोकुल में अपने भाई नंद के घर रहती थीं जहाँ उन्होंने बलराम को जन्म दिया। लक्ष्मण के बाद शेषनाग के दूसरे अवतार! प्रहरी चकित थे। उन्होंने कंस को बताया कि देवकी का सातवां बालक, गर्भ में ही मर गया। यह सुनकर कंस ने प्रहरियों को उपहार में अनमोल नीलम बाँटे थे।

'अब आठवें का समय आ गया है,' कंस ने हँसकर कहा।

कुछ महीनों बाद, देवकी ने वसुदेव का हाथ पेट पर रखा।

'यह वही है।'

'कौन?'

'वही जो कंस को मारेगा।'

'तुम्हें कैसे पता?'

देवकी ने वसुदेव का हाथ जोर से दबाया। 'मेरे भीतर एक अलग तरह की गरमाहट है जो मुझे पोषण दे रही है। एक लौ है जो मेरा मार्गदर्शन कर रही है। मैंने उसे धारण नहीं किया अपितु उसने मुझे धारण किया है।'

भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष के आठवें दिन मध्यरात्रि के समय देवकी ने अपने आठवें पुत्र को जन्म दिया। कृष्ण वर्ण के बालक ने देवकी को प्रकाश से भर दिया। शंख, चक्र, गदा और पद्म वाले के चार प्रतीकों के साथ विष्णु के अवतार ने जन्म ले लिया था।

कृष्ण।

जैसे ही कृष्ण का जन्म हुआ, मशालों की चमक तेज हो गई। कंस के पहरेदार सो गए और कालकोठरी का दरवाजा खुल गया। तभी एक आकाशवाणी हुई।

'द्वापर युग में महाविष्णु के अवतार की जय! इन्हें यमुना नदी के पार गोकुल में नंद और उनकी पत्नी यशोदा के घर ले जाइए। अपने पूर्व जन्म में, वे द्रोण और धरा थे, जिन्हें श्री हरि ने आशीर्वाद दिया था कि वे इस युग में उनके पुत्र के रूप में प्रकट होंगे। उस वरदान के फलित होने का समय आ गया है। इसी समय यशोदा ने भी एक कन्या को जन्म दिया है। वहाँ भी सबको सुला दिया गया है। अपने पुत्र को पालने में लिटाकर वहाँ ले जाओ और उस कन्या को यहाँ ले आओ।'

देवकी ने अपने पुत्र के पैर छुए। उन्होंने कृष्ण को सींक की टोकरी में रखकर उन्हें वसुदेव को सौंप दिया। किंतु वसुदेव के हाथ काँप रहे थे।

'अगर पहरेदार जाग गए? अगर कंस ने मुझे देख लिया? वह मेरा सिर धड़ से अलग कर देगा और तुम्हें ढूंढ़ता हुआ यहाँ आ जाएगा। मैं अपना सब कुछ खो चुका हूँ किंतु तुम्हें नहीं खो सकता।'

देवकी कालकोठरी से निकलकर पत्थर की शिला की ओर बढ़ीं। उनके पुत्रों का रक्त शिला पर जम चुका था। देवकी ने पत्थर को सहलाया। उन्होंने अपनी लाल हथेली को चुपचाप वसुदेव की ओर बढ़ा दिया। वसुदेव ने टोकरी अपने सिर पर रख ली। वे किसी अनजान अनकही शक्ति के नियंत्रण में थे और वे अब आकाशवाणी का शब्दश: पालन कर रहे थे। वे कालकोठरी से निकले और राजमहल से बाहर गए। खाली सड़कों पर चलते हुए वे विशाल नदी के सामने आकर खड़े हो गए।

यमुना।

आसमान में बादल गरज रहे थे और मूसलाधार वर्षा हो रही थी। वसुदेव ने नदी को पार करना शुरू किया। उनका निचला शरीर पानी में पकड़ बनाने की कोशिश कर रहा था जबकि ऊपरी आधा हिस्सा सिर पर रखे भार को संतुलित कर रहा था। उनके आठवें पुत्र की भांति, चंद्रमा भी उस रात घटाव घटने के आठवें चरण में था। एक नया चक्र शुरू होने से

पहले वह अंतिम चरण में था जिस तरह कृष्ण, एक नई व्यवस्था की घोषणा करने वाले थे। अचानक यमुना में तूफान आ गया। उसके उफनते जल में वसुदेव बौने जैसा महसूस कर रहे थे। यमुना की लहरें इतना ऊपर उठ गईं कि जल की दीवार ने वसुदेव को ढक लिया। उन्हें साँस लेने में कठिनाई हो रही थी। तभी उन्हें एक आवाज़ सुनाई दी। नदी धीमे स्वर में कुछ कह रही थी।

'डरो मत। मैं केवल श्री हरि के चरण स्पर्श करना चाहती हूँ। मैंने सुना कि उनके चरणों ने गंगा को पवित्र कर दिया था। मैं भी वही आनंद पाने को लालायित थी। आज, मैं भी धन्य हो गई हूँ।'

जल्द ही, वह ज्वार थम गया। भगवान, यमुना को उसी तरह पार कर रहे थे जैसे वे आद्य जल पर तैरते थे। वसुदेव, नदी के बीच में पहुँचे थे कि तभी वर्षा और तेज हो गई। वे लड़खड़ाने लगे और फिर चिल्लाए।

'नारायण, आपने वर्षा की है तो आप ही छाया भी देंगे।'

उनके ठीक पीछे यमुना में से कुछ बाहर निकल रहा था। वह इतना ऊँचा था कि उसके पीछे चाँद भी छिप गया। उस जीव ने पिता और पुत्र पर छाया कर दी। वसुदेव मुड़े तो विस्मय से देखते रह गए। अति बलवान वासुकि नाग नदी में से प्रकट हुए थे। वसुदेव पर सर्प के दस फण वाला विशाल छत्र फैला था। इस दिव्य दृश्य को देखने के लिए समस्त देवी-देवता प्रकट होने लगे। वसुदेव ने भगवान को नीचे से सहारा दिया था और वासुकि ऊपर से उनकी रक्षा कर रहे थे। मनुष्य और पशु, दोनों संसार के संरक्षक के जन्म का उत्सव मना रहे थे, जिनके लिए विष्णु ने एक और अवतार लिया था। विष्णु को, जो स्वयं मनुष्यों को भव-सागर पार करवाते हैं, एक मनुष्य समुद्र पार करवा रहा था। जिन विष्णु ने मनु की नाँव को बचाया था उन्हें एक मनुष्य बचा कर ले जा रहा था। देवता एकत्रित हो रहे थे। भौतिक तत्त्व आह्लादित थे। ब्रह्मांड, परमानंद में डूबा जप कर रहा था।

हरे कृष्ण... हरे कृष्ण... हरे राम... हरे राम...

यमुना सिमटने लगी थी। जल, थल के लिए मार्ग बना रहा था। किनारे पर कदम रखते ही वसुदेव ने गोकुल की ओर देखा। उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे क्योंकि वे फिर अपने पुत्र से अलग होने वाले थे और इसलिए भी कि उन्होंने विष्णु के अवतार को जन्म दिया था।

आँसू इसलिए भी कि कृष्ण जीवित रहेंगे और कंस मारा जाएगा।

थोड़ी देर में, वसुदेव कालकोठरी में लौट आए। वे देवकी के पास एक बालिका को गोद में लिए खड़े थे। बंदीगृह का द्वार बंद हो चुका था और पहरेदार फिर से जाग गए थे। उन्होंने जैसे ही कंस को सूचना दी, वह आ पहुँचा। कंस हँसा और उसने शिशु को शिला के ऊपर करके लटका दिया।

‘कन्या? कन्या बड़ी होकर कंस का वध करेगी? मैं महिषासुर या शुंभ-निशुंभ नहीं हूँ जिसे दुर्गा ने मारा था। मैं दारुक या रक्तबीज भी नहीं हूँ जिसे काली ने मारा था। मैं कंस हूँ।’

कंस ने जैसे ही उस बच्ची को ऊपर उठाया, वह उसकी पकड़ से छूटकर हवा में उड़ गई और कारागृह चकाचौंध कर देने वाले प्रकाश से भर उठा। उसी प्रकाश में वह कन्या, आठ भुजाओं वाली योगमाया में परिवर्तित हो गई। भ्रम की देवी। आद्य श्रेष्ठा।

‘दुष्ट कंस,’ देवी ने दहाड़कर कहा। ‘तू किसे मारने की कोशिश कर रहा है? मुझे, जो अजन्मा है? मुझे, जो अमर है? तेरा विनाश करने वाला जीवित है। जीवित भी और स्वस्थ भी। प्रतिदिन वह जैसे-जैसे श्वास लेगा, तेरा दम घुटता जाएगा। हर दिन वह शक्तिशाली बनेगा और तू दुर्बल होता रहेगा। वह तुझसे बहुत दूर है किंतु वह समय पर अवश्य आएगा। और जब वह आएगा, तेरा अन्त निश्चित है!’

प्रकाश लुप्त हो गया। कंस अंधेरे में खड़ा था। उसका हृदय, ढोल की थाप की तरह जोर से धड़क रहा था। उसने देवकी को पकड़कर दाँत पीसे।

‘तुम्हारा पुत्र कहाँ है?’

देवकी ने कंस का हाथ पकड़ लिया।

‘कहाँ है वह? उसका नाम क्या है?’

कंस की कलाई पर एक गर्भनाल बाँधते हुए देवकी मुस्कुराई। ‘भैया, मृतक किसी का नाम नहीं पूछते!’

85
कृष्ण और यमलार्जुन



बाल कृष्ण की आँखें बंद थीं। उनके होंठ पर तिरछी मुस्कान खेल रही थी। जीभ बार-बार हर्षोल्लास से हथेली पर रखे सफेद गोले को चाट रही थी। उसका स्वाद, हमेशा की तरह कृष्ण को अजीब-से आनंद से भर रहा था। उसकी महक हमेशा की तरह उन्हें आह्लादित कर रही थी। किंतु अपनी माँ का बर्तन तोड़ने और उसमें से मक्खन निकालने का एकमात्र कारण यह नहीं था। इसकी वजह यह भी थी कि उन्हें यह देखना पसंद था कि कैसे मक्खन मुख से टपकता था, त्वचा को गुदगुदाता था, वस्त्रों पर दाग़ लगा देता था और कैसे उसकी चिकनाई प्रभु को लुभाती थी।

कृष्ण के ऊपर एक छाया पड़ रही थी। उन्होंने ऊपर देखा। माँ खड़ी थीं। मटकी के टुकड़े कृष्ण की चोरी की पोल खोल रहे थे और यशोदा को बहुत क्रोध आ रहा था।

‘तुम्हें सबक सिखाने का समय आ गया है कान्हा,’ यशोदा ने कृष्ण को फटकारते हुए कहा।

यशोदा ने मोटी रस्सी से अपने पुत्र को एक भारी-सी ओखली के साथ बाँध दिया। चूँकि रस्सी (दाम), कृष्ण के पेट (उदर) के नीचे बँधी थी, इसलिए कृष्ण को एक नाम मिला—दामोदर।

‘अब तुम हिल भी नहीं सकते,’ यशोदा ने गांठ की जांच करते हुए कहा। ‘मेरे काम पूरा करने तक यहीं रहना।’

बालक चुपचाप बैठ गया। उसकी जीभ अंगुलियों में चिपके मक्खन को चाट रही थीं। कुछ क्षण बाद, बालक ने सामने दो ऊँची आकृतियाँ देखीं। लोगों के लिए तो वे यमलार्जुन यानी अर्जुन के दो वृक्ष ही थे। परंतु कृष्ण के लिए वे दो प्राणी थे जो कृष्ण के आगमन के लिए लंबे समय से व्याकुल थे। वे दोनों जीव पिछले सौ वर्षों से अपने भीतर एक रहस्य छिपाए खड़े थे।

बहुत समय पहले कुबेर के पुत्र, नलकूबर और मणिग्रीव, मंदाकिनी नदी के तट पर अप्सराओं के साथ जल-क्रीड़ा का आनंद ले रहे थे। उन्होंने स्त्रियों के वस्त्र उतार दिए और उनके साथ रति-क्रीड़ा में मग्न हो गए। इस बीच, नारद भजन गाते हुए वहाँ से निकले। देवर्षि को आते देख स्त्रियों ने तुरन्त अपने शरीर को ढक लिया, परंतु दोनों यक्ष भाइयों ने ऐसा नहीं किया। उनके आमोद-प्रमोद में बाधा उत्पन्न हुई तो उन्हें क्रोध आ गया। वे नग्नावस्था में ही नारद के सामने आ खड़े हुए। ऋषि के होठों पर चल रहा गीत थम गया। उन्होंने क्रोध में नलकूबर और मणिग्रीव को शाप देकर अर्जुन वृक्षों में बदल दिया। नारद ने यह भी कहा कि दोनों वृक्ष बनकर सौ वर्ष तक खड़े रहेंगे और उन्हें विष्णु के अवतार के हाथों ही मुक्ति प्राप्त होगी।

कृष्ण धीरे-धीरे पेड़ों की ओर खिसकने लगे थे। वे अपने साथ उस ओखली को भी घसीट रहे थे जिससे कृष्ण को बाँधा गया था। वह विशाल पत्थर बालक की आज्ञा का पालन करते हुए ऐसे खिंचा आ रहा था मानो वह भारहीन हो। वह कृष्ण के पीछे-पीछे चल रहा था मानो उसने सर्वोच्च शक्ति के समक्ष समर्पण कर दिया था। प्रकृति के सभी तत्त्व चकित थे। वे सब ओखली से ईर्ष्या कर रहे थे क्योंकि प्रभु ने उसे अपनी लीला के लिए चुना था। कृष्ण जैसे ही करीब आए, अर्जुन के दोनों वृक्षों में हलचल होने लगी। समय आ गया था। उद्धार की घड़ी निकट थी। उनके पत्ते सरसराने लगे। फूल खिले थे। बालक पर हल्के पीले रंग के फूलों की वर्षा होने लगी मानो पेड़ आँसू बहाते हुए कृष्णावतार की स्तुति गा रहे हों।

बालक दोनों पेड़ों के बीच से गुजरा किंतु ओखली बीच में फँस गई। वह हिल ही नहीं पा रही थी। कृष्ण पलटे। उन्होंने ओखली को देखा। फिर अर्जुन के वृक्षों की ओर देखा। वृक्ष प्रतीक्षा कर रहे थे। ब्रह्मांड देख रहा था। ओखली ने स्वयं को तैयार कर लिया।

नमो नारायणाय...

कृष्ण ने थोड़ा-सा ज़ोर लगाया किंतु उनका बल इतना था कि ओखली, दोनों पेड़ों को हिलाते हुए आगे बढ़ने लगी। वृक्ष लड़खड़ा रहे थे। तने लहराने लगे। लंबे समय तक स्थिर खड़े दोनों वृक्षों को कृष्ण ने सहसा गति प्रदान कर दी थी। दोनों पेड़, जड़ से उखड़ गए और नीचे गिरने लगे। धरती के बंधन से मुक्त होकर दोनों आनंद से बेसुध हो रहे थे। फिर वे सिर के बल गिर पड़े मानो कृष्ण को झुक कर प्रणाम कर रहे हों। अतीत से मुक्त होकर दोनों वृक्ष, कृष्ण के चरणों में लेटे पड़े थे।

बालक ने पेड़ से एक पत्ता तोड़ा तो पेड़ गायब हो गए। उनके स्थान पर नलकूबर और मणिग्रीव हाथ जोड़े खड़े थे और ओखली से बँधे बाल कृष्ण को निहार रहे थे।

वे देख रहे थे कैसे भगवान ने उन्हें मुक्त करने के लिए खुद रस्सी से बँधना स्वीकार किया

था।

86
कृष्ण ने कालिय को वश में किया



यमुना थरथरा रही थी।

कालिय नाम का एक नाग अनेक पत्नियों के साथ यमुना में प्रवेश कर गया था। यमुना ने आश्रय की खोज में प्रत्येक प्राणी को अपनाया किंतु यह कई फण वाला विशाल काला नाग, उसे भयभीत कर रहा था। उसने असुर की भांति यमुना पर जैसे आक्रमण कर दिया था। वह एक महामारी की तरह था जो यमुना के भीतर फैल चुका था और अपना मार्ग कभी भी बदल लेता था। यमुना की आशंका सच हो गई। कालिय के विष से यमुना का जल, विष में बदलने लगा। कालिय की श्वास से नदी का जल वाष्प बनाकर बुदबुदा रहा था। यमुना जहरीली झील में बदलने लगी और उसके आसपास का जीवन नष्ट होने लगा। तट के पेड़ सूख गए और तलहटी में रहने वाली मछलियों ने दम तोड़ दिया। उसके ऊपर से उड़ने वाले पक्षी तक मर जाते थे और जल पीने वाली गायें वापस लौट नहीं पाती थीं। रात के समय भी नदी में घातक चमक दिखाई पड़ती थी। कालिय ने यमुना को भीतर तक संक्रमित कर दिया था और वह निकट आने वाले हर प्राणी के प्राण हर लेती थी।

वृन्दावन निवासियों ने नंद के सामने निवेदन किया, 'हमें रहने की जगह बदलनी पड़ सकती है। नदी विषाक्त हो चुकी है। मवेशी मर रहे हैं और जल्द ही हमारी भी बारी आ जाएगी।'

'शायद हमें कालिय से बात करनी चाहिए,' नंद ने प्रस्ताव रखा।

'वह नाग बहुत दुष्ट है। अगर हम उसके पास भी गए तो हमारे मुँह से झाग निकलने लगेगा।'

कृष्ण दूर खड़े उनकी बातें सुन रहे थे। वर्षों पहले कंस के आतंक ने उन सबको गोकुल से भागने पर विवश कर दिया था। वह अत्याचारी राक्षस अपने भाँजे कृष्ण को पहचान चुका था और उसे मारने के लगातार प्रयास कर रहा था। उसने विषैले स्तन वाली पूतना को दूध

पिलाने भेजा किंतु बालक कृष्ण ने उसके प्राणों को चूस लिया। फिर तृणावर्त बवंडर का रूप धारण करके कृष्ण को मारने आया किंतु कृष्ण ने स्वयं को इतना भारी कर लिया कि राक्षस उन्हें उठा नहीं पाया। इसके बाद शकटासुर ने कृष्ण को बैलगाड़ी के पहिये के नीचे कुचलने की कोशिश की किंतु कृष्ण ने गाड़ी को चकनाचूर कर दिया। फिर यमलार्जुन नाम के वृक्षों के गिर जाने को अपशकुन माना गया जिसके बाद पूरा गोकुल, दक्षिण दिशा की ओर पलायन कर गया और उन्होंने वृंदावन में नए नगर का निर्माण किया। हालाँकि इसके बाद भी कृष्ण पर आक्रमण बंद नहीं हुए। बगुले के रूप में आए राक्षस बकासुर ने कृष्ण को निगलने की कोशिश की किंतु कृष्ण ने उसकी चोंच को फाड़ डाला। फिर धेनुकासुर गदहे का रूप धर कर आया किंतु कृष्ण ने उसका भी वध कर दिया। उन्होंने अजगर बन कर आए अघासुर को मार डाला और फिर अश्व के रूप में आए केशी नामक दैत्य का संहार किया। केशी को मारने के बाद कृष्ण को केशव नाम मिला था। अब एक और राक्षस यमुना को संक्रमित कर रहा था। सभी निराश हो चुके थे।

'हम इसका कुछ नहीं कर सकते।'

कृष्ण ने पलटकर देखा। फिर वे हाथ में पकड़ी लकड़ी की गेंद को उछालते हुए मुस्कुराए।

'कुछ तो कर सकते हैं।'

कृष्ण ने अपने साथियों को इकट्ठा किया और उन्हें नदी किनारे ले गए। खेल शुरू हो गया और गेंद एक बालक से दूसरे बालक के पास जाने लगी। गोल-गोल। ऊँची और ऊँची। वह विचित्र अनुवृत्त बना रही थी और अजीब-से कोणो में घूम रही थी। अब गेंद कृष्ण के हाथ में थी। उन्होंने यमुना की ओर देखा। और यमुना ने उनकी ओर।

समय हो चुका...

उन्होंने गेंद उछाल दी। गेंद, सबको चकमा देती हुई नदी में जा गिरी और डूब गई। सभी लड़के, यमुना की ओर भागे और अचानक रुक गए। उनके पैर नदी के पास जाते ही थम गए थे। उनकी आँखें फुफकारते पानी को ताक रही थीं।

'गेंद तो अंदर चली गई!'

'हमें उसे निकालना होगा। किसी को नदी में गोता लगाना पड़ेगा।'

'यमुना में गोता? तुम पागल हो।'

'किंतु वह मनसुख की गेंद है।'

'और वह, कालिय की नदी है।'

'मनसुख को पता लगा तो वह बहुत नाराज़ होगा।'

कृष्ण ने हामी भरी। 'फिर तो एक ही काम किया जा सकता है।'

इससे पहले कि लड़के कुछ कह पाते, कृष्ण ने नदी में छलांग लगा दी। वे जैसे ही पानी में

उतरे, उन्हें अपने दोस्तों के चिल्लाने की आवाज़ें सुनाई दीं। किंतु कृष्ण नदी के अंदर उतरते गए और साथियों की आवाज़ें मंद पड़ती गईं। कृष्ण अब पूरी तरह नदी में उतर चुके थे। उन्होंने विष के उस जलाशय में चारों ओर नज़र डाली। सूर्य की पुत्री यमुना, अपने पिता की तरह झिलमिलाती रहती थी। उन्हीं की तरह जीवन का पोषण करती थी। किंतु अब कालिय ने उसे विषैले जलाशय में बदल दिया था। कृष्ण के चारों ओर मृत जीव तैर रहे थे। ज़हर की लपटें धारा को दूषित कर रही थीं। कृष्ण ज्यों ही और नीचे उतरे उन्हें एक आवाज़ सुनाई दी।

'कौन है वहाँ?'

एक सर्प उनकी ओर रेंगता हुआ आ रहा था। उसके शल्क चमक रहे थे, आँखें फड़क रही थीं और दाँतों से विष टपक रहा था। कृष्ण ने उसे देखा। उसके अनेक फण खुलकर कृष्ण के सामने लहराने लगे। विशाल कालिय, जल-दैत्य की भांति कृष्ण के सामने हिल रहा था।

'बालक, नाम क्या है तुम्हारा?'

'जो तुम्हारा है। मैं कृष्ण हूँ और तुम कालिय हो। दोनों का अर्थ एक ही है।'

'तुम्हारी त्वचा मेरे तरह काली है किंतु तुम्हारे सिर पर मोर का पंख क्यों है? तुम यहाँ मेरे सामने मेरे शत्रु का पंख लगाकर खड़े हो। यहाँ क्यों आए हो?'

'अपनी गेंद ढूँढ़ने। और तुमसे यह कहने कि यमुना छोड़ कर चले जाओ अन्यथा मैं तुम्हें मार डालूँगा।'

सर्प जोर से फुफकारा। विष की गहन धुंध, कृष्ण के चारों ओर फैल गई।

'बालक, तुम मुझे मारोगे? और महादेव की तरह मेरा विष पी जाओगे? तुम्हें तो अब इस नदी में मर जाना चाहिए था।'

'तुम्हारा जहर मुझे छू भी नहीं सकता, कालिय। अपनी पत्नियों को साथ लो और यहाँ से चले जाओ अन्यथा यमुना, अभी तुम्हारे विष से भरी है लेकिन फिर यह तुम्हारे रक्त से भर जाएगी।'

नाग फिर से फुफकारा। वह अपना शरीर खोलकर कृष्ण को चारों ओर से लपेटने लगा। वह कृष्ण को अपनी विशाल कुंडली में जकड़ लेना चाहता था। कालिय ने कृष्ण को सिर से पांव तक लपेट लिया। फिर वह हँसा।

'मैं तुम्हें लपेट लूँगा। फिर तुम मुझे कैसे मारोगे?'

कृष्ण भी अपना आकार बढ़ाने लगे। उनके अंग बड़े हो रहे थे। धड़ ऊँचा होने लगा। पंख का आकार बढ़ गया। कृष्ण का आकार जैसे-जैसे बड़ा होता गया, सर्प की कुंडली छोटी होती चली गई। कालिय छटपटा रहा था। वह कृष्ण के आकार को बढ़ने से रोकना चाहता

था। प्रत्येक माँसपेशी की मदद से कृष्ण को दबोचकर मारने की कोशिश कर रहा था। परंतु ऐसा करने में उसका अपना शरीर कटने लगा। खून के थक्के बाहर निकलने लगे। वह अपनी ही लगाई गाँठ में उलझ रहा था। सहसा उसे महसूस हुआ कि वह अपने परिमित स्वरूप के साथ अपरिमित स्वरूप को बाँधने की कोशिश कर रहा था। अंत में कालिय ने समर्पण कर दिया। वह कृष्ण के चरणों में गिर पड़ा और स्तब्ध-सा उन्हें देखने लगा। फिर उसने आश्चर्य-भरे स्वर में पूछा।

'आप मनुष्य तो नहीं हैं। फिर कौन हैं?'

'मैं वह हूँ, जो शेषनाग पर विराजमान है। वह, जो वासुकि द्वारा पूज्य है।'

इस बीच, पूरा वृंदावन यमुना तट पर इकट्ठा हो गया। कृष्ण के साथियों ने सबको बताया दिया था। नंद और यशोदा दौड़े चले आए। यशोदा छाती पीट रही और बाल नोंच रही थीं। उन्होंने वादा किया कि यदि उनका पुत्र लौट आया तो वे उसे संसार का सारा मक्खन खिला देंगी। वे नदी में छलांग लगाने के लिए भागीं किंतु रोहिणी ने उन्हें रोक लिया। नंद आदि सब नदी की ओर देख रहे थे। वे खुद को तैयार कर रहे थे कि उन्हें किसी भी क्षण कृष्ण का मृत शरीर नदी पर तैरता नज़र आएगा। उनकी श्वास थमने लगी। कुछ हो रहा था। पानी जोर-जोर से हिल रहा था। यमुना के गर्भ से कुछ निकलने लगा।

पंख। हवा में लहराता हुआ कृष्ण का मोर पंख।

सब देख रहे थे।

कृष्ण की आँखें झिलमिलाती रही थीं क्योंकि वे एक रहस्य से परदा उठाने वाले थे।

सबकी सांसें थम गईं।

फिर कृष्ण का चेहरा दिखा। वे कीचड़ में खिले कमल के समान मुस्कुरा रहे थे।

तभी सब संकेत करने लगे।

कृष्ण के हाथ नज़र आए। उन्होंने मुरली को उठाकर होंठों से लगाया।

सब आगे बढ़े।

कृष्ण के पैर ऊपर आ चुके थे। वे कालिय के फन पर खड़े थे।

सब पीछे हट गए।

बालक कृष्ण, सर्प के फण के ऊपर ऐसे खड़ा था जैसे पर्वत, सूर्य को मुकुट की तरह धारण करता है। कृष्ण बाँसुरी बजा रहे थे और कालिय मंत्रमुग्ध होकर झूम रहा था मानो बाँसुरी की रागिनी से बँधा हो। सब चकित थे। वे कृष्ण को और फिर एक-दूसरे को देखने लगे। यह सच में हो रहा था या उनका भ्रम था? क्या बाँसुरी के स्वर, उनकी दृष्टि को भ्रमित कर रहे थे? क्या कृष्ण को खो देने की पीड़ा ने उनके सामने यह उदात्त दृश्य बना दिया था? तभी यशोदा ने कृष्ण की आवाज़ सुनी।

‘माँ,’ कृष्ण ने यशोदा की ओर गेंद उछाली। ‘इसे खोजने में कालिय ने मेरी मदद की।’

यशोदा ने गेंद को पकड़ लिया। वह उसे छूकर महसूस कर रही तथा उसकी गरमाहट को सहला रही थीं। वह स्पर्श उन्हें बता रहा था कि यह सब सच था।

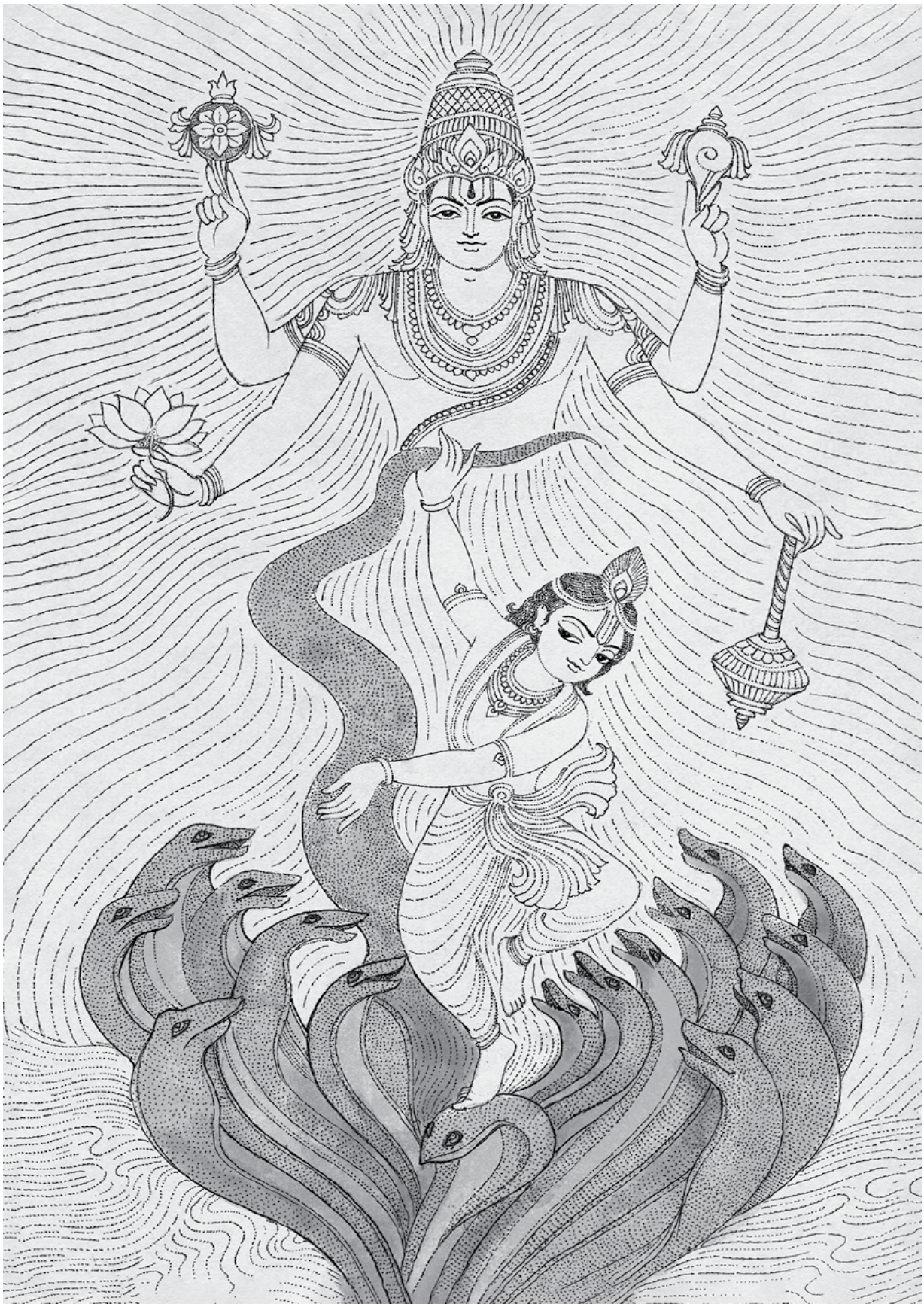
‘वह जीवित है,’ यशोदा ने नंद को कसकर पकड़ते हुए कहा। ‘हमारा कान्हा जीवित है।’

कृष्ण अब नृत्य कर रहे थे। उनके पैर, कालिय के फण का मर्दन कर रहे थे। कृष्ण ऐसे खिलखिला रहे थे जैसे कोई बच्चा खेल में जीत जाता है। वे ऐसे प्रसन्न थे जैसे नाग को वश में करने वाले भगवान आह्लादित होते हैं। कृष्ण ने कालिय को याद दिलाया कि परब्रह्म से बढ़कर कुछ नहीं है। उस दिव्य नृत्य को देखकर पूरा वृंदावन भाव-विभोर हो उठा। उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। चेहरों पर खुशी का सैलाब उमड़ रहा था। कालिय के ऊपर नृत्य करने के कारण, कृष्ण नटवर कहलाए। ऐसे लौकिक नर्तक जिनका नृत्य ब्रह्मांड को मुग्ध कर रहा था और जिनकी लीला सबमें व्याप्त थी। नृत्य की गति तेज होने लगी। उनके चरण सर्प को चोट पहुँचा रहे थे। भगवान का नृत्य चरम पर था कि तभी कालिय की पत्नियाँ हाथ जोड़कर सामने आ गईं।

‘नारायण, यह ब्रह्मांड आप में व्याप्त है। आपके नृत्य से हमारे पति को पीड़ा हो रही है। आपसे विनती है कि आप उन्हें मुक्त कर दीजिए। आपके स्पर्श ने कालिय को दोषमुक्त किया है इसलिए वह आपकी हर आज्ञा का पालन करेगा।’

कृष्ण ने नाग को संबोधित किया।

‘तुम रमणक द्वीप से अपनी पत्नियों के साथ यहाँ आए थे। उसी द्वीप पर वापस लौट जाओ और फिर जीवन-भर वहीं रहो।’



‘नारायण, मैं डरकर यहाँ आया था,’ कालिय ने रोते हुए कहा। ‘लोग मुझसे डरते हैं किंतु मैं गरुड़ से डरता हूँ। आपका वाहन, सर्प का शत्रु है और उसी के डर से हमें रमणक द्वीप छोड़कर भागना पड़ा।’

कृष्ण ने आँखें मूँदीं तो उनके सामने गोकुल की छवि उभर आई। ‘मुझे पता है कालिय कि घर छोड़ने की पीड़ा कैसी होती है। किंतु तुम्हारे यहाँ रहने से यमुना के आसपास का प्राकृतिक संतुलन बिगड़ गया है और धर्म यह कहता है कि कुछ लोगों का जीवन बचाने के लिए अनेक लोगों का जीवन खतरे में नहीं डाला जा सकता।’

‘यदि हम नाग, जन्म से हिंसक होते हैं तो क्या यह मेरा दोष है? क्या यह मेरी भूल है कि मैं विष के साथ पैदा हुआ हूँ? मैं अपने स्वभाव को कैसे छोड़ दूँ जिसे ब्रह्मांड ने निर्धारित किया है? हमने खुद को बचाने के लिए यहाँ शरण ली थी क्योंकि यही एकमात्र स्थान है जहाँ एक ऋषि के शाप के चलते गरुड़ प्रवेश नहीं कर सकते। परंतु यदि आपकी आज्ञा है तो मैं अवश्य पालन करूँगा।’

कृष्ण ने कालिय को आशीर्वाद दिया। ‘तुम निर्भय होकर लौट जाओ, कालिय। मेरे पद-चिह्न अब तुम्हारे फण पर सदा के लिए अंकित हो चुके हैं। इन्हें देखने के बाद गरुड़ तुम्हें या तुम्हारे वंश को स्पर्श नहीं करेंगे।’

सर्प ने आश्चर्य से कृष्ण की ओर देखा। प्रभु, कालिय का वध करने के लिए उसके फण पर नहीं चढ़े थे। उन्होंने कालिय को मृत्यु के संकट से दूर करने के लिए ऐसा किया था। कालिय रो रहा था। कृष्ण हँस रहे थे क्योंकि उन्हें यमुना की हँसी सुनाई पड़ रही थी।

87
कृष्ण ने ब्रह्मा को परास्त किया



ब्रह्मा, कृष्ण को खेलते देख रहे थे।

कृष्ण, अपने साथियों के साथ यमुना किनारे मवेशी चरा रहे थे। गायों को हरी घास मिल गई थी और लड़के खिलखिलाकर हँस रहे थे। वे खेल में व्यस्त थे और एक-दूसरे को ललकार रहे थे। हंसी-मज़ाक कर रहे और ठहाका लगा रहे थे। वे कभी पेड़ों पर चढ़कर कच्चे फल तोड़ते तो कभी नदी में कूदकर तैरने लगते। फिर कृष्ण ने बाँसुरी बजाई तो सबको नींद आ गई।

ब्रह्मा ने देखा कि गायों पर अब किसी की नज़र नहीं थी। वे मुस्कुराए।

मैं भी खेलना चाहता हूँ...

ब्रह्मा ने आँखें बंद कीं और वे गायों और बछड़ों की बुद्धि में समा गए। उन्होंने सबके कानों में कुछ शब्द कहे। पशु एक-दूसरे को देख रहे थे। वे उस आवाज़ को सुन रहे थे जिसने उन्हें अपने नियंत्रण में ले लिया था। वे उसी आवाज़ के निर्देश का पालन करने लगे। उन्होंने हिलना शुरू किया और एक के बाद एक पूरा झुंड चल पड़ा। उनमें से किसी ने जरा-सी आवाज़ नहीं की जिससे सोते हुए लड़के सचेत हो जाते। सारी गाएँ एक रास्ते पर चल पड़ीं मानो उन्हें पता था कि उन्हें किधर जाना है। बछड़े, अपनी माताओं के साथ नहीं चल रहे थे और माताओं को बछड़ों की परवाह नहीं थी। वे सब केवल भीतर की आवाज़ से बँधे थे। फिर वे एक गुफा में पहुँचे और अंदर घुसकर अन्धकार में खो गए। उन्हें इस गुफा में उस समय तक छिपे रहना था जब तक भगवान ब्रह्मा उन्हें मुक्त नहीं कर देते। ब्रह्मा फिर हँसे।

मैं केवल खेल रहा हूँ, श्री हरि...

मनसुख अचानक झटके से उठ बैठा। क्षण भर बाद, उसने सबको लात मार कर जगाया।

'गाएँ। बछड़े। मुझे कोई नज़र नहीं आ रहा।'

बहुत खोजने के बाद भी उन्हें कोई पशु नजर नहीं आया। किसी के सींग, सिर अथवा खुर का भी पता नहीं लगा। अंधेरा हो रहा था तो वे सब घबराने लगे। किंतु ब्रह्मा का अभी मन नहीं भरा था।

मैं थोड़ा और खेलना चाहता हूँ...

लड़के इधर-उधर देखते रहे और इस बीच ब्रह्मा ने उनके मन पर भी नियंत्रण कर लिया। ब्रह्मा ने उनकी इंद्रियों को उसी तरह वश में कर लिया जैसे मवेशियों के साथ किया था। कृष्ण के साथी ब्रह्मा की माया के प्रभाव से अपने समूह से अलग होने लगे। वे सब बेसुध-से होकर एक-एक करके दूर जा रहे थे। जैसे नदी, समुद्र की पुकार सुनती है, उसी तरह ब्रह्मा की आवाज़ उन्हें लगातार सुनाई दे रही थी। वे सब बालक उसी गुफा में घुसकर गायों के बीच गायब हो गए। कुछ क्षण के बाद, कृष्ण ने चारों ओर देखा। वे अकेले खड़े थे। उनके सब साथी गायब हो चुके थे। वे मुस्कुराए।

सब नहीं...

एक साथी अब भी मेरे साथ खेल रहा है...

कृष्ण समझ गए कि ब्रह्मा ने उनके साथियों को दूर भगा दिया था। कृष्ण को ब्रह्मा की आवाज़ में उल्लास महसूस हो रहा था।

मैं केवल खेल रहा हूँ, श्री हरि...

कृष्ण ने हामी भरी।

फिर तो मुझे भी खेलना चाहिए...

कृष्ण ने आँखें मूँद लीं। उनके रोम छिद्रों से किरणें निकलीं और अनेक आकृतियों में ढल गईं। फिर उनमें माँस और रक्त भर गया, त्वचा चढ़ गई और शरीर पर रोम उग आए। उनमें सब तरह के रंग भर गए थे। किरणें धुंधली पड़ने लगीं तो कृष्ण ने आँखें खोलीं और सामने देखा। उनके सब साथी और गाएँ सामने थे। कृष्ण ने सबकी सटीक प्रतिकृतियाँ तैयार कर ली थीं। वे सब कृष्ण को ताक रहे थे। उन्हें इस बात का बिलकुल पता नहीं था कि वे दृष्टि-भ्रम से उत्पन्न हुए थे। जिस तरह कृष्ण, विष्णु का विस्तारित रूप हैं और जिस तरह विष्णु, परब्रह्म का रूप हैं, उसी तरह वे बालक और गाएँ भी कृष्ण का विस्तारित रूप थे। तभी मनसुख ने आवाज़ लगाई।

'आओ, कान्हा। घर लौटने का समय हो गया।'

एक साल बीत गया किंतु वृंदावन में किसी को पता नहीं लगा कि वास्तव में हुआ क्या था। न मवेशियों के स्वामी और न बच्चों के माता-पिता इस सत्य को जान पाए। वे न केवल इस सत्य से अनभिज्ञ थे बल्कि वे अपने पशुओं और बच्चों से पहले से भी अधिक प्रेम करने लगे थे। कृष्ण की लीला के प्रभाव से वे प्रतिकृतियों ने अपने आसपास के लोगों में अजीब-

सा उत्साह पैदा कर दिया था। अब ब्रह्मा को एहसास हुआ कि वे, विष्णु से फिर हार गए थे। उनकी शरारत से वृंदावन में कोई खलबली नहीं मची। कृष्ण की माया के आगे उनकी माया विफल हो गई। उन्होंने सारे प्रतिरूप भंग कर दिए और सब पशुओं और बालकों को गुफा से मुक्त कर दिया। किसी को कृष्ण की लीला की भयानक तक नहीं लगी। ब्रह्मा ने मुस्कुराते हुए कृष्ण को कदम्ब का पुष्प अर्पित किया।

'सृष्टि की रचना का कार्य थका देता है, श्रीहरि। कभी-कभी मेरी इच्छा होती है कि मैं भी खेलूँ।'

'और मेरी यह इच्छा होती है कि मैं खेलना बंद कर दूँ।'

88
कृष्ण ने गोवर्धन उठाया



वृंदावन के ऊपर आकाश में रात्रि के समय जोर से बिजली चमकी। दीपावली पर गांव में टिमटिमा रहे मिट्टी के सैकड़ों दीयों पर जैसे ग्रहण लग गया। नंद ने भयभीत नेत्रों से आकाश की ओर देखा।

‘लगता है देवराज ने तुम्हारी बात सुन ली है और उन्हें क्रोध आ गया है।’

‘किंतु मैंने तो वही कहा जो सच है,’ कृष्ण ने उत्तर दिया।

‘और मैं वही कह रहा हूँ जो परंपरा है। कान्हा, सत्य और परंपरा सदा साथ नहीं रह सकते। हम वृंदावन में, हमेशा दीपावली के अगले दिन इंद्र की पूजा करते हैं। यह ग्वालों की भूमि हैं। हमारी गायों को घास के मैदानों की आवश्यकता है और घास के मैदानों को वर्षा की। और वर्षा, देवराज इंद्र करते हैं। हमारे पूर्वजों ने सदा उनसे कृपा की विनती की है और हम उसी का पालन कर रहे हैं।’

कृष्ण ने मिट्टी का एक दीपक उठाया। ‘पिताजी, यह आग क्यों जल रही है? क्या इसमें केवल अग्निदेव हैं, बाती नहीं, जो हमें प्रकाश देने के लिए खुद जलती है? मैं दैवीय शक्ति को चुनौती नहीं दे रहा किंतु हम भौतिक तत्त्वों की उपेक्षा क्यों करें?’

‘तुम मान्यताओं पर सवाल उठा रहे हो।’

‘यदि ऐसा नहीं करेंगे तो नए उत्तर कैसे मिलेंगे? अगर हम चीजों की जांच नहीं करेंगे तो विकास कैसे होगा? क्या होगा यदि हम आविष्कार न करें? यदि उच्चतर सत्य की खोज न करें?’

नंद चुप खड़े थे।

‘पिताजी, देवराज इंद्र भले वर्षा के देवता कहे जाते हैं किंतु असल में वह गोवर्धन पर्वत है, जो अपनी कृपा हमें प्रदान करता है। यह वर्षा-मेघों को जमा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका

निभाता है। यह न केवल इंद्र और हमारे बीच की कड़ी है, अपितु इसके चारागाह हमारे मवेशियों को भोजन भी प्रदान करते हैं। इस पर्वत की उपस्थिति वृंदावन के लिए वरदान है और हमें इसका सम्मान करना चाहिए। कल हम उस दूरस्थ देवता की नहीं अपितु अपने गोवर्धन की वंदना करेंगे। यही सच्चा धर्म है।'

नंद मुस्कुराए। कृष्ण के हाथ में रखे दीपक ने उन्हें नया रास्ता दिखाया था। उन्होंने जल्द ही अन्य लोगों को चलने के लिए राजी कर लिया। अगले दिन सुबह, गोवर्धन की तलहटी में भव्य अनुष्ठान का आयोजन हुआ। पूरा वृंदावन, गोवर्धन के प्रति आभार व्यक्त करने के लिए एकत्रित हो गया था। सब अपने परिवार सहित मवेशियों को लेकर वहाँ पहुँच चुके थे। पुजारी एक त्रिकोणीय वेदी का अभिषेक कर रहे थे। मालाएँ बनाई जा रही थीं और भजन गाए जा रहे थे। कृष्ण की बाँसुरी के मधुर स्वरों ने सबके भीतर नवीन उत्साह भर दिया था। वे सब उस पाषाण को मंदिर के गर्भगृह में बदलने वाले थे।

जल्द ही यज्ञ की अग्नि धधकने लगी। महिलाएँ, चावल और सिंदूर से गोवर्धन पर प्रतीक-चिह्न अंकित कर रही थीं तथा छोटी-छोटी पहाड़ियाँ बनाकर उन्हें फूलों से अलंकृत कर रही थीं। गोवर्धन को फल और अनाज के साथ दूध और मक्खन भी अर्पित किया जा रहा था। पुजारी, दीपक लेकर खड़े हो गए। आरती की लपटों से घेरे बन रहे थे। वे लपटें ऊपर जातीं और फिर नीचे आती थीं। चारों ओर मंत्रोच्चारण गूँज रहा था। तभी कृष्ण वहाँ आ गए। फिर नंद आए। बलराम। यशोदा। रोहिणी। अधिकाधिक लोगों का स्वर जुड़ने लगा और पूरा वृंदावन मानो एक दिव्य सामूहिक गान का हिस्सा बन गया।

गोवर्धन धराधर गोकुल त्राणकारक...

अचानक बादल गड़गड़ाए और गान का स्वर दब गया। कृष्ण ने आकाश की ओर दृष्टि डाली। फिर उन्होंने लोगों से कहा, 'ज़ोर से जपो!'

बादल फिर गरजे।

'और ज़ोर से!'

बादलों का शोर, सिंह की दहाड़ जैसा सुनाई दे रहा था।

'और ज़ोर से!'

ऐसा लगा जैसे आसमान डरा रहा था और फटने वाला था।

'और ज़ोर से!'

बादलों की गड़गड़ाहट इतनी तेज थी कि सबको लगा उनके कानों से खून बहने लगेगा।

'और ज़ोर से!'

अचानक बिजली गिर पड़ी। उसने गोवर्धन पर प्रहार किया था। लोग सहम गए। उनकी आवाज़ें गले में दब गईं। उनके चेहरे, बिजली गिरने से झुलस गए पर्वत की तरह आश्चर्य से

फैल गए। वे उस दरार को देख रहे थे जो पर्वत पर घाव बनकर सुलग रही थी। आसमान काला होने लगा। हर तरफ बादल उमड़ रहे थे मानो सब ओर इंद्र की पताकाएँ फहराने लगी थीं। सूरज दिखाई नहीं दे रहा था। वह भी मानो घबराकर भाग खड़ा हुआ था। सब लोग उठ गए। उनकी आँखें क्षितिज को ताक रही थीं। ऊपर से वर्षा की बूँदें गिरने लगीं तो लोगों की त्वचा थरथरा उठी। वे बहुत बड़ी बूँदें थीं। बहुत तेज। कृष्ण ने सिर हिलाया।

पहले आग, अब पानी...

वर्षा ने वृन्दावन पर जंगली सेना की तरह आक्रमण कर दिया था। देखने से लगता था मानो इंद्र ने लात मार कर द्वार खोल दिए थे और अपनी सेना को खुला छोड़ दिया था। वर्षा इतनी तेज थी कि लगा जैसे बाढ़ ही आ जाएगी। लोग छटपटा रहे थे क्योंकि उन्हें डूब जाने का डर था। वर्षा की बूँदें उनके शरीर पर कोड़ों की तरह बरस रही थीं। वर्षा ने लोगों के बनाए प्रतीक-चिह्न मिटा डाले, यज्ञ की अग्नि को बुझा दिया और प्रसाद को गीला कर दिया। सब त्राहि-त्राहि करते हुए सिर छिपाने के लिए ठिकाना ढूंढ़ने लगे। वे पेड़ों के नीचे जमा हो गए किंतु वर्षा ने वृक्षों की शाखाएँ तोड़ डालीं। वे शिलाखंडों के नीचे दुबके तो वर्षा उन्हें भी धूल में मिला दिया। गाय रंभा रही थीं और मालिकों को रौंदती हुई इधर-उधर दौड़ रही थीं। मंदिर, दलदल में बदल गया जहाँ इनसान और गंदगी एक-दूसरे में मिल गए थे। बिजली और तेज कड़कने लगी। वर्षा भी तेज हो गई। देवराज इंद्र का प्रकोप बढ़ता जा रहा था। ऐसा लगा मानो उन्होंने वर्षा को सब नष्ट करने और अनुष्ठान भंग कर देने की आज्ञा दी थी। गाँव के वृद्धजन नंद को फटकारने लगे।

'हमें देवराज को कुपित नहीं करना चाहिए था। यह बिजली नहीं है अपितु इंद्र हमें घूर रहा है। यह वज्र नहीं है अपितु क्रोध में चिल्लाता हुआ इंद्र है। यह वर्षा नहीं है अपितु इंद्र के क्रुद्ध आँसू हैं क्योंकि हमने उनका परित्याग कर दिया है।'

कृष्ण ने कहा, 'ब्रह्मांड प्राय: डराता है। किंतु हम विवेक से काम लें तो उससे निपट सकते हैं।'

'निपट सकते हैं? हमें इस प्रलय से कौन बचाएगा?'

'गोवर्धन।'

'यह टीला जो आँखें नीची किए बैठा है जबकि हम सब वर्षा में बहे जा रहे हैं?'

'गोवर्धन का अर्थ है, पालन करने वाला। पर्वत आँखें नीची नहीं करेगा अपितु सिर ऊपर उठाएगा।'

अगले क्षण किसी ने आँखें नहीं झपकीं। सब अचेत खड़े थे। गोवर्धन को ऊपर उठता देख रहे थे। उसने जैसे धरती से अपने सारे संबंध तोड़ लिए थे। वह आकाश की ओर बढ़ा मानो कोई विशाल यादव योद्धा, इंद्र की दिशा में आरोहण कर रहा हो। जैसे ही वह पर्वत, लोगों के

सिरों के ऊपर आया, सब घबरा गए। गोवर्धन अपने आप नहीं उड़ा था। कृष्ण ने उसे पंख दिए थे। उन्होंने उसे उखाड़ कर अपनी कनिष्ठ अँगुली की नोंक पर टिका लिया था।

यशोदा अविश्वास से काँप रही थीं। उन्होंने नंद को पकड़ लिया। सब लोग सन्न खड़े देख रहे थे। किसी को इतना भी होश नहीं था कि वर्षा उनकी त्वचा को छील रही थी। उन्हें होश नहीं था कि बिजली उनके इतना पास गिर रही थी। न यह कि हवा, शोर कर रही थी या वृंदावन डूबने वाला था। उनके लिए अब किसी बात का अर्थ नहीं था क्योंकि वे सब कृष्ण के चमत्कार से जुड़ चुके थे। कृष्ण ने उनके दर्द को आत्मसात कर लिया। उन्होंने सबके शरीर को गर्मी से भर दिया तथा अंतस को इतना विस्मित कर दिया कि उन्हें फिर किसी बात पर विस्मय नहीं हुआ। उन्होंने कृष्ण को कालिय के ऊपर खड़ा देखा था। अब वे कृष्ण को गोवर्धन के नीचे खड़ा देख रहे थे। कृष्ण उन्हें पास बुलाया तो वे चल पड़े। उनके अंग अब उनके नियंत्रण में नहीं थे। कृष्ण उन्हें अदृश्य डोर से खींच रहे थे और वे सब समर्पण कर चुके थे। सब लोग पहाड़ के नीचे इकट्ठा हो गए। कुछ समय पहले, क्षीरसागर के मंथन के लिए कूर्म ने मंदार पर्वत को अपनी पीठ पर धारण किया था। उस दिन कृष्ण ने वृंदावन को वर्षा से बचाने के लिए गोवर्धन पर्वत को अपनी अंगुली पर धारण किया। इंद्र ने कृष्ण के कानों में कुछ कहा जिसे सुनकर वे मुस्कुरा रहे थे।

'मुझे क्षमा करें, श्री हरि।'

'आप ऐसा क्यों करते हैं, देवराज?'

'भय! मैं हमेशा भय की स्थिति में रहता हूँ। ऐसा इसलिए कि मेरा उद्देश्य समाप्त न हो जाए। इसलिए कि लोग मेरा सम्मान करना न छोड़ दें। इसलिए कि ब्रह्मांड के लिए मैं अनावश्यक या निरर्थक न हो जाऊँ। मेरी उपेक्षा न कर दी जाए। श्री हरि, आपसे विनती है। मुझे बताइए कि डर को कैसे परास्त किया जा सकता है?'

'भय को उसी तरह धारण करना चाहिए जैसे मैंने गोवर्धन को धारण किया है। यह सरल नहीं है। आपका डर आपको नीचे दबाएगा किंतु आपको इसे यथासंभव उठाकर रखना है। इसे अपने स्वयं से दूर रखें। आरंभ में आपको इसके लिए पूरे शारीरिक बल की आवश्यकता होगी। फिर बाँहें पर्याप्त होंगी। फिर केवल एक हाथ। फिर सिर्फ पाँच अंगुलियाँ। चार। फिर केवल तीन। फिर दो। और जब अंत में आप अपनी छोटी अँगुली की नोंक से डर को रोक पाएँगे तो समझिए कि आपने डर पर विजय प्राप्त कर ली है।'

मूसलाधार वर्षा बंद हो गई थी किंतु इंद्र की आँखों से अब भी जल बरस रहा था।

'आपने मुझे प्रकाश से भर दिया है, श्री हरि। मैं भी आपको कुछ देना चाहता हूँ। मैं वृन्दावन की गायों के बीच आपको खड़ा देखकर धन्य हो गया हूँ। आपकी इस लीला के लिए मैं आपका महिमा मंडन करता हूँ। मैं आपको दो नए नाम देता हूँ। गिरिधर, अर्थात

पर्वत को धारण करने वाला तथा गोपाल, अर्थात गायों का रक्षक।’

89

कृष्ण की कुब्जा पर कृपा



‘मैं सितार का स्वर सुन रहा हूँ, कान्हा। मुझे फूलों की महक आ रही है। और मिठाई की सुगंध। क्या तुम उस महल देख रहे हो? राजसी तोरण द्वार को? वे सोने के स्तंभ। हस्तिदंत से बना बुर्ज। क्या तुम यह सब देख रहे हो?’

‘नहीं, दाऊ। मैं केवल छह नवजात शिशुओं का रुदन सुन रहा हूँ जिनकी हत्या कर दी गई थी। मुझे केवल उस शिला की गंध आ रही है जिस पर उन शिशुओं का रक्त लगा है। मैं केवल बंदीगृह की सलाखों को देख रहा हूँ जिनकी छाया हमारे माता-पिता के शरीर पर स्थायी रूप से अंकित हो चुकी है। आप राजा कंस की बात कर रहे हैं। मैं हत्यारे कंस की तलाश में हूँ।’

कृष्ण के अनगिनत कारनामे मथुरा तक पहुँच गए थे और वे कंस के कानों में भी पड़े थे। हर कोई उस चरवाहे पर चकित था जिसने गोवर्धन को अपनी अँगुली पर उठा लिया और कालिय नाग को पैर के अंगूठे से दबा दिया था। कंस को छोड़कर हर कोई चकित था। एक ओर, कंस अपने विनाशक का अंत करने में विफल रहा था और दूसरी ओर, कृष्ण की प्रतिष्ठा एक महानायक और युग पुरुष के रूप में स्थापित हो रही थी। क्रोधित और भयभीत कंस ने अपने सेनापति अक्रूर को कृष्ण और बलराम को द्वन्द्व के लिए आमंत्रित करने भेजा। मथुरा के रास्ते में, अक्रूर ने यमुना में स्नान किया और एक अत्यंत सुंदर दृश्य देखा। अक्रूर ने पानी के नीचे शेषनाग पर लेटे हुए विष्णु के दर्शन किए। उसने देखा कि विष्णु और शेषनाग के चेहरे रथ में बैठे दोनों भाइयों के चेहरे जैसे थे। नदी से बाहर आकर अक्रूर, कृष्ण और बलराम के चरणों में गिर पड़ा। वह इस बात से आनंदित था कि वह स्वयं नारायण को साथ ले जा रहा था। परंतु उसे यह देखकर आश्चर्य भी हुआ कि कंस, अपने विनाश की भविष्यवाणी को बड़ी सहजता से चुनौती दे रहा था।

वह आएगा, तो तेरा अन्त निश्चित है...

कृष्ण और बलराम अब कंस के महल के सामने खड़े थे। मथुरा नगर वहाँ एकत्रित था। सब कृष्ण के मोर पंख को निहार रहे थे। उनके नीले अंगों और उनके कमल नयन को देख रहे थे। उनकी दृष्टि कृष्ण की सुनहरी बाँसुरी पर थी। उनके मन में प्रश्न उठ रहा था कि क्या यही वह ग्रामीण बालक है जिसने इतने सारे चमत्कार किए हैं। उनका हृदय ही उत्तर भी दे रहा था कि यही ग्रामीण बालक चमत्कार कर सकता है।

'ऐसी करुणा!' बुजुर्गों ने टकटकी लगाकर कहा। 'वह पुत्रों में सर्वश्रेष्ठ होगा।'

'ऐसा बल!' पुरुषों ने प्रशंसा करते हुए कहा। 'वह रक्षकों में सर्वोच्च होगा।'

'ऐसा सौंदर्य!' स्त्रियों ने आह भरते हुए कहा। 'वह प्रेमियों में सबसे महान होगा।'

सबकी निगाहें कृष्ण पर थीं किंतु कृष्ण की दृष्टि एक कुबड़ी स्त्री पर थी। उस स्त्री को मथुरा में कुब्जा कहकर पुकारा जाता था। उसका शरीर तीन जगह से विकृत था इसलिए लोग उसे त्रिवक्रा भी कहते थे। कुब्जा, राजमहल में दासी थी जिसका काम प्रतिदिन कंस के लिए ताजा चंदन का लेप तैयार करना था। परंतु उस दिन वह चंदन का लेप, कृष्ण के लिए लाई थी। कृष्ण को देखकर वह प्रसन्नता से भर उठी किंतु वह व्याकुल भी थी। पिछली रात उसने नींद में एक दृश्य देखा जो उसे परेशान कर रहा था। उसे अब तक शोकाकुल आवाजें सुनाई दे रही थीं। वह अब भी तीन धुँधली आकृतियों को देख सकती थी। एक स्त्री और दो पुरुष। उन्होंने संन्यासियों जैसे वस्त्र पहने थे और वे नदी के किनारे खड़े थे। उनकी आँखें दुख से भरी थीं किंतु वे कुब्जा को देखकर मुस्कुरा रहे थे और उसे कुछ कहने की कोशिश कर रहे थे।

'सुंदरी!'

कुब्जा का ध्यान भंग हो गया। उसने देखा कृष्ण उसे संबोधित कर रहे थे।

'सुंदरी!'

कृष्ण पास आए और उसके हाथों से आती चंदन की सुगंध को महसूस करने लगे।

'कई लोग मेरे लिए सुगंधित प्रसाद लेकर खड़े हैं। मुझे गुलाब, गेंदा और चमेली के फूल दिखाई पड़ रहे हैं। मुझे चंपा, पद्म और केवड़े की सुगंध भी आ रही है। सब मुझे प्रसन्न करना चाहते हैं परंतु हे सुंदरी, मुझे केवल तुम्हारी सुगंध आकर्षित कर रही है।'

कुब्जा ने काँपती आवाज़ में कहा।

'तुम भी मेरा मजाक उड़ा रहे हो, कृष्ण? तुम स्वयं त्रिभंगी मुद्रा में खड़े होते हो और फिर भी मुझ त्रिवक्रा का उपहास कर रहे हो? मुझे सुंदरी कहकर बुला रहे हो जबकि संसार मुझसे दूर भागता है? मुझे सुंदरी कहते हो, जिसका विकृत शरीर दूसरों में डर और घृणा पैदा करता है? बहुत-से लोगों ने मुझ पर पत्थर तक फेंके किंतु किसी ने मुझे इतना आहत नहीं किया, जितना आज तुमने किया है। मैंने सुना था कि तुम दयालु हो किंतु यह झूठ है। सारा

ब्रह्मांड मुझे ताने मारता है तो तुम भला उनसे भिन्न कैसे हो सकते हो?'

'सुंदरी, मैं सच कहता हूँ क्योंकि मैं वह देखता हूँ जो दूसरे नहीं देख सकते। मैं तुम्हारी आत्मा को देख रहा हूँ, जो तुम्हारा तिरस्कार करने वालों के प्रति भी द्वेष नहीं रखती। तुम्हारी आत्मा, तुम्हें पीड़ा पहुँचाने वालों को भी आशीर्वाद देती है। तुम धर्म का पालन कर रही हो और बदले में तुमने किसी से कुछ नहीं माँगा। हे सुंदरी, तुम चंदन की तरह हो क्योंकि तुम्हारा आकर्षण तुम्हारे भीतर छिपा है।'

कृष्ण ने अपना पैर उठाया। कुब्जा डर के मारे पीछे हटने लगी। कृष्ण ने उससे कहा।

'क्या तुम्हें घृणा की इतनी आदत हो गई है कि तुम प्रेम को पहचान नहीं सकतीं?'

वह रुक गई। कृष्ण ने धीरे-से अपना पैर कुब्जा के पैर के पंजों पर रख दिया। फिर उन्होंने अपनी अंगुलियाँ कुब्जा की ठुड्डी के नीचे रखीं और उसे ऊपर की ओर उठाया। कुब्जा के शरीर में कम्पन होने लगा। उसकी रीढ़ में एक झटका लगा और उसे ऊपर की ओर तेज खिंचाव महसूस हुआ। शरीर की गांठें खुल रही थीं। धड़ सीधा होने लगा था। ऐंठन जब कम हुई तो कुब्जा ने देखा कि सब उसे आश्चर्य से देख रहे थे। विष्णु ने राम अवतार में एक शिला को अहल्या में बदल दिया था। और कृष्ण के रूप में, उन्होंने कुब्जा को फिर से सुंदर बना दिया। कुब्जा ने स्वयं को देखा।

'यह तुमने क्या किया?'

'मैंने तुम्हारे बाहरी स्वरूप को तुम्हारे भीतरी स्वरूप की तरह आकर्षक बना दिया है। तुम्हारा शरीर अब तुम्हारी आत्मा का दर्पण बन चुका है।'

स्त्री की आँखों से आँसू बह रहे थे। कृष्ण ने उसके हाथ से चंदन लेप की थाली ले ली।

'वृंदावन की गोपिकाओं को मेरे ऊपर पर चंदन लगाना बहुत अच्छा लगता है। क्या तुम्हें यह पसंद नहीं है?'

कुब्जा, कृष्ण की सेवा करने लगी जैसे शबरी ने राम की सेवा की थी। उसने जैसे ही कृष्ण के माथे पर चंदन का टीका लगाया, वह स्वयं दिव्य चेतना ने भर उठी।

'प्रभु, मैंने आपको पहले कहीं देखा है।'

'तुमने मुझे देखा है?'

'मैंने यह चेहरा पहले कहीं देखा है। आप तब भी इतने ही दीप्तिमान थे। मैं तब भी कुब्जा थी। हम पहले भी मिल चुके हैं। प्रभु, यह कब हुआ? किसी अन्य युग में? किसी अन्य जगह पर?'

'किसी अन्य जन्म में, कुब्जा।'

कुब्जा को फिर से वह दृश्य दिखने लगा। तीन आकृतियाँ। उसके भीतर एक अहसास, प्रकाश-स्तंभ की तरह प्रवेश कर रहा था। सब बिलकुल स्पष्ट था। बिलकुल जीवंत। वह अब

समझ गई कि स्वप्न में वह किससे मिली थी। उन तीनों ने संन्यासी जैसे वस्त्र क्यों पहने थे? उनके मन में शोक क्यों व्याप्त था? वे तीनों क्यों मुस्कुरा रहे थे?

मुझे याद आया...

वह सरयू नदी थी। स्थान, अयोध्या था। तीन आकृतियाँ राम, लक्ष्मण और सीता की थीं। वे वनवास आरंभ करने के लिए राजमहल छोड़ रहे थे। उसे सुनाई दिया कि वे क्या बोल रहे हैं।

'मंथरा, हम तुम्हें आशीर्वाद देते हैं।'

कुब्जा, कृष्ण के चरणों में गिर पड़ी। उसने उनके शरीर पर चंदन का लेप लगाया और उन्हें बार-बार चूमने लगी।

'मेरे राम। मेरे कृष्ण। अब मैं देख रही हूँ कि मेरी पीठ, मेरे पापों के बोझ से झुकी हुई थी परंतु आपने मुझे पापों से मुक्त कर दिया है।'

'मथुरा को भी पाप से मुक्त करने का समय आ चुका है।'

कुछ समय बाद, दोनों भाइयों ने शाही अखाड़े में कंस के सब पहलवानों को परास्त कर दिया। समूचे मथुरा ने देखा कि कृष्ण ने कैसे कंस को बालों से घसीटकर उसका सिर धरती पर पटका और उसे मार डाला।

90
प्रद्युम्न और दासी



मैंने तुम्हें जन्म नहीं दिया...

कृष्ण अपने ज्येष्ठ पुत्र प्रद्युम्न को पालने में झुला रहे थे। अतीत की घटनाओं का एक संग्रहित चित्र उनके मस्तिष्क में घूमने लगा। कंस के वध के बाद उसका श्वसुर जरासंध क्रोधित हो गया था और उसने सत्रह बार मथुरा पर आक्रमण किया। कृष्ण ने जब देखा कि मथुरा अब यादव वंश के रहने के लिए असुरक्षित हो गया है तो उन्होंने सामूहिक पलायन की व्यवस्था की। कृष्ण ने पश्चिमी तट पर समुद्र से बारह योजन भूमि माँगी और विश्वकर्मा को वहाँ एक गढ़ बनाने की आज्ञा दी। लहरों से घिरी शानदार द्वारवती यादवों का नया आवास बन गई। बाद में कृष्ण ने रुक्मिणी का अपहरण कर लिया और उनके भाई रुक्मि द्वारा विरोध किए जाने के बावजूद रुक्मिणी से विवाह कर लिया। उन्होंने अपने नवजात शिशु को हाथ में पकड़ा था और उसके कानों में धीरे-से कुछ कह रहे थे।

मैंने कुछ नहीं किया... यह सब परब्रह्म की लीला है... मैं तो मात्र उसकी अभिव्यक्ति हूँ...

तभी रुक्मिणी ने प्रवेश किया। अपने पति और पुत्र को देखकर वे आनंद से भर गईं। फिर कृष्ण की बात सुनकर उन्होंने दबी हँसी से कहा।

'यह आप इसे क्या सिखा रहे हैं? आप महाविष्णु हैं, जो सबकी रक्षा करते हैं।'

'हाँ, मैं हूँ किंतु जिन लोगों के पास सत्ता है उन्हें स्वयं को याद दिलाते रहना चाहिए कि यह अंतिम स्थिति नहीं है। वह शक्ति केवल उन्हें प्रदान की गई है और समय आने पर उनसे ले ली जाएगी। मैं निराकार का एक रूप हूँ और उसी की आज्ञा को पूरा करने के लिए यहाँ मौजूद हूँ।'

रुक्मिणी ने जैसे ही प्रद्युम्न को दूध पिलाने की तैयारी की, कृष्ण उसे उत्कंठा से देखने लगे।

‘इसका पेट भर दो क्योंकि तुम इसे फिर लंबे समय तक नहीं खिला पाओगी।’

रुक्मिणी ने ऊपर देखा। कृष्ण को उनके चेहरे पर डर नहीं दिखा। पीड़ा नहीं। रोष नहीं। केवल एक प्रश्न।

‘क्या होने वाला है? मुझे बताइए। आप क्या जानते हैं क्योंकि आप तो सर्वज्ञ हैं।’

‘हाँ। सर्वज्ञ। रुक्मिणी, क्या तुम्हें पता है कि सर्वज्ञ होना भी शाप है? मैं साधारण मनुष्यों की तरह आशा नहीं कर सकता। उन्हें आशा रहती है कि उनका बोझ कम हो जाएगा। यह आशा उन्हें हर दिन को जीने में सहायता करती है। मैं आशा नहीं कर सकता क्योंकि मैं पहले से सब जानता हूँ।’

‘किंतु यह हमारा पुत्र है। हमारा ज्येष्ठ पुत्र।’

‘और यह परब्रह्म की इच्छा के आगे समर्पण करके धर्म का पालन करेगा। महादेव ने भी यही किया था जब उन्होंने सती को खोया था। जब मैंने वृंदा की शुचिता को भंग किया था। जब मैंने राम बनकर सीता को निर्वासित कर दिया था। अब, कृष्ण बनकर मुझे फिर से विरक्त हो जाना चाहिए। मुझे माया के समक्ष समर्पण नहीं करना अपितु उससे संबंध स्थापित करना है। शोक मत करो, प्रिये। ध्यान रखो कि ब्रह्मांड में कुछ भी निरुद्देश्य नहीं होता। सबकुछ पूर्व निर्धारित है। यह हमारे साथ होना आवश्यक है ताकि दूसरों के लिए भी यह संभव हो सके।’

छह दिन बाद, रुक्मिणी खाली पालने के सामने खड़ी थी। शंबरासुर नाम के राक्षस को पता लग गया कि प्रद्युम्न के हाथों उसका वध होना है तो उसने शिशु का अपहरण कर लिया। समस्त द्वारवती शोक में डूब गई। यादव कुल के पुरुष, चारों ओर प्रद्युम्न को खोज रहे थे और स्त्रियाँ रुक्मिणी को सांत्वना दे रही थीं। रुक्मिणी, कृष्ण को देख रही थीं। बार-बार उनकी बात याद कर रही थीं।

यह हमारे साथ होना आवश्यक है ताकि दूसरों के लिए भी यह संभव हो सके...

उधर, शंबरासुर ने प्रद्युम्न को समुद्र में फेंक दिया। संयोग से, एक बड़ी मछली उसे निगल गई। नियति का विधान ऐसा था कि वह मछली जाल में फँस गई और फिर शंबरासुर के रसोईघर में जा पहुँची। असुर की पत्नी ने मछली का पेट काटा ही था कि वह घबराकर पीछे हट गई। मछली के पेट में से एक शिशु भूख से बिलखता हुआ निकला। उसका शोर सुनकर नौकरानी मायावती दौड़ी आई और यह दृश्य देखकर वह रसोई की दहलीज पर ही ठिठक गई। वह दूर खड़ी प्रद्युम्न को देख रही थी।

वे आँखें...

वह माथा...

वे होंठ...

वह चेहरा...

उसकी मालकिन अब भी चिल्ला रही थी। मायावती ने बच्चे को उठाकर छाती से लगा लिया।

'मैं इसे अपने पुत्र की तरह पालूँगी।'

अपने दैवीय माता-पिता से अनजान, उस बालक ने मायावती को अपनी माँ के रूप में अपना लिया। दस वर्ष का हो जाने पर भी वह इस बात के लिए हठ करता था कि उसकी माँ ही उसे नहलाए और खिलाए। वह रात में उसके पास सोता और कृष्ण के कारनामों के बारे में सुनने के लिए शोर मचाता था।

'मुझे फिर से बताओ कि कृष्ण ने कालयवन को कैसे चकमा दिया।'

'जरासंध ने मथुरा पर हमला किया किंतु कृष्ण ने एक चतुर योजना बनाई। उन्होंने पहले यह सुनिश्चित किया कि कालयवन उन्हें देख रहा है। फिर उन्होंने युद्ध के मैदान से भागने का नाटक किया। राजा ने उनका पीछा करना शुरू कर दिया और कृष्ण को रणछोड़ तक कहा, जिसका अर्थ है भगोड़ा। कृष्ण भागते हुए एक गुफा में प्रवेश कर गए और उनके पीछे कालयवन भी अंदर चला गया। वह अंदर ही था कि उसने कृष्ण को एक स्थान पर बैठे देखा। उन पर पीला वस्त्र पड़ा था। कालयवन ने लात मारी तो वस्त्र नीचे गिर गया और अंदर से कोई और प्रकट हुआ। वह कृष्ण नहीं अपितु सूर्यवंशी कुल का राजा मुचुकुंद था। देवताओं ने उसे आशीर्वाद दिया था कि वह गुफा में बिना किसी व्यवधान के सो सकेगा और जो उसे जगाएगा, वह जलकर भस्म हो जाएगा। कालयवन को एहसास हुआ कि कृष्ण ने उसे धोखा दिया था किंतु तब तक देर हो चुकी थी। मुचुकुंद ने जैसे अपनी आँखें खोलकर कालयवन को देखा, वह जलकर भस्म कर दिया।'

कई वर्ष बीत गए और प्रद्युम्न बड़ा होकर बहुत आकर्षक हो गया। एक दिन जब मायावती उसे नहला रही थी, तो बालक को भयंकर दुविधा ने जकड़ लिया। उस दिन वह प्रद्युम्न को ऐसे देख रही थी जैसे पहले कभी नहीं देखा था। वह उसे ऐसे छू रही थी जैसे पहले कभी नहीं छुआ था। वह प्रद्युम्न को गर्दन के पिछले भाग पर, पीठ के घुमाव पर, स्तनों के अग्र भाग पर, और नाभि के आसपास सहला रही थी। प्रद्युम्न बेचैन हो रहा था और उसका दिल तेज़ी से धड़क रहा था। उसके जिस्म में अजीब-सी बिजली कौंध रही थी, उसका खून गर्म होने लगा। उसने देखा मायावती की आँखें आधी बंद हो गई थीं, चेहरा काँप रहा था और मुँह से कराहने का स्वर निकलने लगा। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मायावती को प्रद्युम्न के शरीर से कोई गुप्त सुख मिल रहा था। उसकी अँगुलियाँ अब प्रद्युम्न की नाभि के नीचे सरक आई थीं। वे धीरे-धीरे उसकी जाँघों की भीतरी गहराइयों की ओर बढ़ने लगी। प्रद्युम्न ने झटके से अपने शरीर पर वस्त्र लपेट लिया। मायावती के मुख पर बनावटी मुस्कान फैल गई।

‘क्या तुम नहाओगे नहीं?’

‘मैं नहा चुका। चलो भोजन करते हैं।’

मायावती, उसके लिए चावल बनाने बैठी किंतु प्रद्युम्न ने उसका हाथ रोक लिया।

‘इसे छोड़ दो। मुझे अपने आप खाना चाहिए।’

प्रद्युम्न ने उस रात कोई कहानी की माँग भी नहीं की। वह आँखें बंद करके सोने की कोशिश कर रहा था कि अचानक सिहर उठा। मायावती, फिर उसे सहला रही थी। वह भीतर लगी अग्नि को दोबारा सुलगाने की चेष्टा कर रही थी। उसने घूमकर अपने होंठ, प्रद्युम्न के होठों पर रख दिए और उन्हें बुरी तरह चूमने लगी। प्रद्युम्न ने आँखें खोलीं और उछलकर खड़ा हो गया। फिर उसने मुट्ठी में राख भर कर मायावती के चेहरे पर उछाल दी।

‘माँ!’

वह गुस्से में था। किंतु वह हँस रही थी।

‘मैं तुम्हारी माँ नहीं हूँ।’

‘मेरी माँ नहीं हो?’

‘तुम मुझे मछली के पेट मिले थे।’

प्रद्युम्न निश्चल खड़ा रहा। उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। उसके भीतर कोहरा-सा छा गया था जिसने उसे चारों ओर से लपेट लिया था। इससे पहले कि वह कोई प्रतिक्रिया दे पाता, उसका गुस्सा फिर से जाग उठा।

‘क्या इसीलिए आप हमारे बंधन को कलंकित कर रही हैं? आपने भले ही मुझे जन्म न दिया हो किंतु आपने मुझे अपना पुत्र मानकर पाला है और इस नाते आप मेरी माँ हैं। आप मेरे साथ यह कैसे कर सकती हैं?’

‘मैं कर सकती हूँ क्योंकि मैं युगों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ। मैं अब और प्रतीक्षा नहीं कर सकती। मैं जो हूँ उसके नाते यह कर सकती हूँ। तुम जो हो, उस नाते भी!’

‘मैं कौन हूँ?’

मायावती ने प्रद्युम्न के सामने फूलों की थाली रख दी।

‘तुम यह हो।’

प्रद्युम्न देख रहा था।

‘तुम्हें ये याद हैं?’

चार फूल।

‘याद हैं?’

कमल । अशोक। आम। मल्लिका।

‘फूल, जो तुम्हें सबसे ज्यादा पसंद हैं।’

उनके रंग उसकी आँखों में घुस रहे थे।

कमल...

उनकी सुगंध उसकी आत्मा से जुड़ रही थी।

अशोक...

वे उसके वर्तमान को ध्वस्त कर रहे थे।

आम...

अतीत को पुनर्जीवित कर रहे थे।

मल्लिका...

प्रद्युम्न ने फूलों को हाथ में लेकर सूँघा।

मेरे धनुष को सुशोभित करने वाले पुष्प...

वह अपनी हथेलियों पर जमी पर्त को देख रहा था। फिर मायावती के चेहरे को ताकने लगा जो राख से काला हो गया था।

'राख ने हमें अलग किया था,' वह बोली। 'इसी ने हमें फिर मिलाया है।'

सच्चाई को ढक रही पर्त पिघल चुकी थी। मायावती की ओर बढ़ते हुए प्रद्युम्न ने उसका नाम पुकारा।

'रति।'

उसने आँखें बंद कर लीं। 'फिर से कहो।'

'रति।'

'दोबारा।'

'रति।'

'फिर से।'

प्रद्युम्न ने उसे कस कर पकड़ लिया। 'तुम मेरी रति हो।'

'और तुम मेरे कामदेव।'

उनके शरीर एक-दूसरे में घुल रहे थे। उनके आँसू प्रेम में सराबोर हो चुके थे।

'मुझे याद है, रति। महादेव ने अपना तीसरा नेत्र खोलकर मुझे भस्म कर दिया था।'

'किंतु उन्होंने मुझे वचन दिया था कि द्वापर युग में तुम्हारा पुनर्जन्म होगा और हम फिर से एक हो जाएँगे।'

मायावती, प्रद्युम्न के चारों ओर लिपट गई थी। वह भी उसमें प्रवेश कर रहा था। उनके भीतर उठ रही लपटें दोनों को जला रही थीं। कुछ क्षण बाद, वे एक-दूसरे की बाँहों में गिरकर हाँफने लगे। पसीने से लथपथ। राख में लिपटे हुए। फिर वह बोली।

'एक भविष्यवाणी सच हो गई है। दूसरी भी होनी चाहिए।'

‘कौन-सी?’

‘शंबरासुर। तुम्हें उसका वध करना होगा।’

मायावती ने प्रद्युम्न को अद्भुत महामाया विद्या प्रदान की। ब्रह्मांड में किसी को भी सम्मोहित करने की विद्या। बालक ने राक्षस को ललकारा और उसे सरलता से मार डाला।

मायावती ने कहा, ‘हमें अब तुम्हारे माता-पिता के पास लौट जाना चाहिए। तुम्हारी माँ बरसों से तुम्हारे लिए तड़प रही है। तुम्हारे पिता भी।’

‘मेरे पिता कौन हैं?’

‘वही जिनके कारनामे तुम रोज़ रात को सुनकर प्रसन्न होते हो।’

थोड़ी देर बाद प्रद्युम्न ने कृष्ण के चरण स्पर्श किए और रुक्मिणी के हाथों से मिठाई खाई। राजकुमार प्रद्युम्न के मायावती से विवाह करने के उपरांत नगर में उत्सव का माहौल था। रुक्मिणी ने नवविवाहित युगल को गले लगा लिया। उन्हें बार-बार कृष्ण के वचन याद आ रहे थे।

यह हमारे साथ होना आवश्यक है ताकि दूसरों के लिए भी यह संभव हो सके...

91
स्यमंतक की चोरी



सत्राजित सूर्य की प्रतीक्षा कर रहा था।

वह द्वारवती का कुलीन यादव और सूर्य का प्रबल भक्त था। प्रति दिन, भोर होने से पहले, वह भगवान की वंदना करने समुद्र के तट पर जाता था। उस दिन भी वह किनारे पर खड़ा होकर आकाश को देख रहा था। लहरें उसके शरीर से टकरा रही थीं मानो उसे पानी का अभिनंदन करने को कह रही हों। रेत उसके पद-चिह्नों का आलिंगन कर रही थी मानो उससे धरती का सम्मान करने को कह रही हो। वायु उसकी त्वचा को सहला रही थी मानो वायु का सम्मान करने को कह रही हो। किंतु सत्राजित उस अग्नि को निहार रहा था जो क्षितिज को सुलगा रही थी। चारों ओर लालिमा फैली थी मानो आकाश, सूर्य के मार्ग में गुलाब की पंखुड़ियाँ बिखेर रहा हो। सूर्य का वृत्त ऊपर आ रहा था। उसकी ज्वाला तेज होती जा रही थी। अंधेरा धीरे-धीरे लुप्त हो रहा था क्योंकि सूर्य की किरणें उसे जला रही थीं। चाँद झुक कर प्रस्थान कर रहा था। तारों को नींद आने लगी थी। सूर्य ने आकाश को पुन: अपने नियंत्रण में ले लिया था। वह दीप्तिमान वृत्त जैसे ही समुद्र के ऊपर आया, सत्राजित ने हाथ जोड़ लिए। उसे इसी क्षण की प्रतीक्षा थी।

पानी पर जैसे अग्नि प्रज्वलित हो गई थी।

सूर्य ने द्वारवती को प्रकाशित कर दिया। सत्राजित नाम जपने लगा। उसने आदि देवता का आह्वान किया।

तत सवितुर वृणिमहे वयं देवस्य भोजनम्...

वह रुक गया। सूर्य का रूप बदल रहा था। उसमें से धड़ उभरने लगा। उसके हाथ-पैर दिखने लगे और फिर चेहरा। सूर्यदेव, सत्राजित के सामने प्रकट हुए और उन्होंने उसका नाम पुकारा।

‘सत्राजित।’

उसकी आँखें बंद थीं। ध्वनि से उसके कान आह्लादित हो रहे थे। सूर्य के प्रकट होने से उसका हृदय तेज़ी से धड़कने लगा। उसकी आत्मा, सूर्य की कृपा पाने को तरस रही थी किंतु आँखें भगवान की ओर देखने से मना कर रही थीं। सत्राजित बार-बार कोशिश कर रहा था। वह पलकें खोलने का प्रयास करने लगा किंतु वे इस डर से बंद हो रही थीं कि सूर्य की चकाचौंध उसे अंधा न कर दे।

फिर वह सूर्य के चरणों में गिर पड़ा। ‘नाथ, मुझे क्षमा कर दीजिए। आपने मुझे प्रत्यक्ष रूप से दर्शन देने के योग्य समझा परंतु मेरी आँखें आपका तेज सहन नहीं कर पा रहीं। मुझे डर है कि जीवन को पोषण देने वाली अग्नि ही उनके विनाश का कारण न बन जाए।’

सूर्यदेव हँस पड़े। ‘संज्ञा भी पहले यही कहा करती थी। अब तुम मुझे देख सकते हो। निर्भय होकर देखो।’

सत्राजित को अचानक प्रकाश कम होने का आभास हुआ। उसने आँखें खोलीं तो देखा कि सूर्यदेव उसे देखकर मुस्कुरा रहे थे। उनका प्रकाश मंद हो चुका था और गर्मी हल्की पड़ गई थी।

‘यह आपने कैसे किया, प्रभु?’ उसने आश्चर्य से पूछा।

सूर्य ने हथेली खोली। ‘मैंने अपने गले में लटकी इस वस्तु को हटा दिया है जो मेरी आभा को बढ़ाती है।’

भगवान सूर्य उसे कुछ दिखा रहे थे। वह चमकदार लाल मणि थी, मानो ब्रह्मांड ने अपना रक्त बहाकर उसे उत्पन्न किया था। मानो सूर्य ने एक और छोटे-से सूर्य को पकड़ रखा था।

‘स्यमंतक।’

उसने सत्राजित के शरीर को आकर्षक बनाकर उसकी आत्मा को शिथिल कर दिया।

‘मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ,’ सूर्य ने कहा। ‘जो चाहो माँग लो। वह तुम्हारा हो जाएगा।’

परंतु अब सत्राजित सूर्यदेव को नहीं देख रहा था। वह उस दिव्य मणि की भव्यता से बँध चुका था।

‘हे यादव, तुम क्या चाहते हो?’

‘प्रभु, मुझे स्यमंतक चाहिए।’

सत्राजित घबरा गया। उसने अपने ही कहे हुए शब्द सुने तो उसका शरीर मानो जम गया।

क्या मैंने ईश-निन्दा कर दी?

सूर्य, उसकी ओर बढ़ रहा था। सत्राजित एक कदम पीछे हट गया।

क्या ये मुझे भस्म कर देंगे?

सूर्यदेव ने सत्राजित को मणि सौंप दी। ‘स्यमंतक एक चमत्कारी मणि है और यह आपको

प्रतिदिन आठ माप स्वर्ण प्रदान करेगी। यह कभी किसी मनुष्य के पास नहीं रही और मुझे आशा है कि यह आपके लिए सौभाग्यशाली सिद्ध होगी।'

जल्द ही, सत्राजित ने यादव परिषद् को नया उपहार दिखाया। कुछ लोग उसे हैरानी से देख रहे थे तो कुछ हर्षोल्लास के साथ। किंतु अधिकतर को ईर्ष्या हो रही थी। सत्राजित ने जैसे ही सूर्य के प्रकट होने का वर्णन समाप्त किया, कृष्ण बोले।

'आपने सचमुच दिव्य वस्तु प्राप्त की है। मेरा सुझाव है कि आप इसे यादव कोष में जमा करवा दें।'

सत्राजित की भौहें तन गईं। 'किंतु सूर्यदेव ने मणि मुझे दी है और कहा है कि मैं इसे पाकर समृद्ध हो जाऊँगा।'

'अवश्य हो जाएँगे। परंतु यदि यह मणि हमारे कोष में रहेगी तो हमारा पूरा वंश समृद्ध होगा। जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाश को संपूर्ण विश्व को प्रदान करते हैं उसी प्रकार धर्म यही है कि उनकी दी स्यमंतक मणि का जन-कल्याण के लिए उपयोग किया जाए।'

परिषद् ने हामी भरी किंतु सत्राजित ने अस्वीकृति में सिर हिला दिया।

'यह सूर्यदेव का आशीर्वाद है। उनका दिया पवित्र वचन है। मैं इसे किसी और देकर इसका अपमान नहीं कर सकता।'

मामला वहीं समाप्त हो गया परंतु कुछ दिनों बाद एक भयानक समाचार ने द्वारवती को झकझोर दिया।

'मेरा भाई प्रसेनजित, स्यमंतक मणि पहनकर जंगल में शिकार करने गया था,' सत्राजित ने रोते हुए सबको बताया। 'कई दिन हो गए हैं और वह अब तक नहीं लौटा। मुझे विश्वास है कि वह मारा गया है और किसी ने उसकी मणि चुरा ली है।'

'क्या आपको किसी पर संदेह है?' परिषद् ने पूछा।

क्रोध से उबलते सत्राजित ने संकेत करके कहा। 'कृष्ण पर!'

यादव घबरा गए। कृष्ण शांत रहे, किंतु बलराम को गुस्सा आ गया।

'सावधान, सत्राजित!' बलराम ने दहाड़ते हुए कहा। 'तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई मेरे भाई पर आरोप लगाने की?'

'क्या तुम्हारे भाई ने बचपन में माखन नहीं चुराया? क्या उसने रुक्मिणी का पिता के घर से अपहरण नहीं किया? क्या उसने अपने ही मामा कंस का वध नहीं किया? तुम्हारा भाई चोर और हत्यारा है। मैंने देखा था उस दिन यह ग्वाला कैसे मेरी मणि को ताक रहा था। यह नहीं चाहता था कि मणि मेरे पास रहे और अब इसने वही कर दिखाया है।'

कृष्ण उठ कर खड़े हो गए। वह परिषद् के सदस्यों को देख रहे और चारों ओर व्याप्त मौन को सुन रहे थे।

‘मैं देख रहा हूँ कि सत्राजित के शब्दों ने आपके हृदय को प्रभावित कर दिया है। आपको मुझ पर संदेह है और यदि मैं अग्नि परीक्षा दूँ तो भी आप मुझ पर विश्वास नहीं करेंगे। इसलिए अब एक ही उपाय है। मैं स्यमंतक मणि खोज कर लाऊँगा और स्वयं को निर्दोष सिद्ध करूँगा।’

यह मानकर कि प्रसेनजित की अनुपस्थिति में इस रहस्य की कुंजी छिपी थी, कृष्ण तुरंत जंगल के लिए रवाना हो गए। पूरा दिन बीत गया किंतु उन्हें कुछ नहीं मिला। सूरज ढलने को था कि तभी उन्हें सड़े माँस की दुर्गंध आई। वे उसी दिशा में आगे बढ़े। सहसा कृष्ण ने अपने घोड़े को रोक लिया। उनके सामने प्रसेनजित का क्षत-विक्षत तन पड़ा था। उसके अंग छिन्न-भिन्न हो गए थे और शरीर आधा खाया हुआ था। पंजों के निशान बता रहे थे कि उसे सिंह ने मारा है। कृष्ण तेज़ी से आगे दौड़े तो उन्हें उस सिंह का भी शव मिल गया। उसका पेट फटा हुआ था और रीछ के पंजों के निशान जमीन पर साफ दिखाई दे रहे थे। कृष्ण ने सिर हिलाया।

‘प्रसेनजित को खाते समय सिंह ने मणि निगल ली होगी। फिर किसी रीछ ने सिंह को मार डाला होगा और वह स्यमंतक मणि अपने साथ ले गया।’

हर तरफ खून देखकर कृष्ण ने एक गहरी श्वास छोड़ी।

‘इस मणि से न मनुष्य को लाभ हुआ और न पशु को। पवित्र वस्तु का भार सब नहीं उठा सकते। स्यमंतक को सूर्य से अलग नहीं होना चाहिए था। गलत हाथों में देवत्व भी अभिशाप बन जाता है।’

रीछ के पैरों के निशान का पीछा करते हुए कृष्ण जल्द ही उसकी माँद तक पहुँच गए। अंदर से निकल रही लाल आभा पुष्टि कर रही थी कि कृष्ण, मणि से दूर नहीं थे। उन्होंने गुफा में प्रवेश किया तो देखा कि एक सुन्दर ऋक्षकुमारी, स्यमंतक मणि हाथ में पकड़े मस्ती में झूम रही थी। वह मुग्ध थी कि इतने अँधेरे में भी मणि कैसे जगमगा रही थी। कृष्ण ने एक और कदम आगे बढ़ाया तो एक आवाज़ गूंजी।

‘रुक जाओ!’

एक विशाल रीछ उनकी ओर लपका।

‘तुम्हारे जैसे लोग मेरी बेटी का अपहरण करने के इरादे से मेरी गुफा पर आक्रमण करते रहते हैं। तुम्हारी वासना का क्या अंत नहीं है?’

‘मैं यह मणि लेने आया हूँ जो तुमने सिंह के पेट में से निकाली थी,’ कृष्ण ने उत्तर दिया। ‘यह मणि सूर्य की है और उन्हें वापस दी जानी चाहिए।’

रीछ करीब आ गया। ‘अगर तुम्हें यह मणि चाहिए तो मुझसे युद्ध करना पड़ेगा।’

गुफा के भीतर गड़गड़ाहट करने लगी। जमीन काँप रही थी। चट्टानें टूटने लगीं। चारों ओर

धूल उड़ रही थी। स्यमंतक को लेकर एक देवता और एक पशु के बीच युद्ध चल रहा था। जल्द ही भालू, रीछ अधमरा होकर गिर पड़ा।

'आप साधारण मनुष्य नहीं हैं। कौन हैं आप?'

'तुम मुझे भूल गए, जाम्बवान?' कृष्ण मुस्कुराए।

'आप मेरा नाम कैसे जानते हैं?'

'मुझे तो तुम्हारा नाम पता है। क्या तुम मेरा नाम नहीं जानते?'

जाम्बवान देखता रहा।

'क्या तुम मुझे भूल गए क्योंकि मैं अब भगवा के बजाय पीले वस्त्र धारण करता हूँ?'

रीछ चकित रह गया।

'क्या इसलिए कि मेरे सिर पर जटा-जूट की जगह मोर पंख है?'

जाम्बवान और निकट आ गया।

'अथवा इसलिए कि मेरे हाथ में धनुष के बजाय यह बाँसुरी है?'

रीछ कृष्ण के चरणों में गिर पड़ा। उसका चेहरा आनंद से चमक रहा था।

'भगवान राम! भगवान राम!'

'मैं तब राम था किंतु अब कृष्ण हूँ। जाम्बवान, तुम उन विशिष्ट लोगों में से एक हो जिन्होंने मेरे दोनों अवतार देखे हैं। युग बदल चुका है किंतु एक बात नहीं बदली। तुमने तब मेरी सहायता की थी जब मैं सीता को खोज में निकला था। तुमने अब फिर मेरी सहायता की है जब मैं स्यमंतक की खोज में हूँ। सीता, जो जल नहीं पाई। स्यमंतक, जो सदा प्रज्वलित रहती है।'

रीछ ने तुरंत मणि कृष्ण के चरणों में रख दी।

'मेरी विनती है कि मेरी भी मणि स्वीकार कर लीजिए, प्रभु। मेरी पुत्री, जाम्बवती।'

थोड़ी देर में सत्राजित भी कृष्ण के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। वह भी अपनी पुत्री सत्यभामा का विवाह कृष्ण के साथ करना चाहता था। कुछ दिन बाद, सूर्यदेव कृष्ण के सामने प्रकट हुए।

'ऐसा कुछ भी न होता यदि मैंने स्यमंतक मणि, सत्राजित को न दी होती।'

'मैं सहमत हूँ। कभी-कभी दान पर भी अंकुश लगाना आवश्यक होता है।'

'मैं तो अंकुश लगा सकता हूँ, किंतु मेरा पुत्र नहीं,' सूर्यदेव ने प्रसन्न होकर कहा। 'मेरा पुत्र कर्ण। उसकी उदारता ने बलि की प्रतिष्ठा पर भी ग्रहण लगा दिया है। वही राक्षसराज, आपने वामन अवतार में जिसका सर्वस्व ले लिया था। मुझे प्राय: कर्ण के लिए डर लगता है किंतु मैं जानता हूँ कि जब तक उसने स्वर्ण कवच और कुंडल पहने हैं, तब तक उसे कोई परास्त नहीं कर सकता।'

कृष्ण ने हामी भरी। वे दूर देख रहे थे।
मैं सुनिश्चित करूँगा कि दोनों वस्तुएँ, कर्ण से ले ली जाएँ...

92
कृष्ण और सुदामा



चावल के दाने खिलखिला रहे थे।

वह रात...

वर्षा...

पेड़...

शाखा...

पुराने पलों की स्मृति और उस कृत्य की याद दिला रहे थे। स्नेह से भरा वह कृत्य जिसने दोनों को सदा के लिए बाँध दिया था। सुदामा मुस्कुराए।

'फिर से?' थाली में अन्न के दाने डालते हुए उसकी पत्नी की भौहें तन गईं।

'चावलों में ऐसा क्या है जो आप हमेशा इन्हें देखकर मुस्कुराते हैं?'

'स्मृति। यह मुझे गुदगुदाती है।'

'आप जितना चाहे हँस लीजिए। मैं तो केवल रो सकती हूँ क्योंकि हमारे पास खाने के लिए इन चावलों के अलावा कुछ नहीं है।'

सुदामा ने स्नेह से उसका हाथ पकड़ लिया। 'हमें आभारी होना चाहिए कि हमारे लिए यह चावल तो हैं। बहुत-से ऐसे भी हैं जिनके पास इतना भी नहीं है।'

'और हम भी जल्द उनमें शामिल हो जाएँगे,' उसने बर्तन की ओर इशारा करते हुए कहा।

'हमारे पास अब इतना ही चावल बचा है। आप ज्यादा समय तक मुस्कुरा नहीं पाएँगे।'

'निराश मत होओ, प्रिये। जो सबको खिलाता है, वह हमें भी खिलाएगा।'

'मुझे तो आपके दोस्त पर अधिक विश्वास है। कृष्ण द्वारवती में अत्यंत शक्तिशाली हैं। मैंने आपसे कई बार उनसे संपर्क करने को कहा किंतु आप सुनते ही नहीं हैं।'

'तुम चाहती हो कि मैं कृष्ण के साथ अपने बंधन का लाभ उठाऊँ। मैं यह कैसे कर

सकता हूँ?'

उसने अपने पुत्र की आधी-खाली थाली पति की ओर खिसका दी। 'अगर हम अकेले होते, तो मैं आपसे कभी नहीं कहती। मैं अपनी भूख मिटाने के लिए हर रोज अपने पेट पर गीला वस्त्र बाँध लेती। किंतु मैं अपने बच्चे को भूखा नहीं देख सकती। क्या आपका धर्म, अपने मृत पुत्र का भार सह पाएगा?'

'मैं किसी से भीख नहीं माँग सकता। मित्र से भी नहीं।'

तभी उनके द्वार पर किसी की आवाज़ आई। बाहर खड़े एक भिखारी की नजर उनके चावलों पर थी। वह मुट्ठी-भर भोजन की याचना कर रहा था। स्त्री ने अपने पति की ओर देखा और कहा।

'दूसरों से रोज भीख माँगने की अपेक्षा क्या मित्र से एक बार भीख माँग लेना बेहतर नहीं है?'

आखिर, सुदामा ने द्वारवती जाने का निश्चय कर लिया। उनकी पत्नी के प्रश्न का उनके पास उत्तर नहीं था। वह आखिरकार समुद्र-तट की ओर चल पड़े। वे अपने मित्र के महल की भव्यता निहार रहे थे। नीलम-जड़ित स्फटिक से बना महल। पन्ना से चमचमाती चांदी की दीवारें। मूंगा के स्तंभ और मोती से निर्मित छतरियाँ। खिड़कियों से आती मनमोहक सुगंध। कुछ देर बाद सुदामा, कृष्ण के महल के सामने खड़े थे। सुनहरे फाटक के सामने सुदामा के चिथड़े और भी भद्दे लग रहे थे। सुदामा ने भीतर जाने के लिए पहरेदारों से विनती की। उन्होंने प्रहरियों को बताया कि वे कृष्ण के मित्र हैं। उन्होंने महर्षि सांदीपनि के आश्रम के अपने छात्र-दिनों का उल्लेख भी किया। किंतु पहरेदार खिलखिलाते रहे। वे सुदामा को भगाना चाहते थे। उन्होंने सुदामा को कारागार में बंद करने की धमकी भी दी। सुदामा ने पोटली में बँधे एक मुट्ठी चावल गठरी में से निकाले।

'ये अपने स्वामी के पास ले जाओ। वह समझ जाएँगे कि मैं कौन हूँ।'

कृष्ण भोजन करने बैठे ही थे कि एक पहरेदार चावल लेकर अंदर आया। कृष्ण ने चावल देखे तो फौरन उठ खड़े हुए। इससे पहले कि पहरेदार कुछ कह पाता, कृष्ण द्वार की ओर दौड़ पड़े। उनके वस्त्र, अस्त-व्यस्त हो गए थे। वे नंगे पैर भाग लिए। द्वार पर पहुँचकर कृष्ण ने सुदामा को गले से लगा लिया।

'सखा!'

कृष्ण ने सुदामा को बाँहों में भर लिया। उनकी आँखें ऐसे चमक रही थीं मानो कोई अनमोल वस्तु मिल गई हो।

'बहुत समय हो गया है। बहुत ज्यादा।'

इससे पहले कि सुदामा कुछ समझ पाते, कृष्ण ने उन्हें आसन पर बैठाया और सुगंधित

जल से उनके पैर धोने लगे। फिर उन्हें मोर पंख से हवा की और भोजन परोसा। सुदामा के सामने एक विशाल थाली में छप्पन तरह के व्यंजन सजाए गए थे। चावल और दूध से बने व्यंजन। फल और सब्जियाँ। मिठाई और नमकीन।

'खाओ, सखा,' कृष्ण ने मुस्कुराते हुए कहा।

सुदामा स्तब्ध रह गए।

'खाओ।'

किंतु सुदामा, कृष्ण की प्रचुरता को समझ पाने में असमर्थ थे। उन्होंने ऐसे व्यंजन कभी देखे तक नहीं थे। ऐसी सुगंध को कभी महसूस नहीं किया था। उनकी दृष्टि इधर-उधर भोजन की भूलभुलैया में से रास्ता खोजने की कोशिश कर रही थी।

'क्या हुआ?'

सुदामा ने कृष्ण की ओर देखा। 'कहाँ से शुरू करूँ?'

'जहाँ से तुम्हें अच्छा लगे।'

'और तुम्हारा भोजन?'

कृष्ण मुस्कुराए। उन्होंने सुदामा की पोटली पकड़ ली, उसे खोला और मुट्ठी में चावल लेकर चबाने लगे। उन दानों ने पुरानी स्मृति को फिर से सजीव कर दिया था। सांदीपनि के आश्रम में जब दोनों पढ़ते थे तो एक रात वे जंगल में रास्ता भटक गए थे। अचानक वर्षा होने लगी तो विवशता में दोनों एक पेड़ पर चढ़ गए। पेड़ की शाखा पर बैठे हुए उन्हें भूख लगी। सुदामा ने चावल निकाले तो कृष्ण ने भी हाथ बढ़ा दिया।

'किंतु तुम तो वृंदावन के मुखिया के पुत्र हो,' सुदामा ने कहा। 'क्या तुम यह मामूली चावल खाओगे?'

कृष्ण ने झटपट चावल के दाने हाथ में लिए और हँसते हुए कहा, 'मुझे पर ये चावल के दाने ऋण हैं, सखा। धर्म साक्षी है कि मैं इन्हें दस गुना करके तुम्हें वापस दूँगा।'

द्वारवती में अगले कुछ दिनों तक रहते हुए सुदामा को लगा मानो वे किसी कल्पना लोक में जी रहे थे। वे नर्म बिस्तर पर सोते और अच्छे-अच्छे पकवानों का आनंद लेते। तन पर रेशमी वस्त्र, गले में सोने की माला पहनते थे। सूर्योदय के समय यज्ञ और सूर्यास्त के समय हिंडोले का आनंद लेते। किंतु सुदामा को जितना आनंद आ रहा था, उतनी ही पीड़ा भी हो रही थी। उनके कानों में अपने पुत्र की खाली थाली का स्वर गूँज रहा था। पत्नी से किए वादे का उनके दिल पर बोझ बढ़ रहा था। फिर एक दिन सुदामा से सहन नहीं हुआ तो वे अपने दुख को साझा करने कृष्ण के पास गए। किंतु उनके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। उनकी जिह्वा को कुछ रोक रहा था। क्या इसका कारण उनके मित्र कृष्ण के चेहरे पर छाई मुस्कान थी? या कृष्ण की रानियों की दृष्टि? शायद वह सुदामा के ही मन की आवाज़ थी।

वह आवाज़, जिसने सुदामा को मौन कर दिया था क्योंकि उन्होंने कृष्ण के सामने बहुत-से भिखारियों को भिक्षा के लिए पंक्ति में खड़े देख लिया था। उस रात सुदामा अपने कक्ष में दर्पण देख रहे थे। उन्होंने अपने शरीर से समस्त आभूषण उतार दिए। फिर वस्त्र उतार फेंके और आँसुओं में डूब गए।

'मुझे क्षमा कर देना, प्रिये। मैं भीख नहीं माँग सकता। मैं नहीं कर सकता। मैं तुरंत द्वारवती छोड़ दूँगा।'

अगले दिन सुबह, जब सुदामा द्वारवती से निकले तो उन्होंने फिर से अपने पुराने वस्त्र पहन लिए। जैसे ही सुदामा ने महल के बाहर कदम रखा, वे पीछे मुड़े।

'क्या हुआ, सखा?' कृष्ण ने पूछा।

सुदामा की दृष्टि अपने मित्र पर टिकी थी। उनके भीतर वही शब्द उमड़ रहे थे। वे होंठ के किनारे तक आए गए।

'मैं...'

'हाँ?'

'मुझे...'

'मुझे बताओ।'

'मुझे...'

'क्या?'

सुदामा से बोला नहीं गया। 'कुछ नहीं।'

'कुछ नहीं?'

'नहीं। कुछ नहीं।'

कुछ देर में सुदामा अपने घर के निकट पहुँच गए। वापस लौटते समय वे अपने बचाव में तर्क सोचते रहे। वे बार-बार अपने मन में सोच-विचार कर रहे थे कि उन्हें अपनी पत्नी से क्या कहना है। सुदामा ने मन ही मन कई बार उसमें सुधार भी किया। फिर वे सहसा रुक गए।

मेरा घर?

सुदामा, इधर उधर देख रहे थे। आगे-पीछे। ऊपर-नीचे।

यह कैसी माया है?

सुदामा समझ गए कि उनके साथ क्या हुआ था। द्वारवती का वैभव उनकी आँखों पर अब तक छाया था। वे शायद होश में नहीं थे। उन्हें अपनी झोंपड़ी की जगह महल क्यों दिख रहा था? उनकी पत्नी मलमल के वस्त्र और रत्नादि से विभूषित क्यों दिख रही थी? उनका बेटा मिठाई खाते हुए उनकी ओर क्यों दौड़ा आ रहा था? पुत्र ने निकट आकर हाथ जोड़े।

‘आप भी खाइए, पिताजी!’

सुदामा सहम गए। वह भ्रम नहीं था। न भवन और न ही वैभव। न पुत्र की हँसी, न उनकी पत्नी के आँसू।

‘आज सुबह मैं उठी तो यह सब देखा,’ वह चकित होकर बोली। ‘सिक्के। वस्त्र। भोजन। गाय। तुम्हारे दोस्त ने हमें सबकुछ क्या, उससे भी अधिक दे दिया है।’

सुदामा के हाथ से पोटली छूट गई। वे पोटली से निकलकर बाहर गिरे चावल के दानों को देख रहे थे। उन्हें याद आया कि कृष्ण ने वर्षा में उस रात पेड़ पर बैठकर क्या कहा था। सुदामा को कृष्ण के शब्द सुनाई पड़े।

धर्म साक्षी है कि मैं इन्हें दस गुना करके तुम्हें वापस दूँगा...

फिर एक दिन द्रौपदी, कृष्ण के साथ संक्रांति मना रही थी। उनकी पतंगें आकाश में उड़ रही थीं कि तभी पतंग की डोर से कृष्ण की अँगुली कट गई। द्रौपदी ने तुरंत अपने वस्त्र का टुकड़ा फाड़कर कृष्ण के घाव पर पट्टी बाँध दी। तब कृष्ण ने द्रौपदी के माथे को स्पर्श किया।

‘सखी, मैं इन धागों का ऋणी हूँ। धर्म साक्षी है कि मैं इन्हें दस गुना करके तुम्हें वापस दूँगा।’

93

कृष्ण और नरकासुर



‘धरती ने मेरा आह्वान किया है,’ ब्रह्मा बोले।

‘धरती ने मेरा आह्वान किया है,’ विष्णु बोले।

‘धरती ने मेरा आह्वान किया है,’ शिव बोले।

त्रिदेव मौन हो गए। उन्होंने देखा कि भूलोक, गाय का रूप धारण करके उनके पास आ रही थी। उसकी आँखों में आँसू थे और दूध से भरे थन फूले हुए थे।

‘मैं धन्य हूँ कि आप तीनों ने मेरी पुकार सुनी,’ गाय ने प्रणाम किया। ‘मैं आपको एक साथ देखकर धन्य हुई क्योंकि यह विलक्षण दृश्य है। मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है किंतु मैं दुखी भी हूँ।’

‘कैसा दुख?’ ब्रह्मा ने पूछा। ‘तुम्हें क्या चाहिए?’

‘एक पुत्र! मुझे एक पुत्र प्रदान करें। केवल एक।’

‘किंतु हमने तुम्हें बहुत-सी संतान दी हैं,’ विष्णु ने उसे याद दिलाया। ‘सिर्फ पुत्र ही नहीं, अपितु पुत्रियाँ भी। पुरुष और महिलाएँ। पशु-पक्षी। पेड़-पौधे। जीवन के समस्त रूप जो तुम्हारी गोद में स्थान पाते हैं, वे सभी तो तुम्हारी संतान हैं।’

‘निस्संदेह, वे मेरी संतान हैं और वे मुझे अपनी माँ कहते हैं। मैंने उन्हें भूमि पर स्थान दिया है और वे मेरी नदियों का जल पीते हैं। मैं अपने फलों से उनका पोषण और फूलों से शृंगार करती हूँ। किंतु मुझे एक पुत्र चाहिए। एक पुत्र, जिसने मुझसे जन्म लिया हो। एक पुत्र, जिसे मैं अपना कह सकूँ।’

उसकी आँखों से अश्रु छलक रहे थे। शिव ने उसे स्नेह से सहलाया।

‘माँ की इच्छा को कौन टाल कर सकता है?’

त्रिमूर्ति ने अपनी हथेलियाँ ऊपर कीं।

‘तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो! और जिस तरह तुम उसे जीवन प्रदान करोगी, उसी तरह केवल तुम ही उसे मृत्यु दे सकोगी।’

अतीत में प्राय: ऐसा हुआ है जब ब्रह्मांड ने प्रकाश की गोद से अंधकार को प्रकट होते देखा है। ब्रह्मा ने दक्ष को उत्पन्न किया जिसने अपनी ही पुत्री को आत्म-दाह करने पर विवश कर दिया। शिव ने अंधक को जन्म दिया जिसके भीतर अपनी माँ के लिए वासना उत्पन्न हो गई थी। वही फिर से हुआ, जब पृथ्वी ने एक असुर को जन्म दिया। ब्रह्मा, विष्णु और शिव की संयुक्त कृपा से नरकासुर उत्पन्न हुआ। वह असुर इतना लोभी था कि प्रागज्योतिषपुर का शासक बनने के उपरांत उसने अनेक राज्यों पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। वह वासना से इतना भर गया कि उसने भोग-विलास के लिए हजारों स्त्रियों को बंदी बना लिया। भूलोक रूपी गाय स्वयं से उत्पन्न उस असुर रूपी महामारी को देखकर काँप रही थी। नरकासुर, मनुष्यों को आतंकित करके थक चुका था इसलिए उसने इंद्रलोक पर आक्रमण कर दिया। देवताओं ने उसका सामना किया किंतु वे बुरी तरह परास्त हुए। देवलोक के सिंहासन पर विराजमान नरकासुर, देवताओं को अपने समक्ष नतमस्तक देख रहा था। उनके शरीर बेड़ियों में जकड़े थे और उनका अभिमान चूर-चूर हो गया है। नरकासुर खड़ा हो गया और उसने इंद्र के सिंहासन को लात मार दी।

‘इस स्वर्ण सिंहासन को तुम रख सकते हो, इंद्र,’ उसने हँसते हुए कहा। ‘किंतु अब तुम राजा नहीं हो। जैसे मेरी दासियाँ, मेरे महल की देखभाल करती हैं, वैसे ही तुम मेरे इंद्रलोक की देखभाल करोगे। तुम और तुम्हारे देवता भी। मैं ऐरावत पर बैठकर प्राग्ज्योतिषपुर की ओर प्रस्थान करूँगा।’

नरकासुर ने ऐरावत के दाँत को पकड़कर उसे बुरी तरह मरोड़ दिया। ऐरावत पीड़ा से कराह उठा। नरकासुर को बेड़ियों की खनखनाहट सुनाई दी। उसने मुड़कर देखा कि देवराज इंद्र उसे घूर रहे थे।

‘मुझे तुम्हारी आँखों में आग दिखाई दे रही है जो मुझे पसंद नहीं है,’ वह गुस्से में भरकर बोला। ‘दास की दृष्टि, अपने स्वामी के चरणों से ऊपर नहीं उठनी चाहिए। नीची करो आँखें!’

परंतु देवराज इंद्र नरकासुर को घूरते रहे।

‘आँखें नीचे करो!’

इंद्र नरकासुर को ऐसे घूर रहे थे मानो असुर के शरीर में छेद कर देंगे। नरकासुर फुफकारा।

‘मैं किसी को केवल परास्त नहीं करता, इंद्र। मैं उसे नष्ट कर देता हूँ। देखो, मैं तुम्हारी इस दृष्टि को कैसे नीची करता हूँ।’

वह एक ओर चल पड़ा। देवराज उसे देख रहे थे। सब देवता भी उसे देखने लगे। नरकासुर, इंद्र की माता अदिति के सामने जाकर खड़ा हो गया।

'तुम्हारा पुत्र मेरी आज्ञा नहीं मानता। तुम्हें और मुझे मिलकर इसे सबक सिखाना होगा। अब मुझे ऐरावत के साथ, कुछ और भी छीनना पड़ेगा।'

वह और निकट आ गया। उसकी श्वास, अदिति के चेहरे से टकराकर त्वचा को जला रही थी। उसने दोनों हाथ आगे की ओर फैलाए और देवमाता के कानों से कुंडल खींच लिए। अदिति को लहूलुहान देखकर देवता चौंक पड़े। नरकासुर की अँगुलियाँ अब अदिति के शरीर को सहलाने लगीं।

'तुम अपनी युवावस्था में आकर्षक रही होगी। तुम अब वृद्ध हो गई हो अन्यथा तुम मेरे अंत:पुर की शान बढ़ातीं।'

अदिति ने खुद को सिकोड़ लिया था। असुर उन्हें सहलाता रहा जिससे उनकी त्वचा मानो सिसकने लगी थी। अदिति ने इंद्र की ओर देखा। अदिति को वे अब दिखाई पड़े। वे आँसू, जो इंद्र ने रोक रखे थे। अदिति ने वे शब्द भी सुने जो इंद्र ने अब तक कहे नहीं थे। असुर ने उसे फिर ताना मारा।

'कायर राजा। कायर पुत्र। क्या तुम अब भी मेरी आँखों में देख सकते हो?'

देवराज मानो निष्क्रिय हो चुके थे। अपलक। मौन। नि:श्वास। फिर इंद्र धीरे-से आँखें झुका लीं। इससे पहले कि नरकासुर कुछ कह पाता, वायुदेव गरजे।

'धिक्कार है तुम पर! क्या इतना पर्याप्त नहीं था कि तुमने हमें परास्त कर दिया जो अब तुम एक स्त्री का अपमान कर रहे हो?'

असुर, वायुदेव की ओर लपका और उनका छत्र छीन लिया।

'तुम दास कभी कुछ नहीं सीखते? तुम जितना अधिक दुस्साहस करोगे, उतनी ही अधिक चीजें खोते जाओगे। मैं अदिति के कुंडल और इंद्र के ऐरावत हाथी समेत अब तुम्हारा छत्र भी साथ ले जाऊँगा। और कौन मेरा तिरस्कार करने का साहस रखता है?'

सब देवता चुप रहे किंतु वायुदेव बोले।

'तुम भूलोक के पुत्र हो। पृथ्वी माँ के पुत्र। उन्हें यह सुनकर कैसा लगेगा कि तुमने एक दूसरी माँ के साथ दुर्व्यवहार किया है?'

नरकासुर की आवाज़ अजीब-सी हो गई। 'वह कुछ नहीं कहेगी क्योंकि उसने मुझे पहले ही त्याग दिया था।'

असुर के वहाँ से जाते ही, इंद्र शीघ्र ब्रह्मा के पास पहुँचे।

'मेरी माँ लहूलुहान हैं और मैं भी। हम नरकासुर का वध कैसे करें?'

'द्वारवती जाओ,' उन्होंने सुझाव दिया।

देवराज की दुर्दशा सुनकर, कृष्ण की भुजाएँ प्रकट हो गईं। उनका शारंग धनुष और सुदर्शन चक्र भी आ गया। उनकी कौमोदकी गदा और पाञ्चजन्य शंख भी प्रकट हो गए। कृष्ण को दिव्य योद्धा के रूप में देखकर इंद्र ने उन्हें प्रणाम किया।

'आप युद्ध करेंगे?'

'अवश्य करूँगा, क्योंकि उसने दो माताओं का अपमान किया है,' कृष्ण ने उत्तर दिया। 'उसकी अपनी माँ, पृथ्वी। और तुम्हारी माता अदिति, जिन्होंने मुझे भी वामन रूप में जन्म दिया था। इस युग में मेरी दो माताएँ हैं। इसलिए मैं उसे क्षमा नहीं कर सकता।'

'किंतु देवी ने असुर को कैसे जन्म दे दिया?'

'उसी तरह जैसे कुछ असुर, देवताओं से अधिक पवित्र होते हैं।'

सत्यभामा ने भी अपने पति के साथ जाने की इच्छा व्यक्त की।

'प्रभु, मैंने आपके पराक्रम के अनेक किस्से सुने हैं। क्या मैं आपके साथ चल सकती हूँ ताकि देख सकूँ कि आप उस राक्षस को कैसे परास्त करते हैं?'

'आपको अवश्य चलना चाहिए,' कृष्ण ने हाथ बढ़ाया। 'अन्यथा मैं अकेला उसे कभी नहीं मार पाऊँगा।'

वे जैसे ही चलाने को तैयार हुए, इंद्र ने कहा।

'मुझे कई बार लगता है कि हमें अमृत को असुरों में भी बाँट देना चाहिए था। संभवत:, क्षीरसागर से प्राप्त अमृत ही हमारे बीच शांति स्थापित कर पाता। क्या असुरों के साथ हमारा विरोध कभी समाप्त नहीं होगा?'

कृष्ण मुस्कुराए। 'शांति, ठहराव का कारण भी बन सकती है, देवराज। जड़ता की स्थिति से किसी का भला नहीं होता। कभी-कभी संघर्ष करना ही धर्म कहलाता है। थोड़ा-सा संघर्ष, ब्रह्मांड को क्रियाशील बना देता है। परिवर्तन ही हमें विकास की ओर अग्रसर करता है।'

जल्द ही, कृष्ण और सत्यभामा, प्रागज्योतिषपुर पहुँच गए। नरकासुर के पाँच सिर वाले सेनापति, मुरासुर ने पूरे नगर में घुसपैठ रोकने के लिए खूँटे गाढ़ रखे थे। परंतु कृष्ण के चक्र ने सबको काट डाला। उन्होंने चक्र से मुरासुर और उसके पुत्रों के सिर भी काट दिए क्योंकि उन्होंने कृष्ण पर आक्रमण करने की कोशिश की थी। कृष्ण और सत्यभामा अब नरकासुर के सामने खड़े थे। उस युद्ध का अंत दिखाई नहीं देता था। असुर, कृष्ण के समान शक्तिशाली सिद्ध हो रहा था और उनके सभी अस्त्र-शस्त्रों का डटकर सामना कर रहा था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव के आशीर्वाद ने नरकासुर पर अभेद्यता की पर्त चढ़ा दी थी। नरकासुर ने त्रिशूल फेंका तो उसके प्रहार से कृष्ण मूर्च्छित हो गए। यह देखकर सत्यभामा का खून खौल उठा। शारंग धनुष हाथ में लेकर उन्होंने बाण चलाया और

नरकासुर के शरीर के दो टुकड़े कर दिए। यह दृश्य देखकर सत्यभामा स्वयं भी चकित रह गईं। तभी आकाशवाणी हुई।

'भविष्यवाणी सत्य हो गई है। नरकासुर का अपनी माता के हाथों मरना नियत था। भूदेवी के अवतार के रूप में पैदा हुईं सत्यभामा ने उस शर्त को पूरा कर दिया है।'

सत्यभामा ने अपने पुत्र की ओर देखा। उसने हँसते हुए अंतिम श्वास ली और बोला, 'माँ, जीवित रहते हुए तो हम नहीं मिल पाए किंतु मृत्यु के साथ हमारा संबंध बन गया है।'

कृष्ण ने आँखें खोलीं और सत्यभामा को देखकर सिर हिलाया।

'मैंने तुमसे कहा था कि तुम्हारे बिना उसे परास्त नहीं किया जा सकता।'

नरकासुर के हरम में प्रवेश करने पर उन्होंने स्त्रियों का एक समूह देखा। वे डर के मारे उठ खड़ी हुईं और उन्हें देखकर अन्य स्त्रियाँ भी उठ गईं। फिर कुछ और। कुछ और। थोड़ी और। ढेर सारी। सत्यभामा ने उन्हें गिनना शुरू किया।

सोलह हजार एक सौ...

वे सब नरकासुर की उप-पत्नियाँ थीं। रानियाँ और राजकुमारियाँ। कन्याएँ और दासियाँ। अप्सराएँ और गोपिकाएँ। यक्षिणियाँ और गणिकाएँ। काँपते हुए शरीर और मृत चेहरे। मृत आँखें। सत्यभामा उनकी आँखों झाँक रही थीं।

एक पुरुष द्वारा अपवित्र की गईं हजारों स्त्रियाँ...

कृष्ण ने उन्हें संबोधित किया।

'नरकासुर मारा गया। आप सब वापस लौटने के लिए स्वतंत्र हैं।'

'कहाँ लौटने के लिए?' एक ने पूछा।

'अपने-अपने घरों को। अपने पिता और भाइयों के पास। अपने पतियों और पुत्रों के पास।'

'वे हमें स्वीकार ही नहीं करेंगे,' दूसरी ने कहा। 'हमें एक असुर ने उप-पत्नी बनाकर रखा हुआ था। उसने वर्षों तक हमारे साथ दुष्कर्म किया। हमारे परिवारों ने हमारा अंतिम संस्कार बहुत पहले ही कर दिया होगा।'

कृष्ण ने कहा, 'राक्षस ने तुम्हारे तन को भले ही दूषित कर दिया हो किंतु क्या वह तुम्हारी आत्मा को दूषित कर सकता है?'

'आत्मा?' वे हँसी। 'कौन-सा पुरुष, स्त्री के तन के पार जाकर उसकी आत्मा में झाँकता है? यहाँ तक कि राम ने भी सीता को अपवित्र मानकर उन्हें राज्य से निर्वासित कर दिया था। हमारे परिजन यह जानते हुए भी कि हम अशुद्ध हैं, हमें स्वीकार क्यों करेंगे?'

कृष्ण चुप खड़े सुन रहे थे कि स्त्रियाँ क्या पूछ रही हैं। उन्हें ध्यान आया कि आदि नारी शतरूपा ने सृष्टि के प्रारंभ में क्या पूछा था।

यदि सब उन्हें आहत करेंगे तो स्वस्थ कौन करेगा?

कृष्ण ने उत्तर दिया, 'राम ने सीता को स्वीकार नहीं किया किंतु कृष्ण तुम सबको स्वीकार करेगा।'

उन सबने सुना। सत्यभामा ने भी सुना।

'अब से तुम सब मेरी पत्नियाँ बनकर मेरे साथ द्वारवती में रहोगी।'

यह सुनकर स्त्रियाँ घबरा गईं मानो किसी ने पत्थर के टुकड़ों में प्राण फूँक दिए हों। उनकी आँखें अचानक झिलमिलाने लगीं। दिल धड़कने लगे। वे आश्चर्यचकित होकर सोच रही थीं क्या भाग्य इस तरह पलट सकता है और क्या उप-पत्नियों के लिए किसी की पत्नी बन पाना संभव है। फिर उनके मन में एक और प्रश्न उठा।

'किंतु हम तो हजारों हैं,' उनमें से एक ने कहा। 'आप अकेले कैसे...'

वह चकित रह गई। वह देख रही थीं। सब देख रही थीं।

कृष्ण विभक्त होने लगे...

कृष्ण, अनेक रूपों में विभक्त हो रहे थे। एक कोशिका की तरह, जो खुद को विभक्त करके कई गुना बन रही थी। कृष्ण का शरीर कई गुना शरीरों में विभाजित हो रहा था। उनके अपने प्रतिरूप चारों ओर दिखाई दे रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो ब्रह्मांड एक विशाल बहुरूपदर्शक था जिसमें अनंत कृष्ण प्रतिबिंबित हो रहे थे। ब्रह्मांड मंत्रमुग्ध होकर देखता रहा। वह देख रहा था कैसे विष्णु स्वयं ही अपना प्रजनन कर रहे थे। जिस तरह से उन्होंने अनेक अवतारों को उत्पन्न किया था, उसी तरह वे खुद के अनेक रूप बना रहे थे। अब प्रत्येक स्त्री के निकट एक-एक कृष्ण खड़े उसे पूर्ण निष्ठा का वचन दे रहे थे। संपूर्ण प्रेम का वचन। ब्रह्मांड आह्लादित था। उसने बहुरूप कृष्ण को प्रणाम किया। वह साक्षी था कि कृष्ण, सचमुच क्यों सर्वव्यापी कहलाते हैं। सत्यभामा ने एक बार फिर गिनती की।

सोलह हजार एक सौ कृष्ण...

वह मुस्कुरा रही थीं।

हजारों स्त्रियों ने एक पुरुष को अपना देवता मान लिया था...

94
पारिजात के लिए युद्ध



अदिति के बाएँ कान का कुंडल झिलमिला रहा था।

‘और यह रहा दाहिने कान का,’ कृष्ण ने उन्हें कुंडल देते हुए कहा। ‘दोनों के साथ में सुशोभित होने पर ही सद्भाव स्थापित होता है।’

अदिति ने जैसे ही कुंडल पहने, उनके कानों से खून बहना बंद हो गया। देवताओं ने जय-जयकार की। ढोल-नगाड़े गूंज उठे। तुरही बजी। इंद्र ने कृष्ण के चरण चूम लिए। कृष्ण न केवल इंद्र की माता के कुंडल अपितु ऐरावत हाथी और वायुदेव का छत्र भी वापस ले आए थे। संसार को एक और असुर से मुक्ति मिल गई थी और देवराज अपने सिंहासन पर फिर से विराजमान हो चुके थे। अदिति ने सत्यभामा के मस्तक को स्पर्श किया।

‘तुमने इंद्रलोक को बचा लिया। उस असुर के हाथों मुरझाने से बचा लिया। मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि आयु बढ़ने पर भी तुम्हारा तेज कभी क्षीण नहीं होगा।’

गंधर्व राग गा रहे थे। अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं। वे एक-दूसरे पर स्वर्णिम धूल डाल रहे थे। इंद्राणी फूलों की माला लिए कृष्ण और सत्यभामा के सामने आईं। उन्होंने उनके सिर पर गुलाब के फूल और चरणों में गेंदे के फूल अर्पित किए। गर्दन के चारों ओर मधुचूष तथा कलाई पर चमेली के पुष्प बाँधे।

‘मैंने इतने आकर्षक फूल कभी नहीं देखे,’ सत्यभामा ने कहा। ‘मैं आपके उद्यान में टहलना चाहती हूँ।’

कुछ देर बाद, सत्यभामा और कृष्ण प्रसिद्ध नंदनवन में टहल रहे थे। उन्होंने पानी के झरने देखे। रंग-बिरंगी मणियों की तरह झिलमिलाते फूल। पक्षियों का मधुर कलरव। हरे रंग की छटा बिखेरती वनस्पति। अचानक, सत्यभामा रुक गईं। उनके चारों ओर एक अलग सुगंध थी मानो वह उन्हीं की प्रतीक्षा कर रही थी। ऐसी सुगंध जिसे उन्होंने पहले कभी

महसूस नहीं किया था। उसने किसी प्रेमी की भांति सत्यभामा को अपने पाश में जकड़ लिया। उनकी हर कोशिका प्रभावित हो चुकी थी। उस सुगंध ने सत्यभामा के भीतर एक अजीब-सी इच्छा जगा दी। वह जानना चाहती थीं कि वह सुगंध कहाँ से आ रही थी।

'सत्यभामा,' कृष्ण ने पुकारा।

किंतु उन्होंने कुछ नहीं सुना। वे केवल सुगंध के प्रति आकर्षित थीं। सुगंध उन्हें खींच रही थी। सत्यभामा उसके पीछे चलने लगीं। वे सुगंधित जादू की जड़ का पता लगाने के लिए व्याकुल थीं। तभी उन्हें कुछ दिखा। उद्यान के बीच में एक ऊँचा वृक्ष। उसकी छाल स्वर्ण जैसी और पत्ते ताँबे जैसे थे। किंतु सत्यभामा उसके फूलों को निहार रही थीं। छह नुकीली पंखुड़ियों वाले सफेद फूल मानो उसमें तारा मंडल का वास था। फूलों के बीच में नारंगी छींटा जैसे हर तारा एक सूरज को अपने भीतर छिपाए बैठा था।

'यह कौन-सा वृक्ष है?' सत्यभामा ने पूछा।

'पारिजात,' कृष्ण ने उत्तर दिया। 'समुद्र-मंथन के दौरान क्षीरसागर से निकले रत्नों में से एक।'

'क्षीरसागर से?'

'हाँ।'

सत्यभामा, मंत्रमुग्ध होकर वृक्ष के पास गईं। वे सोचने लगीं कि अवश्य ही उस वृक्ष के फूलों ने क्षीरसागर का सारा दूध पी लिया होगा तभी वे इतने सफेद थे। या उन्होंने अमृत की बूंदों का सेवन किया होगा जिसके कारण वे अमृतमय लग रहे थे। वृक्ष के नीचे चारों ओर फूलों का ढेर लगा था। जैसे ही सत्यभामा ने उन्हें उठाकर सूँघा, उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। उसकी सुगंध उनके हृदय को जैसे बींध दिया था। उनके अंतस को आनंद से भर दिया था। उस सुगंध ने सत्यभामा की आत्मा में विलीन होकर ऐसी प्रतिक्रिया जगाई कि सत्यभामा को लगा मानो मृत्यु के बाद उनका फिर से जन्म हुआ हो। उन्हें आसपास की सब वस्तुएँ तुच्छ लगने लगीं। वह उद्यान। इंद्र। देवतागण। यहाँ तक कि कृष्ण भी। सत्यभामा का पूरा संसार, उन मुट्ठी-भर पारिजात फूलों में सिमट गया था।

'ये तो अलौकिक हैं,' सत्यभामा ने हर्षातिरेक से कहा।

'निस्संदेह!' कृष्ण ने हामी भरी। 'ये केवल यहीं मिलते हैं, इंद्र के नंदन वन में।'

यह सुनकर सत्यभामा पर छाया जादू भंग हो गया।

इंद्र...

उन्होंने अपने पति की ओर ऐसे देखा जैसे अचानक उनके शरीर को कहीं से नोंच लिया गया हो। उनका उल्लास क्रोध में बदल गया।

'आपने इंद्र के लिए नरकासुर से युद्ध किया। मैंने उस असुर का वध किया और तब इंद्र

देवराज बन पाए। और फिर भी, उनकी पत्नी ने हमारा स्वागत पारिजात से न करके साधारण फूलों से किया?'

कृष्ण चुप खड़े रहे किंतु सत्यभामा की आँखें लाल हो गई थीं। उन्होंने सिर से गुलाब और गले से मधुचूष उतार फेंके। कलाइयों से चमेली और पैरों से गेंदे के फूल भी नोंच डाले।

'पारिजात ले लो,' सत्यभामा ने क्रोधपूर्वक कहा। 'हम इसे द्वारवती में रोपेंगे। इंद्राणी ने हमें नीचा दिखाया है। हम इस दुर्व्यवहार को नजरअंदाज नहीं कर सकते।'

'क्या यही एकमात्र कारण है?' कृष्ण ने पूछा। 'या इसलिए कि तुम पारिजात के प्रति आकर्षित हो गई हो?'

'यह इस रत्न के लिए उपयुक्त स्थान नहीं है।'

'तुम्हारे पिता ने एक बार मुझ पर मणि चुराने का आरोप लगाया था। अब तुम चाहती हो कि मैं वृक्ष चुरा लूँ?'

'इंद्राणी ने हमारे साथ जिस तरह का व्यवहार किया है, उसका विरोध किसी भी देवता ने नहीं किया। वे ऐसी चमत्कारिक वस्तु के योग्य ही नहीं हैं।'

'यदि तुम कहती हो तो ठीक है।'

कृष्ण ने तना पकड़कर पूरा वृक्ष उखाड़ दिया। उन्होंने जैसे ही उसे कंधे पर रखा, इंद्राणी की दासियाँ डर के मारे दौड़ती हुई आईं।

'हम विनती करते हैं कि आप पारिजात मत ले जाइए। रानी को यह विशेष रूप से प्रिय है।'

'यह वृक्ष क्षीरसागर से निकला है,' सत्यभामा ने उत्तर दिया। 'इसलिए समूचे ब्रह्मांड का इस पर अधिकार है। इन्द्राणी को इसे अपने उद्यान में छिपाकर नहीं रखना चाहिए।'

दासियाँ, इंद्राणी को सचेत करने दौड़ीं। इंद्राणी ने अपने पति को सूचित किया। जल्द ही, इंद्र अपना वज्र लहराते हुए कृष्ण का मार्ग रोककर खड़े हो गए।

'कृतघ्न दुष्ट!' सत्यभामा ने चिढ़ कर कहा। 'समुद्र ने पारिजात दिया और पारिजात ने सुगंध प्रदान की किंतु तुम किसी को कुछ नहीं देना चाहते। इसी कारण असुर तुम पर बार-बार आक्रमण करते हैं। क्या अब तुम हमसे युद्ध करोगे, जिन्होंने तुम्हें फिर से देवराज बनाया है?'

'चूँकि मैं फिर से देवराज बन गया हूँ इसलिए मुझे युद्ध करना ही होगा। मेरे लोक से कोई पवित्र वस्तु ले जाने से पहले आपको मुझे परास्त करना पड़ेगा। धरती का नश्वर संसार, पारिजात को धारण करने के योग्य नहीं है। पहले नरकासुर ने हमें लूटा और अब आप भी वही कर रहे हैं। उस असुर का वध करके आप मेरी संपदा के अधिकारी नहीं हो जाते!'

इंद्र ने वज्र फेंका तो कृष्ण ने सुदर्शन चक्र छोड़ दिया। दोनों अस्त्र हवा को चीरते हुए एक-

दूसरे की ओर लपके। यदि वे टकरा जाते तो परिणाम प्रलय से कम नहीं होता। जैसे ही वे करीब आए, ब्रह्मांड डर से काँपने लगा।

निकट।

और निकट।

बहुत निकट।

फिर एक बिंदु के बाद वे एक-दूसरे को पार कर आगे निकल गए। कृष्ण ने वज्र को रोक लिया किंतु इंद्र भयभीत होकर चिल्लाने लगे। सुदर्शन चक्र उनका पीछा कर रहा था। वे शरण लेने के लिए छटपटा रहे थे। इधर-उधर छिप रहे थे। वे बीच-बीच में पीछे देखते तो पता लगता कि कृष्ण का चक्र शिकारी की भांति उनके सिर पर ही मँडरा रहा था। सत्यभामा हँस पड़ी।

'देख लो, देवराज। तुम जिस लोक को बचाने की कोशिश कर रहे थे, वही तुम्हारा बचाव नहीं कर पा रहा।'

इंद्राणी, हाथ जोड़कर चक्र के सामने गिर पड़ी।

'हमें क्षमा कर दो! हमने नासमझी में महाविष्णु का विरोध करने की भूल कर दी। उन्हें किसी वस्तु को देने से मना करना हमारी बड़ी मूर्खता थी जबकि पूरा ब्रह्मांड उनके भीतर बसता है। पारिजात जैसे रत्नों ने हमें श्रेष्ठ तो बनाया है किंतु साथ ही हमें बाँध भी दिया है। हम निरंतर भयभीत रहते हैं कि कहीं वे हमसे छिन न जाएँ। शायद इसी माया ने हमारी आत्मा को दूषित कर दिया है। आप पारिजात ले जाइए और उसे समुद्र के पास खिलने दीजिए जहाँ से वह निकला था। हमारे पास चिंता करने के लिए एक रत्न कम हो जाएगा।'

कृष्ण और सत्यभामा पारिजात लेकर द्वारवती लौट आए। यादव, उन दिव्य फूलों को देखने के लिए इकट्ठा हुए थे। रुक्मिणी की आश्चर्य से भरी आँखें देखकर कृष्ण ने सत्यभामा को निर्देश दिया।

'इस वृक्ष को ऐसी जगह लगाओ जहाँ तुम दोनों इसका आनंद उठा सको।'



दुर्भाग्य से, पारिजात की भव्यता ने सत्यभामा का विवेक हर लिया था। इंद्र की तरह, उनकी भी पेड़ को किसी के साथ साझा करने की इच्छा नहीं थी। उनके और रुक्मिणी के घर के बीच एक दीवार थी। सत्यभामा ने एक कुटिल योजना बनाई। उन्होंने पारिजात को रुक्मिणी के घर में कुछ इस तरह रोपा कि उसकी शाखाएँ सत्यभामा के घर में लटक जाएँ। परिणाम यह हुआ कि पेड़ को सींचने का काम रुक्मिणी करती थी किंतु फूलों की सुगंध सत्यभामा को मिलती थी। रुक्मिणी ने कृष्ण के सामने विरोध प्रकट किया। रुक्मिणी ने अपना दुख कृष्ण को सुनाया तो कृष्ण ने ध्यान से पारिजात की ओर देखा।

मानवता, एक बार फिर देवत्व से हार गई है...

पहले मणि...

अब यह वृक्ष...

रुक्मिणी ने कहा, 'हम दोनों आपकी पत्नियाँ हैं इसलिए आपको न्याय करना चाहिए। मैं आपको याद दिलाना चाहती हूँ कि आपने देवमाता अदिति से क्या कहा था। दोनों के सुशोभित होने पर ही सद्भाव स्थापित होता है। आपका धर्म क्या कहता है?'

कृष्ण ने पलटकर देखा।

'मेरा धर्म सदा कहता है कि संतुलन बनाए रखना चाहिए,' कृष्ण ने कहा और रुक्मिणी को गले लगा लिया। 'मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि पारिजात में केवल तभी फूल खिलेंगे जब हम साथ होंगे। सत्यभामा को फूलों का आनंद लेने दो, किंतु जब भी वह इस वृक्ष पर फूल खिलते देखेगी तो वह समझ जाएगी कि मैं तुम्हारे साथ हूँ।'

95
नकली विष्णु



धरती के पूर्वी किनारों पर पुंड्र नाम का एक क्षेत्र था, जहाँ पौंड्रक का शासन था। वह जरासंध से उतना ही प्रेम करता था जितनी उसे कृष्ण से घृणा थी। कृष्ण के पराक्रम और द्वारवती के बढ़ते सौभाग्य के चलते वर्षों से पौंड्रक के भीतर ईर्ष्या का लावा दहक रहा था। और वह लावा कृष्ण के कारण जरासंध की मृत्यु होने के उपरांत फूट पड़ा। जरासंध की मृत्यु के चलते पौंड्रक ने एक मित्र के साथ-साथ एक शक्तिशाली सहयोगी भी खो दिया था। वह क्रोधित हो गया। उसके चारों ओर उपस्थित चाटुकार क्रोध की लपटों को भड़काने लगे।

'कृष्ण कुछ नहीं है, एक साधारण चोर है। उसने स्यमंतक मणि चुराई थी। फिर उसने पारिजात वृक्ष चुराया। और अब वह आपका यश चुरा रहा है।'

'तुम्हारा क्या आशय है?'

'उसने सबको यह विश्वास दिला दिया है कि वह विष्णु का अवतार है जबकि विष्णु के अवतार तो आप हैं। आपने ही विष्णु के मानवीय रूप में पृथ्वी पर शासन करने के लिए जन्म लिया है।'

'क्या सचमुच?' राजा पौंड्रक ने आईने में अपना प्रतिबिंब देखा।

'बिलकुल। आपका व्यवहार दिव्य है। समय आ गया है कि सब लोग जान लें कि कृष्ण ढोंगी है और आप ही हैं जिनकी वास्तव में पूजा होनी चाहिए।'

दुर्भाग्य से, बार-बार बोले गए इस झूठ ने सत्य का चोला धारण कर लिया। इन शब्दों को सुनकर पौंड्रक को भ्रम हो गया कि वह वास्तव में विष्णु का अवतार है। उसके चारों ओर व्याप्त शोर ने उसके मस्तिष्क में अन्य सब तथ्यों को दबा दिया। उसे दिमाग में हजारों आवाजें विस्मय में केवल यही बोलती सुनाई दे रही थीं।

तुम विष्णु हो...
तुम विष्णु हो...
तुम विष्णु हो...

जल्द ही, उसे केवल एक आवाज़ सुनाई देने लगी। उसकी अपनी आवाज़।

मैं विष्णु हूँ...
मैं विष्णु हूँ...
मैं विष्णु हूँ...

पौंड्रक ने अपना नाम भी बदलकर वासुदेव रख लिया और एक दिन कृष्ण के पास संदेश भेजा।

'मैं, पुंड्र का राजा यह घोषणा करता हूँ कि मैं ही सर्वशक्तिमान विष्णु हूँ,' पौंड्रक के दूत ने संदेश पढ़ना शुरू किया। 'मैं वह देवता हूँ जिसने भूलोक को आशीर्वाद देने के लिए जन्म लिया लिया है। तुम, वृन्दावन के एक ग्वाले हो जिसने स्वयं को वासुदेव के रूप स्थापित किया है और तुम झूठ का प्रचार कर रहे हो। मैं तुम्हें इस उपाधि को छोड़ने और मेरे पवित्र प्रतीकों को लौटाने की आज्ञा देता हूँ, जिन्हें तुमने हड़प लिया है। सुदर्शन चक्र। कौमोदकी गदा। शारंग धनुष और पाञ्चजन्य शंख। मेरे समक्ष समर्पण कर दो तो मैं तुम्हें क्षमा कर सकता हूँ। और यदि तुमने यह छल जारी रखा तो तुम्हें मेरे साथ युद्ध करना पड़ेगा। इसलिए, बुद्धिमानी से निर्णय लेना।'

कृष्ण मुस्कुराए। फिर वे हँसे। और अंत में उन्होंने सिर हिलाया।

'अपने राजा से कहना कि मैं युद्ध करूँगा।'

'किंतु ऐसा करके आप अपनी मृत्यु को आमंत्रित कर रहे हैं,' दूत ने कहा।

'यदि वे वास्तव में विष्णु हैं, तो ऐसी मृत्यु मुझे प्राणों से भी प्रिय होगी।'

एक सप्ताह बाद पौंड्रक, अपनी सेना सहित द्वारवती की ओर बढ़ने लगा। उसके सैनिक देख रहे थे कि कैसे उनके राजा ने विष्णु का रूप धारण कर लिया था। उनमें से किसी ने पौंड्रक को यह नहीं बताया कि वह दरअसल, हास्यास्पद दिख रहा था। उसने पूरे शरीर पर नीला रंग मल लिया और पीले रंग के वस्त्र धारण कर लिए। चतुर्भुज देवता जैसा दिखने के लिए उसने कमर के पीछे लकड़ी की दो भुजाएँ बनवाकर लटका लीं। उसके वक्ष पर एक नकली श्रीवत्स का चिह्न था और गले में नकली कौस्तुभ मणि लटकी थी। उसने खुद ही कमल की माला पहन ली और अपने रथ के ऊपर गरुड़-ध्वज फहरा लिया। ब्रह्मांड, इस रोचक दृश्य को देखकर चकित था। एक नकली देवता, एक सच्चे देवता को अपमानित करने चला था।

कृष्ण की सेना के सामने खड़े होकर पौंड्रक मुस्कुराया ।

मेरी महिमा देखकर वे तट को छोड़कर भाग जाएँगे...

किंतु वे सब हंस रहे थे। वे संकेत करते हुए मुँह दबा कर हँस रहे थे। हँसते-हँसते कुछ की आँखों से आँसू बहने लगे। कोई जमीन पर लोट रहा था तो कोई मुँह बिचकाए खड़ा था। कृष्ण भी अत्यंत हर्षित थे।

'पौंड्रक, तुम्हारा श्रृंगार तुम्हें सर्वशक्तिमान नहीं बना सकता। भगवान ने इनसानों को बनाया है किंतु इनसान के कहने से तुम स्वयं को ईश्वर समझ रहे हो। उन्होंने तुम्हें खिलौने जैसा बना दिया है। जैसे खिलौना, सचमुच का मनुष्य नहीं हो सकता, उसी तरह मनुष्य भी भगवान नहीं हो सकता। तुम और कुछ नहीं, सिर्फ मुखौटे के पीछे छिपे एक साधारण मनुष्य हो। तुम मनुष्य भी नहीं, केवल नकल करने वाले बंदर हो। नकली धर्म वाला नकली देवता! तुमने यह स्वांग रचकर स्वयं को ही ठगा है और अब तुम दूसरों को ठगना चाहते हो।'

'बहुत हुआ!' पौंड्रक ने कहा। 'मुझे पता है कि तुम्हारे शब्द कैसे मन को छलते हैं। वे कैसे मन में संदेह पैदा कर देते हैं जिनसे तुम्हारे शत्रु को भ्रम होने लगता है। किंतु आज ऐसा नहीं होगा। तुम मुझे झूठा कह रहे हो जबकि तुम खुद झूठे हो। तुम उस सच्चे आदर्श से कोसों दूर हूँ, जो दरअसल मेरा वास्तविक स्वरूप है। मेरे राज्य में सूर्य पूर्व दिशा में उदय होता है क्योंकि मैं महाविष्णु हूँ। और वह तुम्हारे पश्चिमी तट पर अस्त होता है क्योंकि तुम धोखेबाज हो। एक चरवाहा, जो राजा बनना चाहता है। मुझे मेरे अस्त्र-शस्त्र लौटा दो अन्यथा तुम्हारा रक्त बहाकर मैं इस समुद्र को लाल कर दूँगा।'

कृष्ण आगे बढ़े। 'तुम्हें मेरे अस्त्र-शस्त्र चाहिए तो मुझसे ले लो। मेरे सब अस्त्र ले लो।'

उन्होंने अपना शंख और धनुष पौंड्रक की ओर उछाल दिया। कौमोदकी गदा और सुदर्शन चक्र भी। वे सब अस्त्र-शस्त्र हवा में उछले तो बादल गरजने लगे। आकाश, स्वर्णिम आभा की चमक से नीला हो गया मानो वह भी कृष्ण के तन की नकल कर रहा था। शंख में से मृत्यु की भयंकर गर्जना होने लगी और धनुष के बाणों ने पौंड्रक की सेना को तहस-नहस कर दिया। कृष्ण की गदा ने पौंड्रक का रथ तोड़ डाला और चक्र ने पौंड्रक का सिर, उसके धड़ से अलग कर दिया। जैसे ही पौंड्रक का सिर कटकर लुढ़का, उसके लकड़ी के हाथ अलग हो गए। उसके अंग चारों ओर बिखरे पड़े थे। वर्षा ने उसकी त्वचा का नीले रंग धो डाला था। तभी कृष्ण का स्वर गूँज उठा।

'सब सावधान रहें! पृथ्वी के पौंड्रकों से सावधान! सावधान रहें क्योंकि एक नकली देवता, सौ दुष्टात्माओं से अधिक कष्ट देता है।'

96
अर्जुन का अहंकार टूटा



एक... दो... तीन... चार... पाँच... छह... सात...

कृष्ण गिन रहे थे। बलराम गिन रहे थे। प्रद्युम्न भी गिन रहा था। सभी यादव गिन रहे थे। उनके सामने सात पवित्र धागे पड़े थे।

‘सात पुत्र,’ ब्राह्मण की आवाज़ टूट रही थी मानो किसी ने उसे पैरों से रौंद दिया हो। ‘मेरे सातों पुत्र गायब हो गए।’

‘गायब हो गए?’ सभासद एक स्वर में पूछने लगे।

‘मेरी पत्नी जैसे ही पुत्र को जन्म देती है, वह शिशु गायब हो जाता है मानो आकाश चुरा ले गया हो या धरती ने उसे छिपा लिया हो। मैं हर जगह उसे ढूँढ़ता हूँ किंतु मुझे उसका कुछ पता नहीं मिलता। ऐसा अब तक सात बार हो चुका है और मेरे पास केवल ये सात धागे रह गए हैं। ये जनेऊ हैं, जो मैंने अपने पुत्रों के लिए बनाए थे।’

ब्राह्मण की दृष्टि कृष्ण की ओर गई।

‘मैंने या मेरी पत्नी ने ऐसा कौन-सा पाप किया है जिसके कारण हम अब तक निःसंतान हैं? क्या हम कंस के पापों के कारण दुख पा रहे हैं? वही अत्याचारी कंस, जिसने आपके भाई-बहनों को भी पैदा होते मार डाला था?’

कृष्ण ने उत्तर नहीं दिया। ब्राह्मण ने उसे उन्हें अब दूसरा जनेऊ दिखाया।

‘मेरी पत्नी आठवीं बार फिर गर्भवती हुई है। आप भी आठवें पुत्र हैं। देवताओं ने आपकी रक्षा की। क्या मेरे पुत्र की रक्षा कोई नहीं करेगा?’

सब शांत थे। तभी एक आवाज़ सुनाई पड़ी।

‘मैं रक्षा करूँगा, विप्रवर।’

इंद्रप्रस्थ का राजकुमार। कुंती का पुत्र। सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर, जिसने बलराम की बहन सुभद्रा

के साथ विवाह करके यदु और पुरु वंश को एकजुट किया था।

अर्जुन।

'तुम द्वारवती में हमारे अतिथि हो,' बलराम ने अर्जुन को याद दिलाया। 'तुम्हें इन मामलों में नहीं पड़ना चाहिए।'

'मैं जहाँ हूँ, एक योद्धा हूँ। दीन की रक्षा करना योद्धा का धर्म है। मैं पीछे हट जाऊँगा यदि यहाँ उपस्थित लोगों में से कोई भी इस पिता को आश्वासन दे सके कि वह उसे अपना एक और नवजात शिशु नहीं खोना पड़ेगा। क्या कोई उसे वचन दे सकता है?'

किसी ने कुछ नहीं कहा। अर्जुन हँस पड़ा। सभा के सामने अपना गांडीव धनुष लहराते हुए, अर्जुन ने ब्राह्मण को संबोधित किया।

'यादव भले ही अपने लोगों अपनी रक्षा न कर पाएँ, किंतु मैं आपको वचन देता हूँ। यह एक धनुर्धर का वचन है। आपके शिशु पर कोई संकट नहीं आएगा।'

'जब कृष्ण और बलराम भी असहाय दिखाई दे रहे हैं तो मैं आप पर भरोसा कैसे करूँ?' ब्राह्मण ने पूछा।

'क्योंकि यह कार्य केवल मैं कर सकता हूँ।'

अर्जुन ने निशाना साधा और एक बाण छोड़ दिया। सब देख रहे थे। अर्जुन के बाण ने सामने पड़े सातों धागों एक-एक करके को भेद दिया और फिर सबको ब्राह्मण की हथेली पर रख दिया। ब्राह्मण हैरान था। अर्जुन ने उस बाण के दो टुकड़े कर दिए।

'जिस दिन आपकी पत्नी को प्रसव पीड़ा हो, उस दिन मुझे बुला लीजिएगा। मेरे रहते आपकी आठवीं संतान को किसी तरह की हानि नहीं होगी।'

'अगर हुई तो?' ब्राह्मण ने पूछा।

अर्जुन ने ब्राह्मण का हाथ पकड़ लिया। 'तो मैं स्वयं को अग्नि को अर्पित कर दूँगा।'

यादव घबरा गए। बलराम ने कृष्ण की ओर देखा किंतु कृष्ण मुस्कुरा रहे थे। सुभद्रा, उस रात कृष्ण के कक्ष में गई किंतु कृष्ण उस समय भी मुस्कुरा दिए। द्रौपदी ने कृष्ण को चिंता से भरा पत्र भेजा किंतु उसे पढ़कर भी कृष्ण मुस्कुराते रहे।

नियत दिन पर, अर्जुन ब्राह्मण के घर पहुँच गया। उसने गांडीव को हाथ में लिया और एक के बाद एक बाण चलाना आरंभ कर दिया। बाण निरंतर चलते रहे मानो ब्रह्मांड के सारे बाण अर्जुन के तरकस में आ गए थे। ऐसा लगा कि यदि ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने भी उनका मार्ग रोका तो अर्जुन के बाण उन्हें भी काट देंगे। सारे बाण, त्रुटिहीन पंक्तियों में संरेखित होते जा रहे थे। एक-दूसरे के साथ-साथ। एक के ऊपर एक। ईंटों की तरह, वे क्षैतिज और लंबवत रूप से सजने लगे। हर बाण अपने निर्धारित स्थान की ओर ऐसे बढ़ रहा था मानो किसी अदृश्य रूपरेखा का अनुसरण कर रहा हो। अर्जुन ने जैसे ही अंतिम बाण छोड़ा, ब्राह्मण

आश्चर्य से उसकी बनाई संरचना को देखने लगा। बाणों की नब्बे पंक्तियों ने ब्राह्मण के घर के चारों ओर धातु-निर्मित दुर्ग की तरह चारों ओर से घेर लिया था।

'आप शिशु के जन्म की तैयारी कीजिए,' अर्जुन ने प्रसन्नता से कहा। 'जब तक मेरा बनाया यह ढांचा खड़ा है, तब तक आपके शिशु पर कोई संकट नहीं आ सकता।'

जल्द ही, ब्राह्मण की पत्नी की चीख सुनाई देने लगी। वे उसी बाणों के सुरक्षित घेरे के अंदर गूँज रही थीं। तभी अर्जुन ने एक नवजात शिशु के रुदन की आवाज़ सुनी। ब्राह्मण के आठवें पुत्र का जन्म हो चुका था। अर्जुन उछल पड़ा। शिशु का रुदन उसे अपने विजय-घोष की तरह सुनाई दे रहा था मानो अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं और गंधर्व गा रहे थे। ऐसा लगा मानो ब्रह्मांड, अर्जुन के इस महान कार्य के लिए उसकी स्तुति गा रहा था। अर्जुन ने गांडीव उठा लिया।

मैंने वह कर दिखाया जो कृष्ण भी नहीं कर सके...

अचानक बालक का रोना बंद हो गया। घर से कोई आवाज़ नहीं आ रही थी। हलकी-सी भी नहीं। ऐसा लगा जैसे घर में बच्चा पैदा ही नहीं हुआ। फिर सहसा चीख-पुकार होने लगी। वह ब्राह्मण की पत्नी की चीख थी जिसने अर्जुन को उसी के बनाए बाण-कूप में डुबा दिया। वह स्थिर खड़ा रहा। उसके पैर हिल नहीं पा रहे थे। हाथ से गांडीव फिसल रहा था। स्त्री के रुदन से अर्जुन के बाण बिखरने लगे तो वह अंदर की ओर भागा। उसका हृदय काँप रहा था। रक्त जम रहा था। लड़खड़ाता हुआ अर्जुन जैसे ही अंदर पहुँचा, उसने वह दृश्य देखा जिसकी कल्पना उसने पहले ही कर ली थी।

पालना खाली पड़ा था।

कुछ क्षण बाद, अर्जुन ने अपनी चिता प्रज्वलित कर ली। उसने हाथ जोड़कर अग्नि से याचना की।

'पूज्य अग्निदेव! मेरी प्रार्थना है कि इस निकृष्ट पुरुष को स्वीकार कीजिए जो अपना वचन निभाने में विफल रहा है।'

अभी उसने एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाया था कि कृष्ण ने उसे रोक लिया।

'तुम्हें यह सब करने की आवश्यकता नहीं है।'

'आवश्यकता है। मैं ब्राह्मण के नवजात शिशु को सुरक्षित न रख पाने का पाप तो पहले ही कर चुका हूँ। यदि आत्म-दाह का वचन भी पूरा नहीं करूँगा, तो मुझसे एक और पाप हो जाएगा।'

'किंतु यदि तुम ब्राह्मण के पुत्रों को ढूँढ़ लाओ तो स्वयं को इस दोष से मुक्त कर सकते हो।'

अर्जुन ने पलटकर पूछा, 'ढूँढ़ लाऊँ?'

‘निस्संदेह। वे आठों भूलोक से गायब हुए हैं इसलिए कहीं और अवश्य होंगे। जिस तरह मैंने स्यमंतक मणि को ढूँढ़ निकाला था, उसी तरह तुम भी शिशुओं को ढूँढ़ सकते हो।’

‘यमदेव!’ अर्जुन बोला। ‘निश्चित रूप से यमदेव ही उन बालकों को ले गए होंगे।’

अर्जुन, कृष्ण के रथ पर सवार हुआ और जल्द ही दोनों यमलोक की ओर चल पड़े। परंतु मृत्यु के देवता ने शपथ लेकर कह दिया कि उन्होंने ब्राह्मण के बच्चों को नहीं उठाया। तब अर्जुन ने कृष्ण से ब्रह्मांड के प्रत्येक लोक में चलने की याचना की। वह इंद्रलोक और ब्रह्मलोक में घूमा। उसने आठ पर्वतों और सात द्वीपों को पार किया। अतल, वितल और पाताल को भी खंगाला। यहाँ तक कि देवताओं और असुरों से भी पूछा किंतु कोई उत्तर नहीं मिला। हताश होकर, अर्जुन ने फिर गांडीव उठा लिया।

‘मुझे चिता प्रज्वलित कर लेने दीजिए। अब मैं आत्म-दाह करूँगा।’

‘क्या तुमने यह मान लिया कि भरपूर प्रयास करके भी तुम असफल रहे हो?’

‘हाँ, मैं स्वीकार करता हूँ।’

कृष्ण ने फिर से रथ चलाया। ‘तो अब मैं तुम्हें कुछ दिखाता हूँ।’

रथ को सरपट दौड़ाते हुए वे दोनों एक गुफा में पहुँचे। वे जितना भीतर प्रवेश कर रहे थे, मार्ग उतना ही धुँधला होता जा रहा था। जल्द ही, प्रकाश समाप्त हो गया और लगा कि अंधकार उन्हें निगल जाएगा। वह अंधकार अनंत प्रतीत हो रहा था मानो वे दोनों ब्रह्मांड की रीढ़ के अंदर थे। रथ के अश्व भी घबरा गए और रथ से स्वयं को छुड़ाकर प्रवेश द्वार की ओर दौड़ने लगे। उनके खुरों की आवाज़ फीकी पड़ गई तब अर्जुन, रथ से उतर गया।

‘अब क्या होगा, केशव?’

‘मार्ग में अंधकार हो जाए तो दिव्य शक्तियाँ, मार्ग को प्रकाशित करती हैं।’

कृष्ण ने हाथ उठाया। चिंगारियाँ निकलीं और सुदर्शन चक्र में बदल गईं।

चक्र उनके ऊपर मँडरा रहा था जिससे आगे के मार्ग पर प्रकाश का वृत्त बन गया।

‘चलो, चक्र के पीछे चलते हैं।’

अर्जुन उसके पीछे-पीछे चलने लगा। उन्होंने सुना था कि कैसे सत्युग में, आठ ऋषियों ने उस चक्र का अनुसरण करके नैमिषारण्य की खोज की थी। आज अर्जुन भी चक्र का अनुसरण कर रहा था और स्वयं से प्रश्न पूछ रहा था।

क्या यह चक्र मुझे उन आठ शिशुओं तक ले जाएगा?

फिर वे रुक गए। गुफा का अंत आ गया था जिसके आगे का मार्ग एक विशाल जलाशय में खुलता था। ऊपर से आती सूर्य की रोशनी अनेक रंगों के विभक्त हो गई थी। हवा में समुद्र की गंध थी। उन्हें जीभ पर नमक का स्वाद आने लगा।

‘यह हम कहाँ हैं? यह ब्रह्मांड का सबसे नीचे का स्थान लगता है।’

‘यह वही है, अर्जुन। क्षीरसागर का तल। सामने देखो।’

अर्जुन स्तब्ध रह गया। विष्णु शेषनाग पर लेटे थे। उनके निकट ही ब्राह्मण के आठों शिशु सो रहे थे।

‘श्री हरि!’ अर्जुन ने हाथ जोड़कर कहा। ‘ये शिशु आपके पास थे?’

‘हाँ, अर्जुन। मैंने ही योगमाया को उन्हें एक-एक करके यहाँ लाने का निर्देश दिया था। मैं उन्हें यहाँ इसलिए लाया ताकि तुम उन्हें ढूँढ़ने आओ और मैं तुम्हें याद दिला सकूँ कि तुम कौन हो।’

‘मैं कौन हूँ?’

‘तुम नर हो और कृष्ण, नारायण हैं। ये दोनों मेरे रूप हैं जो भूलोक को अव्यवस्था से मुक्त करने के लिए अवतरित हुए हैं। किंतु अर्जुन, तुम अपने बाणों की चकाचौंध में मग्न हो गए। तुमने चिड़िया और मछली की आँख तो भेद दी परंतु तुम स्वयं अंधे हो गए हो। तुम भूल गए कि तुम कुछ नहीं करते। जब भी तुम यह कहते हो कि “मैं करूँगा” तो तुम दरअसल, मेरी ही इच्छा पूर्ण करते हो। परब्रह्म की इच्छा। तुमने स्वयं को शक्तिशाली सिद्ध करने के लिए जन्म नहीं लिया। तुम्हारा उद्देश्य इससे कहीं अधिक बड़ा और महान है।’

अर्जुन, कृष्ण के चरणों में गिर पड़ा। गांडीव, चक्र के सामने झुक गया था।

‘श्री हरि, मैं जिस पृथ्वी पर निवास करता हूँ उसने मुझे कलंकित कर दिया किंतु आपने मेरा साथ नहीं छोड़ा। मेरी आपसे प्रार्थना है कि मुझे जब भी आपकी आवश्यकता हो तो मुझे फिर सँभाल लीजिएगा।’

विष्णु ने हामी भरी और कृष्ण मुस्कुरा दिए।

97
वेद और भील



वेद भय से काँप रहा था।

अशुद्धि!

वेद अनन्य शिव भक्त थे जो ढलते सूर्य के समय प्रतिदिन जंगल के एक निर्जन मंदिर में पाए जाते थे। वे गर्भगृह पर जल छिड़कते, शिव प्रतिमा का धतूरे के फूल और शहद से अभिषेक करते, एक स्त्रोत जपते तथा प्राप्त हुई भिक्षा में से एक हिस्सा भगवान को अर्पित कर देते। यह दिनचर्या कई वर्षों से वेद के जीवन का हिस्सा थी। वह भोर होते ही भिक्षा माँगने निकाल जाते और संध्या होने तक उन्हें जो प्राप्त होता, उसका कुछ अंश शिव को अर्पित कर देते थे। उस दिन वे भगवान के लिए ताजा बेल-पत्र लेकर आए थे, तभी उनकी नजर मूर्ति के निकट पड़ी एक वस्तु पर पड़ी। वे उसके पास पहुँचे तो इतना ज़ोर से घबरा गए कि उनकी अँगुलियों के दबाव ने बेल-पत्र को चीर डाला।

माँस... हिरण का माँस...

वेद ने आँखें बंद कर लीं मानो ऐसा करने से माँस गायब हो जाता। जब वेद ने दोबारा आँखें खोलीं तो देखा कि माँस अब भी वहीं पड़ा था। किसी ने वेद की अर्पित की हुई भिक्षा को हटाकर माँस को मूर्ति के सामने रख दिया था। यह दृश्य देखकर वेद को उबकाई आ गई। माँस की दुर्गंध ने उन्हें बेचैन कर दिया। ऋषि ने माँस उठाकर दूर फेंक दिया और मंदिर की अच्छी तरह सफाई की। इसके बाद घर लौटकर उन्होंने विधिपूर्वक स्नान किया। परंतु अगले दिन शाम को प्रतिमा पर फिर किसी पशु का माँस चढ़ाया गया था। अब यह रोज की बात हो गई। वेद, माँस को हटा कर मंदिर की सफाई करते और अगले दिन भगवान के सामने ताजा माँस रखा मिलता। कभी खरगोश की खाल, कभी शूकर का अंग, कभी कबूतरों का माँस। मंदिर में माँस बदलता रहता था किंतु उद्देश्य वही था। शिव के सामने के स्थान को हथियाना। कोई व्यक्ति, न केवल ऋषि के हर्ष को कम कर रहा था अपितु

प्रतिदिन उनके करने के लिए सफाई का कार्य भी छोड़ जाता था।

वेद को क्रोध आ गया। आखिर उन्होंने उस व्यक्ति का सामना करने का निश्चय किया। अगले दिन जैसे ही दिन सूर्यास्त होने को था, ऋषि एक खंभे के पीछे छिपकर बैठ गए। उनकी आँखें सतर्क, हाथ-पैर तैयार, और शरीर कसा हुआ था। वे प्रतीक्षारत और सोच में डूबे थे। उन्होंने एक गहरी सांस ली। हवा में कच्चे माँस की गंध आ रही थी। किसी के कदम तेजी से मंदिर की ओर बढ़ रहे थे। ऋषि चुपचाप खड़े हुए और उन्होंने खंभे के पीछे से झाँका। एक युवक मूर्ति के सामने बैठा था। उसके कंधे पर धनुष लटका था और शरीर का निचला भाग पशु-चर्म से ढका था। ऋषि जोर से भड़क उठे।

व्याध!

फिर उन्हें और गुस्सा आ गया।

निम्न जाति का दुष्ट!

व्याध ने वेद की भेंट को हटाकर शिव के सामने किसी पशु का हृदय रख दिया। खून से सना पशु-हृदय जिसे उसने स्वयं काटकर निकाला था। ऋषि का गुस्सा उबल पड़ा। उन्होंने व्याध को दोषी ठहराने के उद्देश्य से कदम ही उठाया था कि वे चकित रह गए। मंदिर जगमगा उठा। मूर्ति में से तेज किरणें निकल रही थीं जिनके प्रकाश से मंदिर की दीवारें इतनी सफेद हो गईं कि लगा जैसे वे कैलाश में बर्फ की गुफा के भीतर खड़े थे। चारों ओर ॐ की ध्वनि गूँज रही थी। मूर्ति सजीव हो उठी। शिव, व्याध को देखकर मुस्कुरा रहे थे। उन्होंने उसे प्रेम से संबोधित किया।

'आज बहुत देर हो गई, भील। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।'

वेद, स्तब्ध खड़े थे। उन्होंने शिव को व्याध को आशीर्वाद देते देखा। भील ने जाते हुए भगवान को वचन दिया कि वह अगले दिन जल्दी आएगा। तभी शिव ने वेद को पुकारा जिसे सुनकर वेद घबरा गए।

'मेरे तीन नेत्र हैं, वेद। तुम मुझसे कहाँ तक छिपोगे?'

ऋषि, गर्भगृह की ओर बढ़े। उन्हें न आनंद का अनुभव हो रहा था और न भक्ति का। न भय, न अविश्वास। केवल विस्मय। ऐसा लग रहा था जैसे वे विस्मय की लहर के साथ बह रहे थे। वे ऊँचे तल पर पहुँच गए जहाँ से वे शिव के सामने खड़ा देख सकते थे। वेद ने देखा कि शिव उन्हें कुछ दिखा रहे थे। परंतु ऋषि ने भँवे सिकोड़ लीं। वे पशु-हृदय को टकटकी लगाए देखते रहे जो भील मंदिर में छोड़ गया था। ऋषि का क्रोध सहसा विस्मय पर हावी हो गया। वे नीचे गिर पड़े। भगवान शिव ने ऋषि से कहा।

'वेद, तुम संभवत: मुझसे कुछ पूछना चाहते हो।'

'हाँ, मैं पूछना चाहता हूँ, महादेव,' ऋषि ने चिढ़कर कहा। 'आपके अलावा मैं अन्य किसी

की भक्ति नहीं करता। मैं वर्षों से आपकी पूजा करता आया हूँ और मुझे भिक्षा में जो मिलता है, उसे आपको अर्पित कर देता हूँ। यह मंदिर मेरा एकमात्र तीर्थ है किंतु आप एक बार भी मेरे सामने प्रकट नहीं हुए। इसके बजाय, आपने उस व्याध को दर्शन दिए। उस नीच प्राणी को, जो हत्या करता है, जो यहाँ माँस डालकर इस स्थान को अपवित्र करता है। आप उसकी प्रतीक्षा करते हैं, लेकिन मेरी नहीं। आप उसे आशीर्वाद देते हैं, मुझे नहीं। मेरी निष्ठा का मुझे कोई पुरस्कार नहीं मिलता तो मैं आस्था कैसे बनाए रखूँ? मुझसे कहाँ भूल हुई है, महादेव? मैंने ऐसा क्या कर दिया जिसके कारण आपने मुझे छोड़ दिया है?'

'ऋषिवर, आप 'मैं' शब्द का प्रयोग बहुत अधिक करते हैं।'

ऋषि स्तब्ध खड़े देखते रहे। फिर शिव ने कहा।

'आप कल फिर आइए तो आपको उत्तर मिल जाएगा।'

अगले दिन शाम को जैसे ही वेद ने गर्भगृह में प्रवेश किया, उन्हें मूर्ति पर रक्त की बूँदें दिखाई दीं। उन्होंने जैसे ही बूँदों को पोंछा, उन्हें वह भील आता हुआ दिखा। ऋषि फिर खंभे के पीछे छिप गए। उन्होंने गर्दन टेढ़ी करके देखने का प्रयास किया तो वह चकित रह गए। मूर्ति पर रक्त की बूँदें फिर से उभर आई थीं। भील, मूर्ति के सामने खड़ा बूँदों को निहार रहा था। अगले ही क्षण, वह नीचे गिर पड़ा।

'मुझे क्षमा कर दीजिए, महादेव। मैंने आपकी मूर्ति को अपवित्र कर दिया। मैं सदा अपनी भेंट सावधानी से चढ़ाता हूँ किंतु कल मुझसे भूल हो गई। अब इसका प्रायश्चित करने का मेरे पास एक ही उपाय है कि मुझे अपना रक्त बहाना पड़ेगा।'

भील ने बाण निकाला और उससे अपना हाथ छीलना शुरू कर दिया। बाण, उसकी त्वचा को काटता गया और उसका माँस जग-जगह से फटने लगा। वह घबरा गया मानो उसे किसी ने स्पर्श किया था। वह चौंक गया। तभी वेद ने झुक कर अपने वस्त्र का एक टुकड़ा फाड़ लिया।

'आप कौन हैं?' भील ने पूछा। इस बीच ऋषि, उसके घाव पर पट्टी बाँध रहे थे। 'आप रो क्यों रहे हैं?'

'मैं इसलिए रो रहा हूँ क्योंकि मैं आज यह समझा हूँ कि पवित्रता और अपवित्रता हमारे अंदर होती है, बाहर नहीं। महादेव, कर्म को देखते हैं, वर्ण को नहीं। और वे केवल उसी को दर्शन देते हैं जो अपना सर्वस्व उन्हें अर्पित कर देता है।'

98
कृष्ण और शिव का युद्ध



उसकी आँखें अपने नाम की तरह खुलने लगी थीं।

उषा का अर्थ है, भोर। उसकी दृष्टि, सुबह के आकाश की तरह सजीव होने लगी थी। वह सामने खड़े दिव्य युगल को देख रही थी। वह उनके दिव्य प्रभामंडल में सराबोर हो गई जिसने उसे चारों ओर से ढक लिया था। उषा ने उनके रुद्राक्ष और उनकी पत्नी के पलाश को प्रणाम किया। दोनों ने उसकी प्रार्थना सुनी और उसका नाम पुकारा।

'उषा।'

'महादेव! माता पार्वती।'

'हे बाणासुर की पुत्री, हम तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हैं। तुम्हारी क्या इच्छा है?'

उषा का चेहरा लाल हो गया। 'प्रभु, मुझे पति चाहिए। मैं भूलोक के सबसे आकर्षक पुरुष से विवाह करना चाहती हूँ।'

शिव को देखकर पार्वती मुस्कुराईं। 'मैंने भी एक बार यही प्रार्थना की थी क्योंकि मैं चाहती थी कि मेरे पति देवताओं में सबसे महान हों। मेरी इच्छा पूर्ण हुई।'

'इसीलिए मैंने आपका आह्वान किया है, माँ,' उषा ने हाथ जोड़ते हुए कहा। 'मेरे हृदय की पीड़ा को आपके अतिरिक्त और कौन समझ सकता है?'

शिव ने कहा, 'मैंने पार्वती की इच्छा पूर्ण की थी। अब तुम्हारी इच्छा को माता पूर्ण करेंगी।'

'उषा, अब अधिक विलंब नहीं होगा,' देवी ने उसे आश्वासन दिया। 'आगामी वैशाख माह में, तुम्हें स्वप्न में एक पुरुष का चेहरा दिखाई पड़ेगा। ऐसा चेहरा, जो तुमने पहले कभी नहीं देखा होगा। वही पुरुष तुम्हारा पति होगा।'

वैशाख आ गया और लगभग समाप्त भी होने वाला था। उषा, प्रत्येक रात्रि उस चेहरे की

प्रतीक्षा में सोती किंतु सुबह दुखी हृदय के साथ जागती थी। वह सोचने लगी क्या वह स्वप्न उससे दूर जा रहा था। क्या वह पुरुष भी उसके साथ अन्य पुरूषों की भांति केवल मज़ाक कर रहा था? अथवा उसके स्वप्न भी उसका विरोध कर रहे थे। उसे और सब दिखता था किंतु वह नहीं, जिसका वचन पार्वती ने दिया था। रातें बीतती गईं और उषा की बेचैनी चरम पर पहुँच गई। उसने बोलना और खाना-पीना छोड़ दिया। मुस्कुराना भी। वह केवल दिन गिनती थी।

सत्ताईस... अट्ठाईस... उनतीस...

वैशाख की अंतिम रात्रि को वह लेटी तो उसने प्रार्थना की। उसके हाथ में विष की शीशी थी। नींद ने धीरे-धीरे उषा को आलिंगन में ले लिया। अंधेरा बढ़ रहा था। तारे मानो खिलखिला रहे थे। बाहर घड़ियाल की आवाज़ सुनाई दी। तभी प्रहरी ने घोषणा की, 'भोर होने में एक घंटा शेष है!'

उषा घबरा गई। उसकी उसकी पलकें फड़कने लगीं। शरीर पसीने से लथपथ हो गया। श्वास तेज चलने लगीं। दिल धड़कने लगा। तभी उषा की माँसपेशियों में ऐंठन हुई, हाथ की अंगुलियाँ भिंच गईं, पैर की अंगुलियाँ मुड़ने लगीं। वह झटके से उठ बैठी। पीछे रखा प्रकाश-दीप लुढ़क कर बुझ गया। उषा रो रही थी। वह हँस भी रही थी।

मैंने उसे देख लिया...

उषा ने विष की शीशी फेंक दी। वह बचपन की सहेली चित्रलेखा के कक्ष की ओर भागी। केवल एक वही थी जिसे उषा ने पार्वती की भविष्यवाणी के बारे में बताया था। चित्रलेखा को जादू आता था। उसने उषा को टोना-टोटका भी सिखाया था। जैसे ही उषा ने उसे अपने स्वप्न के बारे में बताया, चित्रलेखा व्याकुल हो उठी।

'वह कैसा दिखता है? क्या वह उतना सुंदर है, जितना तुमने चाहा था?'

'उससे भी अधिक! देवी ने ठीक कहा था। मैंने अपने जीवन में इतना आकर्षक चेहरा कभी नहीं देखा। मैंने उसे देख लिया है और मैं उसे और अधिक चाहने लगी हूँ। किंतु मुझे उसका नाम कैसे पता चलेगा? मैं उसे कहाँ खोजूँ?'

चित्रलेखा बिस्तर से नीचे उतर आई। 'उसके लिए हमें जादू करना पड़ेगा।'

चित्रलेखा ने एक बड़ी-सी, खोखली लटकन वाली चांदी की माला पकड़ी हुई थी। सहसा उसकी आँखें चमकीं और धातु के भीतर एक प्रकाश-पुंज घूमने लगा।

'इस लटकन में भूलोक के प्रत्येक राजकुमार का चेहरा दिखेगा,' चित्रलेखा ने कहा। 'जैसे ही तुम्हें वह पुरुष दिखाई पड़े जिससे तुम्हारा विवाह होने वाला है, तुरंत मुझे बता देना।'

लटकन के अंदर चेहरे दिखाई पड़ने लगे और धुंधले पड़ते गए। उषा उन्हें देखती रही। उसने अनेक पुरुष देखे। काले, गोरे, मोटे, दुबले, आकर्षक, भद्दे, जवान और बूढ़े। वे चेहरे

तेजी से सामने आ रहे और फिर ओझल हो रहे थे। वह लटकन भी स्वप्न की तरह मज़ाक करती प्रतीत हो रही थी। उषा के सामने हर चेहरा आया किंतु वह नहीं, जिसे देखने के लिए वह लालायित थी। उषा की बेचैनी बढ़ने लगी। वह लटकन को तोड़ देना और प्रकाश-पुंज को बुझा देना चाहती थी। फिर अचानक वह उछल पड़ी।

'यही है!'

उसने चित्रलेखा का हाथ ऐसे पकड़ लिया मानो उसे छोड़ देने पर वह चेहरा गायब हो जाता।

'यह कौन है?' उसने पूछा।

'द्वारवती का राजकुमार, अनिरुद्ध। प्रद्युम्न का पुत्र। श्रीकृष्ण का पौत्र।'

'श्री कृष्ण?'

'हाँ। महाराज बाणासुर को तुम पर गर्व होगा।'

उषा की आँखें उस छवि को निहार रही थीं। उसके हर कण को आत्मसात् कर रही थी। उषा की श्वास तेज चलने लगी। ऐसा लगा जैसे उगते सूर्य की किरण, लटकन से टकरा रही थी। वह धातु पर राजकुमार का चेहरा उकेर रही थी तथा उन आकर्षक विशेषताओं को तराश रही थी, जिससे उषा को प्रेम हो गया था। उसकी सहेली मंत्र-जाप कर रही थी। प्रकाश-पुंज मंद हो रहा था। उसकी चमक समाप्त हुई तो अनिरुद्ध का चेहरा लटकन पर उभर आया। चित्रलेखा ने तुरंत वह माला, उषा के गले में डाल दी।

'बस! अब वह सदा के लिए तुम्हारे हृदय के निकट रहेगा।'

उषा ने आह भरते हुए कहा, 'मैं भी अपना सिर उसके वक्ष पर रखना चाहती हूँ।'

'मुझे पता है। मैं अभी द्वारवती जाती हूँ। जब मैं उसे भविष्यवाणी के बारे में बताऊँगी तो वह निश्चित रूप से यहाँ आएगा।'

'यदि उसने तुम पर विश्वास नहीं किया तो क्या होगा?'

चित्रलेखा मुस्कुराई। 'यदि मेरे शब्दों का प्रभाव नहीं हुआ तो तुम्हारी सुंदरता उसे लुभाएगी।'

चित्रलेखा ने उषा को एक और माला दिखाई। उस पर उषा का चेहरा अंकित था। फिर अगले ही पल वह गायब हो गई। उषा अपने कक्ष में लौट आई और बिस्तर पर लेट गई। उसकी आँखें बंद और अँगुलियाँ कसी थीं। उसे आवाज सुनाई दे रही थी। महादेव की आवाज़।

'उषा।'

पार्वती की आवाज़।

'उषा।'

चित्रलेखा की आवाज़।

‘उषा।’

एक पुरुष की आवाज़।

‘उषा!’

उसने आँखें खोलीं तो देखा सामने अनिरुद्ध खड़ा था। उषा के चेहरे वाली लटकन उसके गले में झूल रही थी। उसकी आँखें कह रही थीं कि वह सदा उषा के साथ रहना चाहता था तथा उसके स्पर्श के लिए लालायित था। उसे भी प्रेम की लालसा थी। उषा को अपने शरीर में लहर-सी दौड़ती महसूस हुई। एक विचित्र-सी गरमाहट उसकी जांघों के मध्य उठ रही थी। वह दौड़ी और उसने अनिरुद्ध को बाँहों में भर लिया। वह जानती थी कि उनके मन मिलकर एक हो गए थे। उनकी आत्मा एक-दूसरे का हाथ थामे हुए थी।

धड़ाम!

पूरा महल काँप उठा। बाणासुर जाग गया था।

खुशी से भरा बाणासुर, अपने कक्ष से बाहर निकला तो उसके मस्तिष्क में एक दृश्य कौंधा। उसने वर्षों पहले शिव को प्रसन्न करके उनसे एक वरदान माँगा था। ‘मैं दस हजार भुजाओं के साथ पैदा हुआ हूँ, महादेव। आपसे विनती है कि मुझे वरदान दीजिए कि मैं अपने समान योग्य किसी व्यक्ति से युद्ध कर सकूँ।’

‘तथास्तु,’ शिव ने उसे आशीर्वाद दिया। ‘जिस दिन तुम्हारी राजसी पताका भूमि पर टूटी पड़ी मिले, उस दिन यह समझ लेना कि तुम्हें जिस युद्ध की कामना है उसका समय हो चुका है।’

बाणासुर ने देखा कि उसकी पताका टूटी पड़ी थी। उसने पहरेदारों को पता लगाने का आदेश दिया और जल्द ही उनमें से एक प्रहरी घबराया हुआ आया।

‘राजकुमारी!’

‘उषा?’

‘वह किसी पुरुष के साथ है। कोई अजनबी!’

बाणासुर जोर से चिल्लाया। उसके सैनिक तुरंत उषा के शयनकक्ष में पहुँच गए। इससे पहले कि वे अनिरुद्ध को छू भी पाते, अनिरुद्ध ने सबको गदा के वार से मार डाला। तब बाणासुर स्वयं सामने आया। अनिरुद्ध ने फिर अपनी गदा से वार किया किंतु बाणासुर ने उसे परास्त करके बेड़ियों में जकड़ लिया।

‘अपनी पहचान बताओ,’ बाणासुर ने गुस्से से कहा।

‘यह द्वारवती का राजकुमार, अनिरुद्ध है। श्री कृष्ण का पौत्र,’ उषा ने उत्तर दिया।

असुर ने पलटकर देखा।

कृष्ण...

उसका खून खौलने लगा।

कृष्ण...

उसकी दस हजार भुजाएँ रोमाँच से काँप उठीं।

कृष्ण...

शिव ने वरदान दिया था कि उसका सबसे बड़ा प्रतिद्वंद्वी उसके द्वार तक आएगा।

कृष्ण से युद्ध...

यह समाचार द्वारवती पहुँच गया तथा यादव, अपने राजकुमार को मुक्त कराने के लिए दौड़ पड़े। बलराम और प्रद्युम्न, सेनापतियों से लड़ रहे थे। इस बीच कृष्ण, बाणासुर के सामने आ गए।

'यह वह क्षण है, जिसकी मुझे प्रतीक्षा थी,' असुर प्रसन्न हो गया। 'वह क्षण जिसके लिए मुझे अनेक कई भुजाएँ मिली हैं। महादेव ने अपना वचन पूरा किया। लोग कहते हैं कि तुमने कालिय के फणों को रौंद डाला था। क्या तुम मेरी इन दस हजार भुजाओं को भी जीत सकते हो?'

कृष्ण हँसे। 'अवश्य जीत सकता हूँ। तुमने स्वयं ही अपनी पराजय सुनिश्चित की है। तुमने और तुम्हारी पुत्री ने शिव की उपासना की थी। परंतु उसने प्रेम माँगा लेकिन तुमने घृणा माँगी। और धर्म कहता है कि घृणा की कभी विजय नहीं होती।'

बाणासुर ने जैसे ही कृष्ण पर आक्रमण किया, उन्होंने अपना सुदर्शन चक्र छोड़ दिया। चक्र आगे बढ़ा और उसने एक-एक करके बाणासुर की भुजाओं को काटना शुरू कर दिया। बाणासुर ने युद्ध की हर युक्ति का उपयोग किया किंतु सब व्यर्थ गया। चक्र तेज़ी से घूम रहा था मानो वन के पेड़ों को काट रहा हो। बाणासुर की कटी भुजाओं का ऊँचा ढेर लग गया जिससे इतना रक्त बहा कि एक सरोवर बन गया। फिर बाणासुर की चार भुजाएँ शेष रह गईं। अचानक चक्र घबरा कर कृष्ण के पास लौट आया। बाणासुर के सामने एक प्राणी, विशाल ढाल बनकर प्रकट हो गया था। उसके गले में लटके सर्प के मुख से विष टपक रहा था, उसका डमरू शोर कर रहा था और उसका त्रिशूल हवा में लहरा रहा था। उसके मस्तक पर चंद्रमा ने सूर्य तक को ग्रस लिया था। सब लोग घबरा गए।

'महादेव!'

कृष्ण मुस्कुराए। 'तो क्या अब आप मुझसे युद्ध करेंगे?'

'करना ही पड़ेगा,' शिव ने उत्तर दिया। 'बाणासुर ने मेरा आह्वान किया है। मैं आपकी अवहेलना कर सकता हूँ किंतु अपने भक्त की नहीं।'

'क्या मैं आपके विरुद्ध सुदर्शन चक्र का प्रयोग कर सकता हूँ? आपने ही मुझे यह चक्र

प्रदान किया था।'

'और आपने मुझे असुरों से बचाया था।'

'आपने मुझे शरभ का रूप धारण करके शांत किया था।'

'आपने ही मुझे सती के भार से मुक्त किया था।'

'मैंने जब वृंदा की शुचिता भंग की तो आपने मेरी पीड़ा को शांत किया था।'

'और आपने मोहिनी रूप धारण करके मुझे आनंद प्रदान किया था।'

वे एक-दूसरे को देख रहे थे। फिर शिव ने कहा। 'परंतु अभी हमें वही करना होगा जो किया जाना आवश्यक है।'

कृष्ण ने हामी भरी और कहा, 'हाँ, जो किया जाना आवश्यक है।'

एक ने गदा उठाई। दूसरे ने त्रिशूल से निशाना साधा। एक गरुड़ पर सवार था। दूसरा नाग से सुशोभित था। युद्धभूमि तैयार हो गई। देवता और असुर खड़े देख रहे थे। ब्रह्मांड जैसे स्थिर हो गया। विष्णु और शिव का युद्ध होने वाला था। हरि और हर, एक-दूसरे को ललकार रहे थे। एक-दूसरे पर आक्रमण की तैयारी कर रहे थे। यदि वह युद्ध होता तो उससे उत्पन्न हुई अग्नि पूरे ब्रह्मांड को अपनी चपेट में ले लेती। प्रत्येक लोक चिता में जलती बदल जाता। सब प्राणी जलकर भस्म हो जाते और चारों ओर से चीखें सुनाई देतीं।

त्राहिमाम्... त्राहिमाम्... त्राहिमाम्...

तभी ब्रह्मा प्रकट हुए। उन्होंने हाथ जोड़कर दोनों देवताओं से उस युद्ध को रोकने की विनती की। उन्होंने बाणासुर को भी फटकारा, जिसे अब तक अपनी मूर्खता का एहसास हो चुका था। दोनों पक्षों में संधि हो गई और अनिरुद्ध तथा उषा का विवाह विधिवत् संपन्न हो गया। कुछ दिन बाद, उषा भोर के समय द्वारवती के तट पर खड़ी थी। तभी उसे कृष्ण की आवाज़ सुनाई दी।



‘क्या कर रही हो उषा?’
‘उगते सूर्य से प्रार्थना कर रही हूँ कि हमारा वंश सदा समृद्ध रहे।’
कृष्ण ने क्षितिज की ओर देखा। उनकी आँख से आँसू की एक बूँद छलक पड़ी।
किंतु सूर्य अस्त होने वाला है...

99
यदु वंश का अंत



वट वृक्ष के नीचे कृष्ण अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा में बैठे थे। उन्होंने अपना बायाँ पैर दाहिने घुटने पर रखा हुआ था और तलवा आगे की ओर फैला रखा था। वे मुस्कुरा उठे।

इससे काम हो जाएगा...

महाभारत युद्ध में अठारह दिन तक चले भीषण नरसंहार को समाप्त हुए छत्तीस वर्ष बीत चुके थे। कुरुक्षेत्र ने गीता को सुना था। एक परिवार को एक दूसरे की हत्या करते देखा था। हजारों आदमियों के रक्त का स्वाद चखा था। अनगिनत चिताओं पर जलते माँस की गंध महसूस की थी। युद्ध में पांडव जीत गए। कौरवों की पराजय हुई जिसके बाद क्रुद्ध गांधारी ने कृष्ण को शाप दे दिया।

'यदि तुम यह सोच रहे हो कि मैं शाप क्यों दे रही हूँ, तो द्वारवती लौटकर देवकी से पूछ लेना। उसने अपने पुत्रों को मथुरा की जेल में खोया था। वह मेरी पीड़ा भली-भांति समझ सकेगी। कृष्ण, मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि जैसे मेरे कुल का नाश हुआ, वैसे ही तुम्हारे वंश का भी नाश हो जाएगा। जिस तरह कुरुक्षेत्र की भूमि ने रक्त से स्नान किया, उसी तरह तुम्हारे नगर के तट की लहरें भी रक्त से लाल हो जाएँगी। जैसे अपने पुत्रों के वध के समय असहाय थी, वैसे ही तुम भी असहाय खड़े रहोगे। जैसे मेरा राज्य आँसुओं में डूब गया, वैसे ही तुम्हारी द्वारवती भी समुद्र में डूब जाएगी। और अंत में वन में तुम्हारी मृत्यु होगी जहाँ तुम पशु की भांति किसी व्याध का शिकार बन जाओगे।'

वट वृक्ष के नीचे बैठे कृष्ण सिहर उठे। उन्हें अपनी ओर आते कदमों की आहट सुनाई दे रही थी।

वे मुस्कुराए।

वह आ गया...

कुछ माह पूर्व, कृष्ण का पुत्र सांब और उसके साथी पिंडारिका तीर्थ की यात्रा पर गए थे जहाँ उन्होंने दुर्वासा और कुछ अन्य ऋषियों को देखा। उन बालकों ने गुस्सैल स्वभाव के दुर्वासा के साथ एक शरारत कर दी। सांब ने एक स्त्री के वस्त्र लिए और उन्हें अपने शरीर पर लपेट लिया। उसने गर्भवती स्त्री के सदृश किसी वस्तु को भीतर ठूँसकर अपना पेट फुला लिया और फिर दुर्वासा के सामने पहुँच गया। तब वे लड़के दुर्वासा से बोले।

'हे ज्ञानवान ऋषि, हमें बताइए कि इस स्त्री को लड़का होगा या लड़की?'

दुर्वासा तुरंत भाँप गए। उन्हें क्रोध आ गया और उन्होंने कह दिया।

'यह लड़का एक लोहे के मूसल को जन्म देगा और वही मूसल यदु वंश के विनाश का कारण बनेगा!'

कुछ घंटों बाद, सांब के शरीर से सचमुच लोहे का मूसल निकला। यादव उसे भयाक्रांत होकर ऐसे देख रहे थे जैसे कंस ने देवकी के नवजात शिशुओं को देखा था। यादव परिषद् ने तुरंत मूसल को पीसकर चूर्ण बना दिया और उसे समुद्र में फेंक दिया। दुर्भाग्य से, समुद्र ने उस विनाशक धातु को स्वीकार नहीं किया तथा वह लौह चूर्ण समुद्र की लहरों के साथ फिर से तट पर आ गया जहाँ वह अंकुरित हो गया। चूर्ण से निकले अंकुर नरकट बनकर समुद्र-तट पर उग गए। वे लोहे के मोटे-मोटे नरकट थे जो दुर्वासा के शाप को सत्य करने के लिए ही उगे थे। मूसल का एक छोटा-सा टुकड़ा पूरी तरह पिस नहीं पाया और उसे समुद्र में एक मछली ने निगल लिया।

बरगद के पेड़ के नीचे बैठे कृष्ण ने आखिरी बार बाँसुरी को सहलाया। वह उन स्वरों को सुन रहे थे जो उन्होंने कभी बजाए थे। कदमों की आहट और तेज हो गई थी। कृष्ण मुस्कुरा रहे थे।

वह निकट आ रहा है...

यादवों ने अपने अस्तित्व को बचाने के लिए नए कानून पारित कर दिए। भीड़ में इकट्ठा होकर पुरुषों द्वारा जुआ खेलने और हथियार लेकर चलने पर पाबंदी थी। सार्वजनिक समारोहों में मदिरा एवं अन्य नशीले पदार्थों के सेवन पर भी रोक लगा दी गई। खतरा गंभीर था और यादव वंश के प्रत्येक व्यक्ति ने कुल की रक्षा के लिए यथासंभव प्रयास किया। किंतु केवल कृष्ण जानते थे कि सब प्रयास व्यर्थ थे। दुर्वासा के शाप से बचना असंभव था। गांधारी का शाप भी फलित होना ही था। परब्रह्म की योजना थी कि धर्म से भटकने वाले लोगों का विनाश अवश्य होगा। केवल कृष्ण जानते थे कि सांब ने, जो वास्तव में शिव का रूप था, उस भावी विनाश के लिए जन्म लिया था।

उस दिन यादव, महाभारत युद्ध की वर्षगांठ के अवसर पर प्रभास-तट पर इकट्ठे हुए थे। नियमों के बावजूद, उनमें से बहुतों ने मदिरा का सेवन किया। पांडवों का पक्ष लेने वाले

सात्यकि और कौरवों का पक्ष लेने वाले कृतवर्मा के बीच किसी बात पर बहस छिड़ गई। मदिरा ने उनके खून में गरमाहट पैदा कर दी जिसके चलते बहस, कुछ ही देर में हाथापाई में बदल गई। उन्हें मारपीट करता देख उनके समर्थक भी जंगली पशुओं की तरह एक-दूसरे पर टूट पड़े। उन्होंने दाँतों से एक-दूसरे को काटा, नाखूनों से खरोंचा और पैरों तले रौंदा। जंगल में एक चिंगारी से लगी आग की तरह, उनका गुस्सा एक से दूसरे तक फैलता गया और अंत में उसने सबको अपनी चपेट में ले लिया। कृष्ण असहाय खड़े थे जबकि बलराम उनका उत्साह बढ़ाने की चेष्टा कर रहे थे।

'परिषद् के आदेश के अनुसार किसी के पास अस्त्र-शस्त्र नहीं हैं। यह लड़ाई अधिक लंबी नहीं चलेगी।'

फिर कृष्ण ने संकेत से बताया। एक यादव ने तट से कुछ उखाड़ा था। बलराम पीछे हट गए।

'नरकट! लौह-मूसल के चूर्ण से उपजे नरकट!'

कृष्ण ने हामी भरी। 'यह धातु, तट पर हमारी प्रतीक्षा कर रही थी।'

दोनों भाई स्तंभित खड़े थे क्योंकि उस यादव ने प्रद्युम्न की खोपड़ी को नरकट से फोड़ दिया था। चारों ओर गुस्सा उबल पड़ा। संबंध टूटने लगे। सबने नरकट उखाड़ना शुरू कर दिया था। अंग-भंग हो रहे थे। किसी की रीढ़ टूट गई थी तो किसी की पसलियाँ कुचली पड़ी थीं। चारों ओर क्षत-विक्षत तन बिखरे थे। ऐसा लगता था कि शाप ने दुष्टात्मा की तरह प्रत्येक व्यक्ति को अपने वश में कर लिया था। सांब और अनिरुद्ध मारे गए। समुद्र-तट पर यादवों में नरसंहार हुआ और उन्होंने एक-दूसरे को निर्ममता से मार डाला। सब ओर अव्यवस्था फैल गई। शवों का ढेर लग गया। यादव वंश मिट चुका था।

वट-वृक्ष के नीचे बैठे कृष्ण ने नज़र उठाई। पत्तों के बीच एक परछाई मँडरा रही थी। कृष्ण फिर मुस्कुराए उठे।

उसने देख लिया है...

समुद्र लाल हो गया था। रक्तिम लहर ने कृष्ण को भिगो दिया। उन्होंने बलराम को जल में प्रवेश करते देखा। बलराम की आँखें बंद हो गई थीं। उनका मुँह खुल गया और भीतर से हज़ार फणों वाला एक नाग निकला। उसका शरीर, बलराम के अंदर से फिसलता हुआ ऐसे बाहर आया मानो वह केंचुली छोड़ रहा हो। फिर वह नाग पानी के नीचे गायब हो गया। शेषनाग के अवतार बलराम ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया और वे समुद्र के गर्भ में लौट गए।

बरगद के पेड़ के नीचे कृष्ण को धनुष की डोरी कसने की आवाज़ सुनाई दी। वे मुस्कुरा उठे।

वह निशाना साध रहा है...

बाण, कृष्ण के पैर में लगा और उनके तलवे को बींध गया। विष्णु, ब्रह्मा और शिव तीनों सिहर उठे। ब्रह्मांड ने अपनी आँखें बंद कर लीं क्योंकि उसके आँसू छलक आए थे। उसने आँखें खोलीं तो देखा कि शिकारी उत्सुकता से आगे बढ़ रहा था। जरा नाम का आदिवासी शिकारी, जिसने भूल से कृष्ण के गुलाबी तलवे को हिरण का कान समझ लिया। खून की गंध उसे निकट ले आई थी। वह प्रसन्न था कि उसका निशाना सही लगा था। वह अपने बाण को माँस में से निकला हुआ देख रहा था। उसके कदम तेज गति से बढ़ने लगे और दिल भी तेज़ी से धड़क रहा था। वह पेड़ की ओर लपका और फिर डरकर नीचे गिर पड़ा।

वासुदेव...

जरा अपने शिकार को देख रहा था।

वासुदेव...

'डरो मत,' कृष्ण ने कहा। परंतु वह भीतर से टूट गया था। उसके अंग जैसे निष्क्रिय हो रहे थे।

मैंने वासुदेव को मारा है...

उसने अपने बाण को देखा।

मैं नरक में जलूँगा...

उसका शरीर चीत्कार कर रहा था। आत्मा काँप रही थी।

मैं सदा के लिए अपराधी हो गया...

कृष्ण मुस्कुराए। 'नहीं। तुम अपराधी नहीं हो।'

जरा के हृदय से डर गायब हो गया। कृष्ण का रक्त बह रहा था किंतु उन्होंने जरा का घाव भर दिया था।

'क्या तुमने इस बाण को लोहे के टुकड़े से बनाया है?' कृष्ण ने पूछा।

शिकारी, कृष्ण के निकट बैठ गया। 'हाँ, प्रभु।'

'तुम्हें वह टुकड़ा कहाँ मिला था?'

'एक मछली के पेट में।'

कृष्ण ने सिर हिलाया। 'सब पूर्व निर्धारित था। वह धातु यदु वंश के विनाश के लिए ही बनी थी। जैसे मैं उन्हें बचाने के लिए कुछ नहीं कर सका उसी तरह तुमने भी मुझे मारने के लिए कुछ नहीं किया। तुम मुझसे यूँ ही नहीं मिले हो। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।'

'किंतु मैं ही क्यों, प्रभु?' जरा सिसकने लगा। 'मेरे हाथों से क्यों?'

'क्योंकि तुम ही बाली हो और मैंने तुम्हें वचन दिया था।'

जरा असमंजस में पड़ गया।

बाली?

उसने वह नाम पहली बार सुना था। किंतु उसे ऐसा भी लगा जैसे वह उसे कई बार सुन चुका था।

'तुम त्रेता युग में बाली थे,' कृष्ण ने जरा को याद दिलाया। 'और मैं राम था। तुम अपने भाई सुग्रीव से युद्ध कर रहे थे तब मैंने वृक्ष के पीछे से बाण चलाकर तुम्हें मार डाला था। यह मेरी इच्छा थी कि तुम भी मुझे इसी तरह मार कर प्रतिशोध लो। तुमने कर्म का चक्र पूरा करने में ब्रह्मांड की सहायता की है। तुमने धर्म निभाया है कि कर्म से कोई नहीं बच सकता। मैं भी नहीं। तुमने कोई पाप नहीं किया अपितु मुझे दोष से मुक्त किया है।'

'त्रेता युग से द्वापर युग तक,' जरा ने कहा। उसे अब कुछ याद आ रहा था। 'इतना कुछ बदल गया है, प्रभु।'

'हाँ। राम अवतार के समय, वह युद्ध दूसरों के विरुद्ध था। किंतु मैंने कृष्ण अवतार में, लोगों को अपनों से लड़ते देखा है। फिर भी, बहुत कुछ पहले जैसा ही है। तब सीता का अपमान हुआ था। अब द्रौपदी का अपमान हुआ है। लोग, राम को भूल गए हैं। लोग, कृष्ण को भी भूल जाएँगे। फिर ब्रह्मांड के अंत की घोषणा करने कल्कि आएँगे।'

'प्रभु, क्या मैं आपसे फिर मिलूँगा?'

'जीवन और मृत्यु से परे ईश्वरीय प्रकाश है। हम फिर वहीं मिलेंगे।'

वे समुद्र की गर्जना सुन सकते थे। कृष्ण ने आँखें बंद कर लीं।

'यह कथा बाँसुरी से शुरू हुई थी और लोहे के नरकट पर समाप्त हुई है। इसका आरंभ यमुना से हुआ था और अंत समुद्र पर हो रहा है।'

कुछ देर बाद, समुद्र की लहरें द्वारवती की ओर उठने लगीं। उन्होंने नगर की दीवारों को ध्वस्त कर दिया। महलों को गिरा दिया। वे समूचा नगर निगल गईं। चारों ओर खारा पानी था मानो भूलोक आँसू बहा रहा हो, शोक मना रहा हो। उसे पता था कि कृष्ण पृथ्वी से जा रहे थे, और यह कि धर्म अब केवल एक पैर पर टिका रहेगा और यह भी कि कृष्ण के परलोक-गमन के साथ ही द्वापर युग का अंत एवं कलियुग का आरंभ हो चुका था।

100
जनमेजय का सर्प-यज्ञ



अभी तक्षक दिखाई पड़ा। फिर अगले ही क्षण वह गायब हो गया।

वह महल के ऊपरी तल से उतर कर नीचे जा रहा था। डूबता हुआ सूर्य उसे देख रहा था। उगते तारे काँप रहे थे। तक्षक, खंभों पर जलती मशालों के नीचे से गुजर रहा था। प्रकाश और छाया के संयोग ने उसे जैसे किसी भूत में बदल दिया था। वह दिखाई देता, फिर गायब हो जाता। उसकी आँखें चमक रही थीं और जीभ लपलपा रही थी, शरीर फर्श के रंगों के साथ खेल रहा था। कुछ ही देर पहले ही वह एक फल में छिपकर आया था और जैसे ही परीक्षित ने उस फल खाया, तक्षक ने अपने विष-दंत राजा के शरीर में गड़ा दिए।

‘मैंने अपना वचन पूरा कर दिया,’ तक्षक ने राजा परीक्षित के कानों में धीरे-से कहा।

कृष्ण द्वारा अपना नश्वर शरीर त्याग देने के उपरांत पांडवों ने भी हस्तिनापुर को त्याग दिया था। अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित का राज्याभिषेक करके उन्होंने हिमालय में मृत्यु को अंगीकार कर लिया था। परीक्षित ने इतनी बुद्धिमानी से कुरु वंश का शासन सँभाला कि उसने विश्वज्ञानी की उपाधि प्राप्त की थी। परीक्षित जानता था कि वह कलियुग का पहला शासक है। उसने धर्म के अंतिम बचे हुए पैर को दृढ़ रखने का भरपूर प्रयास किया। देवताओं की उस पर कृपा थी। प्रजा उसकी जय-जयकार करती थी। किंतु तक्षक उसे डँसने की प्रतीक्षा कर रहा था। जिस समय तक्षक ने परीक्षित को डँसा था, उस समय राजा की आयु साठ वर्ष थी।

‘मेरा प्रतिशोध पूर्ण हुआ,’ तक्षक ने फुफकारते हुए कहा। इस बीच सब तरफ शोर मच गया।

प्रहरी, साँप का पता लगाने का प्रयास करने लगे। वैद्य, राजा को होश में लाने के लिए श्रम कर रहे थे। दोनों प्रयास विफल हो गए। तब परीक्षित का पुत्र जनमेजय सैनिकों पर गरजा, ‘इसका क्या अर्थ है?’

वह फर्श के रंगों की ओर इशारा कर रहा था। सर्प ने रंगों से फर्श पर अपना नाम अंकित कर दिया था।

तक्षक

मंत्री सिहर उठे। 'उसने प्रण लिया था और उसका प्रण पूरा हो गया।'

'कैसा प्रण? तक्षक कौन है?'

'वह सर्पों का राजा है जो किसी समय खांडव वन में शासन करता था। आपके पितामह अर्जुन ने इंद्रप्रस्थ की भूमि की सफाई के उद्देश्य से जंगल को जला दिया था। उस अग्नि में सर्पों का वंश जलकर भस्म हो गया किंतु तक्षक भाग निकला था। उसने अर्जुन अथवा उनके किसी वंशज को मार देने का प्रण लिया था। उसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई।'

जनमेजय ने अपने पिता का हाथ को ऐसे दबाया मानो वह उसकी शिराओं से जहर निकाल देना चाहता था।

'ब्राह्मणों को बुलाओ। यज्ञ की तैयारी करो।'

'कैसा यज्ञ?'

'सर्प सत्र।'

मंत्री घबरा गए। 'सर्प सत्र?'

'हाँ। तक्षक ने जो किया है, उसका परिणाम संसार के सभी सर्पों को भुगतना पड़ेगा। मैं भी उन्हें अपने पितामह की तरह अग्नि में भस्म कर दूँगा। मेरे पिता के प्राण लेने का मूल्य वे अपने प्राण देकर चुकाएँगे।'

'किंतु महाराज का दाह-संस्कार? आपका राज्याभिषेक?'

जनमेजय ने गुस्से से कहा। 'जब तक मैं प्रत्येक सर्प को जला नहीं देता, तब तक अपने पिता का दाह-संस्कार नहीं करूँगा।'

कुछ घंटों बाद, ऋषियों का एक विशाल समूह राजमहल पहुँच गया। वे वेदी के चारों ओर घेरा बनाकर बैठ गए। सफेद, लाल, काले, गुलाबी और पीले रंग के प्रतीक-चिह्न उकेरे गए। ये पाँच रंग, पाँच आद्य-सर्पों की प्रजातियों को दर्शाते थे। जनमेजय, अपने पिता के शव के पास बैठा था मानो बर्फ के पास सुलगता हुआ कोयला रखा हो। यज्ञाग्नि की लपटें उठने लगीं।

'शुरू कीजिए,' जनमेजय ने कहा।

मुनियों ने मंत्रोच्चारण शुरू किया। उनकी आवाजें ज्वार की लहरों की तरह ऊपर उठ रही थीं।

और ऊपर।

और ऊपर।

और ऊपर।

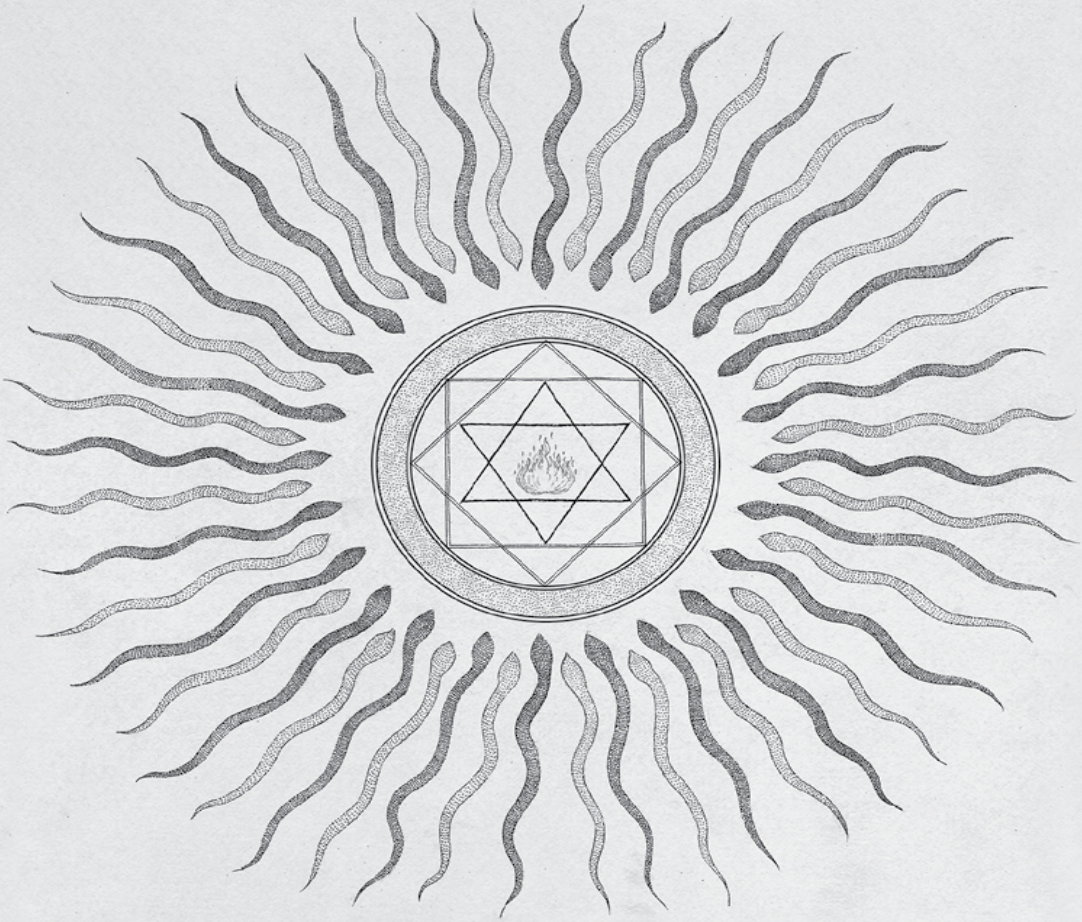
और ऊपर।

उच्चतम स्तर पर मंत्रोच्चारण का प्रभाव आरंभ हो पड़ा। वह राजकुमार जनमेजय तथा निर्जीव राजा परीक्षित के शव से होता हुआ ऋषियों के घेरे में घूमने लगा। वह शोकाकुल महल को प्रभावित करते हुए हस्तिनापुर की वीथिकाओं में फैल गया जो नगर वासियों से रिक्त हो गई थीं। यज्ञ-वेदी से उच्चारित मंत्र, सदा आनंदित करते थे किंतु उस दिन वे मंत्र डर पैदा कर रहे थे क्योंकि इस बार उनके प्रयोग से तामसिक शक्ति का आह्वान किया जा रहा था। वे मंत्र मृत्यु को निमंत्रण दे रहे थे। लोग अपने घरों में कान बंद किए बैठे थे। वे मंत्रों की ध्वनियों को सुनने से बच रहे थे। केवल जनमेजय उन्हें पूर्ण रूप से आत्मसात कर रहा था। उसकी हृदय-गति तेज होने लगी। फिर उसने आकाश की ओर देखा। तभी उसके चेहरे पर एक परछाईं उभरी।

'वह आरंभ हो गया।'

बादलों के बीच में से एक सर्प गिर रहा था। वह वेदी में गिरा और जलकर भस्म हो गया। इससे पहले कि राजकुमार हर्ष व्यक्त करता, चारों ओर से नागों की जैसे वर्षा होने लगी। काले नाग। सर्प। करैत। अजगर। उनके शरीर परस्पर उलझे हुए थे और वे तेज़ी से मृत्यु की ओर बढ़ रहे थे। वे मंत्र, समूचे ब्रह्मांड में सपेरे के अशुभ धुन की तरह गूँजने लगे। उन्होंने प्रत्येक लोक में से सर्पों को अग्नि-कुंड की ओर खींच लिया। सर्प छटपटा रहे थे। जितने अधिक सर्प अग्नि में गिरते, लपटों को उतना ही अधिक ईंधन मिलता जा रहा था। उनके शरीर की चर्बी, नदी बनकर बह रही थी। उनके माँस के धुएँ से हस्तिनापुर का दम घुट रहा था। संसार ने किसी प्रजाति का ऐसा भीषण संहार कभी नहीं देखा था। उस दिन समूची नाग जाति विलुप्त होने की दिशा में बढ़ती दिख रही थी किंतु जनमेंजय की क्षुधा शांत नहीं हुई क्योंकि उसे जिसकी प्रतीक्षा थी, वह सर्प अभी तक प्रकट नहीं हुआ था।

'तक्षक कहाँ है?'



उसने अपने सैनिकों को तक्षक की खोज में भेजा। वे चौंकाने वाला समाचार लेकर लौटे। तक्षक ने स्वयं को इंद्र के सिंहासन के चारों ओर लपेट लिया था। जनमेजय ने ऋषियों को संकेत किया।

'जोर से उच्चारण कीजिए।'

आवाजें तेज हो गईं। ज्यों-ज्यों मंत्रों का वेग बढ़ता गया, संसार के कोने-कोने से सर्प, अग्नि में गिरने लगे। ऋषि-मुनियों का घेरा मानो नरक-कुंड बन गया था जो सबको निगल रहा था। ब्राह्मण मंत्र जाप करते जा रहे थे। मंत्रोच्चारण जब चरम पर पहुँचा तो आखिरकार उसके प्रभाव ने तक्षक को भूलोक की ओर खींचना आरंभ कर दिया। वह देवराज के सिंहासन के चारों ओर कस कर लिपटा रहा किंतु मंत्रों का प्रभाव अब उस पर हावी होने लगा था। वह पकड़ मजबूर कर रहा था और मंत्र उसे तेजी से खींच रहे थे। पकड़ मजबूत हुई तो मंत्रों ने उसे और जोर से खींचा। पकड़ और मजबूत हुई, मंत्र ने और खींचा। ब्रह्मांड इस रस्साकशी को हैरत से देख रहा था। तक्षक ने इंद्र के सिंहासन को इतना कसकर जकड़ लिया कि अब उसके साथ सिंहासन भी यज्ञ-वेदी की ओर खिंचने लगा। देवराज स्तब्ध रह गए। उनके सेवकों ने सिंहासन को रोकने की कोशिश की किंतु सिंहासन अपने प्रचंड अंत की ओर बढ़ रहा था। मंत्रोच्चारण चरम पर था। तक्षक आग की लपटों के ऊपर झूल रहा था। देवराज इंद्र उसके पीछे खड़े थे। उन्हें देखकर जनमेजय उछल पड़ा। सारे देवता पीछे हट गए।

क्या वह पवित्र अग्नि, देवराज को भी लील जाएगी?

अचानक, मंदिर की घंटी के समान एक स्पष्ट स्वर सुनाई दिया। कोई जनमेजय और नाग-यज्ञ की स्तुति गा रहा था। वह स्तोत्र इतना प्रिय था कि जनमेजय उस स्तुति-गायक को देखने के लिए मचल उठा। इधर से पहरेदार भागे और उधर से एक ब्राह्मण बालक अंदर आया। उसका चेहरा उसके स्वर के समान उदात्त था। वह स्तुति गा रहा था और पूरी सभा, उस कम आयु के ब्राह्मण के ज्ञान और धर्मपरायणता पर अचंभित थी। यहाँ तक कि जनमेजय तक्षक के बारे में भूल गया। उसने तुरंत बालक से वरदान माँगने को कह दिया। ब्राह्मण ने हाथ जोड़ लिए।

'मेरी आपसे विनती है कि प्रतिशोध की परंपरा को समाप्त कर दीजिए। इस सर्प सत्र को रोक दीजिए।'

जनमेजय ने चौंक कर ब्राह्मण की ओर देखा। उसका चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था किंतु आँखें, एक दीवार पर टिकी थीं जिस पर एक भित्ति-चित्र बना था। उस चित्र में राक्षसराज बलि को वामन के समक्ष प्रणाम करते हुए दिखाया गया था। जनमेजय ने आकाश की ओर देखा। देवराज इंद्र जा चुके थे और तक्षक, अधर में ठहरा हुआ था।

'इस सर्प को कौन बचाने का प्रयास कर रहा है?' वह चिल्लाया।

‘यह ब्राह्मण,’ ऋषियों ने उत्तर दिया। ‘इसके शब्दों ने हमारे मंत्रों को निष्प्रभावी कर दिया है।’

‘बालक, तुम कौन हो?’

‘आस्तीक। मैं वासुकि का भतीजा हूँ।’

उसी समय यज्ञ-वेदी के पास एक कमल खिला, जिस पर ब्रह्मा विराजमान थे।

‘इस बालक की बात पर ध्यान दो, जनमेजय। सर्प दंश से मृत्यु होना परीक्षित के भाग्य में लिखा था। उसके भाग्य में जब जीवित रहना लिखा था तो कृष्ण ने अश्वत्थामा द्वारा मार दिए जाने के बावजूद परीक्षित को उसकी माँ के गर्भ में पुनर्जीवित कर दिया था। परंतु जब उसकी मृत्यु का समय हो गया तो तक्षक ने उसके रक्त में विष घोल दिया। हम सब नियति से बंधे हैं और कोई इस गांठ को खोलकर पूर्ववत् नहीं कर सकता।’

‘आप जो कहते हैं, यदि वह सच है तो उन सर्पों का क्या जिन्होंने आज अपने प्राण गँवाए? उन्हें जलकर क्यों मरना पड़ा?’

‘क्योंकि तुम्हारे पिता की तरह, उन्हें भी अपनी नियति को प्राप्त करना था।’

‘कैसी नियति?’

‘क्या तुमने कद्रू के बारे में सुना है?’

‘नागों की माता।’

‘और विनता?’

‘उसकी बहन। गरुड़ की माता।’

‘कद्रू और विनता में एक शर्त लगी थी।’

जनमेजय ने सिर हिलाया। ‘उच्चैश्रवा की पूँछ के रंग को लेकर।’

‘कद्रू ने कहा था कि अश्व की पूँछ काले रंग की है।’

जनमेजय उठ खड़ा हुआ। ‘और विनता को विश्वास था कि पूँछ सफेद है।’

‘जब कद्रू को पता लगा कि वह हारने वाली है तो उसने विनता को धोखा देने का निश्चय किया।’

राजकुमार ने एक कदम आगे बढ़ाया। ‘और उसने अपने पुत्रों से षड्यन्त्र में शामिल होने को कहा।’

‘अधिकांश सर्प सहमत हो गए थे किंतु कुछ सर्पों ने ऐसा करने से मना कर दिया। तब कद्रू ने उन्हें शाप दिया था। जनमेजय, वह शाप क्या था?’

जनमेजय रुक गया।

‘शाप क्या था?’

राजकुमार वेदी की ओर मुड़ा। ‘यही कि कद्रू के वे पुत्र जिन्होंने अपनी माता का आदेश

नहीं माना, कलियुग में होने वाले एक यज्ञ में जलकर भस्म हो जाएँगे।'

जनमेजय को अब समझ में आ गया था कि ब्रह्मांड में सबकुछ कैसे परस्पर जुड़ा था। एक सातत्य की तरह, जैसे कोई सर्प अपनी ही पूँछ को निगल रहा हो। एक-दूसरे से जुड़ी कथाओं की एक महागाथा। वह अब समझ रहा था कि ब्रह्मा उसे क्या कहना बताना चाहते थे।

'जिन्हें मरना था, वे मर चुके। मैं उनकी बात कर रहा हूँ जिन्हें जीवित रहना है।'

जनमेजय ने अपने पिता की ओर देखा। फिर सर्पों की ओर।

'तक्षक ने परीक्षित को उसकी नियति तक पहुँचाया। तुमने सर्पों को उनकी नियति तक पहुँचा दिया। अब समय आ गया है कि तुम अपनी नियति को प्राप्त करो।'

राजकुमार ने ब्रह्मा के सामने मस्तक झुका दिया।

'परम पिता, मैं अंधकार के सागर में तैर रहा था। आपने मुझे प्रकाश-पुंज के दर्शन करवाए हैं। मैं इस सर्प-सत्र को समाप्त करता हूँ। मुझे ज्ञान दीजिए। मेरी प्रजा को ज्ञान प्रदान कीजिए। क्या इस कलियुग में कुछ है जो हमें आशा प्रदान कर सकता है?'

'अवश्य है। प्राचीन युग में बहुत अधिक साधना करने के बाद थोड़ा-सा पुण्य मिलता था। परंतु अब इसका विपरीत होता है। कलियुग में, थोड़ा-सा ज्ञान पाकर, बहुत-सा पुण्य अर्जित किया जा सकता है।'

'इसका क्या उपाय है?'

'स्वयं का मूल्यांकन करो। स्वयं को शुद्ध करो। स्वयं को जानो। क्या तुम इसके लिए इच्छुक हो?'

जनमेजय ने प्रणाम किया। सर्प कुंडली मारकर चक्र में परिणत हो गया और कमल की पंखुड़ियाँ बंद हो गईं।

आभार

महागाथा की यात्रा पाँच वर्ष पहले आरंभ हुई थी। अपने श्रम को हार्पर कॉलिन्स इंडिया में स्थान पाते देखना बहुत सुखद है। इस पुस्तक को पसंद करने और अपना बनाने के लिए पूरी प्रकाशन टीम को धन्यवाद।

रिद्धिमा को हर बात के लिए धन्यवाद। आपके भरोसे, आपकी परिकल्पना, आपके धैर्य और जुनून के लिए। और उस अपार स्नेह के लिए, जो आपने इस पुस्तक को दिया है। आपके सहयोग के लिए भी बहुत शुक्रिया। आशा है कि हम साथ मिलकर कई और यात्राएँ पूरी करेंगे।

दिया, मेरा सूर्य बनने के लिए आपको धन्यवाद। जब रात्रि अंतहीन लग रही थी तो ऐसे में मुझे प्रकाश दिखाने के लिए धन्यवाद।

शानदार कवर डिजाइन के लिए धन्यवाद, सौरभ। पुस्तक के पृष्ठों को सौंदर्य प्रदान करके आपने इसे अनेक पायदान ऊपर पहुँचा दिया है। इसके लिए आपको धन्यवाद।

धन्यवाद, ओंकार, आपके बनाए भव्य चित्रों के लिए। इन कहानियों की सुरभि को अपनी कला में कैद करने के लिए आपका भी शुक्रिया।

आवश्यकता के समय मित्र बने रहने के लिए देवदत्त पटनायक का विशेष धन्यवाद। वे सदा फोन पर उपलब्ध रहे और उन्होंने मुझे वह अनमोल ज्ञान दिया जिसकी मुझे अत्यंत आवश्यकता थी।

दीपांकर, आपको मेरा प्रकाश-स्तंभ बनने और मुझे मार्ग दिखाने के लिए बहुत धन्यवाद।

वनजा आंटी, मेरी प्यारी गॉड मदर बनने के लिए धन्यवाद। आप मेरे लिए वह जादुई व्यक्ति बनीं जिसकी मुझे उस समय तलाश थी।

मेरी कल्पना को पंख देने के लिए माँ और मेरी बहन को धन्यवाद। उन सैकड़ों छोटी-छोटी बातों के लिए, जिनके कारण सौ कहानियों की यह किताब संभव हो पाई है।

और मेरे पाठकों, आपको बहुत धन्यवाद। किताब लिखना, आधी यात्रा करने जैसा है। यह यात्रा तब पूरी होती है जब आप लिखे हुए शब्दों को सचमुच पढ़ते हैं।

लेखक-परिचय

सत्यार्थ नायक मुंबई में स्थित, साहित्यकार एवं पटकथा-लेखक हैं। वे सीएनएन-आईबीएन, दिल्ली के साथ कार्य कर चुके संवाददाता एवं पूर्व सार्क पुरस्कार विजेता हैं तथा सेंट स्टीफेंस से अंग्रेजी साहित्य में कला-निष्णात हैं।

सत्यार्थ की बेस्टसेलिंग बायोग्राफी, *श्रीदेवी- द एटरनल स्क्रीन गॉडेस*, 2019 में पेंगुइन द्वारा प्रकाशित हुई थी। पर्दे की इस नायिका के बाल कलाकार होने से लेकर भारत की पहली महिला सुपरस्टार बनने तक की यात्रा को खूब सराहा गया। उनका पहला उपन्यास, *द एम्परर्स रिडल्स*, जो 2014 में प्रकाशित हुआ था, बेस्टसेलिंग थ्रिलर बना जिसे 'इतिहास और रहस्य के मिलन' की तरह देखा गया और उसकी तुलना डैन ब्राउन के साथ की गई थी। सत्यार्थ ने 2020 में अपनी दूसरी थ्रिलर, *वेनम*, के साथ लिखने का सिलसिला जारी रखा। उन्होंने सोनी के महाकाव्यात्मक ऐतिहासिक शो, *पोरस* की भी पटकथा लिखी जो 2017 से 2019 तक प्रसारित होने वाली भारत की सबसे महंगी टेलीविजन श्रृंखला मानी जाती है। उनकी लघु कथाओं को ब्रिटिश काउंसिल पुरस्कार मिला और उन्हें सुधा मूर्ति के पेंगुइन संग्रह, *समथिंग हैपंड ऑन द वे टू हेवन* में भी शामिल किया गया था।

सोशल मीडिया पर फॉलो किए जाने वाले शीर्ष 50 लेखकों में से एक तथा राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय साहित्य उत्सवों में नियमित वक्ता के रूप में नामित होने वाले सत्यार्थ नायक, वर्तमान में एक उच्च दर्जे की वेब श्रृंखला की पटकथा लिख रहे हैं। साथ ही, वे अपनी पहली फिल्म की पटकथा और महाभारत की पौराणिक कथाओं पर आधारित अगली पुस्तक भी लिख रहे हैं।

अनुवादक-परिचय

आशुतोष गर्ग ने एम.ए. (हिंदी), स्नातकोत्तर डिप्लोमा (पत्रकारिता, अनुवाद) के साथ एम.बी.ए. की डिग्री प्राप्त की है। वे अंग्रेजी और हिंदी, दोनों भाषाओं पर समान अधिकार रखते हैं तथा अनुवाद के क्षेत्र में अत्यंत चर्चित हैं। आशुतोष की 36 किताबें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें से 28 अनूदित कृतियाँ हैं। इनके द्वारा अनूदित पुस्तक '*सीतायण*' को वैली ऑफ वर्ड्स (vow) पुरस्कार-2020 के लिए 5 बेहतरीन पुस्तकों में शॉर्टलिस्ट किया गया था। वर्ष 2022 के 'अमर उजाला शब्द सम्मान' के अंतर्गत इनकी अनूदित पुस्तक '*द लास्ट गर्ल*' को सर्वश्रेष्ठ अनुवाद के लिए "भाषा बंधु" अलंकरण प्रदान किया गया था।

आशुतोष, सफल अनुवादक होने के अतिरिक्त बेहतरीन लेखक भी हैं। इनकी आठ मौलिक रचनाएँ प्रकाशित हैं जिनमें कोश, बच्चों की पहेलियाँ, सूक्ति-संग्रह और चार बेस्टसेलिंग पौराणिक उपन्यास भी शामिल हैं। *साहित्य तक* ने आशुतोष के उपन्यासों "*कल्कि*" और "*कुबेर*" को क्रमश: वर्ष 2021 एवं 2022 के 10 बेहतरीन उपन्यासों में सम्मिलित किया था। वे नियमित रूप से पत्र-पत्रिकाओं में लिखते हैं और इनका लेखन मुख्यत: पौराणिक-आध्यात्मिक साहित्य पर आधारित है।

भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. प्रणब मुखर्जी द्वारा "राष्ट्रपति पुरस्कार" से सम्मानित किए जा चुके आशुतोष गर्ग, रेल मंत्रालय में वरिष्ठ पदाधिकारी हैं।

संपर्क : ashutoshgarg343@gmail.com

प्रथम प्रकाशन 2024
हार्पर हिन्दी
(हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स इंडिया) द्वारा प्रकाशित 2024
बिल्डिंग नं. 10, टावर A, 4th फ्लोर,
डीएलएफ साइबर सिटी, फेज II, गुरुग्राम 122002, भारत
www.harpercollins.co.in कॉपीराइट लेखक © सत्यार्थ नायक 2024

P-ISBN: 9789356995604
E-ISBN: 9789356995611

लेखक इस पुस्तक का मूल रचनाकार होने का नैतिक दावा करता है।

इस पुस्तक में व्यक्त किए गए सभी विचार, तथ्य और दृष्टिकोण लेखक के अपने हैं और प्रकाशक किसी भी तौर पर इनके लिए जिम्मेदार नहीं है।

टाइपसेटिंग : निओ साफ्टवेयर कन्सलटैंट्स, प्रयागराज (इलाहाबाद) मुद्रक : थॉम्सन प्रेस (इंडिया) लि.

यह पुस्तक इस शर्त पर विक्रय की जा रही है कि प्रकाशक की लिखित पूर्वानुमति के बिना इसे व्यावसायिक अथवा अन्य किसी भी रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता। इसे पुन: प्रकाशित कर बेचा या किराए पर नहीं दिया जा सकता तथा जिल्दबंध या खुले किसी अन्य रूप में पाठकों के मध्य इसका परिचालन नहीं किया जा सकता। ये सभी शर्तें पुस्तक के खरीदार पर भी लागू होती हैं। इस सन्दर्भ में सभी प्रकाशनाधिकार सुरक्षित हैं। इस पुस्तक का आँशिक रूप में पुन: प्रकाशन या पुन: प्रकाशनार्थ अपने रिकॉर्ड में सुरक्षित रखने, इसे पुन: प्रस्तुत करने के प्रति अपनाने, इसका अनुदित रूप तैयार करने अथवा इलैक्ट्रॉनिक, मैकेनिकल, फोटोकॉपी तथा रिकॉर्डिंग आदि किसी भी पद्धति से इसका उपयोग करने हेतु समस्त प्रकाशनाधिकार रखने वाले अधिकारी तथा पुस्तक के प्रकाशक की पूर्वानुमति लेना अनिवार्य है।